झुक आयी बदरिया सावन की

भगवान श्री रजनीश

झुक आयी बदरिया सावन की

ये भजन मीरा ने बैठ कर नहीं लिखे हैं, जैसे कवि लिखते हैं। ये नाचते नाचते पैदा हुए हैं। इनमें अभी भी उसके घूंघर की झंकार है। ये अभी भी ताजा हैं। ये कभी बासे नहीं पड़ेंगे।

ये गीत कविता की तरह नहीं लिखे गये हैं। यहीं इनका गौरव है, गरिमा है। यही इनकी महिमा है। ये पैदा हुए हैं।.नाचते-नाचते किसी धुन में, नाचते-नाचते अनायास....। इनके लिए कोई प्रयोजन नहीं था, कोई चेष्टा नहीं थी।

मीरा कोई कवि नहीं है। मीरा भक्त है। कविता तो ऐसे ही आ गयी है जैसे तुम राह पर चलो और तुम्हारे पैर के निशान धूल पर बन जाएं। बनाने नहीं चाहे थे, बनाने निकले नहीं थे, सोचा भी नहीं था—राह से गुजरे थे, धूल पर निशान बन गए। आकस्मिक हुआ। धूप में चले थे; पीछे-पीछे छाया चली। छाया चलाने को न चले थे। छाया पीछे चले, इसकी कोई योजना भी न थी, न कोई विचार किया था। ऐसे ही ये गीत पैदा हुए हैं।

मीरा तो नाचने लगी। मीरा तो नाचती चली। ये पगचिह्न बन गए। इन पगचिह्नों में अगर तुम गौर से उतरो, प्रेम से उतरो, सहानुभूति से उतरो, तो तुम्हें मीरा के पैर ही नहीं, मीरा के पैरों के भीतर जो नाच रहा था, उसकी भी भनक मिलेगी।

इन शब्दों में मीरा के ही शब्द नहीं, मीरा के हृदय में जो विराजमान हो गया था उसका स्वर भी लिपटा है। ये मीरा ने अकेले गाये, ऐसा मानो ही मत। अकेले मीरा ये गा ही नहीं सकती।

ऐसे अपूर्व गीत अकेले गाये ही नहीं जाते। ये परमात्मा ने मीरा के साथ-साथ गाये हैं।

मीरा तो जैसे बांसुरी थी, गाये परमात्मा ने ही हैं। मीरा तो जैसे केवल माध्यम थी, ये बहे तो उसी से ही हैं।

इस भाव को ले कर हम इन अपूर्व शब्दों में उतरें।

भगवान श्री रजनीश
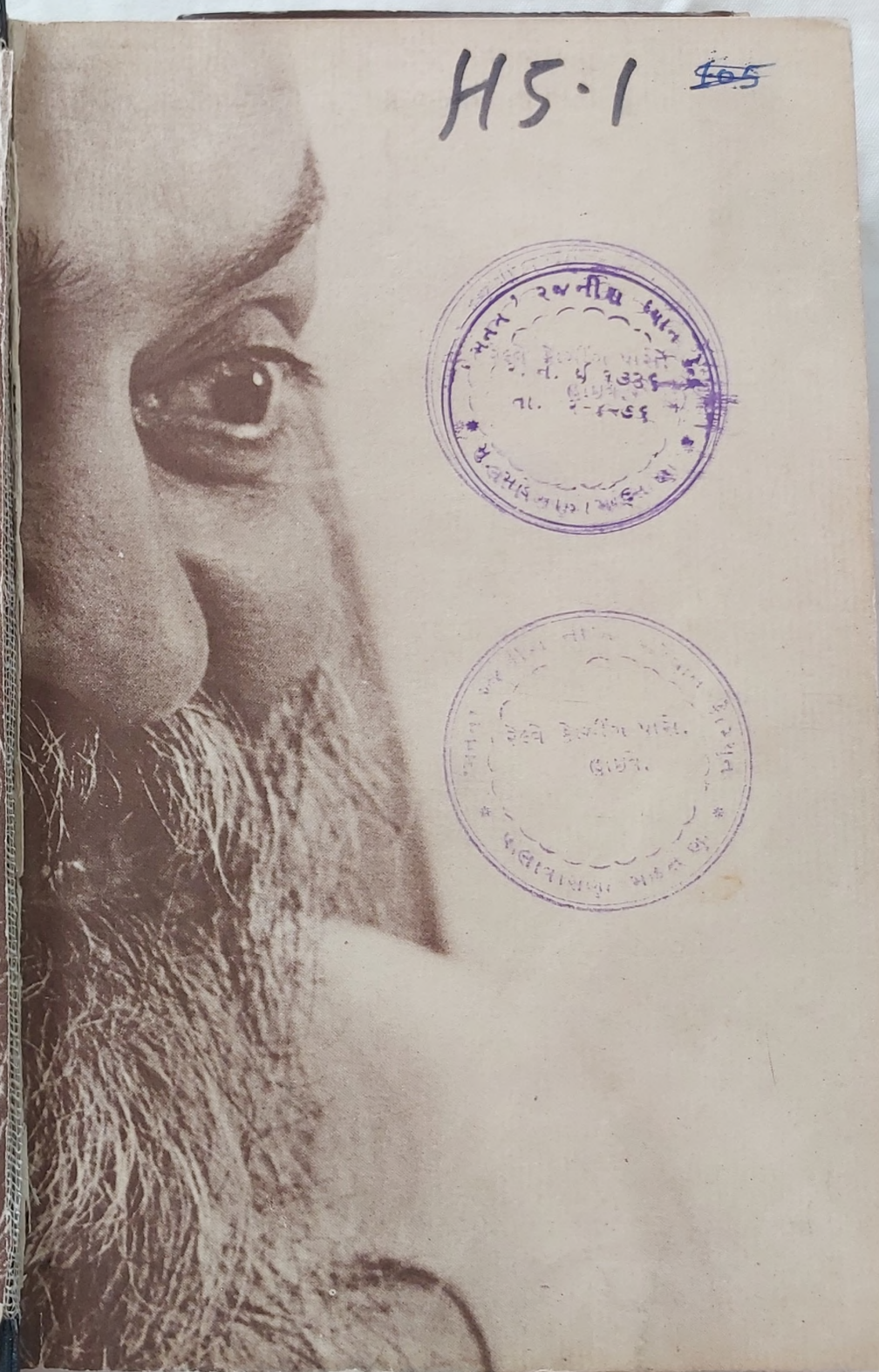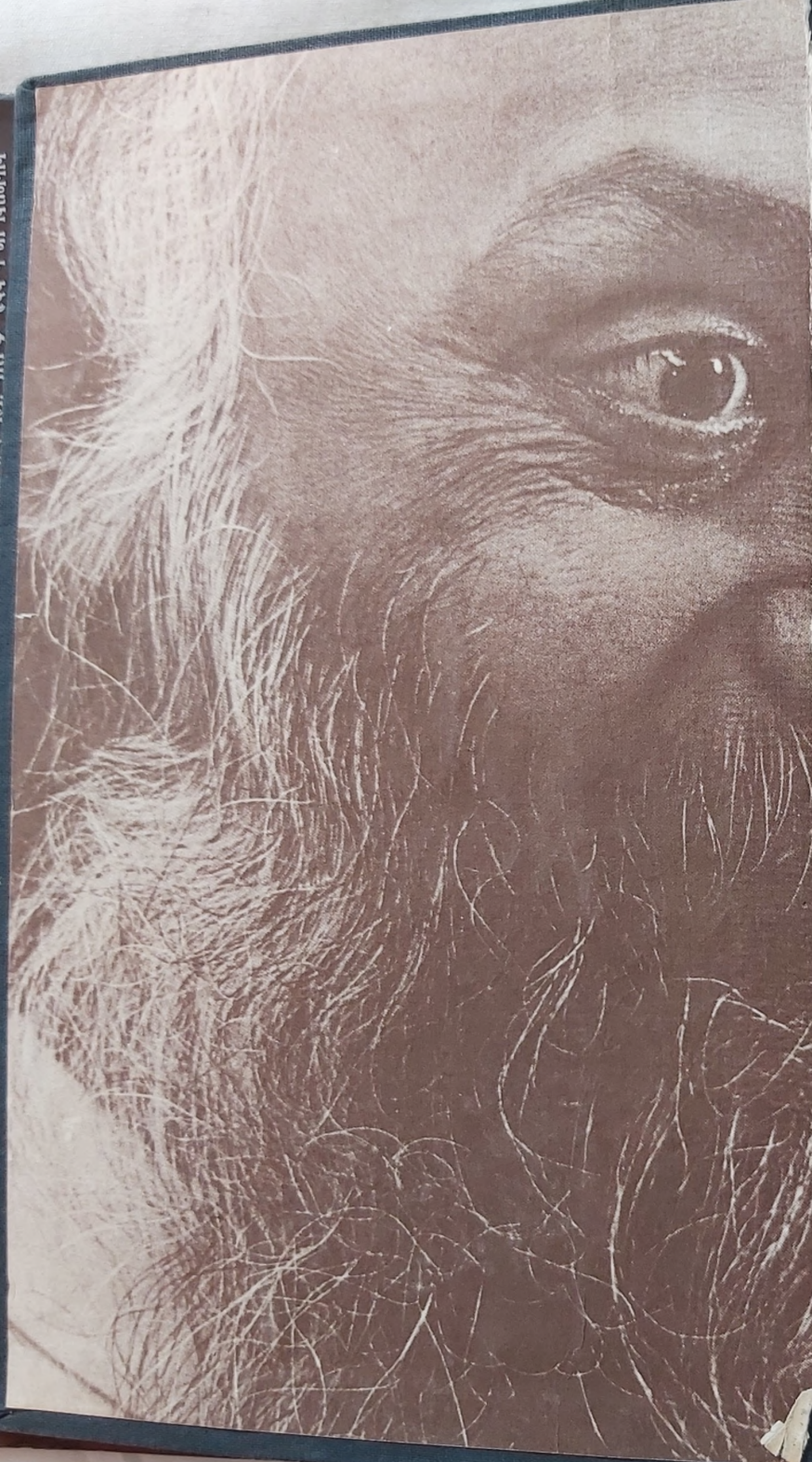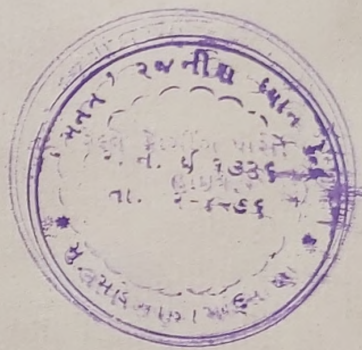
झुक आयी बदरिया सावन की

मीरा-वाणी

नव प्रकाशित हिन्दी साहित्य

अजहूं चेत गंवार : पलटूदास
समाधि के सप्त द्वार : ब्लावट्स्की
नहीं सांझ नहीं भोर : चरणदास
अथातो भक्तिजिज्ञासा--१ : शांडिल्य
जस पनिहार धरै सिर गागर : धरमदास
का सोवै दिन रैन : धरमदास
कठोपनिषद
ताओ-उपनिषद--४
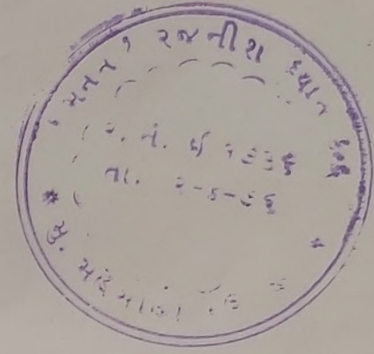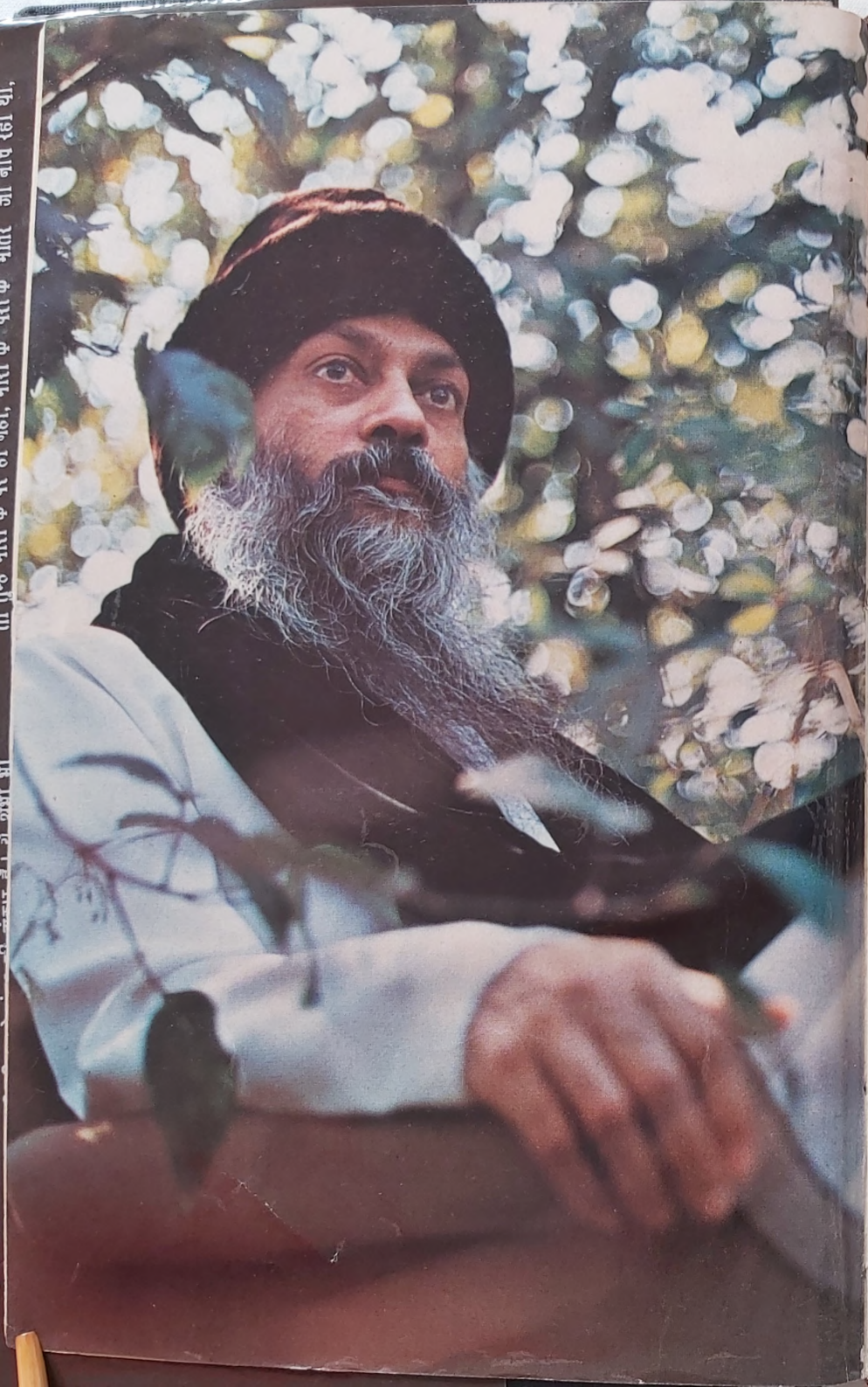
झुक आयी बदरिया सावन की

भगवान श्री रजनीश

मीरा-वाणी पर
दिनांक ११ नवम्बर से २० नवम्बर, १९७७ तक
दस अमृत उद्‌बोधन

संकलन : **मा अमृत मुक्ति**
संपादन : **स्वामी चैतन्य कीर्ति**
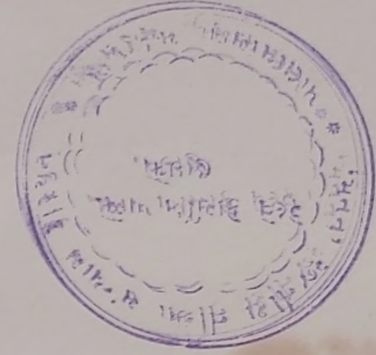
रजनीश फाउंडेशन

प्रकाशक
मा योग लक्ष्मी
सचिव, रजनीश फाउंडेशन,
१७ कोरेगांव पार्क,
पूना–४११००१

प्रथम संस्करण :
गुरुपूर्णिमा, १९७८
प्रतियां : ३०००

साज-सज्जा : रा. रा. पीर

मुद्रक
सय्यद इस्हाक
संगम प्रेस लि.,
१७ ब कोथरूड
पूना–४११०२९

मूल्य : ५०.०० रुपये

अनुक्रम

प्रवेश के पूर्व

मीरा सेतु है

मीरा के इन पदों में प्रवेश के पहले इस बात को खूब खयाल में ले लो, कि ये सारे पद मीरा के प्रेम के पद हैं। मीरा प्रेम का रबाब लेकर बजाती है। बड़ा रस है इनमें। आंसू भी बहुत हैं। प्रेम भी बहुत है। आनंद भी बहुत है। सबका अद्भुत समन्वय है। क्योंकि भक्त आनंद से भी रोता है, क्योंकि जितना मिला वह भी क्या कम है! भक्त विरह में भी रोता है, क्योंकि जो मिला उससे और मिलने की प्यास जग गयी है। भक्त धन्यवाद में भी रोता है, क्योंकि जितना मिला है वह भी मेरी पात्रता से ज्यादा है। और भक्त अभीप्सा में भी रोता है कि जब इतना दिया है तो अब और मत तरसाओ, और भी दो!

तो इन आंसुओं में तुम आनंद के आंसू भी पाओगे, विरह के आंसू भी पाओगे, अनुग्रह के आंसू भी पाओगे, अभीप्सा के आंसू भी पाओगे। इन आंसुओं में बड़े स्वाद हैं। और मीरा से सुंदर आंसू तुम और कहां पा सकोगे! ये भजन ही नहीं हैं, ये गीत ही नहीं हैं––इनमें मीरा ने अपना हृदय ढाला है। अगर तुम सावधानी से प्रवेश करोगे इन शब्दों में, तो तुम मीरा को जीवित पाओगे। और जहां मीरा को जीवित पा लिया, वहां से कृष्ण बहुत दूर नहीं हैं। जहां भक्त है वहां भगवान है। भक्त को समझ लिया तो भगवान के संबंध में श्रद्धा उत्पन्न होती है। भगवान तो दिखायी पड़ता नहीं––अदृश्य है। भक्त दृश्य है।

कृष्ण को जानना हो, मीरा को सेतु बनाओ। और मीरा से अपूर्व सेतु तुम कहीं पा न सकोगे। क्योंकि भक्त तो पुरुष भी हुए हैं। लेकिन पुरुष अंततः पुरुष है। उसके प्रेम में भी थोड़ी परुषता होती है। रोता भी है तो झिझककर रोता है--शरमाता-शरमाता। नाचता भी है तो संकोच से। पुकारता भी है परमात्मा को तो चारों तरफ देख लेता है, कोई सुनता तो न होगा! यह स्वाभाविक है। स्त्री-हृदय जब पुकारता है तो निस्संकोच पुकारता है। पुकार स्वाभाविक है वहां। स्त्री-हृदय जब रोता है तो उसे संकोच नहीं होता। आंसू सहज हैं, स्व-स्फूर्त हैं।

ये भजन मीरा ने बैठकर नहीं लिखे हैं, जैसे कवि लिखते हैं। ये नाचते-नाचते पैदा हुए हैं। इनमें अभी भी उसके घूंघर की झंकार है। ये अभी भी ताजा हैं। ये कभी बासे नहीं पड़ेंगे।

मैं तुमसे कहना चाहता हूं: जीवन-शैली इनमें छिपी पड़ी है। हां, थोड़ा श्रम करना होगा। थोड़े पर्दे उठाने पड़ेंगे। घूंघट में है राज। घूंघट देखकर ही मत लौट जाना। घूंघट के भीतर अपूर्व रहस्य छिपा हुआ है। लेकिन जो घूंघट उठायेगा, उस को ही रहस्य मिलेगा।

भक्ति को समझना हो तो मस्ती शर्त है।

डूबे हुए आओ। रस-विभोर आओ। नाचते हुए आओ। गीत तुम्हें घेरे रहे तो ही तुम मीरा से संबंध जोड़ पाओगे। सोचते हुए मत आओ। सोचे कि मीरा से दूर छिटक जाओगे। मस्ती में संबंध बनेगा। डगमगाते हुए आओ।

यह मयकदा है। यह मीरा का जो मंदिर है, मधुशाला है। यह पंडित का मंदिर नहीं है--यह मस्तों का मंदिर है।

नाचते हुए आओ। अहोभाव से भरे हुए आओ। प्रफुल्लता से आओ। प्रसाद से आओ। तो मीरा से संबंध जुड़ने में जरा भी देर न लगेगी। इधर तुम्हारा हृदय नाचता हुआ हो, तो उधर तो मीरा नाच ही रही है। और तुम भी नाचो, तो ही मीरा से मिल सकोगे। नाचते क्षण में ही मिल सकोगे। तुम बुद्धिमान बने खड़े रहे तो तुम्हारे बीच और मीरा के बीच जमीन-आसमान का अंतर होगा। उस अंतर को काटना संभव नहीं है।

तुम्हारे चारों तरफ अस्तित्व नाचता हुआ हो और तुम्हारे प्राणों से गीत उठते हों। ऐसी कला हो तो मीरा को समझ सकोगे।

भगवान श्री रजनीश

भक्ति : एक विराट प्यास

पहला प्रवचन

दिनांक: ११ नवम्बर, १९७७; श्री रजनीश आश्रम, पूना

म्हारो जनम-मरन को साथी, थानें नहिं बिसरूं दिन-राती।
तुम देख्यां बिना कल न पड़त है, जानत मेरी छाती।
ऊंची चढ़-चढ़ पंथ निहारूं, रोवैं अखियां राती।
यो संसार सकल जग झूंठो, झूठा कुल रा न्याती।
दोउ कर जोड़यां अरज करत हूं, सुण लीजो मेरी बाती।
यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूं मदमातो हाथी।
सतगुरु हस्त धरयो सिर ऊपर, अंकुस दे समझाती।
पल-पल तेरा रूप निहारूं, हरि चरणां चित राती।

मोहे लागी लगन गुरु चरनन की।
चरण बिना कछुवै नहि भावै, जग माया सब सपनन की।
भव-सागर सब सूखि गयो है, फिकर नहीं मोहे तरनन की।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, आस वही गुरु सरनन की।

होरी खेलत हैं गिरधारी।
मुरली चंग बजत डफ न्यारो, संग जुवति व्रजनारी।
चंदन केसर छिड़कत मोहन, अपने हाथ बिहारी।
भरि-भरि मूठि गुलाल लाल चहुं देत सबन पै डारी।
छैल-छबीले कान्ह, संग स्यामा प्राण प्यारी।
गावत चार धमार राग तंह दै दै कल करतारी।
फागु जु खेलत रसिक सांवरो, बाढ़यो ब्रज रस भारी।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, मोहन लाल बिहारी।

हां छलकती हुई शराब आए
जोश में फिर मेरा शबाब आए
फिर थिरकते हुए उठें नगमें
हाथ में इश्क का रुबाब आए
हर तरफ से निगाहे शौक को आज
इक शगुफ्ता हसीं जवाब आए

भक्ति है नाचता हुआ धर्म। और धर्म नाचता हुआ न हो तो धर्म ही नहीं है। इसलिए भक्ति ही मौलिक धर्म है—आधारभूत।

धर्म जीता है--भक्ति की धड़कन से। जिस दिन भक्ति खो जाती है उस दिन धर्म खो जाता है। धर्म के और सारे रूप गौण हैं। धर्म के और सारे ढंग भक्ति के सहारे ही जीते हैं।

भक्त है तो भगवान है। भक्त नहीं तो भगवान नहीं। भक्त के हटते ही धर्म केवल सैद्धांतिक चर्चा मात्र रह जाता है; फिर उसमें हृदय नहीं धड़कता; फिर उसमें रसधार नहीं बहती; फिर नाच नहीं उठता।

और यह सारा अस्तित्व भक्त का सहयोगी है, क्योंकि यह सारा अस्तित्व उत्सव है। यहां परमात्मा को जानना हो तो उत्सव से जानने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं। आंसू भी गिरें तो आनंद में गिरें। पीड़ा भी हो, तो उसके प्यार की पीड़ा हो!

देखते हैं चारों तरफ प्रकृति को! उत्सव ही उत्सव है। नाद ही नाद है। सब तरह के साज बज रहे हैं। पक्षियों में, पहाड़ों में, वृक्षों में, सागरों में--सब तरफ बहुत-बहुत ढंगों और रूपों में परमात्मा होली खेल रहा है। कितने रंग फेंकता है तुम पर! कितनी गुलाल फेंकता है तुम पर! और अगर तुम नहीं देख पाते, तो सिवाय तुम्हारे और कोई जुम्मेवार नहीं।

लोग परमात्मा को खोजने निकलते हैं; उन्हें उत्सव खोजने निकलना चाहिए। उत्सव जिस दिन समझ में आ जाएगा, उसी दिन परमात्मा भी समझ में आ जाएगा। परमात्मा को सीधे-सीधे पकड़ लेने का कोई उपाय भी नहीं है। रस में ही पकड़ो उसे--रस में डूब कर, विमुग्ध होकर। नाच में पकड़ो उसे। पकड़ लिया नाच में, तो पकड़ लिया; नहीं पकड़ पाए नाच में, तो फिर कहीं न पकड़ पाओगे। शास्त्रों

में नहीं है। सिद्धांतों में नहीं है। ज्ञानियों की व्यर्थ की चर्चाओं में नहीं है। जहां भक्त उठते हैं, बैठते हैं; जहां भक्तों के आंसू गिरते हैं; जहां भक्त रस में डूब कर उसके गुण-गीत गाते हैं; जहां उसकी प्रशंसा के स्वर उठते हैं; जहां कोई भक्त अपनी खंजड़ी बजा कर नाच उठता है--वहां खोजो। मंदिरों में भी नहीं मिलेगा। जिसने अपने मन के मंदिर में विराजमान किया है, वहां मिलेगा।

भगवान को खोजना हो तो भक्त को खोजो। भक्त मिल गया तो भगवान के मिलने में ज्यादा देर न रही।

हां, छलकती हुई शराब आए!

परमात्मा शराब है। भक्त ही इतनी हिम्मत कर सकता है कहने की :

जोश में फिर मेरा शबाब आए!

और भगवान तो सदा युवा है। शाश्वत यौवन है वहां। इसलिए तो हमने कृष्ण की वार्धक्य की कोई प्रतिमा नहीं बनाई--न राम की, न बुद्ध की। अस्तित्व कभी बूढ़ा होता ही नहीं। अस्तित्व सदा युवा है, सदा ताजा है, सदा कंवारा है; कभी विकृत होता ही नहीं। अस्तित्व सदा स्वस्थ है। ऐसा नहीं कि बुद्ध बूढ़े नहीं हुए। ऐसा नहीं कि कृष्ण बूढ़े नहीं हुए। लेकिन हमने कोई प्रतिमा नहीं बनाई। जो बूढ़ी हो गयी स्थिति उनमें, वह केवल आवरण है। देह जराजीर्ण हो गयी; जैसे कि वस्त्र जराजीर्ण हो जाते हैं। लेकिन जो भीतर चिरंतन छिपा है, वह सदा युवा है; वह कभी बूढ़ा नहीं होता। क्योंकि जो बूढ़ा होगा वह मरेगा भी। देह बूढ़ी होती है, मरती भी है। देह के भीतर जो चिरंतन है--न बूढ़ा होता, न मरता; उस पर कोई उपाधि नहीं है।

जोश में फिर मेरा शबाब आए
फिर थिरकते हुए उठें नगमें
हाथ में इश्क का रुबाब आए

और जब तक हाथ में इश्क का रुबाब न आ जाए, इश्क का सितार न आ जाए और जब तक तुम्हारे जीवन में प्रेम का गीत न बजने लगे, तब तक जाओ लाख काशी और काबा, भटको कैलाश और गिरनार, पूजो पत्थर-पहाड़, मंदिरों में पटको सिर; लेकिन जब तक हाथ में प्रेम की वीणा न होगी, तब तक तुम परमात्मा को न पहचान पाओगे। न तो उससे कोई संबंध तर्क से बनता है, न उससे कोई संबंध त्याग से बनता है।

तार्किक उलझा रह जाता है—अपनी बुद्धि में। और त्यागी उलझा रह जाता है--अपनी देह में। ख्याल रखना, जैसे भोगी उलझा रहता है देह में, वैसा ही त्यागी भी उलझा रहता है देह में; उनमें भेद नहीं है। हां, एक-दूसरे की तरफ पीठ किये खड़े हों, लेकिन दोनों में जरा भी भेद नहीं है। भोगी निरंतर इसी फिक्र में लगा रहता है : 'कैसे इत्र-फुलेल; कैसे शरीर को सजाये, सवांरे, शृंगार करें;

कैसे सुंदर वस्त्र, कैसे सुंदर आभूषण...!' त्यागी भी शरीर में उलझा है: 'कैसे शरीर को सताये, कैसे शरीर को गलाये, कैसे कांटों पर बैठे और कांटों पर सोए, कैसे धूप में खड़ा रहे, कैसे उपवास करे, कैसे सिर के बल खड़ा हो और शीर्षासन करे।' मगर दोनों देह में उलझे हैं।

तार्किक उलझ जाता है--बुद्धि में। त्यागी उलझ जाता है--देह में। दोनों चूक जाते हैं। क्योंकि परमात्मा हृदय में है; न तो बुद्धि में है और न देह में है। बुद्धि तो क्षुद्र है। क्षुद्र पर कारगर भी है। व्यर्थ का हिसाब लगाना हो तो बुद्धि का उपयोग करना पड़ेगा। देह भी उपयोगी है। बाहर जाना हो तो देह की सहायता लेनी होगी। लेकिन परमात्मा भीतर है। परमात्मा क्षुद्र नहीं कि बुद्धि उसका हिसाब लगा ले; सीमित नहीं है कि बुद्धि के जाल में आ जाए। परमात्मा इतना छोटा नहीं है कि तुम उसकी परिभाषा कर सको विचार से।

तुम्हारी सब परिभाषाएं टूट जाती हैं, तब परमात्मा मिलता है। तुम्हारे सब तर्क निराश हो जाते हैं, तब परमात्मा मिलता है। तुम्हारा सिर गिर जाता है, तब परमात्मा मिलता है।

और परमात्मा बाहर भी नहीं है कि शरीर के रथ पर बैठ कर यात्रा करनी हो। परमात्मा भीतर है। परमात्मा तुम्हारा होना है। जब तुम भीतर हृदय में गद्गद् होते हो, तब तुम उसके निकट होते हो। जब तुम भीतर रस-विभोर होते हो, तब तुम उसके निकट होते हो। जब तुम तल्लीन होते हो, तब तुम उसके निकट होते हो।

फिर थिरकते हुए उठें नगमें!

जब तुम्हारे प्राणों में गीत उठते हैं--अहोभाव के, कृतज्ञता के! जब तुम्हारे हाथ में वीणा होती है--प्रेम की! जब प्रेम की वीणा पर तुम तार छेड़ते हो।

हाथ में इश्क का रुबाब आए
हर तरफ से निगाहे शौक को आज
इक शगुफ्ता हसीं जवाब आए

और जब तुम्हारे भीतर ऐसी अपूर्व घटना घटती है कि वीणा बजे प्रेम की और नगमे उठें आनंद के, तो सब तरफ से परमात्मा तुम्हारी तरफ दौड़ता है।

भक्त को परमात्मा के पास जाना नहीं पड़ता; परमात्मा ही भक्त के पास आता है। भक्त को सिर्फ पुकारना पड़ता है। और हम जाना चाहें तो जा भी कैसे सकेंगे? हमारे पैर बहुत छोटे हैं, यात्रा बड़ी है। फिर, हमें उसका पता-ठिकाना भी तो मालूम नहीं। जाएं भी तो जाएं कहां? किस दिशा में खोजें--पूरब कि पश्चिम? किस भाषा में उससे बोलें? उसकी कौन-सी भाषा है? किस विधिविधान से उसे मनाएं? नहीं; भक्त को कुछ भी पता नहीं है। भक्त को उसका पता-ठिकाना पता नहीं; उसका दिशा-द्वार पता नहीं। वह कौन-सी भाषा समझेगा, इसका पता नहीं। भक्त को अपनी प्यास का पता है। भक्त अपनी प्यास को ढालता है--गीतों में।

भक्त अपनी प्यास को ही उभाड़ता है। भक्त की प्यास ही सघन होती जाती है। भक्त एक विराट प्यास बन जाता है--एक उत्तप्त अग्नि। और उस प्यास में ही परमात्मा दौड़ा हुआ आता है।

तुमने देखा, गरमी के बाद वर्षा होती है! ग्रीष्म के बाद आकाश में बादल घिरते हैं, मेघ घिरते हैं। ग्रीष्म के बाद ही क्यों घिरते हैं? क्योंकि ग्रीष्म के कारण, घने ताप के कारण, जलते हुए सूरज के कारण, वायु विरल हो जाती है, जगह जगह वायु विरल हो जाती है, गड्ढे बन जाते हैं वायु में। जब वायु में गड्ढे बन जाते हैं तो मेघ भागे चले आते हैं उन गड्ढों को भरने। क्योंकि इस जगत में अस्तित्व गड्ढों को बरदाश्त नहीं करता। इसलिए तो पहाड़ खाली रह जाते हैं और झीलें भर जाती हैं। ग्रीष्म के बाद घिर आते हैं बादल, क्योंकि खाली गड्ढे शून्य पैदा हो जाते हैं वायु में। और जहां-जहां शून्य है वहां-वहां आकर्षण है। शून्य में बड़ा प्रबल आकर्षण है। शून्य खींच लेता है। बादल भागे चले आते हैं।

ऐसी ही घटना अंतरतम में भी घटती है। प्यास जब प्रज्वलित हो जाती है, प्राण जब उसकी आकांक्षा-अभीप्सा से आतुर हो उठते हैं, विरह की अग्नि जब जलती है, तो तुम्हारे भीतर एक शून्य पैदा हो जाता है।

जिस शून्य को ज्ञानी ध्यान से पैदा करता है और बड़े श्रम से पैदा करता है और मुश्किल से सफल हो पाता है, उस शून्य को भक्त प्रेम से पैदा कर लेता है--और सुगमता से पैदा कर लेता है और सदा सफल हो जाता है! रो कर पैदा कर लेता है। विरह में जलकर पैदा कर लेता है। यहां भक्त एक शून्य बना कि वहां परमात्मा के मेघ उसकी तरफ चलने शुरू हो जाते हैं।

तुम नहीं परमात्मा को पहुंच पाओगे; परमात्मा ही तुम तक सदा पहुंचता है। यही उचित भी है।

छोटा बच्चा तो रोता है; मां भागी आती है। वह छोटा बच्चा जो झूले पर पड़ा है--असहाय--वह चेष्टा भी करे तो भी मां को खोजने कहां जाएगा? चलने की भी तो सामर्थ्य नहीं। अपने पैरों पर खड़ा भी तो नहीं हो सकता। लेकिन रो सकता है।

भक्त की सारी कला उसके आंसुओं में है। भक्त की सारी साधना-पद्धति उसके विरह में है।

मीरा के इन पदों में प्रवेश के पहले इस बात को खूब खयाल में ले लो, क्योंकि ये सारे पद मीरा के प्रेम के पद हैं। मीरा प्रेम का रुबाब लेकर बजाती है। बड़ा रस है इनमें। आंसू भी बहुत हैं। प्रेम भी बहुत है। आनंद भी बहुत है। सबका अद्भुत समन्वय है। क्योंकि भक्त आनंद से भी रोता है, क्योंकि जितना मिला वह भी क्या कम है! भक्त विरह में भी रोता है, क्योंकि जो मिला उससे और मिलने की प्यास जग गयी है। भक्त धन्यवाद में भी रोता है, क्योंकि जितना मिला है वह भी मेरी

पात्रता से ज्यादा है। और भक्त अभीप्सा में भी रोता है कि जब इतना दिया है तो अब और मत तरसाओ, और भी दो।

तो इन आंसुओं में तुम आनंद के आंसू भी पाओगे, विरह के आंसू भी पाओगे, अनुग्रह के आंसू भी पाओगे, अभीप्सा के आंसू भी पाओगे। इन आंसुओं में बड़े स्वाद हैं। और मीरा से सुंदर आंसू तुम और कहां पा सकोगे! ये भजन ही नहीं हैं, ये गीत ही नहीं हैं––इनमें मीरा ने अपना हृदय ढाला है। अगर तुम सावधानी से प्रवेश करोगे इन शब्दों में, तो तुम मीरा को जीवित पाओगे। और जहां मीरा को जीवित पा लिया, वहां से कृष्ण बहुत दूर नहीं हैं। जहां भक्त है वहां भगवान है। भक्त को समझ लिया तो भगवान के संबंध में श्रद्धा उत्पन्न होती है। भगवान तो दिखायी पड़ता नहीं––अदृश्य है। भक्त दृश्य है।

कृष्ण को जानना हो, मीरा को सेतु बनाओ। और मीरा से अपूर्व सेतु तुम कहीं पा न सकोगे। क्योंकि भक्त तो पुरुष भी हुए हैं, लेकिन पुरुष अंततः पुरुष है। उसके प्रेम में भी थोड़ी परुषता होती है। रोता भी है तो झिझककर रोता है––शरमाता-शरमाता। नाचता भी है तो संकोच से। पुकारता भी है परमात्मा को तो चारों तरफ देख लेता है, कोई सुनता तो न होगा। यह स्वाभाविक है। स्त्री-हृदय जब पुकारता है तो निस्संकोच पुकारता है। पुकार स्वाभाविक है वहां। स्त्री-हृदय जब रोता है तो उसे संकोच नहीं होता। आंसू सहज हैं, स्व-स्फूर्त हैं।

ये भजन मीरा ने बैठकर नहीं लिखे हैं, जैसे कवि लिखते हैं। ये नाचते-नाचते पैदा हुए हैं। इनमें अभी भी उसके घूंघर की झंकार है। ये अभी भी ताजा हैं। ये कभी बासे नहीं पड़ेंगे।

जो बैठ-बैठकर कविताएं लिखता है, उसकी कविताएं तो जन्मने के पहले ही मर गयी होती हैं। जन्म ही नहीं पाती हैं, या मरी हुई ही जन्मती हैं। ये गीत कविता की तरह नहीं लिखे गये हैं। यही इनका गौरव है, गरिमा है। यही इनकी महिमा है। ये पैदा हुए हैं। नाचते-नाचते किसी धुन में, नाचते-नाचते अनायास...। इनके लिए कोई प्रयोजन नहीं था, कोई चेष्टा नहीं थी। मीरा कोई कवि नहीं है। मीरा भक्त है। कविता तो ऐसे ही आ गयी है, जैसे तुम राह पर चलो और तुम्हारे पैर के निशान धूल पर बन जाएं। बनाने नहीं चाहे थे, बनाने निकले नहीं थे, सोचा भी नहीं था––राह से गुजरे थे, धूल पर निशान बन गए। आकस्मिक हुआ। धूप में चले थे; पीछे-पीछे छाया चली। छाया चलाने को न चले थे। छाया पीछे चले, इसकी कोई योजना भी न थी, न कोई विचार किया था। ऐसे ही ये गीत पैदा हुए हैं। मीरा तो नाचने लगी। मीरा तो नाचती चली। ये पगचिन्ह बन गए। इन पगचिन्हों में अगर तुम गौर से उतरो, प्रेम से उतरो, सहानुभूति से उतरो, तो तुम्हें मीरा के ही पैर नहीं, मीरा के पैरों के भीतर जो नाच रहा था, उसकी भी भनक मिलेगी।

इन शब्दों में मीरा के ही शब्द नहीं; मीरा के हृदय में जो विराजमान हो गया था उसका स्वर भी लिपटा है। ये मीरा ने अकेले गाये, ऐसा मानो ही मत। अकेले मीरा ये गा ही नहीं सकती। ऐसे अपूर्व गीत अकेले गाये ही नहीं जाते। ये परमात्मा ने मीरा के साथ-साथ गाये हैं। मीरा तो जैसे बांसुरी थी, गाये परमात्मा ने ही हैं। मीरा तो जैसे केवल माध्यम थी, ये बहे तो उसी से ही हैं। इस भाव को लेकर हम इन अपूर्व शब्दों में उतरें।

'म्हारो जनम मरन को साथी, थानें नहिं बिसरूं दिन-राती।'

तीन शब्द ख्याल में लो : जन्म, जीवन, मृत्यु, मरण। तुमने जीवन के तो बहुत साथी खोज लिये हैं। मगर जीवन के साथी तो जीवन के साथ ही खो जाएंगे। जन्म और मृत्यु के बीच में जीवन है। जो तुमने जीवन में खोजा है, वह जीवन के साथ ही खो जाएगा। पति है, पत्नी है, मित्र हैं, पिता हैं, मां हैं, पुत्र हैं, भाई हैं, बन्धु हैं––वे सब जीवन के साथी हैं। जन्म के पहले उनसे कोई संबंध न था। जिनसे जन्म के पहले कोई संबंध न था, उनसे मृत्यु के बाद भी कोई संबंध कैसे रह जाएगा! जिससे जन्म के पहले संबंध था, उसे खोज लो; उससे मृत्यु के बाद भी संबंध रहेगा।

और एक मजे की बात, कि जिससे जन्म के पहले संबंध नहीं था और मृत्यु के बाद भी संबंध जिससे टूट जाएगा, उससे जीवन में भी क्या संबंध हो पाएगा? कल्पना ही मालूम होगी। सपना ही मालूम होगा। न जो पहले साथ है, न जो पीछे साथ होगा, उससे बीच में कैसे साथ हो जाएगा? अचानक? अनायास? अकारण? जो कभी पहले साथी नहीं था, जो कभी फिर साथी नहीं होगा, उससे मिलना ऐसे ही है जैसे रास्ते पर चलते दो राहगीर मिल गए––न जानते थे पहले, घड़ीभर बाद फिर रास्ते अलग हो जाएंगे, अलविदा हो जाएंगे, और फिर कभी न जानेंगे। जैसे ट्रेन की यात्रा में किसी से पहचान हो गयी, क्योंकि पास ही बैठना हो गया था, ट्रेन में चढ़ते वक्त याद भी न थी कि किससे मिलना होने वाला है; ट्रेन से उतरते ही याद भी भूल जाएगी। जो आकस्मिक हुआ था, वह पानी के बबूले की तरह खो जाएगा।

जिससे जन्म के पहले भी साथ था, उससे मृत्यु के बाद भी साथ रहेगा और जिससे जन्म और मृत्यु की दोनों घड़ियों में साथ रहने वाला है, उससे असली साथ हमारा जीवन में भी हो सकता है। धन्यभागी हैं वे जो जीवन में भी उसी का साथ खोज लेते हैं, जिसका साथ जन्म के पहले भी था और मृत्यु के बाद भी होगा। वह शाश्वत साथी है। उस शाश्वत साथी को ही भगवान कहा है। वही है मित्र। शेष सब प्रवंचनाएं हैं। शेष सब मन के भुलावे हैं। शेष सब धोखे हैं। ठीक है, थोड़ी देर को राहत मिल जाएगी। थोड़ी देर को मन उलझा रहेगा; जैसे बच्चे खेल-खिलौनों में उलझ जाते हैं। या ऐसे कि जैसे कोई कागज की नाव बहाता है : कहने

को ही नाव होती है; न तो उसमें बैठा जा सकता है, न उसमें पार हुआ जा सकता है। दूसरे की तो बात छोड़ो, नाव खुद भी पार न जा पाएगी--कागज की है। अब डूबी तब डूबी। डूबने को ही है। डूबने को ही बनी है।

इस जगत की सारी मैत्रियां कागज की नावें हैं, कि ताश के बनाये गये घर हैं; हवा का जरा-सा झोंका आता है और गिर जाते हैं।

तुमने देखा, तुम्हारी मित्रता जरा-सा हवा का झोंका और खो जाती है! जो मित्र थे, वे क्षण में शत्रु हो जाते हैं। जो अपने थे, क्षण में पराये हो जाते हैं। यहां कौन अपना है, कौन पराया है? यहां सब मन के भुलावे हैं। हां, सांत्वना मिल जाती है; मन व्यस्त हो जाता है, उलझा रहता है। और एक भ्रांति बनी रहती है कि अपने हैं यहां; मैं अकेला नहीं हूं।

ध्यान रखो, जब तक परमात्मा न मिले, तब तक तुम अकेले हो--अकेले हो--और अकेले ही हो! कितना ही झुठलाओ, कितना ही समझाओ, कितना ही भुलाओ--मगर हर झूठ के पीछे सत्य खड़ा है, कि तुम अकेले हो। दिन-दो-दिन के लिए सपने से आंखें भर जा सकती हैं, लेकिन इससे कुछ अंतिम परिणाम हाथ में नहीं आएगा।

मीरा ने वे साथी छोड़ दिये, जो जन्म के बाद बने थे; वे साथी छोड़ दिये जो मृत्यु के साथ छूट जाएंगे। मीरा कहती है: जिनसे मृत्यु में साथ छूट जाएगा, जब असली में साथ की जरूरत होगी...। यहां तो ठीक है, बिना संग-साथ के भी चल सकता है। कोई संगी-साथी न भी हो तो बाजार की भीड़ में भी चलते रहे, तो भी चलता है। रेस्तरां में जाकर बैठ गये, होटल में बैठ गये, सिनेमा-घर में बैठ गये। भीड़ तो सदा मौजूद है। न भी हो संगी-साथी, तो भी तुम अपने अकेलेपन को कहीं न कहीं भुला ले सकते हो। मृत्यु में तो तुम बिलकुल अकेले हो जाओगे; न सिनेमा होगा, न क्लब होगा, न बाजार होगा, कोई भी न होगा, बिलकुल अकेले हो जाओगे। एकांत होगा। उस एकांत में जो साथ न पड़ेंगे, उनके साथ का मूल्य भी क्या है?

कहते हैं: मित्र तो वही जो दुर्दिन में काम आए। और दुर्दिन मृत्यु से बड़ा और क्या होगा? मगर उस दिन कोई काम नहीं आता। न तुम्हारी पत्नी तुम्हारे साथ जाएगी, न तुम्हारा पति तुम्हारे साथ जाएगा। सब तुम्हें विदा दे देंगे। तुम जब चिता पर चढ़ोगे तो अकेले, कि कब्र में उतरोगे तो अकेले। उस अनंत अंधकार में--जिसका नाम मृत्यु है--कोई तुम्हारे साथ न जाएगा, कोई हाथ न बढ़ाएगा, कोई न कहेगा: मैं आता हूं, रुको!

मीरा ने वे सब साथ छोड़ दिये जो जन्म के बाद बने थे। वे सांयोगिक हैं। नदी-नाव संयोग। उनका कोई मूल्य नहीं। वे सब साथ छोड़ दिये, जो मृत्यु के साथ छूट जाएंगे। जिन्हें मृत्यु ही छीन लेगी, उन्हें स्वयं ही छोड़ देना उचित है। मृत्यु और जन्म के आर-पार, जिसका शाश्वत साथ है, उसकी खोज, उसका नाम ही कृष्ण।

उसका नाम ही, तुम जो देना चाहो--राम, कि बुद्ध।

'म्हारो जनम मरन को साथी, थानें नहिं बिसरूं दिन-राती।'

मीरा कहती है: अब मैं पहचान गयी कि कौन मेरा साथी है, कौन असल में मेरा साथी है! झूठों से जाग गयी। धोखों से सचेत हो गयी, सावधान हो गयी।

'म्हारो जनम मरन को साथी, थानें नहि बिसरूं दिन-राती।'

यह दूसरी पंक्ति ...'थानें नहि बिसरूं दिन-राती...' समझना। शब्द उपयोग किया 'बिसरूं'--विस्मरण। मैं तुझे भूल नहीं पाती। आमतौर से लोग पूछते हैं: भगवान को स्मरण कैसे करें? और मीरा कहती है कि विस्मरण कैसे करूं। यहीं से फर्क शुरू होता है--असली भक्त में और तथाकथित भक्त में। तथाकथित भक्त पूछता है: भगवान का कैसे स्मरण करें? क्योंकि भूल-भूल जाता है। संसार का स्मरण नहीं करना पड़ता; उसका स्मरण शाश्वत बना रहता है। धन की याद बनी रहती है, दुकान की याद बनी रहती है, बाजार की याद बनी रहती है। और सबकी याद बनी रहती है। भगवान के लिए पूछता है: भगवान का स्मरण कैसे करें?

जब कोई पूछता है कि भगवान का स्मरण कैसे करें, तो उसका अर्थ साफ है कि भगवान का स्मरण अभी हो नहीं रहा है, करना पड़ रहा है। किये हुए का कोई मूल्य नहीं है। जो कोई पूछता है कि भगवान का स्मरण कैसे करें, वह यही पूछता है कि संसार का स्मरण तो होता है, स्वाभाविक हो रहा है; अब भगवान के स्मरण को खींच-तानकर करना होगा। इसलिए तो लोग मंदिर जाते हैं, मस्जिद जाते हैं, पूजा-पाठ करते हैं; नियम बना लेते हैं कि रोज सुबह घंटेभर, कि रोज रात घंटेभर स्मरण करेंगे। और जब स्मरण करने बैठते हैं, तब भी स्मरण बंधता नहीं, छूट-छूट जाता है; तब भी याद संसार की आ-आ जाती है। माला फेरते रहते हैं और भूल जाते हैं कि माला फेरना कब बंद हो गया और कब उन्होंने रुपये गिनने शुरू कर दिये। राम-राम जपते-जपते भूल जाते हैं। जप तो जारी रहता है--तोतों के रटन की तरह; ओंठ बुदबुदाते रहते हैं और भीतर हजार बातें और चलने लगती हैं: कल अदालत में मुकदमा है, कि परसों कुछ और काम है, कि बेटे का विवाह है, कि पत्नी बीमार है। राम-राम ऊपर चलता रहता और सब तरह की वासनाएं भीतर हिंडोले लेती रहती हैं। यह साधारण स्थिति है। मीरा बड़ी उलटी बात कह रही है।

मीरा कहती है: 'थानें नहिं बिसरूं दिन-राती...' कि मैं चाहूं तो भी तुझे भूल नहीं पाती। दिन आते, रात आती, विस्मरण नहीं होता।

इसलिए सवाल यह नहीं है कि ईश्वर का स्मरण कैसे हो? सवाल यह है कि ऐसी चैतन्य की दशा कैसे बने, जहां उसका विस्मरण न हो? इस भेद को खूब ख्याल में ले लेना। राम-राम जपने से कुछ न होगा। राम-राम जपना सिर्फ अपने को धोखा देना है। जप उठे, जैसे श्वास चलती है; जैसे रक्त बहता है धमनियों में; जैसे

हृदय धड़कता है--ऐसा जप चले। जिसको नानक ने 'अजपा जाप' कहा, ऐसा जप चले। तुम्हें जप करना न पड़े--होता ही रहे; अहर्निश हो। तुम उठो और बैठो, तुम बाजार जाओ और दुकान जाओ, तुम काम करो और विश्राम करो--और जप चलता ही रहे। जप की अंतरधारा बन जाए।

यह कब होगा? यह कैसे होगा? यह परमात्मा को स्मरण करने से नहीं होगा--यह संसार को ठीक से देख लेने से होगा।

लोग गलत प्रश्नों से शुरू करते हैं, इसलिये कहीं नहीं पहुंच पाते। एक बार गलत प्रश्न पूछ लिया तो तुम बड़ी झंझट में पड़ोगे। क्योंकि जो भी उत्तर मिलेंगे वे गलत होंगे। तुमने किसी से पूछा--'परमात्मा का स्मरण कैसे करें'--तुमने गलत प्रश्न पूछ लिया। वह बता देगा कि ठीक है, यह कॉपी ले लो, इस पर बैठकर लिखते रहो राम-राम राम-राम, ऐसे अभ्यास हो जाएगा।

अभ्यास? राम का अगर अभ्यास कर लिया और अभ्यास से अगर राम-राम हुआ तो प्राणों का उसमें कोई संबंध ही न होगा। अभ्यास तो यंत्रवत् हो जाता है। अभ्यास का तो कोई मूल्य ही नहीं है। प्रेम का कहीं अभ्यास होता है? अभ्यास का तो मतलब ही यह है कि जबरदस्ती थोप लिया। भीतर से तो नहीं उठता था; बाहर से पकड़ कर किसी तरह चारों तरफ आयोजन कर लिया।

अभ्यास तुम्हें सरकसी बना देगा। सरकस में अभ्यास करवा देते हैं जंगली जानवर को भी। कोड़े के डर से, भोजन के प्रलोभन से--दंड और भय, प्रलोभन और लोभ, इनके बीच में अभ्यास करा देते हैं। सिंह भी अभ्यास कर लेता है--स्टूलों पर बैठने लगता है; ढोल बजाने लगता है; आग के गोलों में से कूदने लगता है।... कोड़ा और प्रलोभन! नहीं किया तो पिटेगा; किया तो सुस्वादु भोजन मिलेगा।

तुम जब परमात्मा का अभ्यास करते हो तो नरक और स्वर्ग के कारण। वह अभ्यास सरकसी है। उसका दो कौड़ी मूल्य है। भक्त परमात्मा का अभ्यास नहीं करता।

ठीक प्रश्न यह नहीं है कि मैं परमात्मा को कैसे याद करूं; ठीक प्रश्न यह है कि संसार की मुझे इतनी याद आती है--क्यों? यह संसार की याद इतनी गहरी मुझ में क्यों है? कहां है इसका बीज? कहां है इसकी जड़ों का विस्तार? कैसे इन जड़ों को काट डालूं? कैसे संसार का स्मरण छूट जाए? यह असली सवाल है। और अगर संसार का स्मरण छूट जाए तो अचानक तुम पाओगे, तुम्हारे भीतर से उठी सुवास, भर गये प्राण, उठा नाद, डोलने लगा रोआं-रोआं! तब तुम समझोगे मीरा की बात: 'थानें नहिं बिसरूं दिन-राती।'

मीरा कहती है: मैं तुम्हें भूल ही नहीं पाती। क्या कर दिया है? कैसा जादू! उठती हूं, बैठती हूं, काम भी करती, स्नान भी करती, भोजन भी कर लेती हूं; मगर तुम्हारी याद है कि अहर्निश सतत बही चली जाती है।

'म्हारो जनम-मरन को साथी, थानें नहिं बिसरूं दिन-राती।'

इसलिए परमात्मा को स्मरण नहीं करना है--एक ऐसी चेतना की दशा जगानी है, जहां परमात्मा का विस्मरण न हो। दोनों में बड़ा फर्क है। और दोनों ऊपर से एक जेसे लगते हैं, इसलिए खतरा भी बहुत है।

प्लास्टिक का फूल देखा! फूल जैसा लगता है। कभी-कभी तो फूल से भी ज्यादा सुंदर लगता है। और प्लास्टिक के फूल की कई खूबियां हैं, जो असली फूल में नहीं हैं। एक, कि प्लास्टिक का फूल शाश्वत है। असली फूल तो सुबह खिला, सांझ मुरझा जाता है। असली फूल अभी था, अभी गया; क्षणभर नाचा हवाओं में, क्षणभर बात-चीत की चांद-तारों से, फिर धूल में खो गया, फिर सो गया--अतल गहरी निद्रा में। अभी था, तो पक्षियों के साथ नाचा, हवाओं से जूझा, बड़ी शान से जिया। अभी नहीं, तो पंखुड़ियां धूल में खो गयीं, कोई निशान भी न रह गया, कोई चिह्न भी पीछे न छूट गया। चार दिन बाद, फूल था भी कभी या नहीं था, कुछ तय करना संभव न रहेगा। प्लास्टिक का फूल अपनी जगह बैठा रहेगा, बैठा रहेगा। तुम मर जाओगे, तुम्हारा लगाया हुआ प्लास्टिक का फूल न मरेगा। प्लास्टिक के फूल में बड़ा खतरा है; धोखा है, शाश्वत का धोखा है। है झूठा, लेकिन बड़ा मजबूत है।

और ऐसी ही हालत असली परमात्मा के स्मरण की और नकली परमात्मा के स्मरण की है। नकली स्मरण प्लास्टिक जैसा है। अभ्यास। बैठे हैं घंटों, अभ्यास कर रहे हैं: राम राम राम! दोहराये जा रहे हैं, दोहराये जा रहे हैं। दोहराते-दोहराते अभ्यास सघन हो जाएगा: प्लास्टिक का फूल पैदा हो जाएगा। लेकिन इसका कोई मूल्य नहीं है, क्योंकि इसमें कोई जड़ें नहीं हैं। इसका कोई मूल्य नहीं, क्योंकि इससे तुम्हारे हृदय का कोई संबंध नहीं। इसका कोई भी मूल्य नहीं। दूसरों को भला धोखा हो जाए राम-राम की चदरिया देखकर कि 'भक्त जी' आ रहे हैं; मगर मुंह में राम, बगल में छुरी रहेगी। अपने को कैसे धोखा दोगे? तुम तो जानोगे ही कि प्लास्टिक का फूल है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन रोज अपनी खिड़की में आकर खड़ा होता और खिड़की पर उसने एक गमला लटका रखा था फूलों से भरा हुआ। उसमें पानी डालता। पड़ोसी देखते थे। एक बार देखा, दो बार देखा, तीन बार देखा; पानी तो डालता था, लेकिन फव्वारा खाली। आखिर पड़ोसी से न रहा गया। जिज्ञासा जगी। उसने कहा कि नसरुद्दीन पानी तो रोज डालते हो, लेकिन पानी गिरता हुआ दिखाई नहीं पड़ता। नसरुद्दीन ने कहा: ये फूल ही कौन सच हैं! प्लास्टिक के फूल हैं। इनको असली पानी की जरूरत भी नहीं।

तो फिर क्यों रोज व्यर्थ झूठा पानी डालते हो?

वह पड़ोसियों के लिए। नहीं तो लोगों को शक हो जाएगा कि पानी तो पड़ता

ही नहीं गमले में कभी और फूल हैं कि खिले ही हुए हैं।

वह जो तुम राम-राम जपते हो, वह पड़ोसियों के लिए जपते हो--वह अपने लिए नहीं है। और तुम कितना ही पड़ोसियों को धोखा दे लो, अपने को कैसे धोखा दे पाओगे? और अपने को ही न दे पाये, तो अपने भीतर निहित अंतरतम में छिपे परमात्मा को कैसे धोखा दे पाओगे? तुम तो जानोगे ही न कि फूल प्लास्टिक के हैं, कि राम-राम अभ्यास है, कि सामाजिक प्रतिष्ठा पाने का उपाय है, कि स्वर्ग जाने की विधि है, कि नरक से बचने का आयोजन है? लेकिन नरक से बचना जो चाहता है, उसका परमात्मा से प्रेम लगा?

अगर परमात्मा नरक में हो तो प्रेमी नरक जाना चाहेगा। वह कहेगा: परमात्मा जहां हो, वहीं रहेंगे; नरक में रहेंगे, लेकिन रहेंगे उसी के पास। जिसको नरक से भय है, वह, अगर परमात्मा नरक जा रहा होगा, तो वह कहेगा: आप अकेले जाइये; हम स्वर्ग की तरफ जा रहे हैं। मुझे नरक से कुछ लेना-देना नहीं।

भगवान को जिसने चुना है, यह अभ्यास से नहीं हो सकता। तो करें क्या? फिर तो बड़ी उलझन हो गयी। क्योंकि अभ्यास सुगम मालूम पड़ता है। कर सकते हैं घड़ी-आधा-घड़ी रोज निकालकर स्मरण कर सकते हैं। इतना गरीब तो कोई भी नहीं कि आधा घड़ी न निकाल ले। बिस्तर पर पड़े-पड़े ही राम-राम जप सकते हैं। आधी घड़ी कम सो लेंगे। एक थैली रखकर उसमें माला सम्हालकर बस में बैठे-बैठे भी चला सकते हैं, ट्रेन में बैठे-बैठे भी माला चला सकते हैं।

लेकिन अभ्यास से कभी कोई परमात्मा तक पहुंचा ही नहीं। फिर कैसे पहुंचें? फिर जरा घबड़ाहट होती है। फिर तो द्वार बंद मालूम होते हैं।

नहीं; द्वार बंद नहीं हैं। तुम गलत प्रश्न न पूछो। ठीक प्रश्न यह है कि संसार की इतनी याद क्यों आती है? धन की इतनी याद क्यों आती है? पद की इतनी याद क्यों आती है? आदमी मरने-मरने को भी हो जाता है, तो भी धन की ही सोचता रहता है।

मैंने सुना है, एक धनपति मर रहा था। आखिरी घड़ी, उसने अपनी पत्नी से कहा: मेरा बड़ा बेटा कहां है?

पत्नी ने कहा: आप चिंता न करें, लेटे रहें। बड़ा बेटा आपके बगल में ही बैठा है।

आंखें धुंधली हो गयी हैं। अस्सी-पचासी साल का बूढ़ा है; दिखाई भी नहीं पड़ता; सुनाई भी मुश्किल से पड़ता है; उठ भी नहीं सकता। चिकित्सकों ने कहा, यह आखिरी रात है।

उसने पूछा: और छोटा बेटा?

उसने कहा: वह भी बैठा हुआ है तुम्हारे पैर के पास। तुम चिंता न करो। तुम आराम करो।

और मझला बेटा?

और पत्नी ने कहा: वह इस तरफ बैठा हुआ है। हम सब यहीं हैं। सारा परिवार यहां मौजूद है। तुम चिंता न करो।

वह तो हाथ टेककर उठ बैठा। उसने कहा: फिर दुकान कौन देख रहा है? सब यहीं बैठे हैं! अरे नालायको, अभी तो मैं जिंदा हूं! मेरे मर जाने पर बैठना। जो करना हो करना। अभी कुछ तो मेरा ख्याल रखो। अभी मैं जिंदा हूं। अभी मैं मर नहीं गया हूं।

यही आदमी फिर दूसरे दिन मरने की हालत में आ गया; सुबह-सुबह आखिरी सांसें ले रहा है। जैसा बाप वैसे बेटे। बेटे विचार करने लगे कि कैसा इंतजाम करना, अब यह तो मरे, इनको मरघट तक कैसे ले जाना? बड़े बेटे ने कहा कि शान से ले जाएंगे; सारे गांव की कारें इकट्ठी कर लेंगे; जितनी टैक्सी हैं, सब बुला लेंगे।

मझले बेटे ने कहा: इत्ता खर्चा? इससे फायदा? अब जो मर गया सो मर ही गया। चाहे रॉल्सरॉयस लाओ, चाहे कैडिलिक लाओ, क्या फायदा है? अपने घर की एंबेसेडर अच्छी है; उसी में रखकर ले चलेंगे।

तीसरे बेटे ने कहा: एंबेसेडर की क्या जरूरत है इसमें? म्युनिसिपल का ठेला...।

बाप यह सब सुन रहा है। बाप उठकर बैठ गया। बाप उठकर बैठ गया! उसने करा: मेरे जूते लाओ, मैं पैदल चला चलता हूं। आखिर ठेले वाले को भी पैसा देना ही पड़ेगा। अभी मैं जिंदा हूं।

आदमी क्यों धन का इतना स्मरण रखता है? क्यों पद का मरते दम तक पीछा करता है?

मोरारजीभाई देसाई को पूछो। बयासी साल...! मगर एक ही बात प्राणों में अटकी रही: पद! पद! पद! कैसे भी मिले। जीते-जी मिले तो ठीक, मरकर मिले तो ठीक--मगर पद मिले!

आदमी क्यों धन, पद, संसार के लिए इतना स्मरण करता रहता है?

ईश्वर को स्मरण करने के पहले इस स्मरण को समझना जरूरी है। इसकी समझ जितनी गहरी होती जायेगी उतना ही यह शिथिल होता जायेगा। अगर आंख से ठीक से देख लिया कि मैं धन की क्यों आकांक्षा कर रहा हूं; अगर यह बात समझ में आ गयी कि धन की चाह में सुरक्षा की चाह है; धन की चाह में यह ख्याल है कि अगर धन मिल गया तो सब मिल जायेगा...। लेकिन धन से क्या मिलता है? किसको क्या मिला है? अगर तुम्हें यह दिखाई पड़ गया कि धन से कभी किसी को कुछ नहीं मिला और धन से कभी किसी को कुछ नहीं मिल सकता है, यह झूठी यात्रा है--तो धन का स्मरण धीरे-धीरे अपने-आप अवरुद्ध हो जायेगा। पद से क्या मिलेगा? पद वाला वैसे ही मर जाता है जैसे पदहीन मर जाता है। और पद वाले कब्रों में पड़े हैं, जैसे पदहीन कब्रों में पड़े हैं। मृत्यु सब को एक-सा पोंछ देती है; फिकर

नहीं करती कि कौन प्रसिद्ध थे, कौन अप्रसिद्ध थे; कौन शक्तिशाली थे, कौन शक्ति-हीन थे।

ठीक से अपने पद और धन की आकांक्षा को समझो। उसी समझ में तुम्हें यह बोध आयेगा कि न धन से कुछ मिलता है, न पद से कुछ मिलता है--और मौत रोज आ रही है। अगर तुम्हें दिखाई पड़ जाये कि धन से कुछ नहीं मिलता, तो धन की याद अपने-आप विसर्जित हो जाएगी। और पद की दौड़ व्यर्थ है--तो पद का जो धुआं तुम्हारे मन में सदा घूमता रहता है, वह तिरोहित हो जाएगा।

जहां संसार की आकांक्षाएं समर्पित हो गयीं, शांत हो गयीं, शून्य हो गयीं--वहां उठती है याद परमात्मा की। तुम्हारे किये नहीं उठती। तुम तो एकदम अवाक् अवस्था में हो जाते हो, क्योंकि तुम्हारी सब पुरानी चाहें गिर गयीं। अब तुम्हें कुछ समझ में नहीं आता। एक अचाह की घड़ी आ जाती है। लेकिन उस अचाह में ही तुम्हारे भीतर पहली बार एक नयी सुवास प्रगट होती है; एक नया सरगम बजाता है। उस सरगम का नाम ही परमात्मा की याद है।

'म्हारो जनम-मरन को साथी, थानें नहिं बिसरू दिन-राती।
तुम देख्यां बिन कल न पड़त है, जानत मेरी छाती।।'

मीरा कहती है: मेरा हृदय जानता है कि तुम्हें बिना देखे मुझे क्षणभर भी कल नहीं पड़ती। जरा मौका मिलता है कि आंख बंद करके तुम्हें देख लेती हूं। जहां मौका मिलता है वहीं आंख बंद करके तुम्हें देख लेती हूं।

संसार को देखना हो तो आंख खोल कर देखना पड़ता है और परमात्मा को देखना हो तो आंख बंद करके देखना पड़ता है। ये आंखें संसार को देखने के काम आती हैं। ये आंखें बंद हो जाती हैं तो भीतर की आंख खुलती है।

बाहर की तरफ जाती हुई तुम्हारी दर्शन की जो क्षमता है, जब बाहर नहीं जाती तो यही दर्शन की क्षमता भीतर की तरफ लौटती है। यही तरंग, यही पात्रता देखने की, भीतर बरसने लगती है। और वहां विराजमान है--वह, जो सदा का साथी है। वहां विराजमान है तुम्हारा अंतरतम, अंतर्यामी!

'तुम देख्यां बिन कल न पड़त है, जानत मेरी छाती।
ऊंची चढ़-चढ़ पंथ निहारूं, रोवै अंखियां राती।'

और मीरा कहती है: मेरी आंखें, देखते हैं, रो-रोकर लाल हो गयी हैं! 'ऊंची चढ़-चढ़ पंथ निहारूं।' और जितना ऊंचा बन सकता है उतनी चढ़कर तुम्हारी राह देखती हूं। क्योंकि हो सकता है, नीचे से देखूं, तुम दिखाई न पड़ो।

ऐसा समझो कि तुम खड़े हो एक राह पर; देखते हो कौन आ रहा है राह पर। कितनी दूर तक देखोगे? ज्यादा दूर दिखाई नहीं पड़ता। फिर एक वृक्ष पर चढ़ जाओ तो रास्ता दूर तक दिखाई पड़ता है। फिर अगर हवाई जहाज में बैठ जाओ तो बड़ी दूर तक रास्ता दिखाई पड़ता है। जैसे-जैसे तुम ऊंचे जाते हो, उतने दूर

तक राह दिखाई पड़ती है।

यह ऊंचे जाने का अर्थ तुम्हें अगर समझना हो तो इसके लिए ठीक-ठीक व्यवस्था योग में है। जिनको योगियों ने सात चक्र कहे हैं, वे सीढ़ी हैं तुम्हारे भीतर ऊंचे चढ़ने की। अगर तुमने मूलाधार से देखा तो परमात्मा दिखाई नहीं पड़ेगा। मूलाधार से तो सिर्फ कामवासना दिखाई पड़ती है। अगर तुम पुरुष हो तो स्त्री दिखाई पड़ेगी; अगर स्त्री हो तो पुरुष दिखाई पड़ेगा। अगर मूलाधार से देखा तो परमात्मा का स्त्री-पुरुष रूप दिखाई पड़ेगा; इससे ज्यादा नहीं दिखाई पड़ेगा। वह सबसे नीची सीढ़ी है। वहां परमात्मा इसी ढंग से दिखाई पड़ता है। अगर थोड़े ऊपर बढ़े, स्वाधिष्ठान से देखा, तो स्त्री की देह ही दिखाई नहीं पड़ेगी, पुरुष की देह ही नहीं दिखाई पड़ेगी; स्त्री का मन भी दिखाई पड़ेगा। थोड़ी सूक्ष्म हुई दृष्टि।

मूलाधार से जो देखता है, उसे सिर्फ देह दिखाई पड़ती है। स्त्रियां यानी सुंदर देहें। जो स्वाधिष्ठान से देखता है, उसे स्त्रियों का मन भी दिखाई पड़ता है; वे सिर्फ देहमात्र नहीं हैं। और जो थोड़ा और ऊपर चढ़ा, मणिपुर से देखा, उसे स्त्री की आत्मा भी दिखाई पड़ेगी।

ये तीन नीचे के चक्र हैं। चौथा चक्र है: अनाहत, हृदय--जिसको मीरा 'छाती' कह रही है। जो हृदय से देखेगा, वह कामवासना से मुक्त हो गया। उसके जगत में, उसके जीवन-चैतन्य में प्रेम का अविर्भाव हुआ। अब उसकी आंखों पर प्रेम की छाया होगी। अब भी वही लोग दिखाई पड़ेंगे लेकिन अब न उनमें देह दिखाई पड़ती न मन दिखाई पड़ता, न आत्मा दिखाई पड़ती है; अब उनमें परमात्मा की झलक मिलनी शुरू होती है। झलक--कभी दिखती, कभी खो जाती। जैसे रात में बिजली कौंध जाए, फिर अंधेरा हो जाता है; एक क्षणभर को रोशनी, फिर अंधेरा, ऐसी झलकें होंगी।

फिर पांचवां चक्र है: विशुद्ध। झलकें ठहरने लगती हैं। देर-देर तक ठहरती हैं। प्रकाश होता है तो रुकता है; एकदम चला नहीं जाता। प्रकाश के क्षण बढ़ने लगते हैं; अंधेरे के क्षण कम होने लगते हैं।

फिर छठवां चक्र है: आज्ञा। अब प्रकाश बिलकुल थिर होने लगता है; लेकिन अभी भी कभी-कभी अंधेरा उतर आता है। कभी-कभी। जैसे पहले कभी-कभी रोशनी उतरती थी, अब कभी-कभी अंधेरा उतरता है। दिनों गुजर जाते हैं, मन रसलीन रहता है; भाव में डूबा रहता है। लेकिन एकाध दिन चूक हो जाती है, पैर फिसल जाता है। उसको मीरा ने कहा है: 'यो मन मेरो बड़ो हरामी।' मंदिर चढ़ते-चढ़ते पैर फिसल जाता है। मगर यह कभी-कभी होता है। साधारणतः सजगता बनी रहती है।

फिर सातवां चक्र है: सहस्त्रार। वह आखिरी सीढ़ी है। उस पर से खड़े होकर जो देखता है, उसे परमात्मा के सिवाय कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता।

मूलाधार से जो देखता है, उसे संसार दिखाई पड़ता है, परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। और सहस्त्रार से जो देखता है, उसे परमात्मा दिखाई पड़ता है, संसार दिखाई नहीं पड़ता।

इसलिए तो ज्ञानी और अज्ञानियों के बीच बात नहीं हो पाती; बड़ी मुश्किल बात है।

ज्ञानी कहता है : परमात्मा है; संसार कहां? अज्ञानी कहता है : संसार है; परमात्मा कहां? ज्ञानी कहता है : परमात्मा है; संसार कहां है? उनकी भाषा बड़ी विपरीत हो जाती है। अज्ञानी कहता है : संसार सत्य है; परमात्मा भ्रांति है, कल्पना है, सपना है, कविता है। ज्ञानी कहता है : परमात्मा सत्य है; संसार माया है। कैसे हो मेल? इनकी सीढ़ियां अलग-अलग हैं। इनके देखने के ढंग अलग-अलग हैं। संसारी देख रहा है निम्नतम तल से, जैसे कोई जमीन पर घिसटता हो और देखता हो और उसे सिर्फ आसपास पड़ा हुआ कूड़ा-कचरा दिखाई पड़ता हो; और फिर कोई आकाश में उड़ता हो पंख फैलाकर, चांद-तारों से गुफ्तगू करता हो और वहां से देखता हो पृथ्वी को--उसे कोई कूड़ा-कर्कट न दिखाई पड़े। हरी-भरी पृथ्वी! बहू की तरह सजी पृथ्वी! वहां से गड्ढे भी नहीं दिखाई पड़ते; डबरे भी नहीं दिखाई पड़ते। वहां से सब सुंदर दिखाई पड़ता है। सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् है वहां से सब।

हम पर निर्भर है, हम कहां से देखते हैं, कैसे देखते हैं, कौन-सी जगह से देखते हैं।

'ऊंची चढ़-चढ़ पंथ निहारूं...।'

मीरा कहती है : ऊपर चढ़-चढ़ कर देखती हूं। मूलाधार से सरकी, स्वाधिष्ठान से सरकी, मणिपुर से सरकी, अनाहत पर खड़े होकर तुम्हें देखा, विशुद्ध में तुम्हें देखा, आज्ञा से तुम्हें देखा, सहस्त्रार पर चढ़ आती हूं कभी-कभी--वहां जहां सहस्त्र-दल कमल खिलता है--वहां विराजमान होकर तुम्हें देखती हूं। ऊंचे चढ़-चढ़ कर देखती हूं, ताकि तुम्हें भरपूर देख लूं; ताकि तुम्हें ऐसा देख लूं जैसे तुम हो। ऐसा न देखती रहूं जैसा मैं देखना चाहती हूं। वैसा देख लूं, जैसे तुम हो। तुम्हारा रूप प्रगट हो जाए। मेरी कल्पनाएं सब भस्मीभूत हो जाएं। तुम्हारा सत्य अविर्भूत हो जाए।

'ऊंची चढ़-चढ़ पंथ निहारूं, रोवै अखियां राती।

'यो संसार सकल जग झूंठो, झूठा कुल रा न्याती।'

और मीरा कहती है : अब दिखाई पड़ रहा है कि यह सब संसार झूठा है। नाते, रिश्ते, संबंध सब झूठे हैं।

'दोउ कर जोड़यां अरज करत हूं, सुण लीजो मेरी बाती।'

दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रही हूं, मेरी अरजी सुन लेना।

दोनों हाथ जोड़ने की बात तुम्हें समझ लेना जरूरी है। दुनिया में कहीं भी, किसी देश में दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करने की प्रथा नहीं है। यह आकस्मिक नहीं है। इसके पीछे एक बड़ी भारी परंपरा है; एक बड़ा बोध है। ये दो हाथ मनुष्य

के भीतर जो द्वंद्व है, उसके प्रतीक हैं। और दोनों हाथ जोड़ कर जब तक निर्द्वन्द्व अवस्था न हो जाए, जब तक अद्वैत की अवस्था न हो, तब तक अरजी उस तक पहुंचेगी नहीं। द्वन्द्व से उठे सब स्वर संसार में खो जाते हैं। द्वैत से उठी सब चिट्ठियां यहीं संसार में एक-दूसरे के पास पहुंच जाती हैं। तुम्हारी चिट्ठी परमात्मा तक तभी पहुंचेगी, जब अद्वैत से उठे; जब तुम्हारे दोनों हाथ जुड़ जाएं; जब बायां और दायां एक हो जाए; जब बुद्धि और हृदय एक हो जाए; जब शरीर और आत्मा एक हो जाए; जब तुम्हारे भीतर जन्म और मृत्यु एक हो जाएं; जब तुम्हारे भीतर सुख और दुख एक हो जाएं, यश-अपयश एक हो जाएं, सफलता-असफलता एक हो जाए; जब तुम्हारे सब विरोध संयुक्त हो जाएं, तुम्हारे भीतर एक का स्वर उठे।

जिस क्षण तुम्हारे भीतर निर्द्वंद्व भावदशा होती है, उसी क्षण तुम्हारी पाती परमात्मा तक पहुंच जाती है; उसके पहले नहीं।

'दोउ कर जोड़यां अरज करत हूं...।'

मीरा कहती है : दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रही हूं, अब तो पहुंचनी ही चाहिए। निर्द्वंद होकर प्रार्थना कर रही हूं। तुम्हारे अकेले की ही अभीप्सा बची है, और कोई अभीप्सा नहीं।... 'सुण लीजो मेरी बाती।' अब तो तुम मेरी बात सुन लो।

'यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूं मदमातो हाथी।'

हालांकि मीरा कहती है : मैं जानती हूं, भलीभांति जानती हूं, कि हाथ जोड़-जोड़कर बिठाती हूं, कि हाथ छूट-छूट जाते हैं। 'यो मन मेरो बड़ो हरामी।' किसी तरह बांधती हूं एक में और छूट-छूट जाता है, खो-खो जाता है, फिसल-फिसल जाती हूं। तुम्हारे मंदिर की सीढ़ियों पर से भी गिर जाती हूं। वह जो सहस्त्रदल कमल है, उसको छू पाती हूं कि फिर बिखर जाता है। उठती हूं एक बड़ी लहर की तरह, मगर फिर छितर जाती हूं।

मीरा ने भक्त के मन की पूरी दशा चित्रित की है। ऐसा ही है। कभी-कभी क्षणभर को दो हाथ जुड़ते हैं, और जब दो हाथ जुड़ जाते हैं, तभी आशीष की वर्षा हो जाती है। कभी-कभी तुम्हारे जीवन में भी जुड़ जाते हैं; किसी सुबह, अकारण तुम्हें समझ में भी नहीं आता क्यों! शायद रात नींद अच्छी हुई, शरीर स्वस्थ है। सुबह उठे हो, सूरज उगा है, पक्षी स्तुतियां कर रहे हैं परमात्मा की, मंदिर की घंटी बज रही है—और अचानक तुम्हारे दोनों हाथ जुड़ गये! यह चारों तरफ की स्थिति सहयोगी बनी, अचानक तुम्हारे दोनों हाथ जुड़ गये। एक क्षण को तुम्हारे भीतर निर्द्वन्द्व भाव उठा। तुम पकड़ भी नहीं पाओगे और खो जाएगा। लेकिन उस एक क्षण को तुम्हारे भीतर अमरस की धार बह जाएगी।

ऐसा सब के जीवन में हुआ है। आकस्मिक हुआ है, इसलिए तुम इसके मालिक नहीं हो। और चूंकि आकस्मिक होता है और इतने जल्दी होता है और खो जाता है

कि तुम पकड़ भी नहीं पाते, कि तुम्हें भरोसा भी नहीं आता; तुम सोचते हो : रही होगी कोई कल्पना ।

कल ही किसी ने मुझे पत्र लिखा । लिखा कि जब यहां आश्रम में होती हूं... (किसी संन्यासिन का पत्र है)...तो चित्त बड़ा शांत होता है । नाचती हूं, तो भी भीतर सब थिर रहता है । गाती हूं, तो भी भीतर सन्नाटा होता है । और तब उन क्षणों में आपकी यह बात कि तुम सभी बुद्ध हो, पूरी-पूरी समझ में आ जाती है । लेकिन गयी बाजार की तरफ कि सब चूक जाता है, सब खो जाता है । फिर यह बात कि प्रत्येक बुद्ध है, बिलकुल समझ में नहीं आती । राह से गुजरती हूं, दुकान पर चीजें दिखाई पड़ जाती हैं, खरीदने का मन हो जाता है : यह खरीद लूं, वह खरीद लूं । तब भरोसा नहीं आता है कि मैं और कैसी बुद्ध हूं ! राह पर सुंदर किसी व्यक्ति को देखती हूं, मन आकर्षित हो जाता है । तब भरोसा नहीं आता आप की बात पर कि मैं और कैसी बुद्ध ! और ऐसा भी नहीं है कि ऐसे क्षण नहीं आते जब भरोसा न आता हो; ऐसे क्षण भी आते हैं। कभी-कभी दोनों हाथ जुड़ जाते हैं ।

दोनों हाथ हैं; मुश्किल से जुड़ते हैं । लेकिन जोड़ने की सारी कला ही ध्यान, प्रार्थना, पूजा, अर्चना, या जो भी नाम दो । दोनों हाथ जोड़ने की कला का नाम है : ऐसी घड़ी पैदा करनी है जहां तुम्हारे दोनों हाथ सहजता से जुड़ जाएं । ऐसी भावदशा, ऐसा बोध जगाना है ।

इसलिए कोई अवसर मत चूको । सुबह सूरज उगता हो, झुक जाओ नमस्कार में । इसलिए हिन्दू सूर्य-नमस्कार करते रहे । क्योंकि जब सूरज उगता है, सारे जगत में नया पदार्पण हो रहा है प्रकाश का । इस घड़ी को चूको मत । कौन जाने हाथ जुड़ जाएं । इस लहर पर सवाल हो जाओ । सूरज के रथ पर सवार हो जाओ रात टूटी है, अंधेरा टूटा है, तंद्रा टूटी है, वृक्ष जागे, पक्षी जागे, पशु जागे, लोग जागे--जागरण की घड़ी है । कौन जाने इस जागरण की घड़ी में, इस प्रवाह में तुम भी बह जाओ और क्षणभर को जागरण लग जाए, क्षणभर को जागरण बन जाए, सध जाए ! मत चूको ।

इसलिए हिन्दू सूर्य-नमस्कार करते हैं। वह नमस्कार अर्थपूर्ण है । वह सूरज को ही नहीं है नमस्कार । वह सिर्फ एक घड़ी का उपयोग कर लेना है, ताकि दोनों हाथ जुड़ जाएं । और अगर कोई भाव से झुका है, बरसती हुई सूरज की रोशनी, कोई भाव से झुक गया है, एक होकर झुक गया है, तो सूरज खो जाएगा, सूरज की जगह परमात्मा की रोशनी बरसने लगेगी ।

रात चांद निकला है, जोड़ लो हाथ, झुक जाओ पृथ्वी पर । गुलाब का फूल खिला है, मत चूको अवसर । बैठ जाओ पास, जोड़ लो हाथ, झुक जाओ । कौन जाने यह गुलाब की ताजगी, यह गुलाब जो गुलाल फेंक रहा है, कृष्ण ने ही फेंकी

हो ! है तो सब गुलाल उसी की । अब तुम ऐसे मत बैठे रहना कि वह लेकर पिचकारी आयेगा, तब । कुछ नासमझ ऐसे बैठे हैं कि जब वह पिचकारी लेकर आयेगा तब । और कपड़े भी उन्होंने पुराने पहन रखे हैं कि कहीं खराब न कर दे । वह रोज ही आ रहा रहा है, प्रतिपल आ रहा है । उसके सिवा और कुछ आने को है भी नहीं । वही आता है ।

इन वृक्षों पर से झलकती हुई सूरज की किरणों को देखते हो ! इन वृक्षों में जो किरणों ने जाल फैलाया है, उसे देखते हो ! इन वृक्षों के बीच जो धूप-छाया का रास हो रहा है, उसे देखते हो ! यह उसी का रास है ! इन वृक्षों में जो पक्षी कलरव कर रहे हैं, यह वही है । अब तुम यह मत सोचो कि जब वह बांसुरी बजायेगा, तब हम सुनेंगे । यह उसी की बांसुरी है । कभी पक्षियों से गाता है, कभी बांसों से भी गाता है । यह सारा अस्तित्व उसका है । यह सब गुलाल उसकी है । चंदन की सुगंध में उसी की सुगंध है । वह फेंक रहा है, लुटा रहा है । मगर तुम्हारे दोनों हाथ नहीं जुड़े हैं; सो चूक-चूक जाते हो । दोनों हाथ जोड़ो, अंजुली बनाओ । दोनों हाथ जोड़ो, ताकि तुम उसे भर लो ।

कोई अवसर न चूको । जहां तुम्हें लगे कि यहां इशारा है, वहीं झुक जाओ । मंदिर-मस्जिद की राह मत देखो ।

अजीब मूढ़ता छाई है लोगों पर ! हिन्दू चला जा रहा है अपने मंदिर की तलाश में, मुसलमान चला जा रहा है अपनी मस्जिद की तलाश में । मीलों चलता जा रहा है । रास्ते भर परमात्मा फैला हुआ है । राह के किनारे वृक्षों में खड़ा है । रास्ते के किनारे खेलते बच्चों में हंस रहा है । आकाश में उड़ते पक्षियों में उड़ रहा है । शुभ्र बदलियों में तैर रहा है । तुम पर सब तरफ से रोशनी फेंक रहा है; गुलाल लुटा रहा है; चंदन बांट रहा है । और तुम मूढ़ की तरह मंदिर चले जा रहे हो ! तुम्हें अगर यहां नहीं दिखाई पड़ता तो मंदिर में कैसे दिखाई पड़ेगा ? इतने विराट में नहीं दिखाई पड़ता, उस क्षुद्र-से मंदिर में कैसे दिखाई पड़ेगा ? इतने स्वाभाविक रूप में नहीं दिखाई पड़ता, तो वहां तो आदमी ने व्यवस्था बनाई है, वहां तो आदमी के बनाये हुए देवता विराजमान हैं, उनमें तुम्हें कैसे दिखाई पड़ेगा ? वहां भी दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन औपचारिकतावश तुम झुक जाते हो।

जो फूल के पास न झुका, जो सूरज के सामने न झुका, जो बहती हुई नदी की धार के पास न झुका--वह मंदिर और मस्जिद में झुके, बात झूठी है । उसने धोखा दे लिया--अपने को और दूसरों को ।

तो असली सवाल है, जहां भी दोनों हाथ जुड़ जाएं, जैसे भी दोनों हाथ जुड़ जाएं । खोना ही मत अवसर । चुनाव भी मत करना । चुनाव की वजह से चूक रहे हो ।

जैन है, वह जाता है, जैन मुनि के सामने हाथ जोड़कर झुकता है; हिन्दू संन्यासी

के सामने हाथ जोड़कर नहीं झुकता। चुनाव है। जड़ता है : हिन्दू मुसलमान-फकीर के सामने नहीं झुकता; मुसलमान के सामने, और झुके! और निश्चित ही मुसलमान हिन्दू-संत के सामने नहीं झुकता।

ये चुनाव तुम्हें छोटा कर रहे हैं। चुनाव छोड़ो। जहां झुकने का अवसर हो, चूको ही मत। और तब तुम पाओगे : चौबीस घंटे में बहुत अवसर आते हैं, जब दोनों हाथ जुड़ जाते हैं। और जितने-जितने हाथ जुड़ने लगेंगे, उतने-उतने वे अपूर्व क्षण तुम्हारे जीवन में उतरने लगेंगे। वे अमूल्य क्षण हैं। वे अमृत क्षण हैं।

'दोउ कर जोड़यां अरज करत हूं, सुण लीजो मेरी बाती।
यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूं मदमातो हाथी।
सतगुरु हस्त धरयो सिर ऊपर, अंकुस दे समझाती।
पल-पल तेरा रूप निहारूं, हरि चरणा चित राती।'

इस देश में सदियों से सद्गुरु सिर पर हाथ रखता है। वह प्रतीक है। वह प्रतीक है तुम्हारी ऊर्जा को सिर पर खींच लेने का। तुम्हारी ऊर्जा पड़ी है कहीं नीचे के चक्रों में। गुरु तुम्हारे सिर पर हाथ रखता है--वह तुम्हारे सहस्त्रार पर हाथ रखता है। गुरु तुम्हारी ऊंचाई से, तुम्हारी ऊंची से ऊंची सीढ़ी पर हाथ रखता है। गुरु की ऊर्जा के संपर्क में तुम्हारी ऊर्जा भी खींची जा सकती है। गुरु चुंबक है। वह तुम्हारे सिर पर हाथ रखता है, ताकि क्षणभर को ही सही, तुम्हारे सहस्त्रार की याद तुम्हें आ जाए। क्षणभर को ही सही, तुम्हारी ऊर्जा ऊर्ध्वगामी हो जाए।

जब गुरु शांति से तुम्हारे सिर हाथ रखेगा, तो तुम भूल जाओगे नीचे के तल को। मस्ती छाने लगेगी। कुछ गुनगुनाने लगेगा। कुछ कंपने लगेगा। ऊर्जा उठेगी। एक प्रगाढ़ धारा की तरह ऊर्जा ऊपर की तरफ खिंचेगी।

गुरु हाथ रखता है सिर पर। शिष्य चरणों में सिर रखता है। वे दोनों एक ही बात के प्रतीक हैं। गुरु सिर पर हाथ रखता है, ताकि ऊर्जा को खींचे। शिष्य पैर पर सिर रखता है, ताकि ऊर्जा को उंडेले। लेकिन असली बात एक ही है कि ऊर्जा सहस्त्रार में आ जाए। जब शिष्य सिर झुकाता है तो वह भी यही कह रहा है कि यह है जगह, जहां मेरी ऊर्जा को चाहूंगा; यह है स्थान, जहां जीना चाहता हूं; यह सीढ़ी है, जहां उठना चाहता हूं। और गुरु जब सिर पर हाथ रखता है तब वह भी यही कह रहा है कि यह है जगह, जो मूल्यवान है; यह है मोक्ष, यहां उठ जाओ।

'सतगुरु हस्त धरयो सिर ऊपर, अंकुस दे समझाती।'

जब से गुरु ने मेरे सहस्त्रार पर हाथ रखा है तब से बहुत-बहुत समझाती हूं इस मन को; फिर भी हरामी है; फिर भी धोखेबाज है; फिर भी कभी-कभी भाग जाता है, जैसे पागल हाथी। अंकुश रखती हूं। जब से गुरु ने सिर पर हाथ रखा है तब से अनुभव में एक बात आ गयी है कि रस वहां है; तब से एक बात समझ में आ गयी है कि सौभाग्य वहां है; तब से एक अनुभव हो गया है कि रोशनी वहां

है, कि परमात्मा वहां है। लेकिन फिर भी यह मन है धोखेबाज; फिर-फिर उतर जाता है। पुरानी आदतें हैं। फिर चला जाता है नीचे के चक्रों में। फिर सोचने लगता है नीचे के भाव। फिर सोचने लगता है नीचे के सपने। फिर वासनाओं में उलझ जाता है।

लेकिन मीरा कहती है : तुम मेरा ख्याल रखना। मैं दोनों हाथ जोड़ कर प्रार्थना करती हूं। मैं तो तुम्हें भूल ही नहीं पाती; तुम भी अगर कभी-कभी मुझे याद कर लिये तो यात्रा पूरी हो जाएगी।

'मोहे लागी लगन गुरु चरनन की।
चरन बिना कछुवै नहिं भावै, जग माया सब सपनन की।'

एक बार गुरु के चरण छू लिये, तो फिर कुछ और भायेगा भी नहीं। और अगर चरण छूकर भी कुछ भाता हो तो इतना ही समझ लेना कि चरण अभी छुए नहीं। औपचारिकता पूरी कर ली होगी। गये, गुरु के चरण छू आए। चमड़ी से चमड़ी छू गयी, लेकिन अंतर-ऊर्जाओं का मिलन नहीं हुआ। नहीं तो यही होगा, जो मीरा कहती है : 'मोहे लागी लगन गुरु चरनन की।'

एक बार वह ज्योतिर्मय स्पर्श हो जाए, तो फिर लगन लग जाती है। जैसे पपीहा रटता है : पी-कहां, पी-कहां, पी-कहां! जैसे चातक टेरता आकाश की तरफ; राह देखता है; स्वाति की बूंद की प्रतीक्षा करता है--ऐसी ही दशा भक्त की हो जाती है।

'चरन बिना कछुवै नहिं भावै, जग माया सब सपनन की।'

और जिसने एक बार गुरु के चरणों में सहस्त्रार की थोड़ी-सी झलक पा ली, खिलते देख लिए अपने भीतर के अंतर-कमल, फिर अब सब सपना लगेगा।

तुम लाख कहो संसार सपना है, तुम्हारा कहना सिर्फ कहना है। तुम लाख दोहराओ कि संसार माया है, मगर तुम्हारा जीवन कहे चला जाता है कि नहीं माया नहीं है, यही सत्य है। तुम्हारे वचन नहीं, तुम्हारा अंतस्तल ही गवाही दे सकता है।

इस देश में सभी लोग संसार को माया कहते हैं। जो देखो वही संसार को माया बताता है। और उसी माया में सारे लोग उलझे हैं और बुरी तरह उलझे हैं। अच्छा है, जब तक तुम्हें माया दिखाई न पड़े, कम से कम मत कहो कि माया है, ईमानदारी तो होगी। परमात्मा तुम्हें बिलकुल नहीं दिखायी पड़ता है और कहते हो परमात्मा सत्य है। 'ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या'--कहे चले जाते हो, मगर ब्रह्म का कोई अनुभव नहीं है। और जो अनुभव है, वह इसी जगत का है। और इसके ही अनुभव को तुम जी रहे हो। कम से कम यह झूठ तो छोड़ो।

इस देश का सौभाग्य था कि यहां महा ज्ञानी हुए। और इस देश का दुर्भाग्य है

कि इस देश के सभी अज्ञानियों ने ज्ञानियों के वचन कंठस्थ कर लिये। यहां तोतो की इतनी जमात हो गयी है !

'मोहे लागी लगन गुरु चरनन की ।
चरन बिना कछुवै नहिं भावै, जग माया सब सपनन की ।
भव-सागर सब सूखि गयो है, फिकर नहीं मोहे तरनन की ।'

मीरा कहती है : मुझे तरने की भी चिंता नहीं है । तरना क्या है ? जिस दिन से तुम्हें देखा, भव सागर सूख गया ।

यह बात अनूठी है । यह बात बड़ी प्यारी है । इसे खूब सम्हालकर रख लेना हृदय में । यह हीरों जैसी मूल्यवान बात है। क्यों इतनी मूल्यवान है ? क्योंकि जिसने उसका दर्शन पा लिया, एक क्षण को भी उसकी झलक पा ली, उस क्षण में ही संसार असत्य हो गया। अब इसको भव-सागर क्या कहना; यह तो सूखा रेगिस्तान हो गया । अब इसको तरने की बात भी क्या है; यह तो कभी था ही नहीं।

यह ऐसा ही समझो कि रात तुमने सपना देखा कि समुद्र के किनारे खड़े हो और उस तरफ जाना है और बड़े रो रहे हो, और बड़े चिल्ला रहे हो कि--कोई माझी मिल जाता, कि कोई नाविक आ जाता, कि कोई जहाज किनारे लग जाता । दूसरा किनारा दिखाई नहीं पड़ता और तुम जार-जार हुए जा रहे हो और रो रहे हो और चिल्ला रहे हो । उसी चिल्लाने और रोने में तुम्हारी नींद खुल गयी । और तुमने पाया कि कोई सागर नहीं है । तुम हंसने लगे । तुमने कहा : मैं व्यर्थ ही परेशान होता था । सागर ही नहीं है, तो पार होने की बात क्या, माझी का सवाल क्या, नाव की जरूरत कहां ?

'भव-सागर सब सूखि गयो है, फिकर नहीं मोहे तरनन की ।'

...मुझे तरने की भी कोई चिंता नहीं है ।

'मीरां के प्रभु गिरधर नागर, आस वही गुरु सरनन की ।'

मीरा कहती है : बस एक ही आशा, एक ही अभीप्सा कि जिन चरणों में बैठकर तुम्हारा स्वाद मुझे मिला है, जिन चरणों में बैठकर मेरी नींद टूटी है, उन चरणों में पूरी की पूरी डूब जाऊं ।

जिस दिल की हर तड़प थी नई जिंदगी मुझे
जां बख्शो जां नवाज वो अब दिल नहीं रहा
है दर्द अब भी दर्द मगर वो कसक नहीं
अपना वो अब जिगर नहीं वो दिल नहीं रहा
है बर्क अब भी दुश्मने खिर्मन मगर मुझे
जाने न क्यों कोई गमे हासिल नहीं रहा
जब से हुआ हूं खाके कफे पाये दोस्त में
मुझको ख्याले जादाओ मंजिल नहीं रहा ।

...जब से उस परम प्रिय, उस परम मित्र के पैरों की धूल हो गया हूं, तब से न तो कहीं जाना है, न कोई रास्ता है, न रास्तों का कोई ख्याल है, न को मंजिल है ।

जब से हुआ हूं, खाके कफे पाये दोस्त में । जब से उस प्यारे दोस्त के पैरों की धूल हो गया हूं...

मुझको ख्याले जादाओ मंजिल नहीं रहा । अब तो न कोई मंजिल है, न कहीं जाना है, न मंजिल तक ले जाने वाले कोई रास्ते हैं, न रास्तों की मुझे कोई सुध है। सब बात खत्म हो गयी ।

मीरा कहती है : बस इतना ही बना रहे--'आस वही गुरु सरनन की ।'

'होरी खेलत हैं गिरधारी ।
मुरली चंग बजत डफ न्यारो, संग जुवति व्रजनारी ।'

इस देश का यह सौभाग्य है । धर्म तो दुनिया में और भी पैदा हुए, लेकिन नाचता हुआ धर्म सिर्फ इस देश में पैदा हुआ । क्राइस्ट उदास मालूम होते हैं । मुहम्मद के जीवन में भी नृत्य नहीं; युद्ध है, नृत्य नहीं है । जरथुस्त्र बड़े ज्ञानी हैं, लेकिन बांसुरी जरथुस्त्र के पास नहीं । लाओत्सु परमदशा में रहे, लेकिन उस परम दशा से वीणा की टंकार नहीं उठी, पैरों में घुंघरू नहीं बंधे ।

इस देश का सौभाग्य है कि कृष्ण हुए । और इस देश ने ठीक ही किया जो कृष्ण को पूर्ण अवतार कहा । राम सुंदर हैं; मर्यादा पुरुषोत्तम हैं--लेकिन कुछ कमी है । नृत्य नहीं, गान नहीं, मस्ती नहीं। राम के जीवन में मधुशाला नहीं है। वहां पीना-पिलाना नहीं है। वहां रसधार नहीं बहती । रूखा-सूखा है सब । अतिशय रूखा-सूखा है । मर्यादा रखनी हो तो आदमी रूखा-सूखा हो ही जाता है ।

बुद्ध अपूर्व हैं, लेकिन मौन हैं। मौन उनका गीत नहीं बन पाया ।

महावीर खूब हैं, अनूठे हैं, लेकिन इस जगत से महावीर का मेल नहीं पड़ता । महावीर जिस वृक्ष के पास खड़े हैं, उस वृक्ष से भी मेल नहीं बैठता, क्योंकि वृक्ष कभी खिलता है हजार-हजार फूलों में, महावीर कभी नहीं खिलते । जिन चांद-तारों के नीचे महावीर खड़े होते हैं, उनसे भी मेल नहीं है । वे चांद-तारे नाच रहे हैं, सदा से नाच रहे हैं । रास चल रहा है । अनंत रास चल रहा है । महावीर का उस रास से कुछ संबंध नहीं जुड़ता । महावीर जहां खड़े हैं, कहानियां तो ये हैं कि कभी पक्षियों ने भी उनके बालों में घोंसले बना लिये । मगर उन पक्षियों में जो गीत फूटते हैं, वे महावीर में कभी नहीं फूटे। कहानी तो यह है कि वृक्षों की लताएं महावीर के शरीर पर चढ़ गयीं, खिलीं, फूलों को उपलब्ध हुई, गंध बिखरी; मगर वैसे फूल महावीर में कभी नहीं खिले ।

महावीर खूब हैं । मगर हिंदुओं ने ठीक ही किया, कृष्ण के अतिरिक्त किसी को पूर्ण अवतार नहीं कहा । कृष्ण की पूर्णता क्या है ? कृष्ण की पूर्णता यही है कि कृष्ण

में परमात्मा और जगत मिलता है, मेल खाता है। कृष्ण संगम हैं। वहां देह और आत्मा का नाच है, नृत्य है। कृष्ण के साथ जगत का अपूर्व मेल है—चांद-तारों फूलों, पक्षियों, वृक्षों, नदियों, पहाड़ों, मनुष्यों...। कृष्ण जीवन से जरा भी विपरीत नहीं हैं; जीवन के मध्य में खड़े हैं।

'होरी खेलत हैं गिरधारी।'

कृष्ण हैं अकेले, जिनमें रस है और रास है; जिनमें रहस्य है, सौंदर्य है, शृंगार है। जीवन की बड़ी गरिमा, महिमा कृष्ण में प्रगट हुई है। सब रंगों में, सब कलाओं में जीवन कृष्ण में प्रगट हुआ है।

'होरी खेल हैं गिरधारी,
मुरली चंग बजत डफ न्यारो, संग जुवति व्रजनारी।
चंदन केसर छिड़कत मोहन, अपने हाथ बिहारी।'

ऐसा चंदन और केसर छिड़कता हुआ परमात्मा, पृथ्वी पर कहीं किसी ने कल्पना भी नहीं की है।

'भरि-भरि मूठि गुलाल लाल चहुं देत सबन पे डारी।'

यह रसमुग्ध दशा, यह समाधि, यह जीवन के साथ अविरोध! भक्त के लिए कृष्ण के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। भक्त बुद्ध के पास नहीं जा सकता। वहां मुरली नहीं बजती, चंग नहीं बजता, डफ नहीं बजता। वहां ध्यानी बैठ सकता है चुप, मगर प्रेमी क्या करे? भक्त क्राइस्ट के पास भी नहीं जा सकता। वहां करुणा है अपार, बलिदान है महान, जगत के लिए अपने को समर्पित करने की बड़ी कुर्बानी है; मगर उदासी है, सन्नाटा है। चंदन-केसर वहां कोई नहीं छिड़कता। वहां चंदन-केसर की सुगंध नहीं। और कोई नहीं है कि गुलाल फेंक दे। कोई नहीं है जो तुम्हें गैरिक रंग में रंग दे।

ख्याल रखना, गैरिक रंग गुलाल का रंग, बहुत बातों का प्रतीक है। सूरज का। सुबह का उगता सूरज गैरिक होता है—जीवन का, रोशनी का, फूलों का। सारे फूल हरियाली में लाल होते हैं। रक्त का, लहू का। वही जीवन की धारा है। उल्लास का रंग है लाल। आनंद का रंग है लाल।

'भरि-भरि मूठि गुलाल लाल चहुं, देत सबन पे डारी।
छैल छबीले नवल कान्ह, संग...।'

परमात्मा की ऐसी छैल-छबीली प्रतिमा जिन्होंने खोजी है, जिन्होंने सोची है, जिन्होंने विचारी है, उन्होंने अपूर्व रूप से प्रेम किया होगा, तभी यह हो पाया। इस रूप में परमात्मा का अवतरण तभी हो सकता है, जब इस रूप में हजारों-लाखों लोग परमात्मा को पुकारे हों। इस रूप में अवतरण तभी हो सकता है, जब लाखों इस रूप में स्वागत करने को तैयार रहे हों। परमात्मा उसी रूप में उतरता है, जिस रूप में हम पुकारते हैं। हमारी पुकार ही उसे लाती हैं।

'छैल-छबीले नवल कान्ह, संग...।'

नये हैं कृष्ण—सदा नये हैं! छैल-छबीले हैं! बड़े सुंदर हैं! सारे जगत का सौंदर्य उनमें समाया हुआ है। सारे जगत का सौंदर्य जैसे संगठित हो आया है, एक जगह हो गया है, एक स्थान पर एकत्रित हो गया है! जैसे सारे फूलों की गंध और सारे पक्षियों के गीत और सारे तारों की रोशनी और सारी नदियों का कल रव, सारे वाद्यों का संगीत, सारी आंखों की गरिमा, सारे चेहरों का रूप एक जगह संगृहीत हो गया है!

'छैल-छबीले नवल कान्ह संग, स्यामा प्राण प्यारी।'

और 'श्यामा' उनके आसपास नाच रही है। मीरा राधा के लिए अक्सर 'श्यामा' शब्द का उपयोग करती है; वह बड़ा प्यारा है। क्योंकि जो श्याममय हो गयी, अब उसका अलग नाम क्या! इसलिए 'राधा' न कहकर मीरा अक्सर 'श्यामा' कहती है। श्याम जैसी ही हो गयी। जो श्याममय हो गयी। श्याम हो गयी।

और कृष्ण के पास नाचना हो तो श्यामा हुए बिना और कोई उपाय भी नहीं। जिसे भी नाचना हो, उसे श्यामा होना ही पड़ेगा।

अब यह ख्याल रखना, भक्त को पुरुष की कठोरता छोड़नी पड़ती है। भक्त को स्त्रैण... सौंदर्य, सरलता ग्राहकता ग्रहण करनी पड़ती है। भक्त तो स्त्री ही होता है। वह पुरुष हो कि स्त्री, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। भक्ति स्त्रैण है। क्योंकि भक्त के लिए तो सिर्फ एक ही प्यारा है—वह कृष्ण है। एक ही प्रीतम है।

श्याम के पास श्यामा होने की तैयारी हो, तो ही भक्त गति कर पाता है। अहंकार छोड़ना पड़ेगा। स्त्री को तो इतना कठिन नहीं है भक्त होना, पुरुष को बहुत कठिन है। क्योंकि उसे पुरुष होने का अहंकार भी छोड़ना पड़ेगा।

इसलिए कभी-कभी ऐसा हुआ है कि जब पुरुष कोई भक्त हुआ है तो स्त्रियों से भी बाजी मार ले गया है। मीरा का भक्त होना तो बिलकुल ठीक, सुगम है; लेकिन चतन्य का? चैतन्य का भक्त होना...! मीरा को तो अहंकार छोड़ना है, चैतन्य को दो अहंकार छोड़ने हैं। अहंकार तो छोड़ना ही है, फिर पुरुष होने का भाव भी छोड़ना है। वह और भी गहन अहंकार है। लेकिन श्यामा हुए बिना कोई मार्ग नहीं है। भक्त बनना हो तो श्यामा बनना पड़ेगा।

'छैल छबीले नवल कान्ह, संग स्यामा प्राण प्यारी।
गावत चार धमार राग तंह, दै दै कल करतारी।
फागु जु खेलत रसिक सांवरो...।'

वह प्यारा फाग खेल रहा है, रोज खेल रहा है! फागुन में ही नहीं, रोज खेल रहा है, दिन-रात खेल रहा है। आंख खोलो और देखो। रोज गुलाल फेंक रहा है। तुम अंधे हो। कभी-कभी तो तुम समझते हो, गुलाल नहीं, आंख में धूल पड़ गयी। रोज पुकार रहा है। रोज तुम्हें रंगने को राजी है, तत्पर है। मगर तुम रंगे

जाने को राजी नहीं हो। इसलिए फागुन चूका जाता है।

भक्त के लिए बारह मास फागुन है। फाग ही चल रही है। क्योंकि परमात्मा प्रतिपल अपनी सृष्टि से खेल रहा है; निरंतर लेन-देन चल रहा है।

'फागु जु खेलत रसिक सांवरो, बाढ़यो व्रज रस भारी।'

परमात्मा तो खेल ही रहा है; अगर तुम भी समझ जाओ इस खेल को, तो तुम्हारे हृदय में बड़े रस की वर्षा हो जाए। व्रज में बहुत रस की बाढ़ आ जाए।

व्रज से कुछ अर्थ किसी भौगोलिक स्थान से नहीं है। व्रज है तुम्हारे भीतर प्रेम की पुकार का नाम। व्रज है तुम्हारे भीतर प्रार्थना का नाम। जब भी तुम उसे पुकारोगे आतुरता से, तुम व्रज हो गये। तुम्हारे भीतर अगर उसके विरह की आग ऐसे बहने लगे जैसे व्रज में यमुना बहती है तो यमुना के किनारे तुम उस रसिक को नाचता हुआ पाओगे।

हर काल में, हर समय में, हर स्थिति में परमात्मा उपलब्ध है। ये बातें अतीत की नहीं हैं, न भविष्य की--ये बातें शाश्वत के लिए सत्य हैं।

'फागु जु खेलत रसिक सांवरो, बाढ़यो व्रज रस भारी।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, मोहन लाल बिहारी।'

मीरा कहती है: खूब रस बह रहा है, खूब रस बढ़ रहा है, खूब परमात्मा बरस रहा है! फाग हो रही है। ऐसी फाग तुम्हारे जीवन में भी हो सकती है। मीरा पर हम विचार इसीलिए करेंगे कि शायद मीरा को सुनते-सुनते तुम्हारे हृदय को भी पुलक लग जाए।

बगिया से कोई गुजरता है, तो चाहे फूलों को न भी छुए तो भी वस्त्रों में थोड़ी फूलों की गंध समा जाती है। माली फूल तोड़कर बाजार ले जाता है, लौटकर पाता है कि हाथ फूलों की सुवास से भर गये हैं।

मीरा को सुनते-सुनते शायद रस की एकाध-दो बूंद तुम्हारे चित्त में भी पड़ जाएं। और ध्यान रखना, रस की एक-एक बूंद एक-एक सागर है। एक बूंद डुबाने को काफी है। एक बूंद तुम्हें सदा को डुबाने के लिए काफी है। क्योंकि फिर अंत नहीं आता। एक बूंद आयी कि सिलसिला शुरू हुआ। पहली बूंद ही कठिन बात है। फिर तो सब सरल हो जाता है।

खोलना अपने हृदय को। इन आने वाले दस दिनों में नाचना, गाना, आनंदित होना, ऊंचे चढ़-चढ़कर देखने की कोशिश करना।

म्हारो जनम-मरन को साथी, थानें नहिं बिसरूं दिन-राती।
तुम देख्यां बिन कल न पड़त है, जानत मेरी छाती।
ऊंची चढ़-चढ़ पंत निहारूं, रोवैं अखियां राती।
यो संसार सकल जग झूंठो, झूठा कुल रा न्याती।

दोउ कर जोड़यां अरज करत हूं, सुन लीजो मेरी बाती।
यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूं मदमातो हाथी।
सतगुरु हस्त धरयो सिर ऊपर, अंकुस दे समझाती।
पल-पल तेरा रूप निहारूं, हरि चरणां चित राती।

आज इतना ही।

मनुष्य : अनाखिला परमात्मा

दूसरा प्रवचन

दिनांक : १२ नवम्बर, १९७७; श्री रजनीश आश्रम, पूना

आपने कहा कि संसार से विमुख होते ही परमात्मा से सन्मुखता हो जाती है। आखिर संसार कहां खत्म होता है और कहां परमात्मा शुरू होता है? इस रहस्य, पहेली पर कुछ कहने की अनुकंपा करें।

आपने कहा—गद्गद् हो जाओ, तल्लीन हो जाओ, रसविभोर हो जाओ और जीवन को उत्सव-ही-उत्सव बना लो। लेकिन यह सब हो कैसे? मैं बड़ा निष्क्रिय-सा अनुभव करता हूं। और अपने-आप होश में कभी हुआ नहीं। बड़ी उलझन में हूं। कृपया समझाएं।

मनुष्य के जीवन में इतना द्वन्द्व क्यों है?

सहस्रार की ऊंचाई पर खड़ी मीरा कहती है—'मेरो मन बड़ो हरामी'—तो हम मूलाधार की नीचाई पर खड़े लोगों के मन के लिए क्या कहा जाएगा?

मनुष्य की पात्रता कितनी है?

पहला प्रश्न : आपने कहा कि संसार से विमुख होते ही परमात्मा से सन्मुखता हो जाती है।

आखिर संसार कहां खत्म होता है, परमात्मा कहां शुरू होता है? इस रहस्य, पहेली पर कुछ कहने की अनुकंपा करें।

★

संसार का अर्थ है : आकांक्षा, तृष्णा, वासना, कुछ होने की चाह। संसार का अर्थ ये बाहर फैले हुए चांद-तारे, वृक्ष, पहाड़-पर्वत, लोग--यह नहीं है। संसार का अर्थ है भीतर फैली हुई वासनाओं का जाल।

संसार का अर्थ है : मैं जैसा हूं, वैसे से ही तृप्ति नहीं; कुछ और होऊं, तब तृप्ति होगी। जितना धन है, उससे ज्यादा हो। जितना सौंदर्य है, उससे ज्यादा हो। जितनी प्रतिष्ठा है, उससे ज्यादा हो। जो भी मेरे पास है, वह कम है। ऐसा जो कांटा गड़ रहा है, वही संसार है। और ज्यादा हो जाए, तो मैं सुखी हो सकूंगा।

जो मैं हूं, उससे अन्यथा होने की आकांक्षा संसार है। जिस दिन यह आकांक्षा गिर जाती है; जिस दिन तुम जैसे हो वैसे ही परम तृप्त; जहां हो वहीं आनंद रसविमुग्ध; जैसे हो वैसे ही गद्‌गद्--उसी क्षण संसार मिट गया। और संसार का मिटना और परमात्मा का होना दो चीजें नहीं हैं। ऐसा नहीं है कि पहले संसार मिटा, फिर बैठे राह देख रहे हैं कि अब परमात्मा कब होगा। संसार का मिटना और परमात्मा का होना एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं। चाहे कहो रात मिट गयी, चाहे कहो सुबह हो गयी, एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं। ऐसा नहीं है कि रात मिट गयी, फिर लालटेन लेकर खोज रहे हैं कि सुबह कहां है। रात मिट गयी तो सुबह हो गयी। संसार गया कि परमात्मा हो गया। सच तो यह है कि यह कहना कि परमात्मा हो गया, ठीक नहीं। परमात्मा तो था ही; संसार के कारण दिखाई नहीं पड़ता था। तुम कहीं और भागे हुए थे, इसलिए जो निकट था वह चूकता जाता था। तुम्हारा मन कहीं दूर चांद-तारों में भटकता था, इसलिए जो पास था वह दिखाई नहीं पड़ता था।

पश्चिम के एक बड़े विचारक, माइकल अदम ने अपने संस्मरण लिखे हैं। समझने योग्य संस्मरण हैं। लिखा है कि सब तरह से सुख को खोजने की कोशिश की; जैसा सभी करते हैं--धन में, पद में, यश में। कहीं सुख पाया नहीं। सुख को

जितना खोजा उतना दुख बढ़ता गया। जितनी आकांक्षा की, कि शांति मिले, उस आकांक्षा के कारण ही अशांति और सघन होती चली गयी। अतीत में सुख खोजा; बीत गया जो, उसमें सुख खोजा और नहीं पाया; और भविष्य में सुख खोजा, कि अभी जो नहीं हुआ, कल जो होगा—वह कल कभी नहीं आया। जो कल आ गए, अतीत हो गए, उनमें सुख की कोई भनक नहीं मिली; और जो आए नहीं--आते ही नहीं—उनमें तो सुख कैसे मिलेगा! दौड़-दौड़ कर थक गया। सब दिशाएं छान डालीं। सब तारे टटोल लिए। सब कोने खोज लिए। फिर सोचा : सब जगह खोज चुका—अतीत में, भविष्य में, यहां-वहां; अब जहां हूं वहीं खोजूं; जो हूं, उसी में खोजूं; इसी क्षण में खोजूं, वर्तमान में खोजूं--शायद वहां हो। और वर्तमान में खोजा और वहां सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं था।

तुम चकित होओगे। संस्मरण पढ़ते वक्त ऐसा लगता है कि यह आदमी यह कहने जा रहा है कि वर्तमान में खोजा और पाया। नहीं; लेकिन वह कहता है : वर्तमान में खोजा ओर वहां सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं। वहां पीड़ा ही पीड़ा का अंबार है, राशि लगी है। तो फिर एक बात तय हो गयी कि सुख है ही नहीं। जब कहीं मिलता नहीं, तो नहीं ही होगा। तो जो नहीं है, उसे क्या खोजना! तो फिर खोज छोड़ दी। फिर दुख के साथ रहना ही भाग्य है, तो दुख को स्वीकार कर लिया। दुख ही जीवन है, इस समीकरण को और इनकार करने का कोई उपाय न रहा। जैसा है वैसा है। वृक्ष हरे हैं। रात अंधेरी है। दिन उजाला है। आदमी दुखी है। दुख को स्वीकार कर लिया। सुख होता ही नहीं। सुख केवल सपना है, मृग-मरीचिका है।

है दुख। गड़ता दुख है। तो हम सुख के सपने बनाकर अपने को भुलाये रखते हैं, भरमाये रखते हैं। सुख मात्र आशा है। जब सुख होता ही नहीं तो खोजना क्या! तो व्यर्थ खोज क्या करनी!

तो अदम ने कहा : दुख से राजी हो गया। दुख को भोगने लगा। दुख से कुछ भेद न रखा। दुख से कुछ दुश्मनी भी न रखी। यही मित्र है, यही संगी-साथी है, यही मैं हूं। और तब अचानक पाया कि सुख की एक तरंग उठ रही है। दुख की की स्वीकृति में सुख की तरंग उठने लगी--जो कभी न उठी थी! तब अचानक पाया कि सुख था, लेकिन खोजने के कारण चूकता जाता था।

तुम सुख को खोजने के कारण चूक रहे हो।

संसार का अर्थ है : सुख को खोजने वाला मन।

परमात्मा का अर्थ है : सुख नहीं है; जो है, उसकी स्वीकृति। जैसा है, वैसी ही स्वीकृति। उसी क्षण सुख की तरंग आने लगती है। फिर तुम्हें सुख को खोजने जाना नहीं पड़ता--किसी अनजाने द्वार से सुख तुम्हें खोजता आ जाता है।

इस बात को खूब ध्यानपूर्वक समझना। इसमें ध्यान का सारा राज छिपा है।

इससे अन्यथा ध्यान और कुछ भी नहीं है।

जरा सोचो ! जो है, जैसा है--उससे अन्यथा नहीं होगा। नहीं हो सकता है ! नहीं कभी हुआ है ! उपाय ही नहीं है ! फिर करने को कुछ भी न बचा। फिर जहां थे, वहीं थिर रह गये। फिर दौड़ गयी, तृष्णा गयी। और जहां दौड़ गयी, तृष्णा गयी, क्या वहां सुख तुम पर बरस न जाएगा ? फिर कमी क्या रही ? कुछ भी तो कमी न रही। जब तुम पूरे के पूरे स्वीकार कर लिए जीवन को--जैसा है--उसी स्वीकृति में तो स्वर उठ आता है सुख का।

सुख तो चारों तरफ है, लेकिन तुम खोज रहे हो। कभी-कभी देखा, आदमी अपनी नाक पर चश्मा रखे होता है और उसी चश्मे से अपने खोये गये चश्मे को खोजता है ! भागता है, खोजता है, यहां-वहां। जल्दबाजी में हो तो और मुश्किल हो जाती है। किताबें पलटता है, बिस्तर खोलता है। और चश्मा नाक पर चढ़ा है। कभी-कभी कान में तुम खोंस लेते हो अपनी कलम, और फिर खोजने लगते हो। फिर तुम जब तक खोजते रहोगे तब तक पा न सकोगे। खोज ही बाधा हो जाएगी।

संसार का अर्थ है : खोज। परमात्मा का अर्थ है : खोज गयी; अब खोजना नहीं। परमात्मा को भी नहीं खोजना है ! अगर परमात्मा को भी खोजना हो तो संसार कायम है; नाम बदल गया। अगर तुम कहो कि ठीक है, धन न खोजेंगे, पद न खोजेंगे, प्रतिष्ठा न खोजेंगे, परमात्मा तो खोजें ! खोजे कि चूके। खोजे कि गंवाया। खोजा तो...किसी ने कभी खोजकर नहीं पाया।

संसारी खोज रहा है। त्यागी खोज रहा है। दोनों चूक रहे हैं। संसारी धन खोज रहा है, त्यागी धर्म खोज रहा है। दोनों चूक रहे हैं, क्योंकि दोनों खोज रहे हैं। पाता कौन है ? पाता वह है, जो खोजता नहीं। लेकिन न खोजने की दशा पा लेना कठिन है; क्योंकि हमारे पास बुद्धि का इतना निखार भी नहीं है—मंदबुद्धि हैं। बुद्धि को साफ भी नहीं करते; कूड़ा-कर्कट अलग भी नहीं करते; घासपात उखाड़कर भी नहीं फेंकते।

अक्सर ऐसा हो जाता है : एक खोज बंद हुई, दूसरी शुरू कर देते हैं। बंद नहीं हुई, उसके पहले ही शुरू कर देते हैं। भोग से चूके नहीं कि त्याग ने जकड़ा। इसलिए मैं अपने संन्यासी को कहता हूं : भोग से बचना और त्याग से बचना। भोग से चूके, त्याग में पड़ जाते हो। कुएं से बचे, खाई में गिर गये।

मध्य में है मार्ग। खोज से बचना। धन तो खोजना ही मत; धर्म भी मत खोजना। खोज जाने दो, क्योंकि खोज तनाव पैदा करती है। खोज का मतलब ही यह होता है कि मैं यहां हूं और जिससे मुझे शांति मिलेगी, जिससे मुझे सुख मिलेगा, वह वहां है—दूर ! या तो दिल्ली में है या स्वर्ग में है—लेकिन दूर ! मैं यहां, सुख वहां—दोनों के बीच लम्बा फासला। इसी को जोड़ने-जोड़ने में जीवन गंवा दिया जाता है।

संसार के जाने का अर्थ पूछते हो, संसार कहां समाप्त होता है ?--जिस दिन तुम जहां हो, वहीं सब है। संतुष्टि--संसार की मृत्यु है। संतोष। लेकिन फिर ख्याल रखना, क्योंकि ये प्यारे शब्द खराब हो गये हैं। ये इतनी जबानों पर चले हैं कि नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं। इनके अर्थ विकृत हो गये हैं। आमतौर से 'संतोष' शब्द सुनते ही ऐसा ख्याल आता है कि ठीक है, जो है उसी में संतोष कर लो। अपने बस में भी नहीं है कि बहुत धन कमा लो, तो अब जितना है, इसी में संतोष कर लो। ऐसा मन मारने का नाम संतोष हो गया है।

संतोष क्रांति है--मन मारने का नाम नहीं है। संतोष का मतलब यह नहीं है कि 'अब क्या करें ? बड़ा मकान बनता तो है नहीं, चलो छोटे में ही रहेंगे।' मगर भीतर-भीतर कीड़ा काट रहा है, भीतर-भीतर घुन लग रहा है। भीतर-भीतर आत्मा सड़ रही है। मन तो पीड़ा से भरा है कि होता बड़ा मकान ! काश, कुछ कर लेते! कि लॉटरी ही मिल जाती ! कि राह चलते किसी का बटुवा पड़ा मिल जाता ! अपने में सामर्थ्य तो नहीं है, इसलिए मन को मार लिया है।

लेकिन सपना इतनी आसानी से नहीं मरता। सपना तो कायम रहेगा। सपना तो कहता है कि चमत्कार भी हो सकते हैं—किसी साधु महाराज की कृपा हो जाए, कि कोई ताबीज मिल जाए, कि चलो अब ऐसे तो कुछ नहीं होता, राम-राम जपने से शायद हो जाए !

मैंने सुना है, एक प्रार्थना-सभा के बाद एक औरत अपनी सहेली से बात करने लगी। अचानक उसे याद आया कि वह अपना बटुवा मंदिर के अंदर ही भूल आयी है। वह दौड़कर अंदर पहुंची, पर बटुवा गायब था। महिला बड़ी हैरान हुई--भक्तों में और बटुवा गायब हो जाए ! उसने पुजारी को कहा। पुजारी ने कहा : घबड़ाओ मत, मैंने बटुवा उठाकर रख लिया है, क्योंकि कुछ भक्त इतने भोले होते हैं कि इसे देखकर वे यह समझते हैं कि ईश्वर ने उनकी प्रार्थना सुन ली है।

आते ही किसलिए हैं लोग मंदिर में ? बटुवों के लिए ही प्रार्थनाएं की जा रही हैं। जो बटुवे अपनी मेहनत से नहीं मिले, अब शायद परमात्मा के कंधे पर सवार होकर मिल जाएं !

फिर, 'संतोष'...तथाकथित संतोष ऐसा ही है जैसा ईसप की कहानी में है। एक लोमड़ी छलांग लगाती है। अंगूर के गुच्छे--रसभरे हैं, हवा में झूलते हैं ! सुबह का सूरज निकला है। और लोमड़ी के मुंह से लार टपकती है। उछलती है, कूदती है, मगर गुच्छे बड़े ऊपर हैं; पहुंच नहीं पाती। और तभी एक खरगोश छिपा देख रहा है--पास की ही झाड़ी में बैठा। लोमड़ी को जाते देखकर--उदास, थका-मांदा—वह कहता है : 'चाची, क्या बात ? अंगूर मिले नहीं ?' और, लोमड़ी अकड़कर सीना फुलाकर कहती है : 'मिले नहीं, किसने तुझे कहा नासमझ ? खट्टे हैं। अभी खाने योग्य नहीं।'

यह भी संतोष है। जो अंगूर न मिलें, उन्हें हम खट्टे होने की घोषणा कर देते हैं।

तुम भी कहते हो : 'पद में क्या रखा है !' मगर जरा भीतर टटोलना ! अंगूर खट्टे हैं, ऐसा तो नहीं ? तुम भी कहते हो : 'धन में क्या रखा है ! सब ठीकरे हैं !' मगर यह बात तुम्हारे भीतर अनुभव से आ रही है ? या कि अपने को झुठला रहे हो ? या कि अपने को समझा रहे हो ? कि मल्हमपट्टी कर रहे हो अपने घाव पर ? धन नहीं मिला है, इसके घाव पड़े गये हैं। किसी तरह मल्हम करके घावों को भुलाते हो। ऐसा तुम्हारा संतोष है।

इसलिए मैं तो शब्दों का उपयोग करने में भी डरता हूं, क्योंकि तुम्हारे कुछ अर्थ और होते हैं। इधर मैंने कहा कि 'संतोष', और तुमने समझा कि 'अरे ठीक है, संतोषी सदा सुखी ! हम तो पहले से संतोषी हैं।'

मगर तुम्हारे संतोष को ठीक से समझ लेना। संतोष बड़ी क्रांति है; इतना सस्ता नहीं, जैसा तुम समझते हो। संतोष केवल उन्हें मिलता है, जिनके पास दृष्टि है, जीवन को समझने की कला है। संतोष ऐसी मुर्दा चीज नहीं है, जैसा तुमने उसे बना दिया है। संतोष जीवन्त अग्नि है। उससे जो गुजरा, वह परमात्मा में ही उतर जाता है।

संतोष का फिर मैं क्या अर्थ करता हूं ? अर्थ करता हूं : ऐसा नहीं कि मैं कमजोर हूं, इसलिए नहीं पहुंच सका, तो अब समझा लेता हूं अपने को। आखिर अहंकार को भी तो बचाना है ! अब रोने से क्या फायदा ! अब कहने से भी क्या सार कि दौड़ा तो बहुत था, पहुंच नहीं पाया। उछला तो बहुत था, अंगूर के गुच्छे दूर थे। इससे अब क्या सार है कहने से ! वैसे ही तो पिट गयी है प्रतिष्ठा, अब और क्या पिटवाना !...तो अब ऐसे ही कह देते हैं कि दौड़ा ही कहां। दौड़ने में तो मुझे रस ही न था; वह तो मुहल्ले के लोगों ने कहा, तो चुनाव में खड़ा हो गया। तो लोग नहीं माने। मेरी तो कोई इच्छा थी ही नहीं चुनाव में खड़े होने की। तो मैं तो खड़ा ही नहीं हुआ था; हारने का सवाल ही क्या है ! मुहल्लेवालों ने खड़ा कर दिया। अगर मैं हारा तो वे ही हारे।

लेकिन, यह संतोष नहीं है। संतोष का अर्थ होता है : जीवन को सब तरफ से देखा, सब तरफ से परखा, सब तरफ से स्वाद लिया--और कड़वा पाया। स्वाद लिया और कड़वा पाया। अंगूर के गुच्छे दूर थे; स्वाद लेने का मौका न मिला, इसलिए खट्टा कहा, तो काम नहीं होगा।

संतोष जीवन का सार-निचोड़ है; जीवन की सब से बड़ी संपदा है। लेकिन उन्हीं को मिलता है संतोष, जो जीवन को चखते हैं; जीवन को चखने की कठिनाई से गुजरते हैं। तिक्त है स्वाद। मन-प्राण कड़वे हो जाते हैं। सब तरफ से दौड़कर देख लिया कि भविष्य कीं आकांक्षा व्यर्थ है; न कभी आता है कल, न कभी आएगा —इस बोध से दौड़ गयी, तृष्णा गयी। इस बोध से अब जहां हूं, जैसा हूं, उसी में मगन-भाव हुआ। इस मगन-भाव का नाम संतोष है। संतोष बड़ी अद्भुत बात है। जहां संतोष आया, संसार गया। संसार गया, संतोष आया। कहने का ही भेद है।

और जहां कोई दौड़ न रही, वहां तुम परमात्मा को बिना देखे कैसे रहोगे ? क्योंकि दौड़ से ही आंखें अंधी हैं।

यूनान में पुरानी कथा है कि एक ज्योतिषि रात आकाश के तारों का अध्ययन करता हुआ चल रहा था, एक कुएं में गिर पड़ा। चिल्लाया, घबड़ाया। पास कोई किसान बूढ़ी औरत ने दौड़कर रात में इंतजाम किया, लालटेन लाई, रस्सी लाई, उसे निकाला। वह बड़ा प्रसिद्ध ज्योतिषि था। उसकी फीस भी बहुत बड़ी थी। सम्राटों का ज्योतिषि था। साधारण आदमी तो उसके पास पहुंच नहीं सकते थे। उसने कहा : बूढ़ी मां, तुझे पता है मैं कौन हूं ? तेरा सौभाग्य है कि तूने यूनान के सबसे बड़े ज्योतिषि को सहायता देकर कुएं से बाहर निकाला है। मेरी फीस इतनी है कि सिर्फ सम्राट चुका सकते हैं। मगर तेरा हाथ और तेरा भविष्य मैं बिना फीस के देख दूंगा। तू सुबह आ जाना।

वह बूढ़ी हंसने लगी। उसने कहा : बेटा, तुझे अपने सामने का कुआं नहीं दिखाई पड़ रहा, तू मेरा भविष्य कैसे देखेगा ? तुझे अपना ही...भविष्य तो छोड़, वर्तमान भी दिखाई नहीं पड़ता। तू पहले रास्ते पर चलना सीख। तू चांद-तारों पर चलता है !

जिसकी आंखें चांद-तारों पर लगी हैं, अक्सर हो जाता है कुएं में गिरना। तुम सब भी ऐसे कुएं में ही गिरे हो। आंखें चांद-तारों पर लगी हैं, यहां देखो तो कैसे देखो ! पास देखे तो कौन देखे ! तुम्हारे सारे प्राण तो वहां अटके हैं।

और बचपन से ही यह दौड़ शुरू हो जाती है। तुम्हारे चारों तरफ जो लोग हैं, वे सब पागल हैं। वही पागलपन छोटे बच्चों के प्राणों में भी हम डाल देते हैं। छोटा बच्चा सोचता है : बस परीक्षा पास हो जाऊंगा, तो बड़ा सुख होगा। परीक्षा अभी साल भर दूर है, अभी तो दुख उठा रहा है; आशा है कि परीक्षा पास होगा तो सुखी होगा। फिर पहली कक्षा पास हो जाता है; एकाध-दो-दिन फूला-फूला-सा रहता है, फिर पिचक जाता है। फिर सोचता है : इस साल तो वह बात नहीं घटी, शायद अगले साल घटे; शायद प्राइमरी स्कूल से निकल आऊं, तब सुख हो।

और चारों तरफ लोग हैं कहनेवाले। वे कहते हैं : फिकर मत करो, एक दफा पास हो गये, स्कूल से निकल आए तो सुख ही सुख है। फिर कॉलेज से निकल आए तो सुख ही सुख है। फिर विश्वविद्यालय से निकल आए तो सुख ही सुख है। फिर शादी हो गयी तो सुख ही सुख है। फिर बच्चे हो गए तो सुख ही सुख है।

सुख कभी होता नहीं। बस लोग आगे सरकाये जाते हैं। वे कहते हैं : जरा और चले चलो।

सुख ऐसा ही है...जैसा बुद्ध एक बार यात्रा करते थे। राह भटक गए। जंगल था। एक लकड़हारे से पूछा कि गांव कितनी दूर है ? उसने कहा : बस पहुंचे ही

जाते हो, दो मील समझो। दो मील गुजर गये, गांव का कोई पता नहीं। फिर एक घसियारिन से पूछा कि मां, कितनी दूर होगा गांव? उसने कहा : यही कोई दो मील। दो मील फिर निकल गए, लेकिन गांव का कोई पता नहीं। एक लकड़हारे से पूछा कि भाई गांव कितनी दूर होगा? उसने कहा : यही कोई दो मील।

आनंद से न रहा गया। बुद्ध का शिष्य था। उसने कहा कि भगवान, इन लोगों को कुछ होश है? पहला आदमी भी बोला दो मील, दूसरा भी बोला दो मील, यह तीसरा भी बोल रहा है। छह मील तो हम चल ही चुके।

बुद्ध ने कहा : तू यही गनीमत समझ, कि फासला बढ़ नहीं रहा है; दो मील का दो मील ही है। तीन भी हो सकता था, चार भी हो सकता था, छह भी हो सकता था। फिर सोच। य भले लोग हैं।

ऐसी ही जिंदगी है। इतनी ही गनीमत है कि तुम्हारा और तुम्हारे सुख का फासला उतना ही रहता है जितना पहले दिन था। अंतिम दिन भी उतना ही रहता है--दो मील। बढ़ता नहीं, यही काफी गनीमत है। मगर सुख कभी मिलता नहीं। फिर आदमी जब बिलकुल थक जाता है तो सोचता है : मृत्यु के बाद स्वर्ग में मिलेगा, परलोक में मिलेगा। अगले जनम में मिलेगा; इस जनम में शुभ कर्म कर लिए, अब अगले जनम में सुख मिलेगा।

तुम मूढ़ता छोड़ोगे या नहीं छोड़ोगे? तुम अपनी मूढ़ता को फैलाये ही चले जाते हो। जीवन बीत जाता है, तो तुम मौत के पार रख लेते हो सुख को। मगर सदा आगे! अब यहां जगह भी नहीं है रखने की; आदमी मर रहा है, खाट पर पड़ा है, अब यहां कह भी नहीं सकता कि कल सुख मिलेगा, क्योंकि कल तो यहां होने वाला नहीं। आज का सूरज आखिरी सूरज है, कल सुबह नहीं उगेगा। तो वह कहता है: 'अगले जनम में मिलेगा। मगर मिलेगा जरूर! लेकर रहूंगा! इधर चूक गए, कोई हर्जा नहीं; कब तक चूकेंगे? कभी तो मिलेगा!' इस तरह आदमी अपने सुख को आगे रखता जाता है।

सुख को आगे रखने की प्रक्रिया का नाम--संसार। संसार यह नहीं है जो तुम्हें दिखाई पड़ रहा है फैला हुआ। लोग कहते हैं कि हमने संसार छोड़ दिया।

एक वृद्ध संन्यासी कुछ दिन पहले आए थे। वे बोले कि मैंने बीस साल पहले संसार छोड़ दिया। मैंने उनसे पूछा : आनंदित हैं? उन्होंने कहा : खाक आनंदित! तो मैंने कहा : संसार छूट गया, और आनंदित नहीं हैं? फिर कब आनंद होगा? तो संसार छूटा नहीं होगा।

उन्होंने कहा : आप कह क्या रहे हैं? पत्नी छोड़ दी, बच्चे छोड़ दिए, घर-दुकान, सब छोड़ दिया।

यह तो संसार है ही नहीं। इसको पकड़ने से सुख नहीं मिला था, इसको छोड़ने से भी सुख नहीं मिल सकता। पहले सोचते थे पकड़ने से मिलेगा; फिर सोचा कि छोड़ने से मिलेगा--लेकिन सुख सदा आगे रहा। कुछ करने से मिलेगा! बाद में मिलेगा! स्थगित होता रहा। अब ये बीस साल से राह देख रहे हैं कि पत्नी छोड़ दी, घर छोड़ दिया, दुकान छोड़ दी, अभी तक सुख नहीं मिला, अब धीरे-धीरे भीतर नाराज भी हो रहे होंगे परमात्मा पर, कि यह तो हद हो गई, यह तो धोखा हो गया। जो था, वह भी गया। हाथ कुछ आया नहीं। अब धीरे-धीरे नाराज हो रहे होंगे।

इसलिए अगर तुम संन्यासियों को नाराज देखो तो आश्चर्य मत करना। उनकी नाराजगी का कारण है। अगर तुम संन्यासियों को क्रोधी पाओ, तो आश्चर्य मत करना। दुर्वासा होना उनकी नियति है। वे क्रोधित न हों तो क्या करें? संसार, जिसको सोचते थे, वह भी गया; और कुछ बदलाहट नहीं हुई। हाथ धन इत्यादि से खाली हो गए--और धन से भरे नहीं।

नहीं; न तो पत्नी में संसार है, न पति में संसार है, न धन में, न दुकान में, न बाजार में। संसार है तुम्हारी इस आशा में कि कल सुख मिलेगा। यह संसार का मनोविज्ञान है। यह उसका तत्त्व-शास्त्र है। सुख कल मिलेगा, यह भ्रांति जिस दिन छूट गयी, फिर तुम्हें सुख मिलने से कोई रोक नहीं सकता। सुख तो है ही। चांद-तारों से नजर वापिस लौट आई। आस-पास देखने लगे। जरा इस घड़ी, इसी क्षण टटोलो : सुख नहीं है? यह वृक्षों में सन्नाटा, ये पक्षियों की आवाजें, ये सूरज की तुम पर उतरती किरणें! सुख और क्या है? सुख और क्या होगा? यह शांति, यह मौन, इतने शांत लोगों की मौजूदगी, यह शांति से भरा हुआ सरोवर--क्या सुख नहीं है? और सुख क्या होता है? यह मौन, यह सन्नाटा, यह सन्नाटे का संगीत, यह श्वासों का सरगम, यह हृदय की धड़कन--सब ठहरा है। जैसे ही तुम इस क्षण में जागे, सब ठहरा है। तरंग भी नहीं होती। लहर भी नहीं उठती। और क्या है? इससे ज्यादा की मांग ही गलत है। और जिसने ज्यादा मांगा, वह संसार में गिर गया। और जिसने इसको भोगा, वह परमात्मा में उतरने लगा।

जीसस का प्रसिद्ध वचन है : जिसके पास है, उसे और दिया जाएगा। और जिसके पास नहीं है, उससे वह भी ले लिया जाएगा जो उसके पास है।

बड़ा बेबूझ वचन है! अन्याय मालूम पड़ता है कि जिसके पास है, उसको और दिया जाएगा। और जिसके पास नहीं है, उससे और ले लिया जाएगा। यह तो हद हो गयी! गरीब को और गरीब बना दोगे और अमीर को और अमीर बना दोगे! मगर यह वचन बड़ा अद्भुत है, बड़ा बहुमूल्य है!

इस क्षण का सुख भोगो। इस भोगने में ही तुम पाओगे--और सुख बरसने लगा।

सुख सुख को खींचता है। दुख दुख को खींचता है। एक दुख तुम बनाओ, दस दुख और चले आते हैं। दुख अकेला नहीं आता। सुख भी अकेला नहीं आता। एक कांटा तुम बुलाओ, दस उसके पीछे चले आते हैं। एक सुख तुम उतरने दो, और

तुम पाओगे--पंक्तिबद्ध सुख चले आ रहे हैं ! सब द्वार-दरवाजों से चले आ रहे हैं। सब दिशाओं से उतरने लगे।

वर्तमान में होना संसार के बाहर हो जाना है। भविष्य में होना संसार में होना है।

तुमने पूछा : 'आपने कहा कि संसार से विमुख होते ही परमात्मा से सन्मुखता हो जाती है।'

एक ही बात है। संसार से विमुख हुए यानी तृष्णा गयी; यानी संतोष आया। अब और क्या देरी रही ? संतोष में ही तो झलक आ जाती है परमात्मा की, सत्य की। शांति में ही तो उसके स्वर उतरने लगते हैं। उतर ही रहे थे।

ऐसा ही समझो कि तुम्हारे घर में आग लगी है। तुम रो रहे हो, चिल्ला रहे हो। और पास में कोई बांसुरी बजा रहा है। तुम्हें बांसुरी सुनाई पड़ेगी ? जिसके घर में आग लगी है, उसे बांसुरी सुनाई पड़ेगी ? जिसका घर धू-धू करके जल रहा है, उसे बांसुरी सुनाई पड़ेगी ? लेकिन तभी कोई आया और उसने कहा कि 'क्यों परेशान होते हो ? तुम्हारे बेटे ने तो घर का इन्शोरेंस कर रखा था।' बस ये दो शब्द शास्त्र बन गये, आप्त वचन हो गये। ये दो शब्द...आंसू उड़ गये। घर अब भी जल रहा है, लेकिन अब चिन्ता न रही और अचानक तुम पाओगे कि बांसुरी के स्वर सुनाई पड़ने लगे। बांसुरी पहले भी बज रही थी, मगर तुम उद्विग्न थे। तुम छाती पीट रहे थे : 'जिंदगीभर की कमाई मिट्टी में मिल गयी। अब क्या होगा ! अब कैसे होगा ! अब कहां जाऊंगा !' तुम्हारे भीतर इतना हाहाकार था ! यह आग जो जलती थी, बाहर ही नहीं जलती थी; तुम्हारे भीतर भी जल रही थी, धू-धू करके जल रही थी। कहां बांसुरी ! लेकिन किसी ने कहा कि 'क्यों घबड़ा रहे हो, बेटे ने इन्शोरेंस कर रखा है। कल ही तो किश्त भरी है, पैसे सब मिल जाएंगे।' तो शायद जलने का दुख तो दूर हुआ, अब मन में योजना उठने लगेगी कि नया मकान बना लेंगे, पुराने से बेहतर बना लेंगे। इसके द्वार-दरवाजे भी सड़ गये थे, अच्छा ही हुआ कि जल गया। चलो, परमात्मा की कृपा है।

एक शांति आई। अब भीतर कोई आपाधापी नहीं है, चिंताओं का शोरगुल नहीं है। बांसुरी की आवाज सुनाई पड़ने लगी। बांसुरी पहले भी बज रही थी। बांसुरी बजती ही रही है। अनहत बाजत बांसुरी ! कृष्ण की बांसुरी बज ही रही है। वह कभी रुकी नहीं। वह रुकती ही नहीं। वह रुक सकती नहीं। वह शाश्वत है। लेकिन तुम्हारे कान कैसे उसे पकड़ें ? तुम्हारे भीतर इतना शोरगुल है ! तुम्हारे भीतर बाजार है। बाहर बाजार है, उससे चिंता मत लो। बाहर कुछ भी नहीं है। तुम्हारे भीतर बाजार है। तुम्हारे भीतर हजार वासनाओं का तुमुल नाद है। तुम्हारे भीतर महाभारत छिड़ा है : 'यहां जाऊं, वहां जाऊं; यह करूं, वह करूं ? इसमें धन लगाऊं, उसमें धन लगाऊं ?' जिस दिन तुम्हारे भीतर यह तुमुल नाद शांत हो जाएगा,

परमात्मा कभी भी कहीं गया नहीं--घेरे तुम्हें खड़ा है। बाहर-भीतर वही है; उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

संसार से विमुख होते ही परमात्मा से सन्मुखता हो जाती है। इसलिए मैं कहता हूं : जहां संसार खत्म हुआ वहीं परमात्मा शुरू हो जाता है। बाहर से भीतर की तरफ आ गये तो संसार से परमात्मा की तरफ आ गये। भविष्य से वर्तमान की तरफ आ गये तो संसार से परमात्मा की तरफ आ गये। तृष्णा से, वीत-तृष्णा में आ गये। असंतोष से संतोष में आ गये।

समझो। करने का बहुत कुछ नहीं है। समझ लेने की बात है। समझ आ जाए तो करना अपने-आप इसके पीछे उतर आता है। जब भी अवसर मिले, तभी संतुष्ट होकर बैठ जाओ। संतुष्ट होकर यानी स्वयं में समाहित होकर। समाधान में ! न कहीं जाना, न कहीं आना। न कुछ पाने को, न कुछ खोने को। बस वहीं ध्यान। वहीं बज उठेगी बांसुरी।

और जितनी तुम बांसुरी सुनने लगोगे, उतनी ही साफ होने लगेगी; उतने ही स्वर स्पष्ट होने लगेंगे। सुनते-सुनते एक दिन तुम पाओगे कि यह बांसुरी बाहर नहीं बज रही है--यह बांसुरी तुम ही हो। तत्त्वमसि ! यह तुम ही हो। परमात्मा तुम्हारे ही प्राणों में नाद उठा रहा है।

समझ की बात है। नासमझी में कुछ कर लोगे तो कुछ भी न होगा। नासमझी में तुम धन छोड़ दो, मकान छोड़ दो, पत्नी छोड़ दो, हिमालय भाग जाओ--करोगे क्या हिमालय में बैठकर ? तुम्हारा मन वहां भी वासनाओं में ही रचा-पचा रहेगा। बैठकर हिमालय की गुफा में तुम सोचोगे कि आहा, सब छोड़ आया ! अब स्वर्ग आने ही वाला है ! अब थोड़े ही दिन की बात और है। आते ही होंगे रामजी, पुष्पक विमान पर ले जाएंगे ! अप्सराएं तैयार ही हो रही होंगी। स्वर्ग में बंदनवार बांधे जा रहे होंगे कि महात्मा आ रहे हैं !

यही बैठे-बैठे सोचोगे कि कौन-सी अप्सरा चुननी है--उर्वशी ठीक रहेगी कि कोई और ठीक रहेगी ? और फिर बैठे-बैठे थोड़ी देर में नाराजगी भी आयेगी कि रामजी अभी तक नही आये; पुष्पक विमान का कुछ पता भी नहीं चल रहा है। कम से कम हनुमानजी को तो भेज ही देते ! कोई संदेशवाहक तो आ जाता। इधर हम बैठे-बैठे परेशान हो रहे हैं। और सब छोड़कर आ गये हैं। घर-द्वार छोड़ा; धन, पत्नी, बच्चे छोड़े--अब और क्या चाहिए !

ऐसे गुस्सा बढ़ेगा। क्रोध भभकेगा। शिकायत उठेगी, प्रार्थना नहीं।

जहां वासना है, वहां शिकायत है। जहां वासना है, वहां प्रार्थना हो भी तो झूठी है।

मैंने सुना। दिल्ली की घटना है। कुछ लोगों का एक दल 'मोरारजीभाई--जिंदाबाद, जिंदाबाद' चिल्ला रहा था। बड़े जोरों से, बड़ी ताकत से ! फिर अचानक

'मोरारजीभाई--मुर्दाबाद' चिल्लाने लगा। वही दल! और उतनी ही ताकत से! इस आकस्मिक परिवर्तन को देखकर पत्रकारों ने उधर रुख किया और पूछा कि भाई, माजरा क्या है? अभी जिंदाबाद, अभी मुर्दाबाद!

उन लोगों ने कहा कि हमें जिंदाबाद चिल्लाने के लिए सिर्फ आधे घंटे के पैसे दिये गए थे; और अब इक्तीस मिनट हो गये हैं।

तुम्हारी प्रार्थनाएं, तुम्हारी स्तुतियां, तुम्हारी पूजा--अगर उनके पीछे कुछ वासना है, कुछ मिलने का लोभ है--तो ज्यादा देर टिकने वाली नहीं। तीस मिनट पूरे हो जाएंगे, फिर? फिर तुम टूट पड़ोगे। क्योंकि जहां वासना है, वहां क्रोध है। क्योंकि जहां काम है, वहां क्रोध है। क्रोध काम की छाया है।

प्रार्थना और वासना का फर्क यही है। प्रार्थना का अर्थ होता है: जो दिया है, इतना है कि धन्यवाद मेरा ले। वासना का अर्थ होता है: जो दिया है, यह कुछ भी नहीं है। मेरी योग्यता के योग्य ही नहीं है। कहां मैं पात्र आदमी, और क्या मुझे दिया है! अन्याय हो रहा है। सुध ले मेरी! बहुत हो चुका। सुनते थे कि तेरे द्वार पर देर है, अंधेर नहीं। देर भी हो गयी, अब अंधेर भी हुआ जा रहा है।

जहां वासना है, जहां मांग है--वहां क्रोध खड़ा ही है, तत्पर है। क्योंकि वासना का मतलब यह है कि मुझे कुछ मिले; जब तक मिलता रहे तब तक ठीक।

कल मैं एक कहानी पढ़ रहा था--एक यहूदी कहानी। दो यहूदी मित्र, दोनों ने धंधा शुरू किया। एक तो गरीब ही था बीस साल के बाद। दूसरा बहुत अमीर हो गया था। कभी-कभी अमीर मित्र गरीब के द्वार पर आकर रुकता था। एक सांझ आकर रुका। रविवार है। उसने अपनी केडिलक गाड़ी आकर रोकी मित्र के द्वार पर। अंदर आया। उसके कपड़े शानदार। इत्र की खुशबू। मित्र की दुकान तो हालत खस्ता। आधी दुकान तो खाली-सी पड़ी। अलमारियों में भी कुछ नहीं, धूल जमी।

धनी मित्र ने कहा कि भई, बात क्या है? हम दोनों ने एक-सा ही काम शुरू किया था और एक-सी पूंजी से काम शुरू किया था। मेरी हालत देख--धन है कि बढ़ता चला जाता है। तू गरीब क्यों हुआ चला जाता है?

उस गरीब मित्र ने कहा कि जो कुछ मैं कर सकता हूं, करता हूं। आप ही बताओ राज क्या है? तुम्हारी सफलता का राज क्या है?

तो धनी मित्र ने कहा कि मेरी सफलता का राज यह है कि जिस दिन मैंने धंधा शुरू किया, मैंने परमात्मा की याद से शुरू किया। मैंने उसको साझीदार बना लिया है। मैं अकेला नहीं हूं; उसको साझीदार बना लिया है। और दस रुपये महीने चर्च को भी देता हूं। और हर साल एक दिन उपवास भी करता हूं। इसी से सब ठीक चल रहा है। परमात्मा की कृपा है। उसको साझीदार बना लिया; अब उसकी ही इज्जत का सवाल है। मेरी हार, उसकी हार; मेरी जीत, उसकी जीत।

गरीब चुप रहा। सोचने जरूर लगा कि यह कैसा मामला हुआ! यद्यपि उसने जब दुकान शुरू की थी तो परमात्मा को याद करके शुरू की थी, लेकिन परमात्मा को साझीदार नहीं बनाया था। क्योंकि बात ही बेहूदी है। हम तो पड़े ही हैं कीचड़ में, उसे भी कीचड़ में खींचें! प्रार्थना यह की थी कि मुझे कीचड़ से निकालना; मगर सोचा कि यह कुछ समझ में नहीं आया। और जितना भी कमाता था, उसमें से आधा पैसा तो गरीबों को जाता, अस्पताल को देता, चर्च को देता, मंदिरों को देता, जहां जरूरत होती वहां देता। इसलिए गरीब भी रह गया था। हर महीने उपवास भी करता। हर रोज जाकर पूजागृह में पूजा भी करता। सोचने लगा कि यह खूब हुआ कि एक आदमी कहता है कि एक दिन उपवास करता है साल में और दस रुपये महीने दान भी करता है--और लाखों कमा रहा है! और कहता है मैंने परमात्मा को भागीदार बना लिया है।

वह हंसा, मुस्कुराया। कहा कि जैसी तेरी मर्जी, जरूर इसमें ही मेरा हित होगा, नहीं तो तू मुझे गरीब रखता? इसमें ही मेरा हित होगा। धन्यवाद!

उस रात भी हृदयपूर्वक उसने प्रार्थना की। दूसरे दिन, हैरानी की बात, संयोग की बात, अमीर का मकान जल गया, उसमें आग लग गयी, दुकान जल गयी। सब राख हो गया। तो इस गरीब ने उसे पत्र लिखा कि मेरी कोई सामर्थ्य तो नहीं है कि तुम्हें साथ दूं, लेकिन जो भी मेरे पास है, उसमें से आधा तुम ले लो। फिर काम शुरू कर दो। और भगवान तुम्हारे साथ है, तो जल्दी ही सब फिर ठीक हो जाएगा।

अमीर ने उत्तर में सिर्फ इतना ही लिखा: 'कोई भगवान नहीं। सब धोखा है। मैंने इतना भरोसा किया और वक्त पर दगा दे गया। कोई भगवान नहीं। ईश्वर इत्यादि सब बकवास है।'

यह अंतरतम बात है। वह जो साझीदार इत्यादि बनाया था, वह सब ऊपर-ऊपर था। सफलता मिल रही थी तो ठीक था; असफलता आई तो कठिन हो गया।

कामी भी परमात्मा को याद करता है, लेकिन उसकी याद झूठी है। वह याद कर ही नहीं सकता। उसके पास ओंठ नहीं, जिनसे प्रार्थना हो सके। उसके पास प्राण नहीं, जिनसे प्रार्थना हो सके। प्राण तो उसी के पास होते, ओंठ तो उसी के पास होते, जिसने एक सत्य जीवन का समझ लिया कि काम, कामना कहीं नहीं ले जाती, सिर्फ भटकाती है--अरण्य में भटकाती है। अरण्यरोदन है कामना।

जिसको ऐसी प्रतीति हो गयी, प्रगाढ़ प्रतीति हो गयी...और ख्याल रखना, मेरे कहने से तुम्हें प्रतीति नहीं हो जाएगी, न बुद्ध के कहने से प्रतीति होगी। तुम्हारा ही जीवन-अनुभव तुम्हें प्रतीति करवायेगा। अपने ही जीवन के अनुभव में तलाशो। तुम परमात्मा को खोजने शास्त्र में जाते हो, वहीं भूल हो जाती है। परमात्मा यहीं सब तरफ पड़ा है। अपने जीवन में ही खोजो। अपने ही जीवन के अनुभव में

उलटो, पलटो। अपने ही जीवन का विश्लेषण करो। तुम्हारे जीवन भर की कथा अगर एक बात कहती है तो यही, कि दौड़ने से कहां पहुंचे, कि दौड़ने से क्या मिला! अब जरा बैठकर देखो! उस बैठने का नाम: ध्यान। उस बैठने का नाम: संतोष। उस बैठने का नाम: प्रार्थना। अब जरा बैठकर देखो! अब जरा चुप होओ, सन्नाटे में उतरो।

जिस क्षण भी तुम्हारे भीतर कोई भाग-दौड़ न होगी, कोई ताना-बाना न बुना जा रहा होगा वासना का--एक क्षण को ही सही, ऐसा हो जाए--उसी क्षण तुम पाओगे: हवा के झोंके की तरह परमात्मा तुम में प्रवेश कर गया। कर गया ताजा। उड़ा गया सब धूल। कर गया कंचन अपने स्पर्श से।

दूसरा प्रश्न: आपने कहा--गद्‌गद् हो जाओ, रस-विभोर हो जाओ, तल्लीन हो जाओ और जीवन को उत्सव-ही-उत्सव बना लो।

लेकिन यह सब हो कैसे? मुझे तो यह मालूम ही नहीं कि रस क्या है, उत्सव क्या है, तल्लीनता क्या है, गद्‌गद् होना क्या है। बड़ा निष्क्रिय-सा महसूस करता हूं। कुछ करने का भाव नहीं उठता। और अपने-आप होश में कभी हुआ नहीं। बड़ी उलझन में हूं। समझायें, कृपा करें!

★

नीरस हो, निष्क्रिय हो, रस से कोई अनुभव नहीं हुआ--तो तुम्हारी बात मैं समझता हूं कि कैसे गद्‌गद् हो जाओगे! तो तुमसे मैंने यह कहा भी नहीं। यह उनसे कहा है, जो गद्‌गद् हो सकते हैं। तुमसे तो मैं यह कहूंगा: भरपूर नीरस हो जाओ। जो हो, वही हो जाओ। मरुस्थल हो, तो मरुस्थल ही हो जाओ। पूरी तरह हो जाओ! उससे अन्यथा होने की चेष्टा में ही भूल हो जाएगी।

अब तुम कहते हो: 'मैं नीरस हूं।' और मुझे सुना कि रस से भर जाओ, डूब जाओ, ब्रज बन जाओ, उतर आए प्रभु का रस तुम में! अब तुम्हारे भीतर वासना उठेगी। तुम कहोगे: 'मैं नीरस हूं, होना है रसपूर्ण। इधर मैं जानता नहीं कि क्या है आनंद--और होना है आनंदपूर्ण।' अब तुम यह शब्द से अटकोगे। यह शब्द तुम्हारा भविष्य बन जाएगा। वासना पैदा होगी। और जो वासना से भरा, वह कभी गद्‌गद् नहीं हो पाएगा। तो तुम अड़चन में मत पड़ जाना। ऐसी अड़चन बहुत होती है।

अब यहां बहुत तरह के लोग हैं। मैं बहुत तरह के लोगों से बात कर रहा हूं। इतना समझ लेना कि गद्‌गद् हो जाओ, यह मैंने तुमसे नहीं कहा। तुमसे तो कह भी कैसे सकता हूं! और तुम अगर अपनी नीरसता में किसी तरह जबरदस्ती हिलने-डोलने लगे, तो वह झूठी होगी। यह मरुस्थल, जो तुमने अपने भीतर बना रखा है, अगर सोचने लगे कि फूल खिलाने हैं, गुलाब के फूल खिलाने हैं--कैसे खिलायेगा? हां,

आंख बंद करके कल्पना कर सकते हो गुलाब के फूलों की। वे कभी खिलेंगे नहीं। रहेगा तो मरुस्थल ही।

तो तुम इस झूठ में मत पड़ जाना। यह वचन तुम्हारे लिए नहीं कहा गया है। यह उनके लिए कहा गया है, जिनके भीतर इस बात की संभावना आ गई है कि गद्-गद् हो सकते हैं।

यहां सारे लोग एक ही जगह नहीं हैं--अलग-अलग स्थानों पर हैं; अलग-अलग सीढ़ी के सोपानों पर हैं। कोई मूलाधार पर खड़ा है। कोई अनाहत तक पहुंच गया है। किसी ने विशुद्धि को छू लिया है। कोई आज्ञा के करीब आ रहा है। और किसी का सहस्रार खुलने के निकट है। यहां बहुत तरह के लोग हैं।

तुम जहां हो वहीं से यात्रा शुरू करनी पड़ेगी। अब तुम बैठे मूलाधार में और सहस्रार की कल्पना करोगे, तो सब झूठ हो जाएगा।

फिर इसमें दुखी होने का भी कोई कारण नहीं है, क्योंकि जो जहां है वहीं से यात्रा शुरू हो सकती है। इसमें चिंतित भी मत हो जाना कि अरे, दूसरे मुझसे आगे हैं, और मैं पीछे हूं! दूसरों से तुलना में भी मत पड़ना। नहीं तो और दुखी हो जाओगे। सदा अपनी स्थिति को समझो। और अपनी स्थिति के विपरीत स्थिति को पाने की आकांक्षा मत करो। अपनी स्थिति से राजी हो जाओ।

तुमसे मैं कहना चाहता हूं: अपनी नीरसता से राजी हो जाओ। तुम इससे बाहर निकलने की चेष्टा ही छोड़ो। तुम इसमें आसन जमाकर बैठ जाओ। तुम कहो: मैं नीरस हूं, मैं नीरस हूं। तो मेरे भीतर फूल नहीं खिलेंगे, नहीं खिलेंगे। तो मेरे भीतर मरुस्थल होगा; मरूद्यान नहीं होगा, नहीं होगा।

मरुस्थल का भी अपना सौंदर्य है। मरुस्थल देखा है! मरुस्थल का भी अपना सौंदर्य है। मरुस्थल देखा है? मरुस्थल का भी अपना सन्नाटा है। मरुस्थल की भी फैली दूर-दूर तक अनंत सीमाएं हैं--अपूर्व सौंदर्य को अपने में छिपाये हैं। मरुस्थल होने में कुछ बुराई नहीं।

परमात्मा ने तुम्हारे भीतर अगर स्वयं को मरुस्थल होना चाहा है, बनाना चाहा है, तुम उसे स्वीकार कर लो। तुम्हें मेरी बात कठोर लगेगी, क्योंकि तुम चाहते हो कि जल्दी से गद्‌गद् हो जाओ। तुम चाहते हो कि कोई कुंजी दे दो, कोई सूत्र हाथ पकड़ा दो कि मैं भी रसपूर्ण हो जाऊं। लेकिन हो तुम विरस। तुम्हारी विरसता से रस की आकांक्षा पैदा होती है। आकांक्षा से द्वन्द्व पैदा होता है। द्वन्द्व से तुम और विरस हो जाओगे। तो मैं तुम्हें कुंजी ही दे रहा हूं। हालांकि तुम्हें कुंजी बड़ी उलटी मालूम पड़ेगी। मैं तुमसे कह रहा हूं: तुम विरस हो, तो तुम विरस में डूब जाओ। तुम यही हो जाओ। तुम कहो: 'परमात्मा ने मुझे मरुस्थल बनाया तो मैं अहो-भागी कि मुझे मरुस्थल की तरह चुना है।' तुम इसी में राजी हो जाओ। तुम भूलो गीत-गान। तुम भूलो गद्‌गद् होना। तुम छोड़ो ये सब बातें। तुम बिलकुल शुष्क

हो रहो। तुम जरा भी चेष्टा मत करो, नहीं तो पाखंड होगा। ऊपर-ऊपर मुस्कराओगे, और भीतर-भीतर मरुस्थल होगा। ऊपर से फूल चिपका लोगे, भीतर कांटे होंगे। तुम ऊपर से चिपकाना ही भूल जाओ। तुम तो जो भीतर हो, वही बाहर भी हो जाओ। और तुमसे मैं कहता हूं : तब क्रांति घटेगी। अगर तुम अपने मरुस्थल होने से संतुष्ट हो जाओ, तो अचानक तुम पाओगे : मरुस्थल कहां खो गया, पता न चलेगा। अचानक तुम आंख खोलोगे, और पाओगे कि हजार-हजार फूल खिले हैं। मरुस्थल तो खो गया, मरूद्यान हो गया!

संतोष मरूद्यान है। असंतोष मरुस्थल है। और तुम जब तक अपने मरुस्थल से असंतुष्ट रहोगे, मरुस्थल पैदा होता रहेगा। क्योंकि हर असंतोष नये मरुस्थल बनाता है।

तुम्हें मेरी बात समझ में आई? उलटी है, लेकिन ख्याल में आ जाए, तो कीमिया छिपी है उसमें। तुम जैसे हो, उससे अन्यथा होने की चेष्टा न करो। आंख में आंसू नहीं आते, क्या जरूरत है? सूखी हैं आंखें, सूखी भली। सूखी आंखों का भी मजा है। आंसू-भरी आंखों का भी मजा है। और परमात्मा को सब तरह की आंखें चाहिए, क्योंकि परमात्मा वैविध्य में प्रगट होता है।

तुम जैसे हो, बस वैसे ही संतुष्ट हो जाओ। और एक दिन तुम अचानक पाओगे कि सब बदल गया, सब रूपांतरित हो गया––जादू की तरह रूपांतरित हो गया!

'आपने कहा : गद्‌गद् हो जाओ, रस-विभोर हो जाओ, तल्लीन हो जाओ और जीवन को उत्सव-ही-उत्सव बना लो।'

ये सब शब्द तुम्हारे लिए झूठे हैं। तुम्हारे लिए कहे भी नहीं गये हैं।

'लेकिन यह सब हो कैसे?'

कृपा करके इसको करने की कोशिश भी मत करना, नहीं तो यह कभी नहीं होगा। ये कुछ बातें ऐसी हैं जो करने से होती नहीं।

यह मामला कुछ ऐसा है, जैसे रात नींद न आती हो और तुम पूछो कि 'कैसे सो जाऊं? आप कहते हैं, मस्ती से सो जाओ, सोओ आनंद में, खींच लो चादर, सपने देखो प्यारे! आप तो कहते हैं, मगर नींद ही नहीं आ रही। सपने कहां से देखूं? चादर भी खींच लेता हूं तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ता। भीतर जगा पड़ा हूं। आप कहते हैं : भीतर की सुषुप्ति में डुबकी मारो। मुझे सिर्फ मच्छरों का संगीत सुनाई पड़ता है। और घबड़ाहट लगती है। और सब सो रहे हैं। और मैं अकेला जागा हूं। और देखता हूं, आज की रात भी ऐसे ही बीत जाएगी।'

तुम्हें विधियां देने वाले लोग भी हैं। कोई कहेगा : 'ऐसा करो, भेड़ें गिनो। गिनते जाओ—एक से लेकर सौ तक। फिर उलटी गिनो––फिर सौ से उलटो एक तक; फिर एक से सौ तक। ऐसे चढ़ो सीढ़ी नीचे-ऊपर।' कोई कहेगा : राम-राम राम-राम जपो। कोई कहेगा : माला हाथ में ले लो, माला फेरो। कोई और

तरकीबें बताएगा। लेकिन ये तरकीबें काम नहीं करेंगी। क्यों नहीं काम करेंगी? क्योंकि इनका मौलिक विरोध है निद्रा से। निद्रा आती तब है, जब तुम कुछ भी नहीं करते। न करने की अवस्था में निद्रा उतरती है। तुमने कुछ भी किया कि नींद में बाधा पड़ गयी। अब तुम राम-राम ही जप रहे थे, अब ये राम ही बाधा बनेंगे। अब नींद आए भी तो कैसे, ये रामजी तो बीच में खड़े हैं! नींद बड़ी संकोची है! बड़ी परोक्ष है! नींद आएगी नहीं। तुम राम-राम जपोगे, जितनी त्वरा से जपोगे, उतने ही जाग जाओगे। उतना ही तुम पाओगे : नींद और खो गयी। कुछ-कुछ झपकी आती थी, वह भी गयी। भेड़ें गिनोगे, तो गिनती करने में ख्याल रखना पड़ेगा कि सत्तानबे के बाद अट्ठानबे आता है, अट्ठानबे के बाद निन्यान्नबे आता है। उतना ही ख्याल निद्रा में बाधा बन जाएगा, कि अब पीछे लौटना है, अब आगे जाना है।

मुल्ला नसरुद्दीन को किसी ने कहा कि नींद नहीं आती तो तुम भेड़ें क्यों नहीं गिनते? तो उसने कहा : अच्छा गिनेंगे। दूसरे सुबह तो वह लकड़ी लेकर उस आदमी के घर पहुंच गया। दरवाजे पर लकड़ी मारी। कहा : 'कहां है वह आदमी? रात भर मर गये गिनते-गिनते। तीन करोड़ तक पहुंच गये। और फिर घबड़ाहट आई कि इतनी भेड़ें, अब इनका करना क्या! अब इनको रखो तो रखो कहां! फिर सोचा कि अभी तो रात बाकी है, तो चलो इनका ऊन ही उतार लो। तो ऊन उतार डाला। अब? अब ऊन को कहां रखो? तो सोचा चलो कपड़े बनवा दो। अब कपड़े बन गये, बेचो कहां? वह आदमी कहां है?'

और इस तरह के सुझाव––मुल्ला ने कहा––किसी और को मत देना। रात खराब हो गयी। वैसे तो चार-छह घंटे में नींद आ जाती थी।

तुम जब गिनती करोगे, तो स्वभावतः गिनती तो क्रिया है, मन सक्रिय होगा। सक्रियता में उलझे रहोगे।

कोई विधि काम नहीं आती, जब नींद न आती हो। लेकिन फिर भी एक विधि है, जिसको विधि कहना ठीक नहीं। वह विधि है : कुछ मत करो, पड़े रह जाओ। स्वीकार कर लो कि नींद नहीं आती तो नहीं आती। आज परमात्मा की इच्छा सोने की नहीं है मेरे भीतर, तो जागा रहे। तेरी मर्जी! पड़े रहो। नींद की सोचो ही मत। नींद से लड़ने का उपाय भी मत बनाओ। और तुम अचानक पाओगे : कब नींद आ गयी, पता भी न चला! क्योंकि इस निष्क्रिय दशा में ही नींद आती है।

और ऐसा ही जीवन का गणित है। तुम नीरस हो, नीरस रहो। राजी हो जाओ। सभी रस से भर जाएंगे तो वैविध्य खो जाएगा। जीवन बड़ा ऊब से भर जाएगा। एकरसता हो जाएगी।

इसलिए तो परमात्मा दो आदमी एक जैसे नहीं बनाता। माना कि गुलाब का

सौंदर्य है, कैक्टस में भी सौंदर्य है। कांटों ही कांटों का सौंदर्य है। तुम नाहक की बिगूचन सिर मत लो।

मेरी सलाह तुमसे यही है : तुम नीरस हो, अब तुम यह रस की बात ही मत सुनो। तुम नीरसता को ही अपना रस बना लो। नीरसता को ही अपना रस बना लो। चलो यही ठीक! मरुस्थल राजी हैं, ऐसे तुम भी राजी हो जाओ। उसी राजीपन में संतोष की वर्षा होगी। उसी वर्षा में मरुस्थल में पौधे उगेंगे, फूल खिलेंगे, हरियाली फैल जाएगी!

तीसरा प्रश्न : मनुष्य के जीवन में इतना द्वंद्व क्यों है?

*

द्वंद्व है क्योंकि मनुष्य मध्य है--यात्रा है--सेतु है। मनुष्य अभी जैसा होना चाहिए, जो होना चाहिए, वैसा नहीं है—विडंबना में है। एक तरफ पशुओं का जगत है और एक तरफ परमात्मा का; और बीच में अटका हुआ मनुष्य है--न यहां का, न वहां का। अगर वासनाओं की सुने, तो पशुओं में खींच ले जाती हैं वासनाएं। अगर विवेक की सुने तो परमात्मा की तरफ उठाता है विवेक।

और दोनों मनुष्य के भीतर हैं--विवेक और वासना। वासना पीछे की तरफ खींचती है; विवेक आगे की तरफ खींचता है। खिंचा हुआ मनुष्य द्वंद्व से भर जाता है। सूझ नहीं पड़ता : पीछे जाऊं, आगे जाऊं? आगे जाता है तो जो हिस्सा पीछे जाना चाहता है, वह अड़चन डालता है। पीछे जाता है तो जो हिस्सा आगे जाना चाहता है, वह अड़चन डालता है।

शराब पीने जाओ तो तुम्हारे भीतर कोई हिस्सा है जो प्रसन्न होता है--तुम्हारी मूर्च्छा, तुम्हारा प्रमाद--प्रसन्न होता है। लेकिन तुम्हारा विवेक, तुम्हारी चेतना दुखी होती है। ध्यान करने जाओ तो चेतना प्रसन्न होती है, विवेक प्रसन्न होता है, लेकिन वासना दुखी होती है। वासना कहती है : क्या समय खराब कर रहे हो? कुछ और नहीं सूझता? क्या बैठे हो मंदिर में? यहां रखा क्या है? अरे उठो, इतनी देर में कुछ कमा ही लेते! बाजार चलो, दुकान खोलो! दूसरों ने दुकान खोल ली और तुम यहां मंदिर में बैठे! ऐसे बुद्धूपन से कुछ लाभ न होगा, वासना कहती है।

तुम जब मंदिर बैठते हो, तब तुमने वासना की आवाज सुनी? वासना निरंतर कहती है : जल्दी करो, निपटा लो। चलो कोई बात नहीं। आ गये, जल्दी कर लो। मंत्र इतने धीरे-धीरे क्यों जप रहे हो?

तुमने देखा नहीं, जब जल्दी होती है तो तुम जल्दी मंत्र जप लेते हो! जब सुविधा होती है, तुम आराम से जपते रहते हो। तुम हिसाब जमा लेते हो। कभी-झोंक यूं सिर पटका और भागे। सिर लग भी नहीं पाता और तुम भाग गये।

मंदिर में जब भी बैठते हो, तब वासना बड़े तूफान उठाती है, सपने जगाती है। कहती है: यह घंटाभर व्यर्थ गया। इतने में तो कुछ कमा लेते। इतने में कुछ गप-शप ही कर लेते; कि नयी फिल्म लगी है, वही देख आते; मित्रों से मिल लेते; कि आज गांव में कव्वाली हो रही है, कव्वाली सुन लेते; कि वेश्या का नृत्य हो रहा है...। यहां बैठे क्या कर रहे हो?

तुमने कहानी सुनी? एक वेश्या मरी और उसी दिन उसके सामने रहनेवाला एक बूढ़ा संन्यासी मरा। साथ ही साथ मरे। संयोग की बात। देवता लेने आए तो संन्यासी को नर्क ले जाने लगे और वेश्या को स्वर्ग ले जाने लगे। संन्यासी तो बहुत नाराज हुआ, एकदम अपना डंडा पटक कर खड़ा हो गया और उसने कहा: 'तुम यह कर क्या रहे हो?' दंडीधारी संन्यासी रहा होगा। उसने कहा: 'सिर खोल दूंगा। संन्यासी को नर्क ले जा रहे हो, वेश्या को स्वर्ग ले जा रहे हो! मेरी आंखों के सामने अन्याय हो रहा है। जरूर कुछ भूल हो गयी है। दफ्तर की गलती है। मेरे नाम आया होगा संदेशा स्वर्ग का और तुम गलती से इसको ले जा रहे हो। फिर पीछे पछताओगे। तुम पूछताछ कर लो।'

संन्यासी की अकड़ और डंडा देखकर देवता भी डरे। कहा कि भाई पूछ लेते हैं। पूछ कर आए, लेकिन पता चला कि कोई भूल-चूक नहीं है, ऐसा ही है। तो संन्यासी ने कहा: इसके पहले कि मुझे नर्क ले जाया जाए, मैं परमात्मा का सामना कर लेना चाहता हूं। दो-दो बातें हो जाएं। जिंदगी गुजर गयी उसी की याद करते--और यह परिणाम! और यह वेश्या नाचती और शराब पीती और भोग में पड़ी रही--और यह परिणाम! अगर यह हो रहा है तो तुम्हारे सब शास्त्र झूठे हैं। और झेमु नाहक धोखे में डाला। और न मालूम कितने और लोग धोखे में पड़े हैं; उनको चेताना जरूरी है। तुम मुझे परमात्मा के सामने ले चलो।

ले जाया गया। परमात्मा ने कहा: 'कारण है। वेश्या यद्यपि शराब भी पीती थी, पिलाती भी थी, भोगी भी थी, भोग में ही रहती थी; लेकिन जब भी तुम अपने पूजागृह में बैठकर भगवान के लिए, मेरे लिए घंटियां बजाते थे, धूप-दीप बालते थे, भजन गाते थे—तो रोती थी। सोचती थी कि कब मेरे जीवन में यह सौभाग्य होगा! कब मैं भी पूजागृह में प्रवेश कर पाऊंगी! यह जीवन तो गया। और न मालूम कितने जीवन गए! और न मालूम कितने जीवन जाएंगे! मैं अभागी! रोती थी, जार-जार रोती थी। तुम्हारे पूजागृह की धूप जब उठकर उसकी सुगंध जब इसके घर में पहुंच जाती थी, तो यह अपने नासापुटों में भर लेती थी; अपना अहो-भाग्य मानती थी कि इतना भी क्या कम सौभाग्य है कि एक परम महात्मा के पास रहने का अवसर मिला है! रोज कम से कम मेरे कान में प्रभु का नाम तो पड़ जाता है! चाहूं न चाहूं, याद करूं न करूं, रोज तुम्हारे मंदिर में बजती हुई घंटी की आवाज सुनकर मगन हो जाती थी।

'और एक तुम थे कि तुम यद्यपि घंटियां बजाते थ और धूप-दीप भी जलाते थे, लेकिन तुम्हारे मन में यही लगा रहता था कि वेश्या है तो सुंदर ! तुम्हारे मन में इरादे तो यही बने रहते थे कि किसी रात मौका मिल जाए तो घुस जाओ। जा नहीं पाए, क्योंकि हिम्मत नहीं जुटा पाए। तुम्हारी प्रतिष्ठा आड़े आई—गांव भर के लोग तुम्हें संन्यासी और महात्मा मानते थे।'

और जब कोई किसी को महात्मा मानता है, तो गांवभर के लोग पहरा भी देते हैं कि यह महात्मा है, जरा ख्याल रखना। महात्मा पर तो लोग पहरा देते हैं। महात्मा को देखते रहते हैं : क्या कर रहे हैं, क्या नहीं कर रहे ?

'तो तुम्हारी इतनी हिम्मत न थी कि तुम अपनी प्रतिष्ठा तोड़कर इसके पास चले जाओ। मगर तुम्हारे मन में वासना जगती थी। और जब इस वेश्या के घर में नाच होता था और शराब ढाली जाती थी तो तुम रोते थे कि मैं अकारथ, मेरा जीवन अकारथ गया। हे प्रभु, मुझे क्यों महात्मा बना दिया? मुझे क्यों फंसा दिया? दुनिया में इतना रस है, इतना आनंद बह रहा है! यहां सामने ही लोग मस्त हो रहे हैं। इधर एक मैं बैठा अपनी माला फेर रहा। मैं अभागा !

'इसलिए यह वेश्या स्वर्ग ले आई गयी है; क्योंकि रहती तो वासना में थी, लेकिन विवेक इसे पुकारता रहा, प्रार्थना इसे पुकारती रही। थी तो कीचड़ में, लेकिन कीचड़ से कमल की तरह ऊपर उठती रही। एक तुम थे कि तुम बने तो कमल थे, लेकिन पड़े कीचड़ में रहे। और असली सवाल यह नहीं है कि बाहर से तुम क्या थे--असली सवाल यह है कि भीतर से तुम क्या थे? भीतर ही निर्णायक है।'

मनुष्य में द्वन्द्व है, क्योंकि मनुष्य में दो तत्त्व हैं—प्रकृति और परमात्मा। क्योंकि मनुष्य में दो जगतों का मेल है--शरीर और आत्मा। अदृश्य और दृश्य का मिलन हो रहा है मनुष्य में। मनुष्य सीमा पर खड़ा है। एक तरफ प्रकृति खींचती है, एक तरफ परमात्मा बुलाता है। मनुष्य के लिए बड़ी चुनौती है। मनुष्य अगर सिर्फ परमात्मा ही परमात्मा होता, तो कोई द्वन्द्व न था।

इसलिए परम अवस्था में, बुद्धत्व की अवस्था में, द्वन्द्व मिट जाता है; क्योंकि मनुष्य परमात्मा ही परमात्मा हो जाता है। और निम्नतम अवस्था में भी द्वन्द्व मिट जाता है; क्योंकि मनुष्य प्रकृति ही प्रकृति रह जाता है। जहां एक बचता है, वहीं द्वन्द्व मिट जाता है।

इसलिए दुनिया के सारे उपदेशक--और दो हिस्सों में बांटे जा सकते हैं सारे उपदेशक--एक चार्वाक, जो कहता है : 'कोई परमात्मा नहीं, कोई विवेक नहीं, कोई प्रार्थना नहीं। डूब रहो प्रकृति में। ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत। ऋण लेकर भी घी पीना पड़े तो पीओ, कोई चिंता की बात नहीं; क्योंकि मरने के बाद न कोई बचता है; न कोई पाप है, न कोई पुण्य है। न मरने के बाद कोई लेना है न देना है; न कोई ऋण है, न कोई भुगतान है। ऋण लेकर घी पीना पड़े तो घी पीओ --मगर घी पीओ! आदमी सिर्फ शरीर है।'

यह भी अद्वैतवाद है—यह निम्नतम अद्वैतवाद है। देह के तल पर अद्वैतवाद। ख्याल रखना, यह भी अद्वैतवाद है। यह कहता है : सिर्फ शरीर है, और कुछ भी नहीं। दूसरा है ही नहीं। फिर एक दूसरा आत्मा के तल पर अद्वैतवाद है। शंकर है, बुद्ध हैं। वे कहते हैं : सिर्फ आत्मा है, देह तो भ्रांति है। सिर्फ आत्मा की सुनो, आत्मा की गुनो। उसी में रमो।

ये दो उपाय हैं शांत होने के। या तो शरीर के साथ एकरस हो जाओ, तो शांति मिलती है; लेकिन मूर्च्छित शांति होगी, जैसे गहरी नींद में होती है, सपना भी नहीं बचता। गहरी नींद में पड़ गये, तो मौत जैसी हो जाती है; तुम तो बचते ही कहां हो! सुबह उठकर कहते हो कि अच्छी नींद आई, लेकिन नींद में तो पता भी नहीं चलता। मूर्च्छा है।

चार्वाक जिस सुख की बात करता है, वह मूर्च्छित सुख है। और फिर एक और सुख है--समाधि का--जब तुम परिपूर्ण जाग्रत हो गये; जब तुम्हारा अंतर्तम आलोक से भर गया; जब विवेक जीत गया; वासना विजित हो गयी, विवेक विजेता हो गया; जब तुम्हारे भीतर चैतन्य का प्रादुर्भाव हुआ; तुम चैतन्य ही चैतन्य हो गये। तब द्वन्द्व खो जाता है।

तो या तो द्वन्द्व खोता है नास्तिक का, या आस्तिक का। और तुम्हारी कठिनाई यह है कि न तो तुम आस्तिक हो, न तो तुम नास्तिक हो; तुम बीच में खड़े हो। घर के न घाट के--धोबी के गधे हो! तुम्हारी तकलीफ यही है। तुम न तो असली नास्तिक हो, न तो तुममें इतनी हिम्मत है कि कह सको कि परमात्मा नहीं है। और जब तुम में इतनी ही हिम्मत नहीं कि तुम कह सको परमात्मा नहीं है, तो उतनी हिम्मत तो तुम में कहां से होगी कि तुम कह सको कि परमात्मा है। वह तो बहुत बड़ी हिम्मत की बात है। तुम तो अभी नास्तिक होने में भी हिम्मत नहीं जुटा पाते हो, आस्तिक कैसे हो सकोगे! अभी तो निम्नतम अद्वैत भी संभव नहीं है, तो श्रेष्ठतम अद्वैत कैसे संभव होगा! अभी मूलाधार पर भी तुम अद्वैत नहीं साध पाते, तो सहस्रार का अद्वैत तो तुम कैसे साध पाओगे! इसलिए द्वन्द्व है। इसलिए तनाव है। इसलिए बड़ी रस्साकसी है। इसलिए आदमी महाभारत है। एक तरफ नीचे का गुरुत्वाकर्षण है और एक तरफ ऊपर की पुकार है।

अब इस द्वन्द्व में क्या करोगे? नीचे गिर भी जाओ, कई बार गिर ही जाते हो... वही तो होता है कामवासना में, शराब में, संगीत में, सिनेमा में--थोड़ी देर को भूल गये सब चिंता, विवेक खो गया, थोड़ी देर को मूर्च्छित हो लिए। अच्छा लगता है। लेकिन बड़ी कीमत पर अच्छा लग रहा है। फिर लौटना पड़ेगा। चेतना फिर आएगी। क्योंकि मूर्च्छित तुम ज्यादा देर नहीं रह सकते। एक बार आदमी चैतन्य

हो गया तो ज्यादा देर मूर्च्छित नहीं रह सकता, क्योंकि पीछे लौटने का उपाय है ही नहीं। यहां आगे ही जाने का उपाय है। गति सिर्फ आगे की तरफ है, पीछे की तरफ कोई गति नहीं है। तुमने जो जान लिया, जान लिया; अब उसे अनजाना नहीं किया जा सकता। थोड़ी-बहुत देर को भुला सकते हो शराब पीकर मगर शराब कितनी देर टिकेगी? नशा उतरेगा, तुम लौटोगे। और तब तुम, पाओगे, तुम और भी दुखी हो गये--पहले से भी ज्यादा दुखी हो गये। वह थोड़ी देर का भुलाना महंगा पड़ा। अब जिंदगी और भी बेचैनी से भर गयी, और तनाव से भर गयी। और पीओ शराब-शराब। तुम और टूटते चले जाओगे।

ख्याल रखना, जो बच्चा जवान हो गया, अब बच्चा नहीं हो सकता। अब वह लाख उपाय करे, फिर से अपने खिलौनों को छाती से लगाकर बैठ जाए, तो भी बच्चा नहीं हो सकता। फिर अपनी मां का आंचल पकड़कर घूमने लगे, तो भी बच्चा नहीं हो सकता। कितना ही अपने को समझाए-बुझाए, कितने ही बीते दिन की याददास्त करे, फिर भी बच्चा नहीं हो सकता।

जैसे कोई जवान बच्चा नहीं हो सकता, ऐसे मनुष्य अब वापिस प्रकृति नहीं हो सकता। वह लौटने का उपाय नहीं रहा है। अब बच्चे को तो जवानी के आगे जाना होगा--और प्रौढ़ होना होगा, और जागरूक।

मनुष्य को भी परमात्मा होने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। अगर तुम समझ लो बात, तो जल्दी घट जाएगी क्रांति; अगर न समझो तो देर लगाते रहोगे, स्थगित करते रहोगे। और बार-बार गिरते रहोगे, उठते रहोगे; इसमें समय गंवाओगे, जीवन गंवाओगे, ऊर्जा गंवाओगे।

द्वन्द्व है जरूर, और इस द्वन्द्व के बाहर उठना है जरूर। उठने के दो उपाय हैं--या तो बिलकुल मूर्च्छित हो जाओ, या बिलकुल जागृत हो जाओ। मूर्च्छित होने का उपाय संसार है--तृष्णा में खो जाओ, वासना में खो जाओ। बिलकुल खो जाओ! और या जागृत हो जाओ। जागृत होने का उपाय संतोष है, तृप्ति है--बोध, ध्यान, प्रार्थना।

इन दो में से कुछ चुनना पड़ेगा। चुनना ही पड़ेगा! चुनना ही पड़ता है! जो नहीं चुनता, वह नाहक धक्के खाता रहता है। वह लकड़ी के टुकड़े की तरह हो जाता है, जो नदी में इस किनारे से उस किनारे धक्का खाता फिरता है; उसकी कोई नियति नहीं रह जाती। उसके जीवन में कोई दिशा नहीं रह जाती। उसके जीवन का अर्थ भी खो जाता है, महिमा भी खो जाती है।

मनुष्य में बड़ी महिमा छिपी है। मनुष्य में परम महिमा छिपी है, क्योंकि परमात्मा मनुष्य में छिपा है।

गरज नहीं मुझे इससे कि सरवरी क्या है
मैं जानता हूं मगर शाने बंदगी क्या है

बुलंदियों को जो अर्शे बरीं की छू न सके
वो मौजे खाके फकीरी व आजिजी क्या है
खुदा है जिसके लिए बेकरार वो सजदा
जबीं में जिसकी न तड़पे वो आदमी क्या है
विसालो हिज्र की जो कैद से न हो आजाद
वो दोस्ती वो मुहब्बत वो आशकी क्या है
खयाले यार में खुद से भी वो रहे आगाह
वो जां सपुर्दगी क्या है वो बेदिली क्या है
जो इरतकाये खुदी से खुदा तक आ न गया
फरिश्ता रह गया बन कर वो आदमी क्या है
न बेखुदी को समोये जो अपने दामन में
जो राजे मर्ग न पा जाए वो खुदी क्या है
रहे जो दायराये हुस्नो इश्क में महदूद
जो अपना आप न पाये वो आग ही क्या है,
जो शोरे जीस्त को अपने में जज्ब कर न सके
न जिसमें उठें तराने वो खामशी क्या है
नफस नफस में न जिसके बहारे ताजा हो
जो रंगो बू न बखेरे वो जिंदगी क्या है

जिंदगी बड़े रंग अपने में लिए है, बड़ी सुगंध अपने में लिए है। जिंदगी उतनी ही नहीं है, जितनी तुमने उसे समझा है। जिंदगी बहुत बड़ी है। जिंदगी में पूरा परमात्मा छिपा है।

नफस नफस में न जिसके बहारे ताजा हो

--जिसकी श्वास-श्वास में जीवन की ताजी बहार न हो, वसंत न हो...

जो रंगो बू न बखेरे वो जिंदगी क्या है

--और जिसकी जिंदगी में फूल न खिलें, सतरंगे इंद्रधनुष न उठें, जिसकी जिंदगी मोर बनकर न नाचे, जिसकी जिंदगी में आह्लाद न हो--वह नाममात्र को ही जीवित है। जीया न जीया बराबर है।

जिंदगी में बड़ी महिमा छिपी है। और महिमा जब तक प्रगट न हो जाए, तब तक द्वन्द्व रहेगा, तब तक बेचैनी रहेगी। यह बेचैनी बड़ी सृजनात्मक है। जैसे बीज बेचैन होता है--टूट पड़ने को, फूट पड़ने को। बीज बेचैन होता है--अंकुरित होने को। अंकुरित हो, वृक्ष बने, बड़ी शाखाएं आकाश में फैलें, चांद-तारों से बातचीत हो, सूरज और हवाओं के साथ नाच हो, नृत्य हो, पक्षी बसेरा बनाएं, फूल खिलें--तो बीज तृप्त हो! बीज तो बेचैन रहेगा ही। बेचैनी बीज के लिए स्वाभाविक है।

ऐसा ही द्वन्द्व है आदमी के भीतर। यह तुम्हारे भीतर की बेचैनी है, जो तुमसे

कहती है : बहुत कुछ तुम में छिपा पड़ा है । उसे प्रगट होने दो । गीत पड़ा है तुम्हारे प्राणों में, उसे गुनगुनाओ ! नाच पड़ा है तुम्हारे पैरों में, उसे प्रगट होने दो ! तुम्हारे भीतर बड़ी सुगंध पड़ी है, उसे बिखेरो !

कस्तूरी कुंडल बसै ! तुम्हारे कुंडल में कस्तूरी बसी है । और तुम कहां भागे-भागे फिर रहे हो ? तुम कहां तलाश रहे हो ? तुम किनके सामने हाथ फैलाकर भिखारी बन गये हो ? तुम सम्राट होने को हो ।

चौथा प्रश्न : ऊंचाई से, सहस्रार की ऊंचाई से, प्रभु को देखनेवाली मीरा भी जब कहती है कि 'मेरो मन बड़ो हरामी, ज्यों मदमातो हाथी', तो हम मूलाधार की नीचाई से देखने वाले लोगों के मन के लिए क्या कहा जाएगा ?

*

नहीं; तुम अपने मन को हरामी न कह सकोगे, क्योंकि तुमने मन के ऊपर कुछ जाना नहीं है । तुलना ही नहीं कर सकते तुम । मीरा ही कह सकती है कि मेरो मन बड़ो हरामी ! क्योंकि मीरा को तुलना है । मीरा ने वे क्षण भी जाने हैं, जहां मन खो जाता है, जहां बे-मन दशा आ जाती है । मीरा ने वह रोशनी भी अनुभव की, वह उत्सव भी अनुभव किया । इसलिए तुलना है । इसलिए जब मन खिसकाता है नीचे, तो मीरा कह सकती है : मेरो मन बड़ो हरामी ! कि इतने ऊंचे स्वर्ग पर उठ जाती हूं, फिर भी यह नीचे खींच लेता है !

लेकिन तुम तो स्वर्ग पर उठे नहीं । मन ने तुम्हें कभी नीचे खींचा ही नहीं । तुम तो नीचे हो ही । ऊपर जाओ तब नीचे का पता चलता है । ऊपर जाओ, तब पता चलता है कि कहां जी रहे थे, किस नरक में जी रहे थे ! तुम्हें पता नहीं चलेगा । तुम तो सोचते हो : 'अपना मन—बड़ा गजब का है ! अपना मन—बड़ा बुद्धिमान ! अपना मन—बड़ा होशियार, बड़ा कुशल, बड़ा कारीगर !'

तुम तो अपने मन पर बड़ा भरोसा रखते हो । क्योंकि तुम यह जानते ही नहीं कि मन तुम्हारी जंजीर है । तुमने तो मन को आभूषण समझा है । समझ समझ की बात है । जंजीर को कोई आभूषण भी समझ सकता है । और समझने वाले ऐसे भी हैं जो आभूषण को जंजीर समझते हैं । समझ समझ की बात है ।

मैंने सुना, एक नवजवान विक्रेता ने कंपनी के सबसे पुराने और सफल विक्रेता के पास आकर कहा : 'मैं इस काम के लायक नहीं हूं । महीना भर काम करने के बाद भी कुछ बिक्री नहीं कर पाया हूं । और जहां भी गया हूं, वहां से बेइज्जती करा कर लौटा हूं ।'

'अजीब बात कर रहे हो'—पुराना विक्रेता बोला । 'मैं बीस साल से सेल्समेन का काम कर रहा हूं । कई बार ऐसा हुआ है कि लोग मेरी बातें सुनने के लिए तैयार नहीं हुए । कई बार उन्होंने बीच में ही टोककर मुझे चले जाने को भी कहा है ।

ऐसा भी हुआ है कभी कि जब मैंने बात करने की जिद्द की तो उन्होंने मुझे धक्का देकर बाहर निकाल दिया और मेरी चीजें भी उठाकर फेंक दीं । गाली-गलौच भी हुई है । पर ऐसा कभी नहीं हुआ कि किसी ने मेरी कभी बेइज्जती की हो ।'

अब और क्या बेइज्जती होगी ! अपनी-अपनी दृष्टि । अपने-अपने देखने का ढंग ।

मैंने सुना है, जापान की एक कंपनी ने दो आदमियों को इस सदी के प्रारंभ में अफ्रीका भेजा । वे जूता बनाने वाली कंपनियां थीं । अफ्रीका में बाजार खोजने भेजा । एक आदमी ने तो तीन दिन बाद तार दिया कि यहां बेकार है मेहनत करना, यहां कोई जूता पहनता ही नहीं । और दूसरा आदमी तीन महीने तक वहां रहा और तीन महीने के बाद उसने पत्र लिखा कि यहां दुनिया का सब से बड़ा बाजार है, क्योंकि यहां किसी आदमी के पास जूते हैं ही नहीं ।

अब ये दोनों बातें ठीक हो सकती हैं । जब कोई आदमी जूता पहनता ही नहीं, तो पहले आदमी ने सोचा : इनके साथ सिर मारना, इनको समझाना कि जूता पहनो...। यहां कभी किसी ने जूता पहना ही नहीं । बात खत्म । यहां कहां का बाजार है !

दूसरे ने सोचा कि ये हैं लोग, यहां एक के पास भी जूता नहीं है; पूरा का पूरा बाजार है । हर आदमी अपना ग्राहक बन सकता है ।

देखने की बात है : कैसे तुम देखते हो ?

मीरा ने ऊंचे शिखर देखे, तो फिसलन का पता चलता है । जो गौरीशंकर पर चढ़ा हो, उसे फिर नीचे कोई भी शिखर न जमेगा । उसको तुम पूना की पहाड़ी पर ले जाओ, खड़ा कर दो और कहो कि यह बड़ी ऊंची पहाड़ी है, तो वह ऐसे ही खड़ा रह जाएगा कि तुम क्या बात कर रहे हो ! तुम्हारे लिए ऊंची पहाड़ी हो सकती है । शायद तुम पहली दफे यहां चढ़े हो, तुम शायद बड़े आनंदित अनुभव कर रहे हो कि देखो कितनी ऊंचाई पर चढ़ आए !

मीरा जहां से खड़ी है वहां से इंच भर भी नीचे उतरने में पीड़ा है । और मन खींच लेता है । पुराना बल है मन का । पुराने संस्कार हैं मन के । पुरानी आदतें हैं मन की । इस परम अवस्था से भी नीचे उतार लेता है ।

इसलिए मीरा कहती है : मेरो मन बड़ो हरामी, ज्यों मदमातो हाथी ।

'हम मूलाधार की नीचाई से देखने वाले लोगों को मन के लिए क्या कहा जाएगा ? '

कुछ भी नहीं कहा जा सकता । आपकी बेइज्जती हो ही नहीं सकती । जिस गड्ढे में आप विराजमान हो, उससे नीचे कोई गड्ढा नहीं है । तो मन घसीटेगा भी कहां ? ले भी जाए तो कहां ले जाए ?

सिर्फ सम्राट ही दरिद्र हो सकते हैं; दरिद्र नहीं । सम्राट दरिद्र हो सकता है । जिसने महल जाने हों उसे कभी अगर राह पर चलना पड़े, तो उसे पता चलता है।

जो राह पर ही पैदा हुए थे, राह पर ही चलते रहे, वहीं उनका घर है, वहीं उनका निवास है--उन्हें तो पता ही नहीं चल सकता कि राह पर कुछ अड़चन है। और सम्राट अगर कहे कि बड़ी तकलीफ है, तो वे हंसेंगे कि क्या बातें कर रहे हो! अब इतनी न हांको। यहीं तो हम रहते रहे सदा से, और यहां मजा ही मजा है और तुम्हें यहां तकलीफ हो रही है।

एक आदमी राह पर गिर पड़ा। वह राह थी, सुगंधियों की दुकानें थीं उसके आसपास। एक आदमी राह पर गिर गया, भीड़ लग गयी। एक सुगंधी-विक्रेता, एक गंधी, अपनी तिजोड़ी से सब से कीमती सुगंध ले कर आया। क्योंकि कहा जाता है कि गहरी सुगंध हो तो आदमी बेहोशी से होश में आ जाता है। उसने फोहा भिगो कर उस आदमी के नाक के पास रखा। वह तो हाथ-पैर तड़फाने लगा आदमी। होश में आने की तो बात दूर रही, वह मछली की तरह तड़फने लगा। भीड़ में एक और आदमी खड़ा था। उसने कहा: भाई, तुम इसको मार डालोगे। मैं इसको जानता हूं। हम दोस्त हैं। आप कृपा कर के यह अपना इत्र अलग करो।

उस गंधी ने कहा: बात क्या है? यह इत्र तो बेहोश से बेहोश आदमी को होश में ले आता है। इसकी चोट ऐसी है।

उसने कहा: चोट होगी...! तुम इत्र जानते होओगे, मैं इस आदमी को जानता हूं। यह मछलीमार है। यह मछली बेचकर आ रहा है बाजार से।

उस आदमी की टोकरी भी पास में पड़ी थी, जिसमें मछलियां लाया था बेचने। टोकरी में गंदा कपड़ा भी था, जिसमें मछलियां बांधी थीं। उनसे भयंकर बदबू उठ रही थी। वह दूसरा आदमी भागा गया नल के पास। थोड़ा-सा पानी उस गंदे कपड़े पर छिड़का और लाकर वह गंदा कपड़ा उस आदमी की नाक पर रख दिया। उसने गहरी सांस ली--परम सांस शांति की! आंखें खोल दीं और वह कहने लगा: भाई, किसने मुझे बचा लिया? कोई दुष्ट मुझे मारे डाल रहा था।

मछलियों की गंध को ही जिसने जाना हो, उसे वही सुगंध है।

तो मीरा कह सकती है कि मेरो मन बड़ो हरामी, तुम न कह पाओगे। थोड़े ऊंचे चढ़ो सीढ़ियों पर, तब यह सौभाग्य तुम्हें मिलेगा कि तुम इस वचन को कह सको; उसके पहले नहीं।

अंतिम प्रश्न: मनुष्य की पात्रता कितनी है?

★

मनुष्य की पात्रता परम है—उतनी ही जितनी परमात्मा की पात्रता। मनुष्य छिपा हुआ परमात्मा है। मनुष्य बीज है परमात्मा का। परमात्मा खिला हुआ परमात्मा है; मनुष्य अनखिला परमात्मा है। कहो बीज, कहो कली।

पात्रता बड़ी है आदमी की। इससे कम अपनी पात्रता सोचना ही मत। इससे

कम सोचा तो तुमने परमात्मा का अपमान किया। यह तुम नहीं हो--तुम्हारे भीतर परमात्मा विराजमान है। अपने को हटाओ! अपने को बीच में मत लाओ। तुम ज्यादा से ज्यादा देह हो, घर हो—मंदिर उसका है; विराजा वही है। तुम सिंहासन हो; राजा वही है।

तुम्हारी पात्रता परम है।

और जब म यह कहता हूं तो तुम यह मत सोच लेना कि तुम्हारे अहंकार को बढ़ावा दे रहा हूं। अहंकार को बढ़ावा तब मिलता है, जब तुम सोचो: मेरी पात्रता दूसरे से ज्यादा है। तब अहंकार को बढ़ावा मिलता है। लेकिन परमात्मा सभी की पात्रता है। इसमें बड़ा-छोटा कोई नहीं। इसमें जितना तुम्हारा परमात्मा है, उतना ही तुम्हारी पत्नी का भी, उतना ही तुम्हारे बेटे का भी, उतना ही पड़ोसी का भी। परमात्मा सब की पात्रता है।

इसलिए परमात्म-भाव में कोई अहंकार का उपाय नहीं। अहंकार तुलना से पैदा होता है। परमात्मा सब का स्वभाव है। और जिस दिन तुम्हें समझ आनी शुरू होगी, उस दिन तुम पाओगे वृक्षों का भी स्वभाव वही है। वृक्षों में वही है हरा। जो तुम में थोड़ा है जगा-जगा, वृक्षों में वही है सोया-सोया। चट्टानों में वही है। खूब गहरी निद्रा में सोया है, सुषुप्ति में पड़ा है। चांद-तारों में भी वही है। क्योंकि अस्तित्व और परमात्मा पर्यायवाची हैं। अस्तित्व और परमात्मा दो अलग-अलग बातें नहीं हैं। अस्तित्व मात्र परमात्मामय है।

इसे स्मरण रखो। अपनी इस पात्रता को स्मरण रखो। यह स्मरण भी तुम्हें जगाने में सहयोगी होगा। क्योंकि आदमी जो अपने को मान लेता है, वही हो जाता है। विचार की बड़ी गहन परिणति होती है। तुम जो अपने को मान लेते हो वही हो जाते हो। तुमने अगर अपने को क्षुद्र मान लिया तो क्षुद्र रह जाओगे। तुमने अगर विराट से दोस्ती बनाई तो विराट हो जाओगे। तुम उतने ही हो सकोगे, जितना तुम स्वीकार करोगे, उससे ज्यादा नहीं हो सकोगे।

इसलिए नास्तिक अभागा है, क्योंकि वह अपने को बड़े क्षुद्र के साथ एक कर लेता है। खोल के साथ एक कर लेता है; भीतर का असली तत्त्व चूक जाता है। नास्तिक अभागा है। आस्तिक हो जाना सौभाग्यशाली है। हालांकि तुम यह मत सोच लेना कि तुम मंदिर जाते हो और मानते हो कि ईश्वर है, इसलिए तुम आस्तिक हो। आस्तिक होना दुर्लभ भी है। जितना सौभाग्य की बात है, उतना ही दुर्लभ भी है। कभी करोड़ आदमियों में एकाध आदमी आस्तिक होता है। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा जाने वाली भीड़ को मैं आस्तिक नहीं कह रहा हूं। वे तो नास्तिक से भी गये-बीते हैं। नास्तिक कम से कम ईमानदार है। कहता है: मुझे पता नहीं, तो कैसे स्वीकार करूं! और ये तो बड़े बेईमान हैं। इन्हें पता भी नहीं है। इन्होंने कभी स्वीकार भी नहीं किया है। स्वीकार करने के लिए जो श्रम उठाना चाहिए, वह भी

नहीं उठाया है। इनकी स्वीकृति उधार है। इनके बाप मानते थे, बाप के बाप मानते थे--इसलिए ये भी मानते हैं। इनको मुफ्त मिला है परमात्मा।

मुफ्त नहीं मिलता परमात्मा। जीवन के मूल्य से कीमत चुकानी पड़ती है। जो चुकाता है उसको मिलता है। तुम्हारे पिता कहते थे कि परमात्मा है, इसलिए तुमने मान लिया। न उनको पता है। और उनके पिता उनसे कह रहे थे। और उनके पिता उनसे कह गये थे। ऐसा लोग कहते चले गये हैं और लोग मानते चले गये हैं। ऐसी परंपरा से जो स्वीकृति आती है उसका नाम आस्तिकता नहीं है। उस तरह की आस्तिकता झूठी है। और तुम्हें हिंदू बना देती है, मुसलमान बना देती है, ईसाई बना देती है, जैन बना देती है; लेकिन धार्मिक नहीं बना पाती। और धार्मिक को क्या लेना-देना है हिंदू से, ईसाई से, मुसलमान से?

धार्मिक हिंदू होगा? कैसे होगा? अगर धार्मिक भी हिंदू होगा, तो फिर धार्मिक धार्मिक नहीं। धर्म पर कोई सीमा नहीं, कोई विशेषण नहीं। धर्म विराट आकाश है, जिस पर कोई बंधन नहीं। उस विराट आकाश को न तो वेद घेरते हैं, न उपनिषद घेरते हैं, न कुरान, न बाइबिल। उस विराट आकाश पर कोई दीवाल नहीं है, कोई सीमा नहीं है।

धार्मिक व्यक्ति तो सिर्फ धार्मिक होता है। लेकिन वैसा धार्मिक व्यक्ति करोड़ में एक होता है। उसी को मैं आस्तिक कहता हूं।

आस्तिक का अर्थ होता है: जिसने अपने अनुभव से कहा कि हां, परमात्मा है; जिसने अपने अनुभव से कहा कि हां, परमात्मा मुझ में है। क्योंकि और कहां अनुभव होगा! अगर मुझ में नहीं है तो अनुभव हो नहीं सकता। जिसने अपने स्वाद से कहा कि हां, मैं परमात्मा हूं!

यद्यपि ध्यान रखना, जब कोई कहता है मैं परमात्मा हूं, तो उसका यह अर्थ नहीं होता कि वह यह कहता है कि तुम परमात्मा नहीं हो। जब कोई कहता है मैंपरमात्मा हूं--अनुभव से--तो उसकी घोषणा में तुम भी परमात्मा हो गये। उसकी घोषणा सबके लिए की गयी घोषणा है। उस एक मनुष्य की घोषणा ने सभी मनुष्यों के भीतर जो सोया है, उसमें तिलमिलाहट उठा दी, उसको जगा दिया।

एक मनुष्य परमात्मा हो सकता है, इसका अर्थ है कि सभी मनुष्य परमात्मा सकते हैं। राम ही अवतार नहीं है, कृष्ण ही अवतार नहीं हैं--तुम भी अवतार हो। तुम्हें अभी इसकी पहचान नहीं है।

अवतार का अर्थ होता है: परमात्मा से उतरा हुआ, अवतरित। और कहां से उतरोगे? उसके अतिरिक्त और कोई मूलस्रोत नहीं है। सिर्फ पहचान की कमी है; प्रत्यभिज्ञा नहीं हो रही है।

तुम्हें पता नहीं कि तुम कौन हो। राह के भिखारी बने हो--हो सम्राट। साम्राज्य तुम्हारा है। सारी संपदा तुम्हारी है। लेकिन बने भिखारी हो। भिक्षापात्र के साथ

जुड़ गये हो। यह भिक्षापात्र का ही नाम तृष्णा है, वासना है। यह भिक्षापात्र कभी भरेगा नहीं। यह भरता ही नहीं।

तुमने पूछी यह बात: 'मनुष्य की पात्रता कितनी है?'

--उतनी ही जितना परमात्मा है, क्योंकि मनुष्य में परमात्मा समा सकता है। उनकी सीमा या असीमा बराबर है, एक जैसी है।

जनूने आगही हूं शोरसे हको सदाकत हूं
मैं इरफाने मुहब्बत हूं, मैं तूफाने मुसर्रत हूं
सदा जो कामयाबो कामरां हो मैं वो लज्जत हूं
न हो जो आशनाये रन्जो कुल्फत मैं वो राहत हूं
वकूरे जलवा मुझसे इश्क की सरमस्तियां मुझसे
निशाने वस्ले पैहम हूं इलाजे दर्दे फुर्कत हूं
गुलिस्ताने जहां है मेरे दम से खुल्दे नज्जारा
गुलों की ताजगी हूं मैं हजूमे रंगो नहकत हूं
सितारों की चमक हूं रौशनी हूं चांद-सूरज की
फिजां की वसहतें बेइंतहा गरदूं की रिफअत हूं
मेरे नक्शे कदम से कहकशां का नूर है पैदा
समाये जिसमें हैं कौनेन वो दामाने वुसअत हूं
फना कर दे अदावत को मिटा डाले जो नफरत को
वो बर्के इश्क हूं वो शोलाए सोजे मुहब्बत हूं
नहीं कुछ इम्तियाजे कुफ्रो ईमां ताअतो इसियां
खुला सबके लिए हो जिसका दामन वो सखावत हूं
जहां की पस्तियों में मौजे रिफअत मुझसे उठती है
गुनाह की वादियों में आबशारे अक्ऊो रहमत हूं।

आदमी क्या नहीं है! इस अंधेरे जगत में रोशनी जिससे उठती है--आदमी वही है। आदमी क्या नहीं है? इस रेगिस्तान में जो फूल खिलते हैं, जहां से खिलते हैं--आदमी वही है। यहां जो भी गीत उठते हैं, यहां जो भी आह्लाद जगता है, यहां जो भी उत्सव मनाया जाता है--कहां से उठता है? आदमी ही उसके मूलस्रोत में है। यहां मंदिर हैं और मस्जिद हैं और गुरुद्वारे हैं और पूजा है, प्रार्थना है, आयोजन है--वे सब भी आदमी के ही कारण हैं। आदमी की पात्रता बड़ी है।

एक यहूदी फकीर ने कहा है...हिलेल उसका नाम था...कि 'हे प्रभु, मुझे तेरी जरूरत है; लेकिन तुझे भी मेरी जरूरत है। तेरे बिना मैं न हो सकूंगा। कैसे हो सकूंगा! लेकिन मेरे बिना तू कैसे हो सकेगा? न होगा आदमी, न उठेगी कोई प्रार्थना, न बनेगा कोई पूजा-गृह। न होगा आदमी, न परमात्मा की कोई मूर्ति ढाली जाएगी। न वेद की ऋचाएं जन्मेंगी, न कुरान की आयतें। न होगा आदमी,

न कोई इबादत होगी, न कोई नमाज होगी, न कोई उपासना। न होगा आदमी, न कोई साधना होगी, न कोई संगीत होगा।

आदमी की पात्रता अनंत है--उतनी ही जितनी परमात्मा की।

तुम सोये हुए परमात्मा हो। जागो!

आज इतना ही।
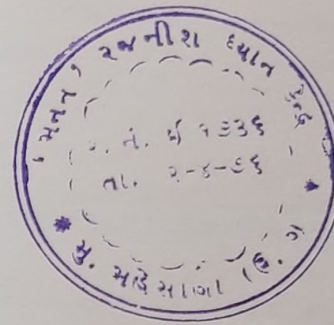
मीरा से पुकारना सीखो

तीसरा प्रवचन

दिनांक : १३ नवम्बर, १९७७; श्री रजनीश आश्रम, पूना

सखी, मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पंथ निहारत सिगरी, रैन विहानी हो।
सब सखियन मिलि सीख दई, मन एक न मानी हो।
बिन देख्या कल नांहि पड़त, जिय ऐसी ठानी हो।
अंगि-अंगि व्याकुल भई, मुख पिय-पिय बानी हो।
अन्तर बेदन बिरह की, वह पीड़ न जानी हो।
ज्यूं चातक घन कूं रटै, मछरी जिमि पानी हो।
मीरां व्याकुल विरहिणी, सुध-बुध बिसरानी हो।

डारि गयो मनमोहन फांसी।
अम्बुआ की डाली कोयल इक बोलै, मेरो मरण अरू जग केरी हांसी।
विरह की मारी मैं बन-बन डोलूं, प्राण तजूं करवत ल्यू कासी।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी।

प्यारे दरसन दीजो आय, तुम बिन रह्यो न जाय।
जल बिन कमल चंद बिन रजनी, ऐसे तुम देख्या बिन सजनी।
व्याकुल व्याकुल फिरूं रैण दिन, बिरह कलेजो खाय।
दिवस न भूख नींद नहिं रैणा, मुखसूं कथत न आवै वैणा।
कहा कहूं कछु कहत न आवै, मिलकर तपत बुझाय।
क्यूं तरसाओ अन्तरजामी, आय मिलो किरपा कर स्वामी।
मीरां दासी जनम-जनम की, पड़ी तुम्हारे पांय।

तू ऐसे सरखुशो सरमस्त मयकदे में आ
कि मुस्करा के तुझे हर नजर सलाम करे।
फिर ऐसी पी कि हो सदनाज तुझ पे साकी वो
वो फख्र मय को——तेरा एतराम जाम करे।
खुशी से झूम उठे मयकदा जो पीरे मुगां
नजर मिला के तेरा साथ फिर कलाम करे।
हयात रक्स करे नगमें रूह से उठें
जो रक्शे बादाकशी मय फरोश आम करे।
पिला के डाले जो रिन्दो पे एक निगाहे गलत
तमाम इशरतो ऐशे जहां हराम करे।

एक ढंग है मधुशाला में आने का——और एक ढंग है परम मधुशाला में आने का भी। मीरा से पाठ सीखना प्रभु की मधुशाला में आने का। मीरा से राह सीखना उस परम रस को पीने की।

उस रस को पीना सबसे बड़ी कला है। और कला हृदय की है, मस्तिष्क की नहीं। इसलिए तर्क से उसे न समझ पाओगे। उसे समझने का रास्ता प्रेम है, पीड़ा है। विरह की पीड़ा जितना जला दे कलेजे को, विरह जितना भस्मीभूत कर दे तुम्हें, उसी मात्रा में, ठीक उसी मात्रा में, प्रभु की वर्षा होगी।

मीरा के इन पदों में वे सारी बातें बिखरी पड़ी हैं——सूत्रबद्ध नहीं हैं, क्योंकि भक्त सूत्र-बद्ध नहीं हो सकता। लेकिन जिनको खोज है, जिनको प्यास है, वे टटोल लेंगे सीढ़ियों को। वे रास्ता बना लेंगे। रास्ता है।

ज्ञानी का रास्ता तो सीधा तर्कबद्ध, गणित की लकीर की तरह होता है। भक्त का रास्ता घुमावदार होता है, पगडंडी की तरह होता है। भक्त के रास्ते पर सूत्र-बद्धता नहीं होती——रसबद्धता होती है। इसलिए जिन्होंने ज्ञान के शास्त्र पढ़े हैं, अक्सर भक्तों को पढ़ते समय चूक जाते हैं। क्योंकि वहां वैसा गणित नहीं है, वहां वैसी सुस्पष्टता नहीं है।

भक्ति तो रहस्य है; धुंधलका छाया है वहां। प्रेम की बदलियों में जैसे कोई भटक गया हो !

ज्ञान तो भरी दुपहरी है। और भक्त ! भक्त तो संध्याकाल है। इसलिए तो हम प्रार्थना को संध्या कहते हैं। संध्या का अर्थ होता है : न दिन न रात; दोनों जहां मिलते हैं; जहां मिलन होता है——दिन का, रात का। जहां अंधेरा और रोशनी एक-दूसरे के साथ खेल खेलते हैं, छिया-छी खेलते हैं। जहां हृदय और मस्तिष्क की सीमा है। जहां शरीर और आत्मा का मिलन होता है। जहां परमात्मा और अस्तित्व साथ-साथ नृत्य करते हैं।

भक्त की भाषा रहस्य की भाषा है। उसकी भाषा बिलकुल अलग है। इसलिए जो लोग ज्ञान के शास्त्रों से परिचित हैं, जिन्होंने पतंजली का योगसूत्र पढ़ा, उन्हें मीरा के साथ अड़चन होगी। वे सोचेंगे : ये सिर्फ भक्ति के गीत हैं। तो तुम चूक गये। ये गीत ही नहीं हैं——इन गीतों में पूरा भक्ति का शास्त्र छिपा है। लेकिन भक्ति का शास्त्र अपने ढंग से प्रगट होता है। जैसे शराबी चलता है——लड़खड़ाता, ऐसा ही भक्त भी चलता है——लड़खड़ाता। उसके लड़खड़ानेपन को देखकर अगर तुम दूर हट गये, तो परम रहस्य से वंचित हो जाओगे। तुम्हें टटोलकर खोजना पड़ेगा।

तो मीरा के इन वचनों में टटोलना। सब है, लेकिन साफ-सुथरा नहीं। रेखाओं में बंटा हुआ नहीं। वर्गों में विभाजित नहीं। सब मिश्रित है। सब एक-दूसरे में घुला-मिला पड़ा है। इसलिए थोड़ी अड़चन भी होती है। और कभी किसी ने भी मीरा के वचनों को इस तरह समझने की कोशिश नहीं की है, जैसा मैं चाहता हूं कि तुम समझो। लोग समझते हैं : गीत हैं; गाने के लिए हैं, जीने के लिए नहीं। लोग सोचते हैं : ठीक है, गुनगुना लो, कभी मौज में, मस्ती में; लेकिन इससे जीवन-शैली थोड़े ही निर्मित होगी।

मैं तुमसे कहना चाहता हूं : जीवन-शैली इनमें छिपी पड़ी है। हां, थोड़ा श्रम करना होगा। थोड़े पर्दे उठाने पड़ेंगे। घूंघट में है राज। घूंघट देखकर ही मत लौट जाना। घूंघट के भीतर अपूर्व रहस्य छिपा हुआ है। लेकिन जो घूंघट उठायेगा, उसको ही रहस्य मिलेगा। तो पहली तो बात ख्याल रखो ...

तू ऐसे सरखुशो सरमस्त मयकदे में आ !

भक्ति को समझना हो तो मस्ती शर्त है।

तू ऐसे सरखुशो सरमस्त मयकदे में आ !

डूबे हुए आओ। रस-विभोर आओ। नाचते हुए आओ। गीत तुम्हें घेरे रहे, तो ही तुम मीरा से संबंध जोड़ पाओगे। सोचते हुए मत आओ। सोचे कि मीरा से दूर छिटक जाओगे। मस्ती में संबंध बनेगा। डगमगाते हुए आओ।

तू ऐसे सरखुशो सरमस्त मयकदे में आ

यह मयकदा है। यह मीरा का जो मंदिर है, मधुशाला है। यह पंडित का मंदिर नहीं है——यह मस्तों का मंदिर है।

कि मुस्करा के तुझे हर नजर सलाम करे

नाचते हुए आओ। अहोभाव से भरे हुए आओ। प्रफुल्लता से आओ। प्रसाद से आओ। तो मीरा से संबंध जुड़ने में जरा भी देर न लगेगी। इधर तुम्हारा हृदय नाचता हुआ हो, तो उधर तो मीरा नाच ही रही है। और तुम भी नाचो, तो ही मीरा से मिल सकोगे। नाचते क्षण में ही मिल सकोगे। तुम बुद्धिमान बने खड़े रहे, तो तुम्हारे बीच और मीरा के बीच जमीन-आसमान का अंतर होगा। उस अंतर को पाटना संभव नहीं है।

हयात रक्स करे नगमें रूह से उठें

तुम्हारे चारों तरफ अस्तित्व नाचता हुआ हो और तुम्हारे प्राणों से गीत उठते हों। ऐसी कला हो तो मीरा को समझ सकोगे।

बातें सरल हैं मीरा की। कठिन तो होंगी ही कैसे! भक्त कठिन बात बोलता ही नहीं। भक्त तो सरलतम बोलता है। लेकिन तुम नाचो, पिघलो, सरल हो जाओ, तो ही सरल को समझ पाओगे। तुम कठिन रहे, कठोर रहे, तुम तर्कजाल में घिरे रहे, तुम बुद्धि में अकड़े रहे, तुम ज्ञानी की अकड़ से भरे रहे––तो भक्त से संबंध न जुड़ेगा। भक्त जैसे होओ, तो ही संबंध जुड़ेगा। नहीं तो तुम्हें लगेगा कि भजन हैं; ठीक है, सुंदर हैं; संगीत में बांधे जा सकते हैं।

मैं तुमसे कहना चाहता हूं: इतना ही कहा, तो तुमने मीरा को न समझा। मीरा कोई गायिका नहीं है, न कोई नर्तकी है। मीरा ठीक वैसी है, जैसे बुद्ध हैं, जैसे महावीर हैं, जैसे क्राइस्ट हैं। पर महावीर और बुद्ध के वचन ठीक-ठीक सीढ़ियों में विभक्त हैं। मीरा के वचन ऐसे विभक्त नहीं हैं––नहीं हो सकते हैं। इसलिए मीरा के साथ अन्याय हुआ है। लोगों ने इतना ही समझा कि ठीक है, अच्छे गीत गाये हैं, भावभरे गीत हैं। लेकिन इन भावनाओं में जीवन का पूरा शास्त्र है, जीवन की शैली है; जीवन को बदलने की कला और कीमिया है। ऐसा लोगों ने नहीं सोचा है। वही मैं तुम से कहना चाहता हूं: उसी ढंग से तुम सोचो।

'सखी, मेरी नींद नसानी हो।'

बुद्ध कहते हैं: आदमी सोया हुआ है, मूर्च्छित है। महावीर कहते हैं: आदमी प्रमाद में है। उसे जगाना है। उससे भिन्न बात नहीं है यह। यह कहने की शैली और है, लेकिन बात वही मीरा कह रही है। मीरा कह रही है: 'सखी, मेरी नींद नसानी हो।' मेरी नींद टूट गयी है। मेरा प्रमाद टूट गया। मेरी मूर्च्छा टूट गयी।

... हालांकि मूर्च्छा का टूटने का ढंग मीरा का अलग है। महावीर की टूटी है––अथक ध्यान से! और मीरा की टूटी है––अहर्निश प्रेम से। मगर नींद तो टूटी है। महावीर ने संकल्प से तोड़ी है, श्रम से तोड़ी है; इसलिए महावीर की संस्कृति श्रमण संस्कृति कहलाती है। अथक श्रम किया है। अपने संकल्प को जगाया है, जूझे हैं। योद्धा हैं। इसलिए 'वर्धमान' से 'महावीर' उनका नाम हो गया। वह मार्ग योद्धा का है। जैसे कोई दूसरे से लड़ता है, ऐसे महावीर अपनी नींद से लड़े हैं। छिन्न-भिन्न

कर डाला है नींद को।

मीरा ने भी नींद को तोड़ दिया है। लेकिन लड़ी जरा भी नहीं। संकल्प का कोई उपयोग नहीं किया है। समर्पण का उपयोग किया है। नींद टूट गयी––प्रभु की याद में, प्यारे की याद में। याद इतनी सघन हो गयी, तीर की तरह चुभ गयी हृदय में––नींद आए तो आए कैसे!

और मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि मीरा का मार्ग महावीर के मार्ग से ज्यादा रसपूर्ण है। श्रम की कोई जरूरत नहीं है, जहां बिना श्रम के हो जाता हो। संकल्प की कोई जरूरत नहीं है, जहां समर्पण से हो जाता हो। जहां हारकर जीत मिलती हो, वहां लड़ने की जरूरत क्या है? जहां याद करने मात्र से सदा-सदा की नींद टूट जाती हो, वहां और किसी तरह के उपाय, विधि-विधान की कोई जरूरत नहीं। मीरा के पास कोई और विधि-विधान नहीं है। आवश्यक भी नहीं है।

जिसके पास प्रेम है, उसके लिए कोई विधि आवश्यक नहीं है। प्रेम काफी है––काफी से ज्यादा है। सारी विधियां जो करती हैं, वह अकेला प्रेम कर देता है। विधियों की विधि है प्रेम।

'सखी, मेरी नींद नसानी हो।'

मीरा कहती है: मेरी नींद टूट गयी। नींद आती ही नहीं। इससे तुम इतना ही मत समझ लेना कि रात मीरा बिस्तर पर बैठी रहती है, सोती नहीं।

नींद क्या है? तुम जब आंखें खोले हुए होते हो, राह पर चलते, दुकान पर बैठे, तब भी तुम जागे हो? नहीं, कोई ज्ञानी इस बात से राजी नहीं कि तुम जागे हो। तुम सोये हो। तब भी तुम सोये हो। बिस्तर पर तो तुम सोते ही हो, दुकान म भी तुम सोते हो। मंदिर में भी तुम सोते हो। आंख खोलने से कुछ नींद के टूटने का संबंध नहीं है। जब तक भीतर का अंतरतम न खुल जाए, तब तक नींद नहीं टूटती। आंख खुलने से क्या नींद टूटेगी! नींद बड़ी सघन है; आंखें खुली रहती हैं और तुम सोये रहते हो। राह पर चलते वक्त तुम जागे हुए थोड़े ही चल रहे हो। हजार विचार चल रहे हैं, हजार सपने और वासनाएं भीतर चल रही हैं और तुम उन्हीं में तल्लीन हो। बाहर भी चलते जा रहे हो और भीतर भी न मालूम कितने विचारों की पर्तें तुम्हें छाये हुए हैं, कितने बादलों में तुम ढंके हो! तुम्हारा सूरज बादलों के बाहर नहीं है। तुम्हारे अंतस्चेतन में कोई रोशनी नहीं हो रही है। सब तरफ अंधेरा है। किसी तरह चल लेते हो अभ्यास-वश। इस चलने को तुम जागना मत समझ लेना।

जागने का अर्थ होता है: जब तुम चल रहे हो तो सिर्फ चल रहे हो—और तुम्हारे भीतर एक भी विचार नहीं है। कोई बादल नहीं तुम्हारे चित्त के आकाश पर। तुम्हारे भीतर की ज्योति बिना धूम्र के, कोई धुआं नहीं आसपास, धूम्र-रहित ज्योति है। तो तुम जागे हुए हो।

पतंजली ने चार अवस्थाएं कही हैं : सुषुप्ति, स्वप्न, जागृत और तुरीय। तुरीय ही असली जागृत अवस्था है। जिसको हम जागृत कहते हैं, उसे तथाकथित जागृत कहा है पतंजली ने—नाममात्र को जागृत, कहने मात्र को जागृत। वस्तुतः जागृत नहीं। सिर्फ बुद्ध जागे हुए हैं। जब बुद्ध चलते हैं तो सिर्फ चलते हैं। जब बुद्ध भोजन करते हैं तो सिर्फ भोजन करते हैं। जब बुद्ध सुनते हैं तो सिर्फ सुनते हैं; जब बोलते हैं तो सिर्फ बोलते हैं। बुद्ध की मौजूदगी सदा वर्तमान क्षण में होती है। इसको बुद्ध ने जागरण कहा है।

बुद्ध ने तो जागरण के ऊपर पूरा शास्त्र निर्मित किया। विपस्सना का ध्यान और सारी अनापानसतियोग की प्रक्रियाएं जागने के लिए हैं।

मीरा भी जब कहती है, 'सखी, मेरी नींद नसानी हो', तो वह उसी नींद की बात नहीं कर रही, जो रात तुम बिस्तर पर सोते हो, तब आती है। उतने की ही बात करे तो साधारण स्त्री है; फिर कुछ विशिष्ट नहीं हुआ है। विश्वविद्यालयों में मीरा के पद पढ़ाये जाते हैं और यही समझाया जाता है कि वह उसी नींद की बात कर रही है। रात सो नहीं सकती, क्योंकि उसे प्यारे की याद आ रही है। इतना ही नहीं, विश्वविद्यालयों में मनोवैज्ञानिक हैं जो कहते हैं कि यह तो किसी तरह की काम-क्षुधा है, यह दमित वासना है। यह मनुष्य के प्रति जो प्रेम होना चाहिए, जैसे साधारण आदमियों का होता है, इसी को मीरा ने कृष्ण के ऊपर आरोपित कर लिया है। यह तो कामवासना का ही रूप है। ये जो कृष्ण हैं, ये मीरा के कल्पना के प्रेमी हैं; लेकिन यह है तो वासना ही। ऐसा मनोवैज्ञानिक कहते हैं। और जो मनोवैज्ञानिक से राजी न हों, वे भी इससे दूर नहीं जाते, कि मीरा रात सो नहीं पाती। जैसे प्रेमी नहीं सो पाते, करवट लेते हैं, ऐसे मीरा भी करवट लेती है। इतना ही समझा तो मीरा के साथ तुमने अन्याय किया।

मीरा कहती है : नींद टूट गयी मेरी। नष्ट हो गयी। नसानी! अब लाख उपाय करूं तो भी सो नहीं सकती। कृष्ण ने गीता में कहा है : 'या निशा सर्व भूतायां तस्यां जागर्ति संयमी'। जो सब के लिए रात्रि है, सब भूतों के लिए रात्रि है, वहां भी जो योगी है, वह जागता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि कृष्ण कभी सोते नहीं, कि जब सब सो जाते हैं, तब वे अपने कमरे के कोने में खड़े जागते रहते हैं। सोते हैं। शरीर सोता है, लेकिन कृष्ण जागते रहते हैं। शरीर थक गया, विश्राम में चला जाता है; लेकिन भीतर एक चेतना सजग रहती है।

तुम जागे-जागे भी सोये रहते हो; योगी सोया-सोया भी जागा रहता है। यही भोगी और योगी का भेद है। भोगी जागा लगे तो भी समझना कि सोया है; योगी सोया लगे तो भी जानना कि जागा है। भोगी ऊपर की आंखें खोलता है, भीतर सोया रहता है; योगी बाहर की आंखें बंद कर लेता है, भीतर जागा रहता है।

मीरा भी उसी योग की परम दशा में है; लेकिन उसका मार्ग भिन्न है—पतंजली

से, कृष्ण से, महावीर से, बुद्ध से। तुम यह जानकर हैरान होओगे कि वह कृष्ण की आशिक है, कृष्ण के पीछे दीवानी है; लेकिन उसका मार्ग कृष्ण के मार्ग से भिन्न है। गीता के कृष्ण से उसे कुछ लेना-देना नहीं है। गीता से उसे कुछ लेना-देना नहीं है। उसका मार्ग कृष्ण से बिलकुल भिन्न है। वह प्रेम से जागी है। उसने विरह की जो क्षमता है मनुष्य के भीतर, उसका सहारा लेकर जागरण साध लिया है।

ऐसा समझो : तुम्हें किसी से प्रेम हो जाए तो रात नींद नहीं आती। करवट लेते हो, याद आती है : प्रियजन पास होता, मित्र पास होता! मीरा ने इसी सामान्य क्षमता का परम उपयोग कर लिया है। जब साधारण प्रेम में रात नींद खो जाती है तो मीरा ने उस असाधारण प्रेम को पैदा कर लिया है कि सारी नींद खो जाए—रात की ही नहीं, दिन की भी; सोने की ही नहीं, जागने की भी। नींद ही नसा जाए। नींद ही नष्ट हो जाए।

जिस मात्रा में प्रेम सघन होता है, उसी मात्रा में नींद कम होती जाती है। जब प्रेम का दीया पूरा-पूरा जलता है तो नींद का अंधेरा पूरी तरह समाप्त हो जाता है।

'सखी, मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पंथ निहारत सिगरी, रैन बिहानी हो।'

सारी रात ...! रात से अर्थ रात का ही नहीं है। रात से अर्थ है : जीवन की वह दशा, जो हमने सोये-सोये बिताई है। तुम्हारे लिए अभी भी रात है। संसार रात्रि है, जहां लोग सोये हैं और सपने देख रहे हैं। हजार-हजार तरह के सपने—धन के, पद के, प्रतिष्ठा के। लोगों को पता नहीं कि लोग क्या रहे हैं, क्यों कर रहे हैं, किसलिए कर रहे हैं। किये जा रहे हैं। एक मूर्च्छा है। अंधेरे में दौड़े चले जा रहे हैं, क्योंकि और लोग भी दौड़ रहे हैं। सब दौड़ रहे हैं। धक्का-धुक्की में तुम भी दौड़े जा रहे हो। तुमने कभी रुक कर सोचा भी नहीं कि कहां जा रहे हो, क्यों जा रहे हो, किसलिए जा रहे हो।

एक जगह लोग फुटबॉल खेल रहे थे और एक आदमी भागा हुआ आया और भीड़ में उसने चिल्लाकर कहा कि क्या रहे हो रामकिशन, तुम्हारे घर में आग लगी है! और जो आदमी फुटबॉल हाथ में लिए था, उसने वहीं पटकी और भागा, एकदम भागा। पसीना-पसीना। रास्ते पर आकर हांफता हुआ खड़ा हो गया और बोला—और किसी और से नहीं, और तो वहां कोई था नहीं, अपने-आप बोला—कि 'अरे मैं क्यों भाग रहा हूं? मेरा नाम तो रामकिशन है ही नहीं।' घर में आग लगी है, इस बात ने ऐसी चोट की कि वह यही भूल गया कि मेरा नाम रामकिशन है या नहीं।

तुम अपनी जिंदगी में ऐसे बहुत मौके पाओगे। तुम्हारी पूरी जिंदगी ऐसी ही बातों से भरी है। तुम क्यों भागे जा रहे हो? क्यों धन के पीछे भाग रहे हो?—और लोग भाग रहे हैं। क्यों पद के पीछे भाग रहे हो?—और लोग भाग रहे हैं।

सभी ऐसा करते हैं, इसलिए तुम भी ऐसा कर रहे हो। तुमने अपने जीवन को कोई दिशा जागकर नहीं दी है। होशपूर्वक तुमने निर्णय नहीं लिया है : क्या करना है ? यह जीवन इतना बहुमूल्य है, और इसे तुम कौड़ियों में लुटा रहे हो। और तुमने एक बार भी रुक कर नहीं सोचा है, क्षणभर बैठ कर नहीं सोचा है कि इस बहुमूल्य जीवन का कोई सदुपयोग हो जाए। यह ऐसे ही न चला जाए कूड़े-कर्कट में। कुछ निश्चित ही इससे उपलब्धि हो, निष्कर्ष निकले।

निश्चित ही, धन मिलने से निष्कर्ष नहीं निकलेगा। क्योंकि धन यहीं पड़ा रह जाएगा, और तुम चले जाओगे और पद पाने से भी निष्कर्ष नहीं निकलेगा। क्योंकि मौत न पद वालों की फिकर करती है, न पद-हीनों की। मौत सब छीन लेगी। जो-जो मौत छीन लेगी, अगर उसी को कमाने में तुम लगे हो तो तुम सोये हुए आदमी हो; तुम जागे हुए नहीं, तुम मूर्च्छित हो।

जागा हुआ कौन ? जो मौत को देखकर जाग गया है; जो यह जानकर सजग हो गया है कि मौत तो आती है, आती ही है, आ ही रही है, आ ही जाएगी--आज नहीं कल, कल नहीं परसों, देर-अबेर मौत तो द्वार पर दस्तक देगी। इसके पहले कि मौत आए, मुझे कुछ ऐसा कमा लेना है जिसे मौत न छीन पाए। तो तुम्हारे जीवन में दिशा है, जागरण है, थोड़ा ध्यान है, थोड़ा होश है।

'सखी, मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पंथ निहारत सिगरी, रैन बिहानी हो।'

सारी रात बीत गयी, विहान हो गया सुबह हो गयी, प्यारे को याद करते-करते रात टूट गयी और सुबह हो गयी।

'पिय को पंथ निहारत सिगरी' ... उस प्यारे की प्रतीक्षा करते-करते ... प्रतीक्षा में कोई सोये तो कैसे सोये! प्यारा आता हो तो कोई सोये तो कैसे सोये! प्यारा कब आ जाएगा, पता नहीं।

जीसस ने बहुत बार कहा है अपने शिष्यों को : प्यारा कब आ जाएगा, कुछ पता नहीं। वह मालिक कब द्वार पर दस्तक देगा, कुछ पता नहीं। इसलिए जागे रहना। यह सोचकर मत सो जाना कि अभी तो आया नहीं; अब जब आएगा तब देखेंगे; अभी तो सो लें, अभी तो विश्राम कर लें; कौन अभी आया जाता है ! ऐसा सोचकर सो मत जाना। कहीं ऐसा न हो कि तुम सोये होओ और प्यारा आए और चूक हो जाए।

और ऐसा ही हो रहा है। ऐसा ही दुर्भाग्य घट रहा है। प्यारा आता है, मगर तुम मिलते ही नहीं; तुम सोये होते हो। तुम्हें सोया देख लौट जाता है।

और जब मैं ऐसा कह रहा हूं, तो ये कोई काव्य की घोषणाएं नहीं हैं। ये तथ्य की सीधी-सीधी सूचनाएं हैं। प्रतिपल परमात्मा तुम्हारे द्वार पर दस्तक देता है। जैसे सागर प्रतिपल अपनी लहरों से टक्कर देता है तट पर, ऐसे ही परमात्मा प्रतिपल

तुम्हारे द्वार पर दस्तक देता है। कभी सूरज की किरण में, कभी हवा के झोंखे में, कभी चांद के साथ, कभी पक्षियों के गीत में, कभी बच्चों की मुस्कुराहट में, न मालूम कितने-कितने रूपों में, अनंत हैं उसके रूप--लेकिन हर रूप तुम्हारे द्वार पर आकर टकराता है ! मगर तुम गहन निद्रा में सोये हो। तुम्हारी सुबह अभी हुई नहीं।

'पिय को पंथ निहारत सिगरी ...' मीरा कहती है : मैंने कुछ और नहीं किया। मैं तो सिर्फ प्यारे की राह देख रही हूं कि आता होगा, जरूर आएगा। उसके वचन का मुझे भरोसा है। उसका भरोसा है, इसलिए सोऊं कैसे ! इसलिए जागी हूं। रात सुबह होने लगी।

...'रैन बिहानी हो'।...विहान होने लगा, प्रभात होने लगा। अंधेरा प्रकाश में परिवर्तित होने लगा। निद्रा जागरण में ढलने लगी।

जिस दिन निद्रा जागरण में ढलती है, उसी दिन मृत्यु अमृत में ढल जाती है। जिस दिन अंधेरा रोशनी बनने लगता है, उसी दिन देह आत्मा में रूपांतरित होने लगती है। उसी दिन क्षुद्र खोने लगता है और विराट का अवतरण होने लगता है। उसी क्षण तुम पात्र बनते हो। जो वैसा पात्र न बन जाए, अभागा है।

'पिय को पंथ निहारत सिगरी, रैन बिहानी हो।
सब सखियन मिलि सीख दई, मन एक न मानी हो ।।'

और तो सबने कहा, समझाया-बुझाया कि सो जाओ, कौन आता है, कब आता है, कभी आया कोई ? किस प्यारे की राह देखते हो ?

'सब सखियन सीख दई ...'। इस संसार में तुम्हें जो भी सीख देने वाले लोग मिलेंगे, वे यही तो कह रहे हैं कि कहां की बातों में पड़े हो ? मंदिर जा रहे हो ? होश है ? मंदिर में क्या रखा है ? यह कुरान में सिर मार रहे हो, कुछ समझ नहीं ? ये गयी-बीती बातें ! ये सड़े-गले शास्त्र ! यह गीता, यह वेद, यह मीरा, यह कबीर, यह नानक...किनकी बातों में उलझे हो ? दीवानों की बातों में पड़े हो ? कुछ होशियारी का काम करो ! चार दिन की जिंदगी है, भोग लो; फिर अंधेरी रात है। निचोड़ लो। जितना भोग बन सके, निचोड़ लो। जितना धन मिल सके, जितना शक्ति मिल सके, पद मिल सके--मुट्ठी बांध लो, फिर अंधेरी रात है। फिर कब्र में पड़े रहोगे। किसकी राह देख रहे हो ?

तुम्हें याद होगा, अगर तुम भजन करो तो संकोच होता है, क्योंकि वे सखियां--जो चारों तरफ मौजूद हैं, जो कहेंगी : 'पागल हो गये हो, भजन कर रहे हो ! इस तरह करोगे तो लोग अजायब-घर में रख देंगे। होश में आओ।' होश में आने का उनका मतलब होता है उन जैसे बेहोश हो जाओ।

धन के लिए दौड़ो तो कोई संकोच नहीं होता। धन के लिए जीओ और मरो, तो स्वीकृत हो। लेकिन अगर कभी प्रार्थना करो, कभी ध्यान करो, कभी पूजा करो

तो संकोच लगता है : किसी को पता न चल जाए !

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं : ध्यान कैसे करें ? मुहल्ले वाले लोग, वे कहते हैं : 'अरे, तुम भी पागल हो गए ! और मुहल्ले की तो छोड़ें, पत्नी चिंतित हो जाती है। बच्चे पूछते हैं कि पापा, तुम्हें क्या हो गया ? आप तो ऐसे कभी न थे।' तो बहुत संकोच होता है ।

यह दुनिया धन के लिए जी रही है । यहां अगर कोई ध्यान के लिए जीएगा तो बड़ा अकेला पड़ जाता है, बड़ा अजनबी हो जाता है । यहां पागलपन करो, सांसारिक, तो सबका साथ है तुम्हें । यहां परमात्मा को खोजो, एकदम अकेले हो गये । भरे बाजार में तुम अकेले हो गये । लोग हंसेंगे, गिरफ्तार भी करेंगे, अपमान भी करेंगे, विरोध भी करेंगे ।

तो मीरा कहती है : 'सब सखियन मिली सीख दई'...। समझाती हैं सखियां कि कहीं कृष्ण हैं ? कौन आयेगा ? कोई कभी नहीं आता । शांति से सो जाओ । प्रेम ही करना है तो यहीं किन्हीं व्यक्तियों को प्रेम कर लो । ये परलोक की बातें सब कल्पना के जाल हैं।

रवीन्द्रनाथ की कविता है : एक महा मंदिर, उसके बड़े पुजारी ने स्वप्न देखा कि परमात्मा स्वप्न में खड़े होकर उससे कह रहे हैं--ज्योतिर्मय--कि कल मैं आता हूं। तुम्हारी पुजाएं, तुम्हारी प्रार्थनाएं स्वीकार हो गयी हैं । कल मैं आता हूं ।

उस अपूर्व दृश्य को देखकर, उस ज्योतिपिंड को देखकर और उस वाणी को सुनकर मुख्य पुजारी की नींद टूट गयी । यद्यपि पुजारी था, बड़ा पुजारी था, उस मंदिर में सौ पुजारी थे, वह बड़ा मंदिर था, पुजारी होकर भी उसे ऐसा लगा कि औरों को कहूं कि न कहूं ? लोग हंसेंगे ।

एक बात तुम जानकर हैरान होओगे कि औरों का चाहे धर्म पर थोड़ा-बहुत भरोसा हो, पुजारियों का बिलकुल भरोसा नहीं है । जार्ज गुरजिएफ तो कहा करता था : 'अगर धर्म से छुटकारा पाना हो तो कुछ दिन किसी पुजारी के साथ रह लो । तो सब धोखा-धड़ी जाहिर हो जाएगी । पुजारी का तो बिलकुल भरोसा नहीं । पुजारी तो धंधा कर रहा है। भगवान उसकी दुकान है । वह तो धंधे में है । उसे क्या लेना-देना ! और वह भली-भांति जानता है कि इस मूर्ति में कुछ भी नहीं, क्योंकि कई बार उसने देखा कि मूर्ति पर चूहा चढ़ गया, उसी से तो अपनी रक्षा नहीं कर पाते, और किससे रक्षा करोगे ! मूर्ति लुढ़क जाती है कभी हवा के झोंके में, तो अपने-आप उठकर नहीं बैठ पाती । अब और दूसरों का क्या सहारा करोगे ? सब बकवास है कि अंधों को आंखें दीं और लंगड़ों को पहाड़ चढ़ा दिया; खुद ही तो चढ़ो !

पुजारी देखता है कि मूर्ति में कुछ नहीं है । लेकिन पुजारी का एक व्यवसाय है । बड़ा पुजारी था । फिर भी डरा कि और पुजारियों को कहूंगा तो वे हंसेंगे;

कम-से-कम नये पुजारी तो बहुत हंसेंगे; युवा पुजारी तो बहुत हंसेंगे कि अब बूढ़ा हो गया, सनक गया मालूम होता है । सठिया गये ! कभी आया भगवान ?

तो वह चुपचाप सो रहा । लेकिन फिर सपना आया । फिर वही ज्योतिर्मय पिंड ! फिर वही घोषणा--कि देख भरोसा कर, कल आता हूं ! फिर नींद टूट गयी । फिर अपने को समझा-बुझा लिया कि अभी आधी रात किसको उठाऊं, सुबह देखेंगे । सुबह तक समझ फिर आ जाएगी वापिस, तो किसी से कहने की जरूरत नहीं । कौन आता है !

फिर तीसरी बार सपना आया, तो फिर मुश्किल हो गया । फिर तो उसे घबड़ाहट भी लगीं कि कहीं ऐसा न हो, आ ही जाए ! तो उसने सब पुजारियों को जगा दिया । लोग हंसने लगे । उन्होंने कहा कि आप भी किन बातों में पड़ गये, सपने कहीं सच होते हैं ? ये सपने सपने हैं, कौन कब आता है ! इस मंदिर को हजारों साल हो गये बने, कभी परमात्मा आया है ? कभी उसने किसी की प्रार्थना सुनी है ? सब प्रार्थनाएं कोरे आकाश में खो जाती हैं; न कोई सुनने वाला है, न कोई उत्तर देने वाला है। हमसे ज्यादा और कौन जानेगा ? हम कितनी तो प्रार्थनाएं करते हैं, लेकिन एक प्रार्थना तो कभी सुनी नहीं जाती ।

लेकिन बूढ़े पुजारी ने कहा : कुछ भी हो, तुम्हारी बात मेरी भी समझ में आती है । मैं भी यही मानता हूं कि कोई आने-जानेवाला है नहीं; लेकिन तीन बार सपना आया है, कहीं ऐसा न हो कि वह आ ही जाए और हम तैयार न हों ! तो हर्ज क्या है ? हम तैयारी तो कर ही लें, आया तो ठीक; नहीं आया तो कोई हर्जा नहीं होगा ।

यह बात जची । मंदिर धोया गया, सजाया गया, भोजन बनाया गया । और लोग हंस रहे हैं, भोजन भी बना रहे हैं कि मेहमान आने वाला है और हंस भी रहे हैं । वे कह रहे हैं : कौन कब आता है ! और जानते हैं कि यह भोग अपने को ही लगने वाला है, कोई और आने वाला नहीं ।

फिर सांझ भी आ गयी और आनेवाला नहीं आया । फिर हंसी खूब उठने लगी। फिर खूब मजाक चलने लगा। फिर उन्होंने सबने मिलकर बड़े पुजारी को कहा कि अब बहुत हो गया, अब दिन भर हो गया प्रतीक्षा करते-करते। अब हम भूखे भी हैं, थक भी गये हैं, अब हम भोजन करें और विश्राम करें । अब सूरज भी ढल गया । आना होता तो आ गया होता । अब कोई रात में तो आयेगा नहीं ।

फिर उन्होंने भोजन किया । दिनभर के थके-मांदे थे, सो गये । और रात, आधी रात उसका रथ आया ।

यह कविता बड़ी प्यारी है ! इसे समझना । आधी रात उसका रथ आया । और उसके रथों की आवाज, उसके रथ के चाकों की गड़गड़ाहट--और किसी पुजारी ने नींद में सुनी आवाज । वह नींद में कुनमुनाया । उसने कहा : 'भाइयो, मुझे लगता

है, वह आया। रथ की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ती है।' एक दूसरा पुजारी चिल्लाया कि बंद करो यह बकवास! दिनभर थका मारा और अब भी सोते भी नहीं शांति से। यह कोई रथ नहीं है। कहां का रथ? रथ होते हैं अब? यह बादलों की गड़गड़ाहट है। तुम चुपचाप सो जाओ।

फिर सन्नाटा हो गया। वह उतरा। रथ मंदिर के द्वार पर आकर रुका। वह सीढ़ियां चढ़ा। और उसके चढ़ने की आवाज, वह मधुर रव, जो परमात्मा के चरणों में ही होता है, फिर सुनाई पड़ा। फिर किसी ने कहा कि भाई मुझे लगता है कि कोई सीढ़ियों पर चढ़ रहा है और एक अजीब संगीत सीढ़ियों पर गूंज रहा है। फिर कोई चिल्लाया कि यह तो हद्द हो गयी, दिखता है आज सोना संभव नहीं है! कुछ भी नहीं है। हवा वृक्षों से गुजरती होगी।

फिर उसने द्वार पर दस्तक दी। और फिर किसी ने कहा: 'भाई मानो या न मानो, मगर कोई द्वार पर दस्तक दे रहा है।' अब तो बड़ा पुजारी भी चिल्लाया कि बंद करो बकवास और चुपचाप सो जाओ! न कोई कभी आया है और न कोई कभी आएगा। ये सिर्फ हवा के थपेड़े हैं।

फिर वे सो गये। वे सुबह उठे। और जब उन्होंने द्वार खोला, तो सब ठगे रहे गये—अवाक्। रथ के पहियों का निशान मंदिर के द्वार तक बना था। रथ आया। रथ वापिस लौटा। चिह्न थे। कोई सीढ़ियों पर चढ़ा, उसके पदचिह्न थे। तब वे बहुत रोने लगे। लेकिन अब तो कुछ भी रोने से न हो सकता था। अवसर जा चुका था।

जीवन ऐसा ही है। परमात्मा तो रोज आता है, प्रतिपल आता है। घोषणा करे न करे, आता तो है ही। मगर हम सोये हैं और हम अपने को समझा लेते हैं। पक्षी बोलते हैं तो हम कहते हैं पक्षियों की आवाज है। उसकी आवाज हमें सुनाई नहीं पड़ती। वृक्षों से हवा गुजरती है तो हम कहते हैं कि वृक्षों से हवा गुजरी वही गुजरता है। सब चिह्न उसी के हैं। सब हस्ताक्षर उसी के हैं। लेकिन ये तो उसी को दिखाई पड़ते हैं जो परिपूर्ण रूप से जागा हो।

जागने के दो उपाय हैं। या तो महान संकल्प करो कि निद्रा टूट जाए; या ऐसा गहन प्रेम करो कि उसकी प्रतीक्षा में पलकें झप न पाएं।

'सब सखियन मिलि सीख दई, मन एक न मानी हो।'

मीरा कहती है: सब सखियां समझाती हैं। सारा संसार समझा रहा है। घर के लोग समझा रहे थे। प्रियजन समझा रहे थे। परिवार के लोग थे... कि मीरा पागल न हो। यह सब पागलपन है। कहां का कृष्ण, कैसा कृष्ण! यह तू किस की मूर्ति लिए फिरती है? यह किसका तू गुणगान गा रही है? यह सब तेरी कल्पना का जाल है।

लेकिन मीरा कहती है: मैं न मान सकी। मैं न राजी हो सकी। सौभाग्यशाली थी।

जिस दिन तुम सांसारिक लोगों की बातों से राजी हो जाते हो, तुम्हारे दुर्भाग्य का क्षण है। जिस क्षण तुम सोये हुए लोगों की बातों से राजी नहीं होते, अहोभाग्य है। किसी जागे हुए आदमी के साथ पागल हो जाने में भी अहोभाग्य है; और सोये हुए लोगों के साथ बड़े समझदार बने रहने में भी दुर्भाग्य है।

'सब सखियन मिलि सीख दई, मन एक न मानी हो।
बिन देख्या कल नांहि पड़त, जिय ऐसी ठानी हो।'

प्रेम ने ऐसी गहन गांठ बांध ली कि बिना देखे अब कल नहीं पड़ती, अब चैन नहीं है। नींद कहां! नींद कैसी! विश्राम कहां!

जब तक प्रभु मिलन न हो जाए, तब तक कोई विश्राम नहीं। जैसे नदी भागी चली जाती है, जब तक सागर से न मिल जाए... ऐसा प्रेमी रोता ही रहता है, पुकारता ही रहता है। अहर्निश उसके भीतर से एक ही पुकार उठती रहती है: 'कब मिलोगे? कब दिखाई पड़ोगे? कब स्पर्श होगा? कब दरस-परस होगा?'

'बिन देख्या कल नांहि पड़त, जिय ऐसी ठानी हो।
अंगि-अंगि व्याकुल भई, मुख पिय-पिय बानी हो।'

और मीरा कहती है: यह कुछ ऐसा नहीं है कि हृदय में ही बाण चुभा हो। अंग-अंग... रोएं-रोएं में, शरीर के एक-एक हिस्से में पीड़ा सघन हो गयी है। मन ने ही नहीं पुकारा है, तन ने भी पुकारा है। एक स्वर से पुकारा है।

'अंगि-अंगि व्याकुल भई, मुख पिय-पिय बानी हो।'

और मुंह है कि जैसे पपीहा पुकारता रहता है—पी-कहां, पी-कहां, पी-कहां! चुप रहूं तो भी पुकार चल रही है, बोलूं तो भी पुकार चल रही हैं। बोलूं या न बोलूं, पुकार चल ही रही है। और अंग-अंग छिद गया है।

'अन्तर वेदन विरह की, वह पीड़ न जानी हो।'

मीरा कहती है: ऐसी पीड़ा तो कभी जानी नहीं थीं...जन्मों-जन्मों में ऐसी पीड़ा कभी जानी न थी।

'अन्तर वेदन विरह की'...। और तरह की बहुत पीड़ाएं जानी थीं—कभी सिर में दर्द में हुआ था, कभी पैर में दर्द हुआ था, कभी पैर में कांटा चुभा था—मगर अंग-अंग कांटे ही कांटे चुभ गये। अंग-अंग आग ही आग लग गयी है। ऐसी विरह-अग्नि तो कभी जानी न थी। और यह पीड़ा बड़ी अनूठी भी है। पीड़ा भी है और मीठी भी। ऐसी पीड़ा कभी जानी न थी। विरह की पीड़ा में दंश भी है और रस भी; पुकार भी है और धन्यवाद भी। शिकायत भी है और प्रार्थना भी। भक्त लड़ता भी है भगवान से, झगड़ता भी है। और सब झगड़ों के बाद उसके चरणों में सिर झुकाकर बैठ जाता है।

'अंगि-अंगि व्याकुल भई, मुख पिय-पिय बानी हो,
अन्तर वेदन विरह की...।'

यह संस्कृत का शब्द 'वेदना' बड़ा अपूर्व है। दुनिया की किसी भाषा में ऐसा कोई शब्द नहीं। इसके दो अर्थ होते हैं : ज्ञान और दुख। यह उसी मूल धातु से बना है, जिससे वेद। वेद का अर्थ होता है : ज्ञान, परम ज्ञान। यह अनूठा शब्द है। क्योंकि ज्ञान और दुख का क्या संबंध? कोई तालमेल नहीं मिलता। वेदना--दुख! और वेद--ज्ञान! और एक से ही दोनों का जन्म हुआ। इसमें बड़ा रहस्य छिपा हुआ है। एक ऐसा भी दुख है, जिसमें वेद का जन्म होता है। एक ऐसी भी वेदना है, जिसमें वेद जन्मता है। एक ऐसी भी पीड़ा है, जिसमें से परमात्मा प्रगट होता है। इसलिए एक ही शब्द के दो अर्थ--दुख और ज्ञान। एक तरफ दुख है, महादुख है।

'अंगि-अंगि-व्याकुल भई...।
अन्तर वेदन विरह की...।'

और सारा अंतर वेदना से जल रहा है, विरह की अग्नि में जल रहा है। एक तरफ वेदना और जैसे-जैसे अग्नि प्रगाढ़ होती है, वैसे-वैसे दूसरी तरफ वेद का जन्म होता है। पीड़ा से आदमी निखरता है, स्वच्छ होता है। पीड़ा से ऐसी ही घटना घटती है, जैसे आग से जब सोना गुजरता है तब। कुंदन बन जाता है सोना। सब कचरा जल जाता है। आग से गुजरकर जैसे सोना शुद्ध होता है, ऐसे ही विरह की अग्नि से, वेदना से गुजरकर वेद का जन्म होता है, बोध का जन्म होता है, बुद्धत्व का जन्म होता है।

'अन्तर वेदन विरह की, वह पीड़ न जानी हो।'

यह पीड़ा बड़ी अनजानी है, बड़ी नयी है। यह दुख भी दे रही है और सुख भी दे रही है। यह इसका अपूर्व रूप है। यह बड़ी रहस्यपूर्ण है।

तुम यह मत सोचना कि भक्त अपनी पीड़ा छोड़ने को राजी हो जाएगा। तुम यह मत सोचना कि तुम कहो, कि चले लो, एस्प्रो ले लो; कि एनासिन है, काम करेगी, इसके चार गुण हैं। भक्त कोई दवा लेने को राजी नहीं होगा। पीड़ा बीमारी नहीं है भक्त की--भक्त का सौभाग्य है; उसका परम स्वास्थ्य है। वह धन्यभागी है।

परमात्मा की विरह-अग्नि किस्मत वालों को ही मिलती है। उससे भक्त छूटना नहीं चाहेगा। पीड़ा है जरूर लेकिन ऐसी नहीं कि छोड़ी जाए; ऐसी कि सम्हाल-कर रखी जाए। संपदा है। तो वेदना भी है और वेद भी। पीड़ा भी है और मधुर भी। बड़ी मीठी पीड़ा है। यह अनूठी बात है विरह की।

संसार में हमने दुख जाना। संसार में हमने सुख भी जाना। लेकिन संसार का सुख थोथा है, उथला है। और संसार का दुख भी थोथा है और उथला है। संसार में कोई चीज गहरी होती ही नहीं। परमात्मा के साथ दुख मिलता है तो भी गहरा मिलता है; और सुख मिलता है तो भी गहरा मिलता है। गहरे दुख का बड़ा आनंद है; क्योंकि गहरा दुख तुम्हें गहरा कर जाता है, तुम्हें गहराई में उतार जाता है। जितना गहरा दुख जाता है, उतने ही गहरे तुम अपने अंतर्तम में चले जाते हो।

तो दुख कुएं की तरह हो जाता है और तुम अपने गहरे कुएं में उतरने लगते हो, तो अपने से पहचान होने लगती है। हालांकि कुएं में उतरते डर भी लगता है। अंधेरा काटता है। अनजान, अपरिचित, कभी गए नहीं--ऐसी जगह! संग-साथ छूटने लगता है, अकेले रह जाते हो।

अब यह मीरा अपने विरह में बिलकुल अकेली रह गयी। एक तो कोई इसके विरह को समझ नहीं सकता। लोग इसे पागल समझने लगे। लोग कहने लगे मीरा दीवानी हो गयी। कोई इसके दुख को समझ नहीं सकता, क्योंकि जिसने यह दुख जाना हो वही समझे। तो कभी कोई साधु मिल जाता है, कभी साध-संगत हो जाती है, तो मीरा प्रसन्न हो जाती है।

'साधु देख राजी भई'...। कभी कोई मिल जाता है, जो इस दुख को पहचा-नता है, जो इस पीड़ा से गुजरा है और इस पीड़ा के अहोभाग्य का जिसे अनुभव है--तो, तो ठीक हो जाता है। लेकिन, अन्यथा, जो लोग मिलते हैं वे सभी कहते हैं: अपने को सम्हालो। यह क्या पागलपन है? वापिस लौटो। सब भला-चंगा था, खराब कर लिया। यह किस व्यर्थ की झंझट में उलझ गयी? क्यों दुख उठा रही हो? कोई नहीं आता। न कोई है आने को। आकाश खाली है। न कोई परमात्मा है, न कोई प्रार्थना का अर्थ है। क्षणभंगुर ही सब कुछ है, शाश्वत होता नहीं है।

क्षणभंगुर में जीने वाले लोग शाश्वत की भाषा भी नहीं समझ पाते। यह पीड़ा बड़ी अद्भुत है, मीरा कहती है। यह जगा गयी है मुझे, निखार गयी, स्वच्छ कर गयी, शुद्ध कर गयी।

'ज्यूं चातक घन कूं रटे'...। और जैसा चातक प्रतीक्षा करता है स्वाति की बूंद की, लगा रहता है आकाश की तरफ आंखें लगाये। जगत में जल की कोई कभी नहीं है। चातक, हो सकता है, नदी-तट पर हो। जगत में जल की कोई कमी नहीं है, लेकिन जिसे स्वाति की बूंद का स्मरण आ गया, जिसे स्वाति की बूंद का स्वाद लग गया, जिसे स्वाति की बूंद की सनक सवार हो गयी—इस जगत के पानी का फिर कोई अर्थ नहीं है। इस पानी से तो प्यास बढ़ती है, घटती नहीं। ऐसा पानी चाहिए कि प्यास सदा के लिए तृप्त हो जाए।

'स्वाति' प्रतीक है। स्वाति एक नक्षत्र है; एक विशेष नक्षत्र की दशा है। ऐसे ही मनुष्य के भीतर भी स्वाति-नक्षत्र की दशा बनती है। दो तरह से बनती है—या तो ध्यान, या प्रेम। स्वाति नक्षत्र का अर्थ होता है: तुम्हारे भीतर सब परम शांति को उपलब्ध हो गया, कोई द्वंद्व न रहा, कोई कलह न रही; संगीत, लयबद्धता पैदा हुई। फिर ध्यान से हो या प्रेम से, कैसे हो--इससे कोई सवाल नहीं। तुम्हारे भीतर समरसता आ गयी, सामंजस्य आ गया, सम्यकत्व आ गया, समतुलता आ गयी। तुम्हारे भीतर कोई द्वंद्व, कोई दुई, कोई कलह न रही। सब तरफ सन्नाटा और शांति

हो गयी। अहोभाव आ गया। वही है स्वाति नक्षत्र भीतर। उसी घड़ी वह मेघ तुम पर बरसता है। बुद्ध ने तो उसको नाम ही दिया है : धर्म-मेघ-समाधि ! उस घड़ी में धर्म का मेघ बरसता है। और जो वर्षा होती है, वह सदा के लिए तृप्त कर जाती है। फिर कोई प्यास नहीं बचती।

संसार का अर्थ है : कितना ही पीयो, प्यास बची ही रहती है। बची ही नहीं रहती, बढ़ती भी जाती है। कुछ ऐसी है संसार की स्थिति कि आग लगी हो और तुम घी फेंक-फेंककर आग को बुझा रहे हो। आग और बढ़ती चली जाती है। और तुम देखते भी नहीं कि आग बढ़ती चली जाती है। अंधापन अद्भुत है ! बच्चे ज्यादा शांत दिखाई पड़ते हैं, बूढ़े ज्यादा अशांत। आग बढ़ती चली गयी है। और जीवन हो गया इनका बुझाते, तो जरूर बुझाने में कहीं भूल हो गयी है। नहीं तो बच्चे अशांत होने चाहिए, बूढ़े शांत होने चाहिए। बच्चे कपटी होने चाहिए, बूढ़े निर्दोष होने चाहिए। बच्चे बेईमान होने चाहिए, बूढ़े ईमानदार होने चाहिए। बच्चे नास्तिक हों, यह समझ में आता है; बूढ़े तो नास्तिक नहीं होने चाहिए।

लेकिन अनुभव आदमी के जीवन में से सब छीन ले जाता है--देने की बजाय। कैसा अनुभव है यह ? अनुभवी आदमी चालाक हो जाता है, पाखंडी हो जाता है, बेईमान हो जाता है। इसलिए तो दुनिया में बेईमानी बढ़ती चली गयी है। क्योंकि जैसे-जैसे दुनिया का अनुभव बढ़ता चला गया, मनुष्यता प्रौढ़ होती चली गयी, उतना आदमी चालाक होता चला गया। छोटे बच्चे भोले मालूम होते हैं। यह बात उलटी है।

अगर जीवन का अनुभव सच में ही अनुभव है, तो बात भिन्न होनी चाहिए, बिलकुल भिन्न होनी चाहिए। जैसे-जैसे आदमी के जीवन में अनुभव बढ़े, वैसे-वैसे तृप्ति बढ़नी चाहिए। अनुभव का और क्या अर्थ ? अनुभव की और कसौटी क्या ? वैसे-वैसे सरलता बढ़नी चाहिए। निर्दोषता में और नए चार चांद लगने चाहिए। साधुता बढ़नी चाहिए। संतत्व बढ़ना चाहिए। मरते-मरते तक आदमी परम शांत अवस्था को, समाधि को उपलब्ध हो जाना चाहिए। तो जीवन के अर्थ...तो जीवन का अनुभव सार्थक।

लेकिन यहां तो उलटी बात है। यहां आग जितनी बुझाओ उतनी लपटें बढ़ती चली जाती हैं। तो जरूर तुम बुझाने में जो चीज फेंक रहे हो, वह ईंधन है। आग बुझा रहे हो, घी के पीपे उंडेल रहे हो। सोचते हो इस तरह आग बुझ जाएगी। देखते नहीं, आग रोज बढ़ती चली जाती है !

संसार में प्यास किसी की बुझती ही नहीं। और जिसकी प्यास बुझ जाए, उसने ही जीया, उसने ही जाना। प्यास बुझती परमात्मा से है।

'ज्यूं चातक घन कूं रटे, मछरी जिमि पानी हो।'

और जैसे किसी ने मछली को पानी से निकाल कर रेत पर फेंक दिया हो और

तड़फती हो--मीरा कहती है--ऐसी मैं तड़फती हूं।...

'अनर वेदन्त विरह की, वह पीड़ न जानी हो।
.........मछरी जिमि पानी हो।'

--जैसे पानी के लिए मछली तड़फे, ऐसी मैं तुम्हारे लिए तड़फती हूं।

और जबतक कोई ऐसा न तड़फे, जब तक तुम कुनकुने-कुनकुने तड़फते हो, तब तक तुम नहीं पा सकोगे। परमात्मा को पाने के लिए सब दांव पर लगाना पड़ता है। निन्यानबे डिग्री से भी काम नहीं चलेगा। सौ डिग्री से काम में कम नहीं चलता। तुम्हें पूरा का पूरा विरह की अग्नि में समर्पित हो जाना पड़ेगा। मीरा हुई तो उसने पाया।

अगर तुम्हारी प्रार्थना पूरी नहीं होती तो यही समझना कि तुमने प्रार्थना की नहीं। अभी तुम्हें प्रार्थना करना नहीं आया। अभी तुम्हें मयकदे में कैसे आएं, इसका रिवाज पता नहीं। अभी मधुशाला में बैठने का ढंग तुम्हें मालूम नहीं।

तू ऐसे सरखुशो सरमस्त मयकदे में आ
कि मुस्करा के तुझे हर नजर सलाम करे
हयात रक्स करे नगमे रूह से उठें
जो रक्शे बादाकशी मय फरोश आम करे।

मदिरा-पान की रस्म सीखनी पड़ती है, रिवाज सीखना पड़ता है। प्रार्थना तुमने बहुत बार की है; कभी पूरी नहीं हुई। तो उससे तुमने यह नतीजा लिया है कि परमात्मा नहीं है। नतीजा यह लेना था कि अभी प्रार्थी पैदा नहीं हुआ। लेकिन तुम नतीजा लेते हो : परमात्मा नहीं है। नतीजा लेना था कि अभी मैंने प्रार्थना नहीं सीखी।

प्रार्थना परिपूर्ण विरह का नाम है। रोआं-रोआं जलता हो, रोआं-रोआं कांटे से चुभा हो।

...'मछली जिमि पानी हो।' जब तक तुम ऐसी पीड़ा न जानोगे तब तक प्रार्थना से परिचय न हो पाएगा।

तुमने प्रार्थनाएं सीख ली हैं--तोतों की भांति दोहरा लेते हो। कुछ प्राण भी तो लगाओ ! कुछ अपने को डालो भी तो ! शब्द भी उधार, भाव भी उधार। कुछ अपना भी तो संयुक्त करो !

'मीरा व्याकुल विरहिणी, सुध-बुध बिसरानी हो।'

मीरा कहती है : विरह ही विरह बचा है। 'मीरा व्याकुल विरहिणी'...। अब तो सुध-बुध भी खो गयी है। अब तो सब भस्मीभूत हो गया है विरह में। अब तो होश-हवास भी नहीं रहा।

होश-हवास रह जाए तो भक्ति नहीं। इसलिए तो कहता हूं : भक्त का रास्ता पियक्कड़ का रास्ता है। होश-हवास रह जाए, होश-हवास से चलते रहे, तो कभी न पहुंचोगे। तुम अपनी होशियारी बचाये हुए चल रहे हो। होशियारी दांव पर

लगानी होगी। और तब दुख ही स्वर्ग का द्वार बन जाता है। पीड़ा ही परमात्मा को तुम्हारे पास खींच लाती है।

जो राहते जां है वो अलम मुझको मिला है
जो ऐने मुसर्रत है वो गम मुझको मिला है।
जिस गम से जहांगीर मुहब्बत हुई है पैदा
है हासिले कौनेन जो गम मुझको मिला है।
जिस साज के तारों से हुई राग की तखलीक
सद शुक्र कि वो साजे अलम मुझको मिला है।
सर चश्माये इल्ताको इनायातो नवाजिश
जो जाने करम है वो सितम मुझको मिला है।
जिस कुफ्र से ईमान की होती है इबारत
जो अस्ले यकीं है वो भरम मुझको मिला है
पलते हैं जबीं में मेरे अब सैंकड़ों सूरज
जब से तेरा ये नक्शे कदम मुझको मिला है।

एक ऐसा दुख है, एक ऐसी पीड़ा है, जो स्वर्ग से ज्यादा मूल्यवान है, क्योंकि उसी पीड़ा से परमात्मा से मिलन होता है।

जो राहते जां है वो अलम मुझको मिला है
जो ऐने मुसर्रत है वो गम मुझको मिला है।

एक ऐसा गम भी है, जो स्रोत है सारी खुशियों का। एक ऐसी पीड़ा निश्चित है, जिससे जीवन में सूरज का जन्म होता है। मीरा को ऐसी पीड़ा मिली है। ऐसी पीड़ा तुम्हें भी मिल सकती है। क्योंकि ऐसी पीड़ा सभी का स्वरूप-सिद्ध अधिकार है। मगर तुम डरे-डरे, तुम उस पीड़ा को जगाते नहीं। तुम उकसाते नहीं। तुम अगर मंदिर भी जाते हो तो ऐसे ही औपचारिक। मत जाना, उपचार से कहीं मत जाना। क्या सार? क्यों समय गंवाते हो? तुम जाते भी हो तो अपने को बचाते हुए जाते हो। जो अपने को डुबाने को राजी है, वही पाता है।

'ज्यूं चातक घन कूं रटे, मछरी जिमि पानी हो।
मीरां व्याकुल विरहिणी, सुध-बुध विसरानी हो।'

है दिल को क्यों करार मुझे कुछ पता नहीं
आंखें हैं अश्कबार मुझे कुछ पता नहीं।
रौशन हुए हैं महर सिफ्त दागहाये दिल
है कौन शोलाबार मुझे कुछ पता नहीं।
धड़कन इक एक दिल की है आवाजे पाये दोस्त
क्या है यही करार? मुझे कुछ पता नहीं।
एहसासे कुरबे दोस्त है एहसास बेखुदी
क्या है विसाले यार? मुझे कुछ पता नहीं
साकी की चश्मे मस्त है और मेरी तश्नगी
हैं और मय गुसार? मुझे कुछ पता नहीं
नकहत है ताजगी है मुसर्रत है दमबदम
होगी यही बहार, मुझे कुछ पता नहीं
क्या कर गई है एक नजर में निगाहे मस्त
है कोई होशियार? मुझे कुछ पता नहीं।

एक ऐसी घड़ी आती है, जब कुछ भी पता नहीं रह जाता। पता होने के पहले ऐसे घड़ी जरूर आती है जब कुछ पता नहीं रह जाता। इसके पहले कि परमात्मा का पता चले, तुम लापता हो जाते हो। इसके पहले कि परमात्मा का पता चले, तुम्हें जितने पते थे दुनिया के, वे सब भूल जाते हैं। संसार का ज्ञान न चूके, न भूले, तो परमात्मा का ज्ञान कभी पैदा नहीं होता। इन दोनों को तुम साथ-साथ न सम्हाल पाओगे। अगर परमात्मा को अपने जाल में फांस लेना हो, तो संसार का जाल छोड़ देना होगा।

है दिल को क्यों करार? मुझे कुछ पता नहीं।

भक्त को यह भी पता नहीं चलता कि कभी दिल में अपूर्व शांति हो जाती है। उसे कुछ पता नहीं चलता कि क्या, माजरा क्या है, मामला क्या है? यह शांति कहां से? यह क्यों? और कभी दिल मस्ती से भर जाता है और नगमे उठने लगते हैं और गीत फूटने लगते हैं। और उसे कुछ पता नहीं चलता कि मामला क्या है। और कभी आंखें आंसुओं से भर जाती हैं। और कभी रुदन ही रुदन रह जाता है। और उसे कुछ पता नहीं चलता कि यह क्या है! भक्त भगवान के हाथ में अपने को छोड़ देता है। पता रखने की जरूरत भी नहीं रह जाती।

हैं दिल को क्यों करार? मुझे कुछ पता नहीं
आंखें हैं अश्कबार, मुझे कुछ पता नहीं।

कब आंखें रोती हैं? जब वह रुलाता है, तब रोती है। और कब ओंठ हंसने लगते हैं? जब वह मुस्कुराता है, तब हंसने लगते हैं। और कभी ऐसा भी हो जाता है कि आंखें रोती हैं और ओंठ मुस्कुराते हैं। दोनों साथ-साथ भी चलता है। इसलिए पागल होने की हिम्मत चाहिए भक्त को।

रौशन हुए है महर सिफ्त दागहाय दिल

वह जो विरह ने घाव बना दिये थे हृदय में, वे रोशन हो गये हैं। एक-एक घाव एक-एक सूरज बन गया है।

रौशन हुए हैं महर सिफ्त दागहाये दिल
है कौन शोलाबार? मुझे कुछ पता नहीं।

यह रोशनी कहां से आ रही है? यह कौन मेरे घावों को रोशन सूरज बना

दिया है ? यह कौन जादू कर रहा है ? मुझे कुछ पता नहीं है।

धड़कन इक एक दिल की है आवाजे पाये दोस्त।

और अब तो दिल की एक-एक धड़कन में उसके पैरों की आवाज सुनाई पड़ रही है--उस परम प्यारे की, उस दोस्त की, उस मित्र की !

धड़कन इक एक दिल की है आवाजे पाये दोस्त
क्या है यही करार, मुझे कुछ पता नहीं।

क्या यही परम शांति है ? क्या यही है आनंद ? अब यह भी पता नहीं कि आनंद क्या है।

एहसासे कुरबे दोस्त है एहसास बेखुदी

दोस्त करीब आ रहा है और इधर होश खोया जा रहा है। जिसको खोजने निकले थे, वह करीब आ रहा है; और जो खोजने निकला था, वह खोया जा रहा है।

एहसासे कुरबे दोस्त है एहसास बेखुदी

मंजिल करीब आई जा रही है; और यात्री मिटा जा रहा है।

क्या है विसाले यार ? मुझे कुछ पता नहीं।

क्या यही है मित्र का मिलन ? क्या यही है वह परम संभोग की घड़ी, जहां परमात्मा बचता है, भगवान बचता है और भक्त खो जाता है, या भक्त बचता है और भगवान खो जाता है ? मगर अब कुछ पता नहीं। अब कोई हिसाब काम नहीं आता। अब पुराने माप-दंड काम नहीं आते। अब पुराने शब्द सार्थक नहीं रहे।

साकी की चश्मे मस्त है और मेरी तश्नगी

और ये परमात्मा की आंखें, ये उस प्यारे की आंखें और यह आंखों में झलकती हुई शराब ! और यह मेरी प्यास...।

साकी की चश्मे मस्त है और मेरी तश्नगी
हैं और मयगुसार ? मुझे कुछ पता नहीं।

मेरे अलावा कोई और भी पियक्कड़ है दुनिया में, मुझे कुछ पता नहीं। यह मेरी प्यास है और ये तेरी आंखें हैं।

जब भक्त भगवान के सामने खड़ा होता है तो अकेला ही होता है। सारा जगत खो जाता है। भक्त को जब भगवान मिलता है तो अकेले को ही मिलता है; उसे बांटना नहीं पड़ता।

हैं और मयगुसार ? कोई और भी पियक्कड़ हैं दुनिया में, मुझे कुछ पता नहीं है। यह मेरी प्यास है और ये तेरी आंखें हैं। और अब मैं पीऊंगा। मेरी प्यास और तेरी आंखें ! मेरी प्यास और तेरी मदिरा--बस दो काफी हैं। कोई और भी पीनेवाले हैं, अब इसका मुझे न होश है, न हिसाब है।

नकहत है ताजगी है मुसर्रत है दमबदम
होगी यही बहार, मुझे कुछ पता नहीं।

सब तरफ फूल पर फूल खिले जा रहे हैं। ताजगी बरसती है। आनंद-उत्सव मनाया जा रहा है।

नकहत है ताजगी है मुसर्रत है दमबदम

और सब खुशियां फूट रही हैं, उत्सव की घड़ी आ गई है ! 'होगी यही बहार।' भक्त कहता है : होना चाहिए, यही होगी बहार। हो न हो, यही है बहार।

होगी यही बहार, मुझे कुछ पता नहीं।

अब यह भी पता नहीं कि बहार क्या होती है, पतझड़ क्या होती है ! सुख क्या, दुख क्या !

जिसने परमात्मा की पीड़ा जानी, उसके सब हिसाब टूट जाते हैं। परमात्मा जब आता है तो बाढ़ की तरह आता है। परमात्मा कोई सरकारी नहर नहीं है ? जब आता है तब बाढ़ की तरह आता है। सब सीमाएं तोड़कर आता है। सब व्यवस्थाएं तोड़ देता है। जब आता है तो बड़ा अराजक होकर आता है। डुबा देता है।

क्या कर गई है एक नजर में निगाहे मस्त
है कोई होशियार ? मुझे कुछ पता नहीं।

जब भक्त उस नजर को देख लेता है एक बार, तो उसे यह पहली दफे समझ में आता है कि इस जगत में कोई भी होशियार नहीं। ये जो बड़े-बड़े होशियार दिखाई पड़ते हैं चारों तरफ, ये बड़े-से-बड़े मूढ़ मालूम होते हैं। होशियारी मूढ़ता मालूम होती है, क्योंकि अब पागलपन में होशियारी मालूम होती है। होश नासमझी मालूम होती है, क्योंकि अब बेहोशी में रस के द्वार खुल जाते हैं--अनंत द्वार खुल जाते है !

'मीरां व्याकुल विरहिणी, सुध-बुध बिसरानी हो।'

सुध-बुध बिसर जाने का ऐसा अर्थ है।

'डारि गयो मनमोहन फांसी।'

बड़ा प्यारा वचन है !

'डारि गयो मनमोहन फांसी।'

--वह जो प्यारा है, वह गले में फांसी लगा गया है।

प्रेम मृत्यु है। जो मर सकता है प्रेम में, वही पा सकता है। प्रेम का अर्थ ही होता है : मैं अपने को मिटाने को तैयार हूं। तू रहे, मैं न रहूं। संसार का अर्थ है : मैं रहूं, चाहे तू मिट जाए। लेकिन मैं रहूं।

तुम जरा सोचना कभी बैठकर किसी शांत क्षण में। अगर यह सवाल उठे कि

परमात्मा सामने खड़ा है और तुम हो और दो में से एक ही बच सकते हैं, तुम किसको बचाना चाहोगे? परमात्मा को बचाना चाहोगे या अपने को? एक नाव में सवार हो--परमात्मा और तुम दोनों बैठे हो। और ऐसी घड़ी आ जाती है कि नाव डूबने के करीब है। एक बच सकता है। तो तुम अपने को बचाओगे या परमात्मा को? झूठे उत्तर मत देना, क्योंकि किसी और को तो उत्तर देना ही नहीं है; अपने भीतर ही सोचना है। तुम अगर अपने को बचाओगे तो तुम्हारे जीवन में भक्ति की शुरुआत हुई ही नहीं। और सौ में से निन्यानबे लोग अपने को बचाएंगे। वे कहेंगे : देख लेंगे परमात्मा को फिर। और तरकीबें निकाल लेंगे; कहेंगे कि 'हम तो मरणधर्मा हैं, परमात्मा तो शाश्वत है। अरे, परमात्मा कहीं मरता है? परमात्मा मर ही नहीं सकता। और हम मर सकते हैं। तो अपने को बचा लो, परमात्मा तो बचा ही हुआ है।' बहुत संभावना तो यह है कि तुम जयरामजी करके परमात्मा को धक्का दोगे कि फिर मिलेंगे।

लेकिन प्रेम...प्रेम मिटने की तैयारी है। प्रेम सदा मिटने को तत्पर है।

मीरा ठीक कहती है : 'डारि गयो मनमोहन फांसी।'

और भक्ति तो फांसी है। एक ही बचेगा। एक ही बच सकता है। दो का उपाय नहीं। कबीर कहते हैं न : प्रेमगली अति सांकरी, तामे दो न समाय। दो नहीं समा सकते। या तो भक्त या भगवान। तुम्हारी इच्छा होती है कि हम भी रहें, तुम भी रहो--सह-अस्तित्व, को-एग्ज़िज़टेंस! यह क्यों झंझट-झगड़ा करना? चाहो तो दुकान बांट लें आधी-आधी, या घर बांट लें या बीच में एक पर्दा डाल लें--तुम भी मजे से रहो, हम भी मजे से रहें। लेकिन अगर तुमने कहा कि तुम भी रहो और हम भी रहें, तो तुम ही रहोगे, परमात्मा नहीं रह सकता। क्योंकि परमात्मा इतना विराट है कि तुम पूरी जगह खाली करो तो ही रह सकता है। ये दोनों साथ नहीं हो सकते। एक म्यान में दो तलवार शायद बन भी जाएं, लेकिन एक जीवन में भक्त और भगवान साथ-साथ नहीं बनते।

'डारि गयो मनमोहन फांसी।'

पर बड़े प्रेम से कहा मीरा ने। शिकायत नहीं है। बड़े आह्लाद से कहा कि अच्छा किया कि फांसी डाल गये। अच्छा किया कि मुझे मारने का उपाय कर गये। अच्छा किया कि मुझे चुना।

'डारि गयो मनमोहन फांसी।
अम्बुआ की डाली, कोयल इक बोले, मेरो मरण अरू जग केरी हांसी।'

जैसे आम की डाली पर कोयल बोलती है कुहू-कुहू! लगी रहती है रटन में! प्यारे को बुलाती रहती है। ऐसे ही--मीरा कहती है--मेरी दशा है। मैं तुम्हें बुला रही, बुला रही। बुला-बुला कर मरी जा रही। मेरी तो फांसी लगी है। 'मेरो मरण अरू जग केरी हांसी'! और लोग हंस रहे हैं। खूब फांसी दे गये!

'डारि गयो मनमोहन फांसी।'

क्या स्पर्श कर दिया, क्या जादू कर दिया कि तुम्हारे बिना कल नहीं पड़ती! और तुम्हारे लिए पुकारती हूं तो सारा जगत हंसता है। लोग कहते हैं : पागल है।

तुम्हें भी मीरा मिल जाए तो तुम भी पागल कहोगे। तुम भी इतना सद्भाव न दिखा सकोगे कि मीरा को पागल कहने से रुको। तुम्हें भी मीरा मिल जाए तो तुम पागल कहोगे। मीरा को तो पागल कहने से वही बचेगा जिसे खुद भी कुछ पागलपन लग गया हो, कुछ रंग लग गया हो। वही समझेगा। वह समझेगा कि क्या है दशा यह! यह बेसुध दशा, अपूर्व आनंद की दशा है।

'अम्बुआ की डाली कोयल इक बोले, मेरो मरण अरू जग केरी हांसी।
विरह की मारी मैं बन-बन डोलूं, प्राण तजूं करवत ल्यूं कासी।'

मीरा कहती है कि विरह की मारी मैं यहां से वहां खोजती फिरती हूं—इस जंगल से उस जंगल, इस पहाड़ से उस पहाड़, इस गांव से उस गांव, इस गली से उस गली--तुझे तलाशती फिरती हूं। तेरी झलक तो मिल गयी है। तेरी पहचान भी हाथ में आ गयी है। जब से तेरा स्वाद लगा है, इस संसार में सब बेस्वाद हो गया। अगर तेरे लिए मरना भी पड़े तो इस संसार में जीने से बेहतर है।

मगर फांसी तो लगा दी है और प्राण अभी तक शेष हैं। गला तो कस दिया है, थोड़ा और कस दो--यह प्रार्थना है इसमें। थोड़ा और कसो, और कसो, ताकि मैं बिलकुल मिट जाऊं।

'विरह की मारी मैं बन-बन डोलूं, प्राण तजूं करवत ल्यूं कासी।'

मैं तैयार हूं। आरे से काट डालो या काशी जाकर अगर करवट लेनी हो तो मैं काशी जाकर मर जाऊं। तुम जहां कहो वहां मरने को तैयार हूं; लेकिन अब फांसी पूरी कसो। अब यह ढीला-ढीला फंदा, कुछ लगा कुछ न लगा...।

भक्त की बड़ी बेचैन दशा हो जाती है। रहता है संसार में और रहता परमात्मा में साथ-ही-साथ एक पैर पृथ्वी पर और एक आकाश में। एक यहां और एक अज्ञात में। दो लोकों में साथ-साथ चलने लगता है। फांसी है, बड़ी फांसी है!

तुम एक अर्थ से निश्चित हो। संसार ही तुम्हारा एकमात्र स्थान है। झंझटें हैं, अड़चनें हैं; लेकिन सब संसार की ही हैं। तुम कम-से-कम एक नाव में हो। डूबने वाली नाव है। कागज की नाव है। मगर जब तक नहीं डूबी तब तक तो तुम निश्चित अपनी दुकान पर बैठे हो; तब तक तो सब ठीक चल रहा है।

भक्त की बड़ी अड़चन है। एक पैर इस नाव में और एक पैर उस नाव में। उसी नाव में पूरा होना चाहता है। लेकिन वह नाव छूट-छूट जाती है; पकड़ में आते-आते छूट जाती है। कभी-कभी झलक मिलती है, फिर झलक खो जाती है। कभी किसी प्रगाढ़ चैतन्य के क्षण में परमात्मा करीब मालूम होता है, फिर फिसल जाता है। यह मन बड़ा हरामी! फिर अंधेरा छा जाता है। फिर जो पास दिखाई

पड़ता था तारा, बहुत दूर हो जाता है।

भक्त भीतर कुछ, बाहर कुछ हो जाता है। बाहर से रहता है तुम्हारे साथ, भीतर से रहता है परमात्मा के साथ। बाहर बैठता है तुम्हारे साथ, भीतर बैठता है परमात्मा के साथ। बाहर बोलता तुम से, भीतर बोलता परमात्मा से। भक्त के जीवन में बड़ी अड़चन हो जाती है। उस अड़चन के लिए 'फांसी' से ज्यादा बेहतर शब्द दूसरा नहीं हो सकता। 'डारि गयो मनमोहन फांसी।'

मोअज्जन कुलजमे पाकीजगी है दिल में मेरे
मैं बजाहिर तो गुनाहगार नज़र आता हूं।

भीतर तो सागर है पवित्रता का और बाहर से गुनाहगार नजर आता हूं।

मोअज्जन कुलजमे पाकीजगी है दिल में मेरे
मैं बजाहिर तो गुनाहगार नज़र आता हूं
नकहतो रंगे गुलिस्ता हैं रगों में मेरी
एक सूखा हुआ गो खार नजर आता हूं।

भीतर तो गुलिस्तां है, भीतर तो फूल ही फूल खिले हैं—और बाहर एक सूखा हुआ कांटा नजर आता हूं।

एक सरमस्तिये जावेद मुझे है हासिल
देखने को तो मैं हुशियार नज़र आता हूं।

और भीतर मस्ती है, शराब बह रही है, और बाहर होशियार दिखाई पड़ता हूं।

जिंदगी में मेरी कोनैन की वुसअत शामिल
बन्दे हस्ती में गिरफ्तार नज़र आता हूं।

भीतर तो विराट आकाश है मेरे! आकाश जैसी बुलंदगी। और आकाश जैसी विशालता। असीम आकाश है। और बाहर...बन्दे हस्ती में गिरफ्तार नज़र आता हूं। और बाहर इस छोटी-सी देह में बंद हूं। 'डारि गयो मनमोहन फांसी।'

रौनक अफरोज इक सुबहे दरक्शां मुझमें
गरचे महबूस शबे तार नज़र आता हूं।

भीतर तो प्रभात हो गया है और बाहर अंधेरी रात है।

मुझसे बाबस्ता है सब कुवते तखलीके हयात
लागरो बेकसो लाचार नज़र आता हूं।

और भीतर तो परम शक्ति का स्रोत मिल गया है और बाहर कमजोर...। लागरो बेकसो लाचार नज़र आता हूं।

मेरी हस्ती में है तनवीरे जहां पोशीदा
पाबगिल सायाये दीवार नज़र आता हूं।

और भीतर तो प्रकाश की अनहद वर्षा हो रही है और बाहर मैं एक अंधकार हूं।

इम्बसात और मुसर्रत का हूं मैं सर चश्मा

गमे हस्ती का लिये बार नज़र आता हूं।

और भीतर तो हर्ष ही हर्ष है।

इम्बसात और मुसर्रत का हूं मैं सर चश्मा

और वहां तो झरना बह रहा है आनंद का, सच्चिदानंद का।

गमे हस्ती का लिये बार नज़र आता हूं।

और बाहर बड़ा उदास दुखी, पीड़ा से भरा हुआ दिखाई पड़ता हूं। विरह की अग्नि जल रही है बाहर और भीतर मिलन हो रहा है। 'डारि गयो मनमोहन फांसी।'

मिट चुका है मेरा एहसासे अना लेकिन मैं
मये पिन्दार से सरशार नज़र आता हूं

भीतर तो अहंकार बिलकुल समाप्त हो गया है और बाहर लोग समझते हैं कि यह आदमी अहंकारी है। मीरा को भी लोगों ने अहंकारी समझा, क्योंकि यह कहती है कि मेरा कृष्ण से मिलन हो गया है। कृष्ण को लोगों ने अहंकारी समझा, क्योंकि कृष्ण कहते हैं: 'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। सब छोड़-छाड़ अर्जुन, मेरी शरण आ!' क्राइस्ट को लोगों ने अहंकारी समझा, क्योंकि क्राइस्ट ने कहा कि मैं हूं मार्ग, मैं हूं सत्य! मैं और परमात्मा दो नहीं, एक हैं। और मन्सूर को लोगों ने अहंकारी समझा, क्योंकि उसने कहा: अनलहक, अहं-ब्रह्मास्मि! मैं स्वयं परमात्मा हूं!

मिट चुका है मेरा एहसासे अना लेकिन मैं
मये पिन्दार से सरशार नज़र आता हूं
हर तआल्लुक से है आज़ाद तबीयत मेरी
दामे दुनिया में गिरफ्तार नजर आता हूं।
मस्तो सरशार हूं हर वक्त ख्याले हक में
काफिरो आसीओ मयसार नजर आता हूं।

भीतर परम मदिरा पीकर बैठा हूं, बाहर लोग समझते हैं शराबी है।

'डारि गयो मनमोहन फांसी।
विरह की मारी मैं बन-बन डोलूं, प्राण तजूं करवत ल्यूं कासी।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी।'

समझ लेना, इसमें शिकायत नहीं है। मीरा धन्यवाद कर रही है: 'डारि गयो मनमोहन फांसी।' सौभाग्य जता रही है कि ठीक किया। तुम्हारे लिए कष्ट भी सौभाग्य है। और संसार में सुख भी दुर्भाग्य है।

'मीरा के प्रभु हरि अविनासी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी।'

तुम जो चाहो वैसा करो। तुम्हारी मर्जी पूरी हो। मैं तुम्हारी दासी हूं, तुम मेरे मालिक हो। मेरी मर्जी पूरी न हो, तुम्हारी मर्जी पूरी हो। फांसी देनी है, फांसी सही। जिलाओ तो जिलाओ, मारो तो मारो। मगर मैं तुम्हारी दासी हूं। मैं

तुम्हारी छाया हूं।

'प्यारे दरसन दीजो आय, तुम बिन रह्यो न जाय।
जल बिन कमल चन्द बिन रजनी, ऐसे तुम देख्यां बिन सजनी।'

मीरा कहती है : तुम्हें देखे बिना रहना असंभव है।

'प्यारे दरसन दीजो आय, तुम बिन रह्यो न जाय।'

परमात्मा के बिना लोग कैसे रह लेते हैं? एक बार जब तुम्हें परमात्मा की छोटी-सी भी किरण मिल जाएगी, तब तुम भी बड़े हैरान होओगे कि इतने-इतने जन्मों तक परमात्मा के बिना कैसे रह लिये! तब तुम्हें हैरानी होगी, भरोसा न आएगा, विश्वास न आएगा कि इतने-इतने जन्मों तक परमात्मा के बिना भी रह लिये।

अभी तो खयाल भी नहीं आ सकता। अभी तो दूसरा कोई अनुभव नहीं है। अभी तो जहर ही जाना है, तो जहर को ही पीते रहे हो। अमृत को जानोगे, तब खयाल आएगा कि आश्चर्य, इतने दिन तक जहर पीते रहे, जहर में ही स्वाद मानते रहे! अमृत के अनुभव से तुलना पैदा होती है।

'प्यारे दरसन दीजो आय, तुम बिन रह्यो न जाय। जल बिन कमल...।'

मीरा कहती है : मेरी हालत ऐसे है, जैसे कमल जल के बिना। कुम्हलाती जाती हूं। तुम्हारे बिना सिर्फ कुम्हलाना है। तुम्हारे होने में ही खिलावट है। तुम मेरे प्राण हो। तुम मेरी ज्योति! तुम मेरी श्वास!

'जल बिन कमल चन्द बिन रजनी'...।

तुम्हारे बिना ऐसी हूं, जैसे चांद के बिना रात--अमावस की रात।

'...ऐसे तुम देख्यां बिन सजनी।
व्याकुल-व्याकुल फिरूं रैण दिन, विरह कलेजो खाय।
दिवस न भूख नींद नहिं रैणा, मुखसूं कथत न आवै वैणा।'

और मीरा कहती है : शब्द ही नहीं बनते, लड़खड़ा जाते हैं। बोल भी नहीं सकती ठीक से। बोलना चाहती हूं तुमसे और तुम्हारा पता नहीं। जिनसे बोलना पड़ता है, उनसे बोलने की अब कोई मर्जी नहीं। साथ तुम्हारे होना चाहती हूं और तुम न मालूम कहां खो गये हो! और जिनके साथ रहना पड़ता है, उनके साथ रहने का कोई रस नहीं।

'दिवस न भूख नींद नहिं रैणा, मुखसूं कथत न आवै वैणा।
कहा कहूं कछु कहत न आवै, मिलकर तपत बुझाय।'

इतना ही कह देती हूं कि यह आग बहुत जल रही है। अब बरसो और इसे बुझाओ।

'क्यूं तरसाओ अंतरजामी, आय मिलो किरपा कर स्वामी।

मीरां दासी जनम-जनम की, पड़ी तुम्हारे पांय।'

मीरा कहती है : क्यों तरसाओ अन्तरजामी? तुम क्यों तरसा रहे हो? क्या कारण होगा? इसने तरसाने की जरूरत क्या है? इतना तड़फाने की जरूरत क्या है?

'आय मिलो किरपा कर स्वामी।'

और ध्यान रखना : भक्ति के मार्ग कृपा सूत्र है, बहुमूल्य सूत्र है। भक्त सिर्फ कह सकता है कि कृपा करो। ज्ञानी कहता है : मेरे ये शुभ कर्म हैं, इनका प्रत्युत्तर चाहिए। ज्ञानी दावेदार होता है। ज्ञानी कहता है : त्याग किया, तप किया, ध्यान किया, इतने-इतने जन्मों तक तपश्चर्या, साधना की, इसका उत्तर चाहिए। ज्ञानी दावेदार है। भक्त का कोई दावा नहीं। भक्त कहता है : तुम पर--और दावा! 'तुम मेरे ठाकुर, मैं तेरी दासी।' तुम पर--और मेरा दावा! इतना ही भक्त कह सकता है कि कृपा करो! तुम्हारी कृपा से मुक्ति होगी। मेरे कृत्य से नहीं, तुम्हारी कृपा से। मेरे कुछ करने से न होगा।

तो भक्त कहता है : ज्यादा से ज्यादा जो मैं कर सकता हूं, वह है--रो सकता हूं। आंसू हैं मेरे पास; और तो मेरे पास कुछ है भी नहीं। ये तुम्हारे चरणों में चढ़ा सकता हूं। मेरे पास कुछ भी नहीं है। जो मेरे पास है, वह तुम्हारे चरणों में रख सकता हूं। मेरे आंसू हैं, मेरी प्रार्थनाएं हैं, मेरी प्यास है, मेरी पुकार है।

'क्यूं तरसाओ अन्तरजामी'!

तो भक्त कहता है : मैं इतना ही कह सकता हूं कि क्यों और सताया जाऊं, क्यों और पीड़ा, क्यों और विरह, कितने दिन और...?

'...आय मिलो किरपा कर स्वामी।
मीरा दासी जनम-जनम की, पड़ी तुम्हारे पांय।'

अद्भुत बात है! मीरा कहती है : कितने जन्मों से तुम्हारे पैरों में पड़ी हूं! एक नजर इस तरफ भी हो जाए! एक दृष्टि इस तरफ भी हो जाए!

इस भेद को समझ लेना। भक्त दावेदार नहीं है। दावा और परमात्मा से!--भक्त को बात ही बेहूदगी की मालूम पड़ती है। हां, प्रार्थना हो सकती है। पुकार हो सकती है। भक्त लड़-झगड़ भी सकता है, लेकिन दावा नहीं कर सकता। भक्त और भगवान के बीच कानून का संबंध नहीं है, अदालत का संबंध नहीं है, लेन-देन का संबंध नहीं है। भक्त के पास देने को कुछ है ही नहीं। भक्त कहता है : मैं तो खालीपात्र हूं, भिक्षापात्र हूं। तुम भर दो इसे। मेरा भरोसा मुझ पर नहीं है—तुम्हारी कृपा पर है; तुम्हारी करुणा पर है।

और यह सूत्र अनूठा है। अगर एक बार तुम्हें यह सूत्र ठीक से हृदय में बैठ जाए और तुम इतना ही कर पाओ कि उसके चरणों में झुकते रहो और पुकारते रहो, जल्दी ही रात कट जाएगी। जल्दी ही सुबह होगी। और जब सुबह होगी, रात

कटेगी, तो अहंकार पैदा न होगा।

ज्ञानी अखीर-अखीर तक चूकता है, क्योंकि ज्ञान से अहंकार मजबूत होता है। इतना जानता हूं, इतना तप, इतना व्रत, इतनी साधना की है--तो कृत्य अहंकार को मजबूत करता है।

ज्ञानी का सबसे बड़ा खतरा है : अहंकार। भक्त का सबसे बड़ा खतरा है : आलस्य। ज्ञानी की अस्मिता बढ़ती चली जाती है। जितना करता है उतनी अस्मिता बढ़ जाती है; उतना ढेर लगा लिया उसने कृत्यों का। अब वह कहता है : अब तो समाधि होनी ही चाहिए। अब और क्या कमी रह गयी, बोलो !

भक्त कहता है कि मेरी कोई सामर्थ्य नहीं, असहाय हूं। अगर तुम मिलोगे तो मेरे किसी प्रयास से नहीं, तुम्हारे प्रसाद से। अगर मिलोगे तो इसलिए कि तुम महाकरुणावान हो; इसलिए कि करुणा तुमसे बह रही है।

तो भक्त की सारी कला इतनी है कि वह करुणा को पुकारने में समर्थ हो जाए; वह करुणा को उकसाने में समर्थ हो जाए। जैसे छोटा बच्चा झूले में पड़ा है, उठ भी नहीं सकता, चल भी नहीं सकता, बोल भी नहीं सकता, कुछ कह भी नहीं सकता--रो तो सकता है ! उसके रोने से ही मां दौड़ी चली आती है। उसे भरोसा सिर्फ एक बात का है कि अगर मैं रोऊं, अगर मेरा रोना सच में वास्तविक हो, अगर मेरे रोने में मेरा हृदय हो—तो कितनी ही दूर हो मां, कहीं भी हो, वह भागी चली आएगी। उसकी करुणा पर भरोसा है। उसके प्रेम पर भरोसा है।

भक्त की प्रक्रिया परमात्मा की अनुकंपा पर निर्भर है। और परमात्मा अनुकंपा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। अनुकंपा, और अनुकंपा का ही नाम परमात्मा है।

परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है--इस अस्तित्व की सारी अनुकंपा का इकट्ठा नाम परमात्मा है।

और यह अस्तित्व करुणावान है, क्योंकि हम इससे पैदा हुए हैं। हम इसके हैं, यह हमारा है। यह अस्तित्व करुणावान है, क्योंकि अस्तित्व हमारा स्रोत है। स्रोत हमारे प्रति उदास नहीं हो सकता।

जिस जमीन से ये वृक्ष पैदा हुए हैं, वह जमीन उस वृक्ष के प्रति उदास नहीं हो सकती, उपेक्षापूर्ण नहीं हो सकती। उस जमीन से रसधार आती ही रहेगी; रस आकर वृक्ष में फूल बनता ही रहेगा। इस बात का अगर तुम्हें स्मरण आ जाए कि जिससे हम पैदा हुए हैं, यह मूल ऊर्जा स्रोत हमारे प्रति उपेक्षा से भरा हुआ नहीं हो सकता, तो पुकारने की बात है। बस पुकारने की बात है ! जिसने ठीक से पुकारा, जिसने हृदयपूर्वक पुकारा—उस पर उस परमात्मा की अनुकंपा निश्चित बरस जाती है।

मीरा से पुकारना सीखो।

आज इतना ही।

समन्वय नहीं--साधना करो

चौथा प्रवचन

दिनांक : १४ नवम्बर, १९७७; श्री रजनीश आश्रम, पूना

आप कहते हैं कि मनुष्य अपने लिए पूरी तरह जुम्मेवार है। और दूसरी ओर आप कहते हैं कि 'समस्त' सब करता है। इन दो वक्तव्यों के बीच समन्वय कैसे हो?

संसार में एक आप ही हैं जिससे भय नहीं लगता था। पर इधर कुछ दिनों से आप से भय लगने लगा है। यह क्या स्थिति है, प्रभु?

आपने कहा कि गीता के कृष्ण से मीरा का कोई संबंध नहीं। लेकिन मीरा तो कहती है मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई। तो यह गिरधर गोपाल कौन है?

मैं बहुत दुखी हूं, मुझे मार्ग दिखाएं!

मैं आपका संदेश घर-घर पहुंचाना चाहता हूं, लेकिन कोई मेरी सुनता ही नहीं है। मैं क्या करूं? तड़पता हूं और चुप हूं।

पहला प्रश्न : आप कहते हैं कि मनुष्य अपने लिए पूरी तरह जुम्मेवार है, और यह कि वह अपने स्वर्ग-नर्क अपने साथ लिये चलता है। और आप यह भी कहते हैं कि 'समस्त' सब कुछ करता है, अंश क्या कर सकता है?

इन दो वक्तव्यों के बीच समन्वय कैसे हो?

★

समन्वय करना ही क्यों चाहते हैं? समन्वय हो भी जाए तो क्या होगा? बुद्धि की थोड़ी-सी खुजलाहट मिटेगी। कोई समन्वय से जीवन में क्रांति नहीं होगी। समन्वय की आकांक्षा ही व्यर्थ है।

साधना कैसे हो, यह पूछो। समन्वय कैसे हो, इससे क्या होगा? दार्शनिक बनना है? बड़े विचारक बनना है? बड़े सिद्धांतवादी बनना है?

हमारी जिज्ञासाएं भी मौलिक रूप से गलत होती हैं, इसलिए तो हम भटकते रहते हैं।

समन्वय से क्या प्रयोजन है? क्या करोगे समन्वय करके? आम और नीम में कैसे समन्वय हो? आम भी खराब हो जाएगा, नीम भी खराब हो जाएगी। दोनों गुण खो देंगे।

ये दोनों बातें अपने-अपने स्थान पर सही हैं। समन्वय में दोनों गलत हो जाएंगी। पहली बात ज्ञान-मार्ग की घोषणा है--कि प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन, अपनी नियति के लिए परिपूर्ण रूप से जुम्मेवार है। क्योंकि ज्ञान का मार्ग संकल्प पर आधारित है। तुम्हारे संकल्प की प्रगाढ़ता चाहिए। समर्पण की कोई जरूरत नहीं है ज्ञान के मार्ग पर। श्रम चाहिए, समर्पण नहीं। जहां श्रम की जरूरत है वहां अगर यह कहा जाए कि सब बातों के लिए परमात्मा जुम्मेवार है, तो श्रम असंभव हो जाएगा। तो यह वक्तव्य तो सिर्फ एक निमित्त है, एक उपाय है--तुम्हें संकल्प में नियोजित करने का। जिसे यह जच जाए, उसे दूसरे की चिंता नहीं करनी चाहिए। समन्वय की चिंता तो करनी ही नहीं चाहिए।

तुम्हें यह बात समझ में आ जाए कि मैं ही जुम्मेवार हूं--अपने सुख, अपने दुख; अपनी शांति, अपनी अशांति, अपने संसार, अपने निर्वाण के लिए--तो इस जुम्मेवारी के बोध के साथ ही तुम्हारे जीवन में रूपांतरण शुरू होगा। अगर नर्क के लिए तुम्हीं जुम्मेवार हो तो फिर नर्क बनाना क्यों? फिर हटाओ। जिन-जिन

बातों से नर्क निर्मित होता है, उन्हें गलाओ, जलाओ। और जब स्वर्ग भी तुम्हारे हाथ में है, तो फिर क्यों न बना लो पूरा स्वर्ग, फिर क्यों न बनाओ एक बगिया जिसमें फूल खिलें स्वर्ग के! फिर सींचो उन पौधों को! ...तो सारी ऊर्जा स्वर्ग के निर्माण में लग जाए।

संकल्प के मार्ग पर तुम ही निर्णायक हो, तुम ही नियति हो अपनी। यह बात जितनी प्रगाढ़ता से बैठ जाए उतना ही उचित है।

लेकिन, अगर तुमने समन्वय कर लिया तो तुम दुविधा में पड़ जाओगे। समन्वय का मतलब होगा : परमात्मा जुम्मेवार है, मैं भी जुम्मेवार हूं। तब प्रश्न उठेंगे : कौन जुम्मेवार है? इस दुविधा में तुम खड़े ही रह जाओगे, चल न पाओगे। जिसे चलना है वह समन्वय में नहीं पड़ता। समन्वय चलनेवालों की बात ही नहीं है। यह तो खाली, 'बैठे ठाले' लागों की बात है। जिन्हें कुछ करना नहीं है, उन्हें समन्वय के आधार पर न करने के लिए सुविधा मिल जाएगी।

दूसरा वक्तव्य कि परमात्मा जुम्मेवार है, पूर्ण जुम्मेवार है। अंश क्या करेगा? बूंद क्या करेगी सागर में? सागर ही जुम्मेवार है। सागर जहां जाएगा बूंद वहां जाएगी। बूंद की अपनी क्या यात्रा, अपनी क्या गति, अपना क्या गंतव्य? —यह भक्ति के मार्ग की घोषणा है। यह विपरीत घोषणा है। इस घोषणा का अर्थ है : मेरे किये कुछ भी न होगा। मेरे किये कुछ भी नहीं होने वाला है, तो इस मैं के बोझ को मैं क्यों ढोऊं? जब इससे कुछ होता ही नहीं है, तो यह अकड़ लिए क्यों फिरूं? इस अकड़ को परमात्मा के चरणों में डाल दूं। झुका दूं सिर वहां। कह दूं कि अब जो तेरी मर्जी, जैसी तेरी मर्जी! दुख देगा तो दुख स्वीकार होगा। क्योंकि तेरी मर्जी स्वीकार है। सुख देगा तो सुख स्वीकार होगा, क्योंकि तेरे अतिरिक्त और कोई मर्जी चलती ही नहीं, तो अब रोना क्या? शिकायत क्या?

वृक्ष रोते तो नहीं कि हरे हैं, क्यों हरे हैं? चांद-तारे रोते तो नहीं, नदी-पहाड़ रोते तो नहीं। जो जैसा है वैसा है। प्रभु-मर्जी!

भक्त ऐसा ही जैसा है वैसा ही प्रभु को समर्पित हो जाता है। वह कहता है : बुरा-भला जैसा हूं, तुम जानो। बुरे की जरूरत हो तो बुरा बना लो, भले की जरूरत हो तो भला बना लो। मैं तुम्हारा चित्र हूं, तुम चित्रकार हो; जैसे रंग भरने हों भर दो। चित्र की क्या हैसियत! चित्र क्या चित्रकार को कहे!

यह बिलकुल दूसरी ही बात है। यह दूसरी ही घोषणा है। इस घोषणा में अहंकार को समर्पित करना है। पहली घोषणा में श्रम को प्रज्वलित करना है; दूसरी घोषणा में अहंकार को समर्पित करना है। ये इलाज अलग हैं। तुम्हें अगर पहली बात जम जाए तो दूसरी को भूल ही जाना कि किसी ने कही है। समन्वय की तो बात ही मत करना। यह भी स्मरण भूल जाना कि कोई ऐसा भी कहने वाला है जगत में, कि सब कुछ करनेवाला परमात्मा है, क्योंकि वह बात तुम्हारे मन में अगर

गूंजती रही, तो संकल्प को पंगु कर देगी, नपुंसक कर देगी। वह तो एन्टीडोट हो जाएगा। वह तो उलटी दवा पी ली। और अगर समर्पण की बात जम जाए, तुम्हारा रोआं पुलकित होता हो समर्पण की बात सुनकर, हृदय उमगता हो, रस बहता हो--कि हां, यही ठीक है कि उसके चरणों में सब रख दूं, जो वह करे वही हो! दूसरी बात जम जाए तो पहली बात को विस्मृत कर देना।

तुम पूछ रहे हो: 'दोनों का समन्वय कैसे करें?' मैं कह रहा हूं: चलना हो तो एक पर ही चला जा सकता है, दो पर नहीं चला जा सकता। दो रास्तों पर कोई कैसे चलेगा? और यह भी सही है कि दोनों रास्ते वहीं पहुंचते हैं; तो भी तो दो रास्तों पर एक साथ नहीं चल सकते। पहाड़ पर अनेक रास्ते चोटी की तरफ जाते हैं। लेकिन चलोगे तो एक रास्ते पर! अनेक रास्तों पर इकट्ठे तो न चलोगे।

सब रास्तों के समन्वय का क्या अर्थ होगा? पहाड़ पर चढ़ते वक्त तुम यह नहीं पूछते कि 'यह एक रास्ता बाईं तरफ जाता है, एक दाईं तरफ; दोनों का समन्वय कैसे करें? मुझे पहाड़ के ऊपर जाना है, मैं समन्वय का मार्ग बनाऊंगा। एक कदम इस रास्ते पर चलूंगा, एक कदम उस रास्ते पर चलूंगा।' तुम कभी शिखर पर न पहुंचोगे। तुम बड़ी झंझट में पड़ जाओगे। तुम विक्षिप्त हो जाओगे। दौड़कर एक कदम इस पर चलोगे, दौड़कर एक कदम उस पर चलोगे। यह दौड़ने में ही जान उखड़ जाएगी। और पहुंचोगे कब? पहुंचोगे कैसे? आदमी पहुंचता है एक ही मार्ग पर सतत चल कर। कदम के बाद कदम एक ही मार्ग पर चलता है, तो पहुंचता है।

लेकिन दुनिया में महात्मा गांधी और उन जैसे लोगों ने समन्वय की बहुत बकवास फैला दी है। उस समन्वय की बकवास के पीछे राजनीतिक उद्देश्य हैं। साधना से उसका कोई संबंध नहीं है। 'अल्लाह ईश्वर तेरे नाम'--ठीक है, बात तो ठीक है। लेकिन अगर दोनों नाम जपते रहे, तो कभी न पहुंच पाओगे। और कहते रहे महात्मा गांधी 'अल्लाह ईश्वर तेरे नाम', लेकिन जब गोली लगी तो अल्लाह नहीं निकला, तब राम ही निकला। तब अल्लाह कहां गया? तब राम-अल्लाह या अल्लाह-राम, इतना तो कह देते जाते वक्त! थोड़ी तो हिसाब रखते, जिंदगी भर बोलते रहे अल्लाह ईश्वर तेरे नाम! यह मरते वक्त राम क्यों निकला? अल्लाह तो सिर्फ राजनीति थी। वह तो मुसलमान को राजी करने का उपाय भर था। उसमें कुछ प्राण नहीं थे। जब गोली लगी तो राजनीति भूल ही जाएगी। तब तो जो अंतरतम में था, वही निकला। अब उस क्षण में राजनीति कौन याद रखेगा? उस क्षण कौन सोचेगा कि जिन्नाह क्या सोचेगा, कि मुसलमान क्या सोचेंगे? इसकी फुर्सत कहां रही? गोली ने सब राजनीति मिटा दी। जो हार्दिक था, वही निकल आया।

अल्लाह भी प्यारा है, राम भी प्यारा है। अल्लाह जचे तो अल्लाह जपो, राम जचे तो राम जपो। मगर अल्लाह-ईश्वर दोनों मत जपो। दोनों का स्वर-विज्ञान

अलग है। दोनों की चोट अलग है। दोनों का परिणाम अलग है। दोनों दो अलग तरह के साधकों के लिए निर्मित किये गये हैं।

सदा याद रखो: प्रत्येक साधना-पद्धति अपने-आप में पूर्ण है। उसे किसी दूसरी साधना-पद्धति के सहारे की जरूरत नहीं है। लेकिन समन्वय का यही परिणाम होता है।

एलोपैथी एक शास्त्र है। जिनने पूछा है, वे डॉक्टर हैं, इसलिए उपयोगी होगा। एलोपैथी एक शास्त्र है। होमियोपैथी से मिलाना मत। समन्वय मत करना। होमियोपैथी दूसरे ढंग की बात है। होमियोपैथी में भी सार है। लेकिन उसकी प्रक्रिया, आयोजना अलग है। और आयुर्वेद में भी सार है। और, और भी चिकित्सा-विधियां हैं--यूनानी है...। इन सब में सार है। लेकिन इन सबका संयोग किया तो मरीज मरेगा। इनका संयोग करना मत। मरीज पर ध्यान रखना। समन्वय पर ध्यान मत रखना।

समर्पण की एक विधि है कि अहंकार जाए। और अहंकार तभी जाएगा जब कृत्य जाए, कर्ता जाए। संकल्प की दूसरी विधि है, कि तुम्हारा सोया हुआ चैतन्य सक्रिय हो उठे; तुम्हारी मूर्च्छा टूटे। मूर्च्छा तभी टूटेगी जब तुम प्रगाढ़ श्रम करोगे; नहीं तो नहीं टूटेगी। ये दोनों अलग द्वारों से परमात्मा की तरफ जा रहे हैं।

तुम समन्वय की पूछो ही मत। तुम साधना की पूछो।

'आप कहते हैं कि मनुष्य अपने लिए पूरी तरह जुम्मेवार है, और यह भी कहते हैं कि समस्त कुछ प्रभु करता है, अंश क्या कर सकता है? इन दो वक्तव्यों के बीच समन्वय कैसे हो?'

समन्वय बौद्धिक खुजलाहट है। खुजलाने से कुछ लाभ नहीं होता। खुजलाहट और बढ़ती है। अस्तित्वगत खोज करो। दोनों सच हैं। और दोनों मैं कहता हूं। क्योंकि मैं दोनों तरह के लोगों के लिए बोल रहा हूं। मैं सब तरह के लोगों के लिए बोल रहा हूं। महावीर ने एक बात कही, मीरा ने दूसरी बात कही। महावीर के पास जो लोग इकट्ठे हुए, वे वे ही थे जो संकल्प की तरफ जा सकते थे। मीरा के पास वे लोग इकट्ठे हुए, जो समर्पण में गति कर सकते थे।

मेरे पास सब तरह के लोग हैं। मैं किसी एक पंथ की बात नहीं कर रहा हूं--जानकर। क्योंकि एक पंथ की बात बड़ी खतरनाक सिद्ध हुई। उसका एक लाभ था कि लोग दुविधा में नहीं पड़े। महावीर एक ही बात कहते रहे--जिसको जमे, रहे; जिसको न जमे, जाए। महावीर को अपनी बात सही है, यह कहने के लिए दूसरे की बात गलत है, यह भी कहने के लिए मजबूर होना पड़ा--जानते हुए कि दूसरा मार्ग भी ले जाता है। मीरा को यह जानते हुए कि दूसरा मार्ग भी ले जाता है, फिर भी उसे गलत कहना पड़ा। नहीं तो जो सुनने वाले हैं, वे दुविधा में पड़ते हैं। यह तो लाभ था।

अब तक मनुष्य-जाति के इतिहास में यही प्रक्रिया जारी रही। प्रत्येक ने एक मार्ग की बात कही; और सब मार्ग गलत हैं। इसलिए नहीं कि और सब मार्ग गलत हैं। यह कैसे हो सकता है कि बुद्ध और महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट को इतनी समझ न हो--कि अनंत मार्ग हैं उस तक पहुंचने के। उन्हें पता है। उन्हें भलीभांति पता है कि दूसरे मार्गों से भी लोग पहुंचे हैं। लेकिन एक मजबूरी है। और मजबूरी यह है कि अगर वे कहें कि सभी मार्गों से लोग पहुंचते हैं, तो जैसे तुमने प्रश्न पूछा है ऐसे ही उनके अनुयायी भी पूछते : 'तो फिर समन्वय कैसे करें?' और समन्वय से कोई नहीं पहुंचता। तो उन्होंने निश्चित रूप से कहा : एक ही रास्ता है, बस एक ही रास्ता है। इससे सुनने वाले को सुविधा रही, स्पष्टता रही, उलझन न बढ़ी। समन्वय की झंझट न आई। समन्वय की झंझट से बचाने के लिए उन्हें कहना पड़ा कि कोई दूसरा रास्ता सही नहीं है, बस यही रास्ता सही है।

तो साधना के अतिरिक्त कोई मार्ग न बचा। समन्वय की कोई सुविधा ही नहीं है। कुछ करना हो तो साधना करो। फिर जिसको रुचा वह रुका; जिसको नहीं रुचा, वह दूसरे मार्गों पर चला गया। यह तो लाभ था। लेकिन एक नुकसान हुआ। नुकसान हुआ कि वैमनस्य पैदा हुआ। सारे पंथों के लोग एक-दूसरे के दुश्मन हो गये। पृथ्वी बड़ी शत्रुता से भर गयी। हिन्दू मुसलमान से लड़ा, जैन बौद्ध से लड़ा, बौद्ध हिन्दू से लड़ा। हिन्दू ईसाई से लड़ा, ईसाई किसी और से। और इस तरह सारी पृथ्वी कलह से भर गयी।

अब समझना। ... अगर तुमसे कहा जाए 'सब मार्ग पहुंचाते हैं', तो तुम समन्वय की झंझट में पड़ते हो। अगर तुमसे कहा जाए 'एक ही मार्ग पहुंचाता है', तो तुम दूसरों से विवाद करने में लग जाते हो--कि तुम्हारा मार्ग गलत, मेरा मार्ग सही। चलते नहीं तुम। चलना जैसे है ही नहीं। या तो समन्वय करोगे या विवाद करोगे। मार्ग चलने के लिए है। मार्ग उसी का है जो चलता है। वही समझा मार्ग को जो चला। चलने के अतिरिक्त मार्ग को कोई कैसे समझेगा?

लेकिन आदमी बड़ा उपद्रवी है। तो महावीर, बुद्ध और कृष्ण ने लोगों को बचा लिया--समन्वय के उपद्रव से। मगर लोग दूसरे उपद्रव में उतर गये—लोग विवाद में उतर गये। या तो दूसरा गलत है, यह सिद्ध करेंगे; या दोनों सही हैं, यह सिद्ध करेंगे। और दोनों ही हालत में आदमी बुद्धि की ही बातों में उलझा रह जाता है।

तो यह हानि हुई। पृथ्वी हिंसा से भर गयी। सारी मनुष्य-जाति का इतिहास धर्म के नाम पर हत्या का इतिहास है। ऐसा होना नहीं चाहिए था। धर्म के कारण जितना अधर्म हुआ है, उतना अधर्म किसी और बात के कारण नहीं हुआ। यह बड़ी हैरानी की बात है! धर्म तो प्रेम का संदेश है। धर्म तो प्रभु का संदेश है। लेकिन धर्म शैतान के हाथ में पड़ गया। मंदिर में प्रतिमाएं प्रभु की हैं, लेकिन पीछे जो बैठा है प्रतिमाओं के, वह शैतान है। बातें प्रेम की--और हाथों में तलवारें! शांति

के कबूतर उड़ाये जा रहे हैं और पीछे जहर तैयार किया जा रहा है--हिंसा का, क्रोध का, शत्रुता का।

मनुष्य को दोनों झंझटों से बचाना है कि वह विवाद में भी न पड़े और समन्वय में भी न पड़े। इसलिए मैं सभी मार्गों की बात कर रहा हूं। कभी समर्पण की चर्चा करता हूं, कभी संकल्प की चर्चा करता हूं--ताकि तुम्हें यह बात समझ में आ जाए कि दूसरा भी सही है। यह और बात है कि तुम्हें वह मार्ग नहीं रुचता। यह तुम्हारी मर्जी की बात है। इससे मार्ग गलत नहीं होता।

कोई आदमी पूरब की तरफ हाथ उठाकर प्रार्थना करता है, कोई पश्चिम की तरफ। तुम्हें पूरब की तरफ हाथ उठाकर प्रार्थना करनी जचती है, ठीक...। किसी को पश्चिम की तरफ हाथ उठाकर प्रार्थना करनी जचती है। इससे कुछ दूसरा गलत नहीं हो जाता। दोनों प्रार्थना कर रहे हैं। दोनों सही हैं। हाथ किस तरफ जोड़ते हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? क्योंकि सब तरफ परमात्मा है। कहीं भी हाथ जोड़ो, हाथ उसी के लिए जुड़ते हैं। काशी जाओ कि काबा ... कुछ भेद नहीं पड़ता। और कुरान पढ़ो कि वेद, कुछ भेद नहीं पड़ता।

लेकिन ध्यान रखना, दूसरे खतरे में मत पड़ जाना कि अब वेद और कुरान में समन्वय करना है। न समन्वय करना है, न संघर्ष करना है। सारे मार्ग तुम्हें उपलब्ध किये दे रहा हूं। उनमें से जो रुच जाए, जो तुम्हारे मन में उमंग भर दे, जिसके साथ तुम डोल उठो--उस पर चलना है। और चलने से ही यात्रा तय होती है।

ये दोनों वक्तव्य ... बुद्ध जिसे कहते हैं कुशल उपाय ... ये दोनों वक्तव्य कुशल उपाय हैं।

मैं जानता हूं : तुम्हारे मन में फिर भी सवाल उठ रहा होगा कि 'चलो, न करेंगे समन्वय, मगर ये दोनों एक साथ सही कैसे हो सकते हैं? स्वभावतः, नहीं करते हैं समन्वय, हमें कोई झंझट में नहीं पड़नाहै समन्वय की। मगर दोनों वक्तव्य विपरीत हैं, विरोधाभासी हैं।' इन दोनों में एक ही सही हो सकता है', ऐसा तुम्हारी बुद्धि कहती है।

बुद्धि के तर्क सीमित हैं। बुद्धि कहती है : या तो यह सही या वह सही, दोनों कैसे सही होंगे? या तो अभी रात है या अभी दिन है। मैं कहूं कि अभी रात है और फिर मैं कहूं कि अभी दिन है, तो तुम कहोगे : 'हमें समन्वय भी नहीं करना, हम किसी विवाद में भी नहीं पड़ना चाहते। मगर आप हमें उलझन में डाल रहे हैं। क्योंकि दोनों बातें कैसे हो सकती हैं कि अभी दिन भी और अभी रात भी?'

दोनों बातें हो सकती हैं, क्योंकि तुमने दिन और रात को अलग समझा है, वहीं भूल हो गयी। इसे ऐसा समझो : जैसे मुर्गी और अंडा! सदियों से दार्शनिक पूछते रहे हैं : कौन पहले—मुर्गी पहले कि अंडा पहले? प्रश्न बिलकुल सार्थक लगता है। लेकिन जब प्रश्न को विचारने जाओ तो झंझट आती है। अगर कहो मुर्गी पहले, तो

प्रश्न उठता है : मुर्गी आई कहां से होगी ? और तब अंडा उभरने लगता है । अगर कहो अंडा पहले, तो झंझट खड़ी होती है कि अंडा आएगा कहां से, कोई मुर्गी रखेगी तभी न ? तो तुम एक दुष्चक्र में पड़े । कभी तय न कर सकोगे कि कौन पहले ?

मैं तुमसे क्या कहना चाहता हूं ? मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि तुमने उनको दो माना, वहीं भूल हो गयी । उसी भूल से भूल-भरा प्रश्न पैदा हुआ । मुर्गी-अंडा दो नहीं हैं। अंडा मुर्गी हो रहा है, मुर्गी अंडा हो रही है । ये दो अवस्थाएं हैं एक ही घटना की। अंडा एक अवस्था है मुर्गी की, मुर्गी दूसरी अवस्था है अंडे की । ये दो नहीं हैं, जैसे जवानी और बुढ़ापा दो नहीं हैं । जैसे जवानी से ही बुढ़ापा आता है-- ऐसे ही अंडे से मुर्गी, मुर्गी से अंडा आता है । ये वर्तुलाकार अवस्थाएं हैं । अंडा मुर्गी होने के मार्ग पर है। मुर्गी अंडे होने के मार्ग पर है ।

जिसको तुम रात कहते हो, वह दिन होने के मार्ग पर है । जब तुम कहते हो रात है, तब दिन होने की तैयारी कर रहा है । तब दिन पैदा हो रहा है--रात के गर्भ में छिपा हुआ दिन तैयार हो रहा है । जब तुम कहते हो दिन है, तब रात करीब आ रही है। दिन के गर्भ में छिपी रात बैठी है । रात और दिन एक सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए अगर मैं कहूं अभी दिन है, तो भी ठीक कहता हूं और कहूं अभी रात है, तो भी ठीक कहता हूं, क्योंकि रात और दिन दो नहीं हैं। ऐसे ही जीवन और मृत्यु भी दो नहीं है। संयुक्त हैं। एक ही हैं ।

तो तुम्हारी अड़चन मैं समझता हूं । मन में सवाल उठता होगा : इतने विपरीत वक्तव्य कि सब कुछ जुम्मेवारी मेरी है और कुछ भी जुम्मेवारी मेरी नहीं है !-- ये दोनों एक साथ कैसे ठीक होंगे ?

बुद्ध ने इसको कुशल उपाय कहा है । वह भी समझ लेना जरूरी है । कुशल उपाय का अर्थ होता है : जो कहा जा रहा है वह सत्य है, ऐसा नहीं; लेकिन सत्य को जनाने में उपयोगी है, बस इतना। भेद समझ लेना । जो कहा जा रहा है वह सत्य है, ऐसा नहीं । आत्यंतिक सत्य है, ऐसा नहीं । लेकिन सत्य को जानने में सहयोगी है, उपाय है ।

समझो । तुम घर के भीतर बैठे हो, और घर में आग लग गयी है । बाहर से कोई चिल्लाया घर में आग लगी है । तुम तो भागकर निकल गये, लेकिन छोटे-छोटे बच्चे हैं घर में, उन्हें कुछ अनुभव ही नहीं कि आग लगने का क्या मतलब होता है । वे अपने खिलौनों में खेल रहे हैं । अब तुम चिल्लाते हो बाहर से कि बच्चो, बाहर आ जाओ, घर में आग लगी है ! तुम भीतर भी नहीं जा सकते बच्चों को लेने । लपटें बढ़ती जा रही हैं । किसी की हिम्मत भीतर जाने की नहीं है । तुम सब चिल्लाते हो कि बच्चो, बाहर आ जाओ, घर में आग लगी है ! लेकिन बच्चों को 'आग लगी है', इससे कुछ परिणाम नहीं होता, क्योंकि उन्होंने कभी जाना ही नहीं कि आग लगी है। और आग लगना है तो लगी रहे। बल्कि शायद प्रसन्न ही हो रहे हैं कि अहा, कैसी लपटें उठ रही हैं ! कैसा मजा आ रहा है ! ज्यादा से ज्यादा उन्होंने फिल्म

में लगी आग देखी है, टेलीविजन पर लगी आग देखी है। वे आह्लादित हो रहे हैं कि आज घर में भी लगी है ।

तुम क्या करोगे ? बुद्ध कहते हैं कि कुशल उपाय करना होगा । जो बात बच्चे समझ सकें, वह कहनी होगी । बुद्ध ने कहा है : तो समझदार बाप कहता है कि बच्चो बाहर आ जाओ, मैं मेला गया था, तुम्हारे लिये खिलौने खरीद कर लाया हूं। खिलौने इत्यादि बिलकुल नहीं हैं । यह सुनकर ही कि बाप खिलौने लाया है मेला से, बच्चे भागे बाहर आ जाते हैं । आग नहीं निकाल पाती बाहर । आग वास्तविक है । खिलौने हैं नहीं । बाप झूठ बोला है । लेकिन क्या तुम इसे झूठ कहोगे ? क्या तुम यह कहोगे कि बाप पाप का भागीदार हुआ, असत्य बोला ? नहीं; इसको बुद्ध कहते हैं : कुशल उपाय ! यह झूठ भी नहीं है । क्योंकि इससे सत्य का बोध हो रहा है । यह सत्य की सेवा में संलग्न है, तो झूठ कैसे होगा ? लेकिन इस परिस्थिति में बाप का यह कहना कि बच्चो बाहर आ जाओ, तुमने कहा था कि खिलौने खरीद लाना, बहुत खिलौने ले आया हूं, देखो कितने खिलौने ले आया हूं ! तब बच्चे भूल जाते हैं आग, छोड़ आते हैं पुराने खिलौने, भागकर बाहर निकल आते हैं । पूछते हैं : कहां हैं खिलौने ?

अब यह दूसरी बात है। अब बाप समझा लेगा कि आग लगी है, पागलो । मगर बाहर तो निकल आए !

ये कुशल उपाय हैं ।

ये दोनों कुशल उपाय हैं। यह कहना कि सब कुछ तुम्हारी जुम्मेवारी है, एक उपाय है । जो यह सुनकर बाहर आ जाए तो ठीक है । यह कहना कि तुम्हारी कोई भी जुम्मेवारी नहीं, सब परमात्मा का खेल है--यह भी कुशल उपाय है । जो इसे सुनकर बाहर आ जाए, वह भी ठीक । बाहर आकर तुम पाओगे कि अंततः न ऐसा है न वैसा है ।

क्यों अंततः न ऐसा है न वैसा ? क्योंकि यह बात ही सोचनी कि तुम परमात्मा से अलग हो, गलत है । और दोनों में यह बात मान ली गई कि तुम परमात्मा से अलग हो । इस पर तुमने खयाल नहीं किया कि जब यह कहा गया कि तुम ही जुम्मेवार हो, अस्तित्व जुम्मेवार नहीं--तब भी तुम को अलग मान लिया गया, भिन्न मान लिया गया । तुम अस्तित्व से अलग स्वीकार कर लिये गये । पृथक । तुम जुम्मेवार हो !

और तुमने खयाल किया ? दूसरी घटना में जहां कहा गया, 'तुम जुम्मेवार नहीं हो, परमात्मा जुम्मेवार है'--वहां भी परमात्मा को तुमसे अलग मान लिया गया । दोनों हालत में तुम परमात्मा से भिन्न हो, यह बात स्वीकार कर ली गयी । दोनों विपरीत दिखाई पड़ते हैं, लेकिन यहां दोनों बिलकुल एक हैं । दोनों का मौलिक अर्थ एक है कि तुम परमात्मा से भिन्न हो। एक में कहा गया: अपनी भिन्नता को स्पष्ट

कर लो। दूसरे में कहा गया : समर्पित कर दो। मगर भिन्न हो, यह स्वीकार कर लिया गया।

और ये दोनों बातें गलत हैं। तुम भिन्न नहीं हो। न तो तुम्हारी जुम्मेवारी है, न तो परमात्मा की; क्योंकि तुम दो ही नहीं हो, एक ही है। मगर यह अनुभव तो तब होगा जब तुम घर के बाहर आ जाओ; यह आग लगे घर को छोड़ दो।

कोई खिड़की से कूदकर निकल आए तो ठीक; कोई दरवाजे से निकल आए तो ठीक। और कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि द्वार-दरवाजे काम नहीं आते; दीवाल तोड़कर भी निकलना पड़ता है। कैसे तुम बाहर आते हो, यह बात गौण है। बाहर आ जाते हो, यही बात सार्थक है।

लेकिन तुम उलटी बात पूछ रहे हो : घर में आग लगी है। खिड़की के पास खड़ा कोई चिल्ला रहा है कि छलांग मारो खिड़की से, निकल आओ खिड़की से ! कोई दरवाजे पर खड़ा कह रहा है कि प्यारे, दरवाजे से भाग आओ ! तुम पूछते हो : 'दोनों में समन्वय कैसे हो ? खिड़की सही कि दरवाजा सही ?' घर में आग लगी है। तुम कहते हो : 'जब तक समन्वय न हो जाए, तब तक हम न निकलेंगे।'

अब, खिड़की और दरवाजे का समन्वय कैसे होगा ? और समन्वय में बड़ी देर लग जाएगी। फिर शायद निकलने का कोई अर्थ भी न रह जाएगा। शायद घर जलकर और घर के साथ जलकर तुम भी राख हो जाओगे।

इसलिए मैं कहता हूं : समन्वय की फिकर छोड़ो, साधना की फिकर करो। खिड़की के पास हो तो खिड़की से कूद आओ; दरवाजे के पास हो तो दरवाजे से कूद आओ। अब इसमें शिष्टाचार और संस्कार और संस्कृति का भी विचार मत करो कि खिड़की से कूदेंगे तो कैसा रहेगा ! जब घर में आग लगती है तो आदमी यह नहीं सोचता कि खिड़की से कूदना शोभायुक्त है, कि लोग क्या कहेंगे कि खिड़की से कूदा ! और खिड़की से कूदा तो हवा में कपड़े उड़ जाएंगे और लोग देख लें कि नंगा हूं, कि आज तो अंडरवियर भी नहीं पहना हुआ है। यह भी नहीं सोचोगे। यह कौन फिकर करता है ! जब घर में आग लगी हो तो आदमी बच जाना चाहता है।

ऐसी ही घर में आग लगी है। जितने शास्ता हुए, जितने सद्गुरु हुए—उन सबने, जो निकटतम मार्ग दिखाई पड़ा, या जिस मार्ग से उन्होंने आग से अपने को बचाया, उसकी बात कह दी है। तुम्हें जो निकट पड़ रहा हो...। अब कई बार ऐसा हो जाता है खिड़की पास है, दरवाजा बहुत दूर है; लेकिन तुम कहते हो कि हम तो दरवाजे से निकलेंगे, क्योंकि हमारे पिताजी भी दरवाजे से निकले थे, उनके पिताजी भी दरवाजे से निकले थे। हम सब दरवाजे निकलते आए। रघुकुल रीति सदा चली आई ! हम तो दरवाजे से ही निकलेंगे। प्राण जाएं पर वचन न जाई ! ...तो जाने दो प्राण, तुम समझो। जो निकट हो...तुम्हारे पिताजी निकले कि नहीं उससे...। तुम्हें समझाया गया है उससे निकलने के लिए या नहीं, तुम्हें संस्कार दिये गये हैं

या नहीं--यह सवाल नहीं है।

अब मेरे पास निरंतर ऐसे लोग आते हैं। कोई जैन घर में पैदा हुआ है और उसे संकल्प का मार्ग जमता ही नहीं; उसे भक्ति का भाव जमता है। लेकिन महावीर के साथ भक्ति बैठती नहीं। और भक्ति बिठाओ तो महावीर का मार्ग विकृत होता है। महावीर के मार्ग पर कहां भक्ति ? महावीर के मार्ग पर भगवान भी नहीं तो भक्ति कहां ? मूल ही नहीं है। महावीर कहते हैं : 'कोई भगवान नहीं है, तुम ही भगवान हो। आत्मा ही परमात्मा है। किसकी पूजा कर रहे हो ?--अपनी पूजा ! किसकी आरती उतार रहे हो ?--अपनी आरती ! समय मत गंवाओ—आरती इत्यादि में, पूजा-प्रार्थनाओं में ! सुधारो अपने को, संवारो अपने को !'

वहां गीत नहीं, गान नहीं। वह जो मीरा कहती है कि मृदंग बज उठी, वीणा छेड़ी गयी है, पैरों में घूंघर बंध गये हैं, बड़ा अजीब संगीत उठ रहा है--ऐसा कोई संगीत महावीर के मार्ग पर नहीं है। वहां बिलकुल सन्नाटा है। वहां सिर्फ एक संगीत स्वीकार है--वह शून्य का संगीत है; वह शांति का संगीत है। स्वर-हीन... वहां स्वर नहीं उठते। वहां अद्भुत मृदंग नहीं बजती। वहां डफ नहीं बजती। वहां बांसुरी की आवाज नहीं।

लेकिन जिसको रस है, जिसको भाव है, भक्ति है, वह क्या करे ? जैन घर में पैदा हुआ, तो अड़चन है। वह महावीर की पूजा करता रहेगा। वह महावीर की बातें भी सुनता रहेगा। लेकिन उसके हृदय में कोई बीज न पड़ेगा। उसे कृष्ण की बांसुरी चाहिए थी।

ऐसा दूसरे घर में भी हो रहा है। कोई भक्ति-मार्ग में पैदा हुआ है और उसे बात बिलकुल नहीं जचती। उसे यह रास-लीला इत्यादि सब पाखंड मालूम होता है। ये कृष्ण कन्हैया, ये बांसुरी बजाते हुए कृष्ण...उसे बिलकुल नाटकीय मालूम पड़ते हैं। उसकी बुद्धि को यह बात जचती नहीं कि यह क्या माजरा है ? परम अवस्था तो महावीर जैसी होनी चाहिए। यह क्या मोर-मुकुट बांधे खड़े हैं ? यह कोई नाटक हो रहा है ? यह क्या मामला है ? स्त्रियां नाच रही हैं, आप बीच में खड़े बांसुरी बजा रहे हैं ! यह तो सांसारिक है। वीतरागता कहां है ? वीतरागता महावीर में है।

मगर वह हिन्दू-घर में पैदा हुआ है, भक्त-घर में पैदा हुआ है। वह महावीर के मंदिर में नहीं जा सकता। उसके बाप-दादे वहां नहीं गये। उसे तो जाना है कृष्ण के मंदिर में, तो जाता है। कृष्ण को झूला झुलाता है। और भीतर जानता है कि 'सब नासमझी है, मैं यह क्या कर रहा हूं ? किसको झूला झुला रहा हूं ? यहां कोई भी नहीं है। मगर झुलाना है, क्योंकि पिताजी झुलाते रहे; उसके पहले और भी पिताजी झुलाते रहे। यह सदा से झूला झूलता रहा है। इसको किसी तरह झुलाओ और बच्चों को भी सिखा जाओ कि बेटे तुम भी झुलाना।' मगर जीवन में कहीं कोई क्रांति पैदा नहीं होती।

मैं तुमसे कहता हूं : अपने भीतर झांको। परंपरा में मत झांको। अपने भीतर झांको। क्योंकि परंपरा मुक्त होने को नहीं है, तुम्हें मुक्त होना है। इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम्हारे पिता कैसे मुक्त हुए थे? हुए थे कि नहीं हुए थे, इससे भी कुछ फर्क नहीं पड़ता। सवाल यह है कि तुम्हें मुक्त होना है। तुम कैसे मुक्त हो सकोगे? तुम्हें कौन-सी बात रास आती है? तुम किस बात के साथ राजी हो पाते हो? किस बात के साथ सहज संबंध जुड़ जाता है? सहज...चेष्टा नहीं करनी पड़ती।

तुम देखते हो न? मीरा की बात चलती है, कोई सहज रोने लगता है। उसके ही पास कोई बैठा है, बिलकुल उसे कुछ भी नहीं होता। जिसको कुछ नहीं होता, वह सोचता है कि यह औरत कुछ पागल मालूम होती है। इसका दिमाग खराब है, हिस्टीरिकल है। अब इसको मिरगी-विरगी तो नहीं आ जाएगी? अब क्या करना--यहां से सरक जाएं या क्या करें? कि अपने ऊपर ही पड़ने वाली है?

तुम फिकर में पड़ जाते हो। और जिसकी आंख से आंसू बह रहे हैं, उसे हैरानी होती है कि तुम अंधे हो? तुम बहरे हो? तुम्हें कुछ सुनाई नहीं पड़ता? तुम पत्थर हो, पाषाण हो? बात क्या है? तुम मूर्ति की तरह क्यों बैठे हुए हो? हिलते भी नहीं! तुम्हें सुनाई नहीं पड़ रहा है? तुम्हारे हृदय में कोई तार नहीं छिड़ रहे हैं?

और दोनों सही हैं। दोनों अपने-अपने में सही हैं। और दोनों में समन्वय करने की कोई जरूरत नहीं है। मैं न चाहूंगा कि ये सज्जन जो बिलकुल मूर्तिवत् बैठे हैं, इस स्त्री का हाथ पकड़कर, और नाचें। नाच भी खराब हो जाएगा, इनकी शांति भी खराब हो जाएगी। दोनों ही खराब हो जाएंगे। नहीं! ये कृपा करके अलग-अलग ही रहें। स्त्री को नाचने दो, इनको ध्यान करने दो। उसे प्रार्थना करने दो, इनको संकल्प करने दो। उसे रस में जाने दो, इन्हें विरस में जाने दो। उसे राग से मिलेगा परमात्मा, इन्हें विराग से मिलेगा परमात्मा। दोनों परमात्मा में पहुंच जाएं—यह बात महत्त्वपूर्ण है।

मार्ग का क्या मूल्य है? तुम किस मार्ग से चलकर यहां तक आए हो, इसका अब क्या मूल्य है? तुम बैलगाड़ी पर बैठकर आए, कि घोड़ागाड़ी पर बैठकर आए, कि ऊंटगाड़ी पर बैठकर आए, कि पैदल ही चले आए हो, कि पूरब से, कि पश्चिम से, कि दौड़ते, कि हांफते--कैसे तुम चले आए, अब इसका क्या मूल्य है? यहां तुम बैठ गये आकर, तुम्हारे इस बैठने में तुम्हारे आने का, तुम्हारे मार्ग का क्या लेना-देना है? बात खत्म हो गयी। परमात्मा में विराजमान हो जाओ।

ये दो मूल उपाय हैं। अगर संकल्प तुम्हारे भीतर चुनौती पैदा करता हो, संकल्प की बात सुनकर तुम्हारे पर फड़फड़ाते हों कि उड़ जाऊं आकाश में, तो ठीक, उसी मार्ग से चल पड़ो। अगर संकल्प की बात सुनकर तुम्हारे भीतर कोई ऊर्जा न उठती हो, कोई उमंग न जगती हो, कोई स्वर न गूंजता हो,कोई सिहरन न आती हो; और जब समर्पण की बात होती हो तब तुम ऐसे डोलने लगते हो जैसे बीन को सुनकर सांप

डोलने लगता है--तो वही तुम्हारा मार्ग है। साधना--समन्वय नहीं।

और अंततः तुम पाओगे : न ऐसा है, न वैसा है। तुम पूछना चाहोगे : 'फिर अंततः कैसा है?' नहीं कहा जा सकता। कहने का कोई उपाय नहीं है। कोई नहीं कह पाया। कोई नहीं कह पाएगा। जो भी कहा जाएगा, वह या तो ऐसा होगा, या वैसा होगा। या तो संकल्प का होगा, या समर्पण का होगा। ये दो भाषाएं हैं। या तो भक्ति या ज्ञान।

लेकिन जो वस्तुतः है, जैसा है, सब मार्ग जहां जाकर समाप्त हो जाते हैं, जो मार्गातीत--उसे कहने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि उसको कहने के लिए भाषा का उपयोग करना पड़ेगा। भाषाएं दो ही हैं--भक्ति की या ज्ञान की। या तो महावीर की भाषा है, या मीरा की। या तो पतंजली की भाषा है या चैतन्य की। दो ही भाषाएं हैं। तो जैसे ही कही जाएगी बात...या तो पहली हो जाएगी या दूसरी... कहते ही विकृत हो जाएगी।

जैसा है, उसे तो जानना पड़ेगा। मगर ये दोनों मार्ग उस तक पहुंचा देते हैं।

चलो! बैठे-बैठे सोचो मत! सोचना बहुत हो चुका। कब तक और सोचना है?

दूसरा प्रश्न : संसार में एक आप ही हैं जिससे भय नहीं लगता था। पर इधर कुछ दिनों से आप से भी भय लगने लगा है। इतने प्यारे भगवान से भय लगे, ऐसा तो मैं नहीं चाहता। यह क्या स्थिति है प्रभु?

*

पूछा है अगेह भारती ने। अच्छा है।

यह भय वस्तुतः मेरा नहीं है। तुम्हारा ध्यान धीरे-धीरे गहन हो रहा है; मृत्यु के करीब आ रहा है, इसलिए पैदा हो रहा है। जैसे-जैसे ध्यान गहरा होगा, भय आना शुरू होता है। क्योंकि ध्यान की अंतिम गहराई में मृत्यु है। वास्तविक मृत्यु वहीं घटती है। और मृत्युएं तो ऊपर-ऊपर हैं। देह मर जाती है, मन तो जारी रहता है। फिर मन नई देह धर लेता है। फिर नया गर्भ, फिर नयी यात्रा शुरू हो जाती है। वस्त्र बदलते हैं साधारण मृत्यु में, तुम नहीं बदलते।

ध्यान में महामृत्यु घटती है। तुम्हारा मन ही मर जाता है। तुम्हारा मैं-भाव मर जाता है।

तो जब उस मृत्यु के करीब आने लगोगे तो गहन घबड़ाहट होगी, भय होगा। और स्वभावतः, चूंकि मेरे संग-साथ चलकर वह मृत्यु करीब आ रही है, इसलिए तुम मुझसे भी भयभीत होने लगोगे, क्योंकि यही आदमी तुम्हें उस तरफ लिये जा रहा है।

पुराने शास्त्र कहते हैं : 'आचार्यो मृत्युः! गुरु मृत्यु-रूपी है। गुरु मृत्यु है।' वह आचार्य की परिभाषा है। जिसके पास मृत्यु घट जाए, वही आचार्य! वही गुरु!

कठोपनिषद की कथा तुम्हें याद है? वह कथा वस्तुतः मृत्यु के पास भेजने की

नहीं, गुरु के पास भेजने की कथा है। नचिकेता के बाप ने बड़ा यज्ञ किया है। और वह बांट रहा है यज्ञ के बाद ब्राह्मणों को। नचिकेता बैठा है--छोटा-सा नचिकेता! जरा-सा बच्चा है। जिज्ञासाएं उसे उठती हैं। छोटा बच्चा है। बाप तो पुराना घाघ है, अनुभवी आदमी है, चालाक-चतुर है। बेटा तो निष्कपट है, सरल-चित्त है। वह बाप की बेइमानियां देख रहा है वहीं बैठा-बैठा। बाप ऐसी गायें ब्राह्मणों को दे रहा है, जिनका दूध कई दिन पहले ही समाप्त हो गया है। और नचिकेता को पता है। वह कहता है: 'पिताजी, ये गायें किसलिए दे रहे हैं? इनमें दूध इत्यादि तो है ही नहीं।' बाप को बड़ी नाराजगी होती है, क्योंकि वे ब्राह्मण भी सुन रहे हैं।

बेटे अक्सर पोल खोल देते हैं। वह वहीं बैठा है। और वह कहता है कि यह गाय तो बिलकुल मरी-मराई है, इसमें कुछ नहीं है। ये ब्राह्मणों को उलटा घासपात इसको खिलाना पड़ेगा। पिताजी, आप यह क्या कर रहे हैं? यह कैसा दान? कुछ मतलब की चीज दो!

बाप गुस्से में आ जाता है। और वह पूछता ही चला जाता है। बाप कहता है कि मैं सब दान कर दूंगा। कुछ भी बचाऊंगा नहीं। महादानी होना चाहता हूं।

तो बेटा कहता है: 'पिताजी, मैं भी तो आपका हूं, मुझे भी दान कर देंगे क्या?' यह बात बड़ी कीमत की पूछता है वह। क्योंकि हम तो व्यक्तियों पर भी परिग्रह कर लेते हैं। तुम कहते हो: 'पत्नी--मेरी पत्नी! पति--मेरा पति।' जैसे कि पति-पत्नी कोई संपत्ति है! मगर यही चलता रहा है। 'स्त्री-संपत्ति' ऐसा शब्द है हमारे पास। नारी-संपत्ति! बेहूदे शब्द हैं, कुरूप शब्द हैं। भाषा से चले जाने चाहिए। अपमानजनक हैं। क्योंकि कोई स्त्री तुम्हारी संपत्ति कैसे हो सकती है?

बाप बेटी का विवाह करता है तो कहता है 'कन्या-दान'! हद हो गयी पागलपन की! दानकर रहे हो? जीवंत आत्माएं दान की जा सकती हैं? तुम हो कौन दान करने वाले? यह आत्मा तुम्हारी नहीं है, तुम से आई हो भला। तुम रास्ते बने थे इसके आने में। मगर यह आती तो परमात्मा से है, तुम्हारी नहीं है। तुम दान कर रहे हो! एक आत्मा पैदा करके तो बताओ, फिर दान करना। जो पैदा कर सको, उसके मालिक तुम हो सकते हो; लेकिन जो तुम पैदा ही नहीं कर सकते, उसके मालिक कैसे? और तब तो मालकियत किसी चीज की नहीं हो सकती। गाय तुम पैदा कर सकते हो, कि वृक्ष तुम पैदा कर सकते हो, कि जमीन तुम पैदा कर सकते हो? क्या तुम पैदा कर सकते हो? यहां जो भी मूल्यवान है, जीवंत है-- कुछ भी पैदा नहीं किया जा सकता। तुम मुफ्त में दावेदार बन जाते हो।

तो नचिकेता ने पूछा कि पिताजी, आप सदा कहते हैं कि मैं आपका हूं। तो, तो झंझट खड़ी हुई, आप मुझको भी दान कर देंगे क्या? आप कहते हैं, जो आपका है, सब दान कर देंगे।

बाप तब तक बड़े गुस्से में आ गया था। उसने कहा: 'हां, दान कर दूंगा। तुझे

मृत्यु को दे दूंगा।' और नचिकेता जिद्द करने लगा कि फिर कब देंगे मृत्यु को? तो बाप ने कहा: तू जा, मृत्यु का यह मार्ग रहा। खोज मृत्यु को। मैंने तुझे दे दिया।

और नचिकेता गया। मृत्यु के द्वार पर तीन दिन बैठा रहा, क्योंकि मृत्यु के देवता बाहर गये थे। गये होंगे लेने लोगों को--कहीं मलेरिया होगा, कहीं प्लेग होगी। गये होंगे डॉक्टरों से जूझने। मृत्यु-देवता की पत्नी ने बहुत समझाया। छोटा-सा बच्चा। 'भोजन कर ले, पानी पी ले।' उसने कहा: 'कुछ भी नहीं। पहले मृत्यु-देवता से मिलूंगा।'

और तीन दिन बाद मृत्यु के देवता आये। और बहुत खुश हुए इस बच्चे की निष्ठा से। इसकी सरलता से भी। यह अपने बाप से ज्यादा सरल साबित हुआ। और अद्भुत साहस वाला है कि बाप ने तो क्रोध में कहा था मृत्यु को देता हूं, यह चला ही आया। इसने मान ही लिया। इसने ना-नुच भी न की। इसने न कहा: मैं न मरूंगा, मैं नहीं मरना चाहता। ऐसा भी न कहा। इसने कहा: ठीक है, जब पिता कहते हैं मृत्यु तो मृत्यु! जब दान कर दिया तो कर दिया।

और वह तीन दिन बाहर था तो इसने पानी भी न लिया और भोजन भी न लिया। तो मृत्यु के देवता उसकी सरलता, निष्कपटता, साहस, अदम्य साहस से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने कहा: तू तीन वरदान मांग ले। तू जो चाहे मांग ले।

लेकिन उसने कहा कि मुझे तो सिर्फ एक बात जाननी है कि मरने के बाद क्या होता है? मृत्यु के बाद क्या होता है? कोई बचता है कि नहीं बचता है?

बहुत समझाया मृत्यु के देवता ने: तू यह ले ले, तू वह ले ले, धन ले ले, घोड़े ले ले, रथ ले ले, सारा साम्राज्य ले ले पृथ्वी का।

उसने कहा: क्या करूंगा, क्योंकि एक दिन मौत आएगी और आप सब छीन लेंगे। आप किससे कह रहे हैं यह बात? आप ही कह रहे हैं! अभी दे देंगे, थोड़े दिन भुलावा रहेगा, फिर मौत आएगी, फिर छीन लेंगे। मैं तो असली बात जानना चाहता हूं कि मौत के बाद क्या होता है? मुझे तो जीवन का वह परम राज़ बता दें। सब मिट जाता है या कुछ बचता है? जो बचता है, वह क्या है? वह अमृत क्या है? बस मैं उसी को जानना चाहता हूं। वही संपत्ति, वही साम्राज्य। देना हो तो वही दे दें।

ऐसा कठोपनिषद चलता है। यह बड़ी गहन कथा है। इस कथा का रहस्य यही है कि नचिकेता गुरु के पास गया है। आचार्यो मृत्यु! यदि आचार्य मृत्यु है, तो फिर मृत्यु ही आचार्य है।

और तुम यह जानना कि दुनिया में सारे धर्मों का जन्म मृत्यु के कारण हुआ है। मृत्यु से हुआ है। वही सद्गुरु है। अगर मृत्यु न हो तो धर्म विलीन हो जाएंगे। अगर तुम मरो न, कभी न मरो, तो तुम बुद्ध की सुनोगे, कि महावीर की, कि कृष्ण की, कि राम की, किसकी सुनोगे? तुम किसी की न सुनोगे। तुम कहोगे: 'हटाओ बातचीत! सदा यहां मजे से रहना है, कहां की बातें कर रहे हो? स्वर्ग यहीं

बनाएंगे।' अभी भी कहां सुनते हो। सत्तर साल रहना है तो भी स्वर्ग बनाने की कोशिश करते हो। और अगर सदा रहना होता, तब तो तुम कैसे सुनते! अभी तो मौत तुम्हें डरा देती है, मौत तुम्हें कंपा देती है। तो जैसे-जैसे बूढ़े होने लगते हो, थोड़ा-थोड़ा सुनने लगते हो कि शायद कुछ मतलब की बात हो, सुन लें, अब मौत करीब आ रही है।

इसलिए देखते हैं, मंदिर-मस्जिद में बूढ़े और बूढ़ियां दिखाई पड़ते हैं! जवान वहां नहीं जाते। जवान वहां जाएं क्यों? जवान अभी लड़खड़ाया नहीं है। अभी मौत ने धक्का नहीं दिया। अभी होने दो एकाध हार्ट-अटैक, बढ़ने दो ब्लडप्रेशर। होने दो कोई खतरा। पैर कंपने दो, हाथ में कंपन आने दो, घबड़ाहट आने दो। मौत का पहला झोंका आने दो। तब यह जाएगा मंदिर। तब यह राम-राम जपेगा। तब यह माला फेरेगा।

मौत धर्म की जन्मदात्री है।

'अगेह' पूछते हैं: 'संसार में एक आप ही हैं जिससे भय नहीं लगता था।'

जब तक संबंध गहरा नहीं था, भय नहीं लगता था। अब संबंध निश्चित गहरा होना शुरू हुआ है, तो भय लगेगा। और एकदम से पहले-पहले मैं डराऊं, वह बात ठीक भी नहीं। पहले-पहले तो फुसलाना पड़ता है। पहले-पहले तो कहना पड़ता है: 'आप बड़े सुंदर! सब ठीक!' पहले तो धीरे-धीरे अंगुली पकड़नी पड़ती है, फिर पहुंचा। फिर गरदन! आहिस्ता चलना होता है, नहीं तो तुम भाग ही जाओगे। फिर मनमोहन की फांसी कैसे लगे? और फांसी तो तभी लग सकती है, जब धीरे-धीरे तुम राजी हो जाओ; तुम कहो कि चलो, हाथ ही पकड़े हैं, कोई हर्जा नहीं--चलेगा। धीरे-धीरे तुम राजी होते जाते हो।

तो अंततः तो तुम्हारा मन मरे, यही सिखाना है। तुम्हारा अहंकार मरे, यही सिखाना है। अंततः तो तुम मिट जाओ, यही सिखाना है। जैसे बीज मिट जाता है तो अंकुर होता है, ऐसे तुम मिटोगे तो आत्मा होगी। तुम्हारे रहते आत्मा नहीं हो सकती। जैसे बूंद सागर में गिर जाती है और खो जाती है, ऐसे तुम जब खो जाओगे, गिर जाओगे शाश्वत के सागर में, जरा भी न बचोगे, तुम्हारी रेखा भी शेष न रहेगी, तभी तुम जानोगे सत्य क्या है!

तो भय लगना स्वाभाविक है। इससे यह सोचना मत कि तुम्हारा प्रेम मेरे प्रति कम हो गया या मेरा प्रेम तुम्हारे प्रति कम हो गया है, इसलिए भय लग रहा है। नहीं! प्रेम बढ़ा है, बढ़ रहा है। तुम करीब आ रहे हो। पतंगा ज्योति के करीब आ रहा है।

दूर जब पतंगा होता है तब तो ज्योति उष्ण है, ऐसा मालूम नहीं पड़ता। कैसे मालूम पड़े? ज्योति जला देगी, ऐसा नहीं मालूम पड़ता। पतंगा ज्योति से आह्लादित होकर नाचता हुआ चला आता है। जैसे-जैसे करीब आता है, वैसे-वैसे उष्णता

बढ़ती है। मगर अब ज्योति का आकर्षण भी प्रबल होने लगता है। और करीब आता है कि पंख जलने लगते हैं। लेकिन अब लौटने का उपाय नहीं रह जाता। अब ज्योति का अदम्य आकर्षण खींचता है। और पतंगा गिर जाता है ज्योति में और एक हो जाता है ज्योति के साथ। ऐसे ही शिष्य को गुरु में गिर कर एक हो जाना है।

भय तो लगेगा। भय बिलकुल स्वाभाविक है। और तुम चाहो या न चाहो--'इतने प्यारे भगवान से भय लगे, ऐसा तो मैं नहीं चाहता'--तुम्हारे चाहने न चाहने से अब कुछ भी न होगा। अब तो यह भय तभी मिटेगा जब तुम मिटोगे; उसके पहले नहीं मिटनेवाला। यह तुम को मिटाकर ही मिटेगा। पीछे लौटने का उपाय भी नहीं है अगेह! और आगे गये तो तुम न बचोगे। और जहां हो वहां अटके रहे, तो भय कंपाता रहेगा। आगे जाना ही होगा। ज्योतिर्मय की तरफ जो कदम लिये हैं, वे अब पीछे नहीं मुड़ सकते।

साधना के मार्ग पर पीछे जाने का उपाय नहीं है। और बहुत बार मन करेगा: लौट चलो। बहुत बार मन करेगा: पहले ही ठीक था। बहुत बार मन कहेगा: यह किस उलझन में पड़े? यह किस झंझट में पड़े? यह कैसी दीवानगी आई चली जाती है?

मेरो मन बड़ो हरामी! यह मन तो कहेगा। यह मन तो छिटकायेगा। यह तो मन कहेगा: यह तो भय होने लगा, अब यहां क्या सार है, हटो! हम तो प्रेम का स्वाद लेने आए थे।

प्रेम के स्वाद से ही यह भय आ रहा है, क्योंकि अब और बड़े प्रेम के पैदा होने की संभावना है। मनुष्य को बहुत-बहुत बार मरना होता है। बहुत-बहुत रूपों में मरना होता है। बहुत-बहुत तलों पर मरना होता है। जिस तल पर आदमी मरता है, उससे ऊपर के तल पर जन्म पाता है।

मैंने तुमसे पीछे कहा कि सात तल हैं। मूलाधार पर मरता है तो स्वाधिष्ठान में पैदा होता है। स्वाधिष्ठान में मरता है तो मणिपुर में पैदा होता है। मणिपुर में मरता है तो अनाहत में पदा होता है। ऐसे मरता और पैदा होता है। ऐसे भीतर की यात्रा होती है।

जब आज्ञाचक्र पर मरता है...समझते हो...आज्ञाचक्र का अर्थ होता है: वहां तक अहंकार जा सकता है। वहां तक तुम्हारा बस है इसलिए उसका नाम 'आज्ञा' है। वहां तक तुम्हारी आज्ञा चल सकती है। उसके आगे नहीं। वहां तक संकल्प चल सकता है, उसके आगे नहीं। वहां तक तुम बचे रहते हो। शुद्ध होते जाते हो, स्वर्णमय होते जाते हो, मगर बचे रहते हो। अहंकार परिपूर्ण शुद्ध हो जाता है, सूक्ष्म हो जाता है, मगर बचा रहता है। आखिरी रेखा बची रहती है। इसलिए उसको 'आज्ञा' कहा है। वहां तक तुम्हारा बस है; उसके पार तुम अवश हो जाते

हो। आज्ञा में जो मरता है, वह सहस्रार में पैदा होता है। सहस्रार है हजार पखड़ियों वाला कमल ! आज्ञा छोटा-सा फूल है। छोटे-से फूल में जो मरता है, वह विराट फूल हो जाता है।

ऐसे सात तलों पर मरना होता है। गुरु के पास आते-आते भी ये सात मृत्युएं घटती हैं। क्योंकि गुरु से जो वास्तविक मिलन है, वह सहस्रार पर ही होता है, उसके पहले नहीं। उस गगनमंडल में, उस आकाश में ही, गुरु से वास्तविक मिलन होता है।

गुरु की बात सुननी, एक बात। गुरु की देह के मोह और प्रेम में पड़ जाना, एक बात। गुरु के व्यक्तित्व, गुरु की गरिमा से आंदोलित हो जाना, एक बात। गुरु-मिलन--बड़ी दूसरी बात ! उस मिलन में फिर तुम नहीं बचते। वहां दुई नहीं रह जाती। गुरु के साथ पहली दफे अद्वैत का अनुभव होता है।

तो भय तो लगेगा। घबड़ाहट तो होगी। बहुत मन कंपेगा कि यह क्या कर लिया ! क्योंकि एक अर्थ में यह आत्मघात है। अपने हाथ से अपनी मृत्यु को बुलाना है।

इसलिए तो लोग भागते हैं। बुद्ध से बचते हैं, कृष्ण से बचते हैं, क्राइस्ट से बचते है। कभी-कभी तो लोग इतने नाराज हो जाते हैं कि खुद मरने की बजाय क्राइस्ट को मार डालते हैं। क्योंकि इतना भय पैदा कर देता है यह आदमी कि दो ही विकल्प रह जाते हैं या तो मरो इसके साथ, या इसको मारो। अगर यह मौजूद रहा तो हमको मिटाकर रहेगा। यह घबड़ाहट पैदा हो जाती है।

और तुम ध्यान रखना, जीसस को मारा हो किन्हीं ने, लेकिन बेचा था उनके निकटतम शिष्य ने, जुदास ने। तीस रुपये में बेच दिया था।

जुदास की कथा बहुत-बहुत अर्थों में समझने जैसी है। इस अर्थ में भी समझने जैसी है, क्योंकि जुदास निकटतम शिष्य था। सबसे समझदार शिष्य था जीसस का। सबसे बुद्धिमान, सबसे पढ़ा-लिखा, सबसे ज्यादा सुसंस्कारवान, सबसे ज्यादा तर्क-युक्त! इस बात की पूरी संभावना है कि वह घड़ी करीब आ गयी, जब या तो जुदास मरे या जीसस को मरना पड़े। दोनों का साथ जीना संभव न रहा। जुदास ने यही तय किया कि जीसस मरें, मैं बचूं। लेकिन ज्यादा देर बच भी नहीं सका। चौबीस घंटे ही जीया। जीसस को जब सूली लग गयी, तब पछताया। तब उसे अपना कृत्य दिखाई पड़ा कि यह मैंने क्या कर लिया ! जिसमें मिटकर मैं परम हो सकता था, उसे मैंने मिटा डाला ! उस चौबीस घंटे के पश्चात्ताप के बाद उसने आत्मघात कर लिया। मिटना तो पड़ा।

गुरु के इतने पास आकर बचा नहीं जा सकता। गुरु को मिटा दो तो भी नहीं बचा जा सकता। पीछे लौटने का उपाय नहीं है।

तो घबड़ाओ मत ! भय है, उसे देखो। साक्षी-भाव रखो।

लजते जीस्त को हम सोजे जिगर कहते हैं
राहते कल्ब को हम दीदये तर कहते हैं
तेरी ही यादे मुसलसल की हलावत है जिसे
अहले दिल मसलहतन दर्दे जिगर कहते हैं
दर्द बढ़ने से जो मिलती है हमें इक तसकीं
हम इसे अपनी दुआओं का असर कहते हैं
है ये तेरा ही मुअत्तर नफसो रंगे जमाल
सहने गुलशन में जिसे हम गुलेतर कहते हैं
रात कहते हैं जिसे है तेरी फुर्कत का ख्याल
वस्ल की आस को हम नूरे सहर कहते हैं
मस्तिओ हाल जिसे कहते हैं दुनियावाले
तेरे दीवाने इसे तेरी नजर कहते हैं
एक ही बात है जल्वा कहीं कहते हैं इसे
कहीं दीदारे खुदी हुस्ने नज़र कहते हैं
तेरी रफ्तार ही अपनी है सकूने कामल
वही मंजिल है जिसे शौके सफर कहते हैं
लजते जीस्त को हम सोजे जिगर कहते हैं

जीने का स्वाद प्यार के दर्द के बिना मिलता ही नहीं।

लजते जीस्त को हम सोजे जिगर कहते हैं।

जीवन के आनंद को, जीवन के स्वाद को हम प्यार की पीड़ा का नाम देते हैं। प्यार की पीड़ा को ही हम जीवन का स्वाद कहते हैं।

लजते जीस्त को हम सोजे जिगर कहते हैं
राहते कल्ब को हम दीदये तर कहते हैं

और दिल का आराम कहां है ? जब आंखें आंसुओं से भरी हों, तब !

राहते कल्ब को हम दीदये तर कहते हैं

भीगी आंख को ही हम हृदय का विश्राम कहते हैं।

रोना भी पड़ेगा, पीड़ा भी झेलनी पड़ेगी। ये सब इस रास्ते पर मिलने वाली भेंटें हैं। भेंट याद रखना। इनको पीड़ा मत समझना। ये कांटे तुम्हें प्रतिपल मंजिल के करीब ला रहे हैं।

तेरी ही यादे मुसलसल की हलावत है जिसे
अहले दिल मसलहत दर्दे जिगर कहते हैं।

और जिसे उस परम प्यारे की याद बैठ गयी है--उसके दिल में दर्द बैठ गया; उसके दिल में गहन पीड़ा बैठ गयी, विरह बैठ गया। खूब कांटे चुभेंगे। इन्हीं कांटों के चुभने के माध्यम से फूलों के पैदा होने की संभावना करीब आती है।

दर्द बढ़ने से जो मिलती है हमें इक तस्कीं

जो जानता है, जो पहचानता है, जिसने यह पीड़ा सही है--वह कहेगा : दर्द बढ़ने से जो मिलती हमें है इक तस्कीं। एक शांति मिलती है, एक राहत मिलती है। तस्कीन मिलती है। दर्द के बढ़ने से! क्योंकि दर्द बढ़ता है उतना प्यारे के करीब आना होने लगता है। उसके करीब आने के कारण ही दर्द बढ़ता है।

हम इसे अपनी दुआओं का असर कहते हैं

यह हमारी प्रार्थनाओं का परिणाम है। दुआओं का असर, कि दर्द बढ़ रहा है। प्रभु और दर्द दे, ताकि हम और करीब आएं! प्रभु मिटाए, ताकि प्रभु ही बचे और हम न बचें।

मस्तिओ हाल जिसे कहते हैं दुनियावाले

भीतर तो दर्द होता है भक्त के, बड़ी पीड़ा होती है, गहन पीड़ा होती है। आग की लपटें जलती होती हैं। क्योंकि मौत रोज-रोज करीब आती है। लेकिन बाहर भक्त बड़ा मस्त होता है।

मस्तिओ हाल जिसे कहते हैं दुनियावाले

बाहर की दुनिया तो देखती है उसकी मस्ती को। मीरा की मस्ती को सब ने देखा, मीरा की पीड़ा को किसने देखा? मगर उस पीड़ा के बिना मस्ती है ही नहीं। असल में जिसको तुम बाहर मस्ती कह रहे हो, वह उसी पीड़ा का छलकना है। वही पीड़ा लबालब हो गयी है, भर गयी है पात्र में, उछल रही है।

मस्तिओ हाल जिसे कहते हैं दुनिया वाले
तेरे दीवाने इसे तेरी नजर कहते हैं।

बस तेरी एक नजर हो जाती है तो सब दुख मिट जाते हैं, सब पीड़ा मिट जाती है। तेरी एक नजर हो जाती है तो सब कांटे भूल जाते हैं। लम्बी-लम्बी यात्राएं, यात्राओं के कष्ट, सब विस्मृत हो जाते हैं। दुनिया के लोग जिसे मस्ती कहते हैं, तेरे दीवाने इसे तेरी नजर कहते हैं।

एक ही बात है जलवा कहीं कहते हैं इसे
कहीं दीदारे खुदी हुस्ने नजर कहते हैं

कोई तो कहता है कि देखो इस मस्ती के जलवे को!...मीरा के जलवे को लोगों ने देखा, उत्सव को देखा। यह जो चमत्कार मीरा के जीवन में घटा! यह जो मदिरा बही! यह जो फिर से ब्रज उतरा, और फिर से कृष्ण नाचे! नाचना ही पड़ा कृष्ण को। यह फिर से बांसुरी बजी। जिन्होंने भी मीरा के करीब बैठकर सुना है, उन्होंने कृष्ण की बांसुरी फिर से सुनी। फिर मृदंग पर थाप पड़ी! फिर नृत्य। फिर जलवा हुआ! फिर उसकी ज्योति उतरी!

एक ही बात है, जलवा कहीं कहते है इसे
कहीं दीदारे खुदी हुस्ने नजर कहते हैं

बाहर के लोग इसको कहते हैं जलवा; भीतर जो जानता है वह कहता है, यह उस परम प्यारे की दृष्टि है! उसके सौंदर्य की प्रतीति!

तेरी रफ्तार ही अपनी है सकूने कामल
वही मंजिल है जिसे शौके सफर कहते हैं

भक्त को मंजिल की भी चिंता नहीं है। वह कहता है : यह यात्रा भी बड़ी प्यारी है, यही मेरी मंजिल है। कहीं पहुंचूं, इसका उसे आकर्षण नहीं है। जहां हूं, जैसा हूं--यह भी कम नहीं है सौभाग्य! इतना भी बहुत है।

तो घबड़ाना मत। पीड़ा हो तो समझना दुआओं का असर। भय हो, डर लगे, कंपन पैदा हो जाए, लौट जाने की आकांक्षा होने लगे--तो भी समझना कि दुआओं का असर। सौभाग्य समझना। जो भी हो इस मार्ग पर, उसे सौभाग्य समझना। और तब तुम पाओगे : जो भी हुआ, सब सौभाग्य में परिणत हो गया है।

यहां के सब कांटे फूल बन सकते हैं। यहां के कंकड़-पत्थर हीरे बन सकते हैं। सिर्फ दृष्टि की बात है। गलत व्याख्या कर ली तो कठिनाई में पड़ जाओगे। तुमने अगर ऐसा सोच लिया कि भय तो बुरी बात है। भय तो नहीं होना चाहिए। यह क्यों हो रहा है? तो तुम एक गलत व्याख्या में उलझे। तुम्हारा मार्ग अस्तव्यस्त हो जाएगा। क्योंकि भय से बचने का एक ही उपाय होगा कि थोड़े और दूर जाकर खड़े हो जाओ, जैसे पहले खड़े थे। तो भय नहीं लगेगा। लेकिन दूर खड़े हो गये। पतंगा दूर चला गया दीये से, तो अपने सौभाग्य से ही दूर चला गया। वह दीये में जो पतंगे की मृत्यु है, वही शाश्वत जीवन का प्रारंभ है।

तीसरा प्रश्न : आपने कहा कि गीता के कृष्ण से मीरा का कोई संबंध नहीं है। लेकिन मीरा तो कहती है कि मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई। तो यह गिरधर गोपाल कौन हैं? स्पष्ट करने की कृपा करें।

*

गिरधर गोपाल का गीता में कहीं भी उल्लेख है?

कृष्ण पूर्ण अवतार हैं। कृष्ण के बहुत रूप हैं। कृष्ण उतने रूपों में प्रगट हुए हैं जितने रूप हो सकते हैं। गीता का कृष्ण तो सिर्फ एक ही रूप है कृष्ण का। शंकराचार्य उस रूप के प्रेम में हैं, श्री अरविंद उस रूप के प्रेम में हैं, लोकमान्य तिलक उस रूप के प्रेम में हैं।

गीता पर हजारों टीकाएं लिखी गयी हैं। कृष्ण उसमें समाप्त नहीं हैं। वह कृष्ण की एक तरंग है। वह एक दृश्य है कृष्ण के जीवन का। उस दृश्य को पूरा कृष्ण मत समझ लेना, अन्यथा भूल हो जाती है। कृष्ण उससे बहुत ज्यादा हैं।

इसलिए तो मीरा कहती है : मेरे तो गिरधर गोपाल! यह गिरधर गोपाल कृष्ण का दूसरा रूप है, जिसने पर्वत को हाथ पर उठा लिया था। ये श्रीमद्भागवत के

कृष्ण हैं। ये कृष्ण हैं, जिन्होंने मटकियों से माखन चुराया। ये कृष्ण हैं, जिन्होंने गोपियों कि मटकियों पर कंकड़ मारकर मटकियां तोड़ीं। ये कृष्ण हैं, जिन्होंने रास रचाया यमुना के तट पर। ये कृष्ण हैं, जो नाचे; जिनके हाथ में बांसुरी है; जिनके सिर पर मोरमुकुट है; जो पीतांबर ओढ़े हुए हैं। यह कृष्ण की सौंदर्य-प्रतिमा, यह कृष्ण का शृंगार रूप! ये कृष्ण मनमोहन हैं!

तो तुम गलत मत समझ लेना। मैंने यह नहीं कहा कि मीरा किसी और कृष्ण के प्रेम में है। मैंने सिर्फ इतना कहा कि गीता के कृष्ण के प्रेम में मीरा नहीं है। नहीं तो गीता पर व्याख्या करती। कृष्ण को मीरा ने ऐसे देखा जैसे राधा ने देखा होगा, जैसे और सखियों ने देखा होगा। युद्ध के मैदान पर खड़े कृष्ण नहीं--ब्रज की कुंज गलिन में रास रचते, बंसीवट में बांसुरी बजाते, गायें चराते! कृष्ण का यह जो मनमोहक रूप है, कृष्ण का यह जो प्रीतम रूप है--मीरा इस रूप के प्रेम में है।

और ध्यान रखना: कृष्ण इतने विराट हैं कि तुम अपनी मनपसंद का कृष्ण चुन सकते हो। सूरदास ने कोई तीसरा ही कृष्ण चुना है। वह छोटा-सा बालक कृष्ण, पैर में गुनगुनियां बांधे, नंग-धड़ंग, यशोदा को परेशान कर रहा है। सूरदास ने बालक कृष्ण को चुना है। सूरदास के लिए बालकृष्ण काफी हैं। वह छोटे से कृष्ण की लीला, बाल-लीला! वह सूरदास को भा गयी है। सूरदास का प्रेम कृष्ण के प्रति वात्सल्य का प्रेम है। छोटे बच्चे के प्रति। छोटे बच्चे की लीलाएं, खेलों के प्रति। छोटे बच्चे के मचलने के प्रति। सूरदास वात्सल्य से कृष्ण को देखे।

मीरा का कृष्ण मीरा का पति है। मीरा का कृष्ण मीरा का प्यारा है, प्रीतम है। छोटे बच्चे की तरह मीरा ने कृष्ण को नहीं चुना है।... संगी-साथी की तरह, मित्र की तरह। जैसे कोई स्त्री पति को चुने, ऐसा मीरा ने कृष्ण को चुना है।

प्यारी कहानी है। छोटी थी मीरा। और घर में एक साधु ठहरा। उस साधु के पास कृष्ण की बड़ी प्यारी प्रतिमा थी। छोटी-सी प्रतिमा! सांवले सलोने कृष्ण की। मीरा छोटी थी, होगी तीन-चार साल की। सुबह साधु ने पूजा के लिए प्रतिमा निकाली, और मीरा मचल गयी। वह प्रतिमा चाहती थी। साधु देने को राजी नहीं था। साधु ने साफ इनकार भी कर दिया, मीरा की मां ने भी समझाया, पैसा भी ले लो। उसने कहा: 'ये मेरे भगवान हैं, इन्हें मैं बेच सकता हूं? यह मैं नहीं दे सकता। यह मुझे बड़ी प्यारी मूर्ति है। इसके बिना मैं नहीं रह सकता।'

साधु अपनी मूर्ति लेकर चला गया। दूसरे गांव में रात सोया और कथा है कि कृष्ण उसे प्रगट हुए निद्रा में और कहा कि तूने ठीक नहीं किया। जिसकी मूर्ति थी, उसे दे दे।

उसने कहा: मूर्ति मेरी है, उस लड़की की नहीं। कृष्ण ने कहा: उसी की है। तेरा संबंध मुझसे औपचारिक है। तू और मूर्ति उठा लेना, उससे भी चलेगा। उसका संबंध मुझसे बहुत गहरा है। यह मूर्ति उसी की है, तू लौटकर उसको दे आ। इसी वक्त जा और दे आ। तूने ठीक नहीं किया।

और वहां मीरा थी कि दिनभर भूखी बैठी थी। उसने खाना नहीं लिया। उसने कहा: मूर्ति मिलेगी तो ही खाना लूंगी, नहीं तो अब मर जाऊंगी। मां परेशान है, घर के लोग परेशान हैं। अब यह भी कोई जिद्द है! क्योंकि दूसरे की चीज है, वह दे न दे...। फिर ऐसी-वैसी चीज नहीं है, उसके आराध्य देव की प्रतिमा है; वह नहीं दे तो कुछ नाराजगी की बात नहीं है, बिलकुल स्वाभाविक है।

लेकिन दूसरे दिन सुबह होते-होते वह साधु भागा हुआ आया। उसने कहा: मुझे क्षमा करो! मीरा के पैरों में गिर पड़ा और कहा: 'सम्हालो अपने कृष्ण को, वे तुम्हारे हैं।' फिर तो मीरा चौबीस घंटे उस मूर्ति को अपनी छाती से लगाये घूमती रहती। फिर पड़ोस में एक विवाह हुआ किसी लड़की का। मीरा वहां गयी है अपने कृष्ण को लिए हुए। पांच साल की होगी। और मां से पूछने लगी: 'इसका विवाह हो रहा है, मेरा विवाह कब होगा?' और मां ने ऐसे ही मजाक में कहा: 'तेरा विवाह तो हो गया न! ये कृष्ण कन्हैया से!' और उसने बात मान ली। उस क्षण के बाद उसने कृष्ण के अतिरिक्त किसी को पति-रूप में नहीं देखा। विवाह भी हुआ। लेकिन कृष्ण ही पति रहे। वह कृष्णमय हो गयी।

मीरा का कृष्ण गीता का कृष्ण नहीं है। ऐसा मेरा कहने का मतलब सिर्फ इतना था: मीरा को कृष्ण के फलसफे में, उनके दर्शनशास्त्र में कोई रस नहीं है। गीता दर्शनशास्त्र है। वह कृष्ण का दार्शनिक वक्तव्य है। मीरा को कृष्ण की आंखों में रस है, उनके शब्दों में नहीं। मीरा को कृष्ण के रूप में रस है, उनके सिद्धांतों में नहीं। मीरा को कृष्ण में रस है; क्या कहते हैं, इसमें नहीं।

अभी चार दिन पहले यह घटना घटी। एक यहूदी मित्र, मनोवैज्ञानिक हैं, सुशिक्षित हैं, संपन्न हैं; सत्य की खोज में अमरीका से यहां चले आए। संयोग की बात थी कि जब वे यहां पहुंचे तो मैं जीसस पर बोल रहा था। यहूदी हैं तो उनको बड़ा कष्ट हुआ। संन्यस्त होना चाहते थे, लेकिन एक बात ने अड़चन डाल दी। क्योंकि मैंने जीसस पर बोलते हुए कहा कि 'जीसस से बड़ा यहूदी दुनिया में दूसरा नहीं हुआ। जीसस यहूदी जाति के सब से ऊंचे शिखर थे, गौरीशंकर थे।' यह बात उनको चोट कर गयी। यहूदी का मन यह मानने को नहीं होता कि--जीसस और सब से बड़े यहूदी! यहूदी तो मानता है कि जीसस भ्रष्ट व्यक्ति हैं, तभी तो सूली दी, निष्कासन किया। धोखेबाज हैं, पाखंडी हैं, असली मसीहा नहीं हैं। असली मसीहा तो अभी आने को है। और इस आदमी ने जबरदस्ती शोरगुल मचा दिया कि मैं मसीहा हूं।

वे संन्यास लेने आए थे, मगर यह एक वक्तव्य उन्हें अड़चन में डाल गया। अब वे बड़ी दुविधा में पड़ गये कि क्या करूं क्या न करूं। मुझसे पूछते थे कि और सब तो ठीक है, लेकिन आपके इस वक्तव्य से राजी नहीं हो पाता हूं। बहुत सुनता हूं, आपके सब टेप सुन रहा हूं, बार-बार पढ़ता हूं, बार-बार सुनता हूं, सब तरह की कोशिश करता हूं कि किसी तरह राजी हो जाऊं, लेकिन यह एक वक्तव्य मुझे

अटकाये हुए है ! जीसस--और सब से बड़े यहूदी ! यह मैं नहीं मान सकता हूं।

तो मैंने उनसे कहा : 'मेरे वक्तव्यों को मानने की जरूरत ही क्या है ? मुझे मान सकते हो सीधा-सीधा ? मैंने क्या कहा, छोड़ो फिकर ! मैं क्या हूं, इसकी फिकर लो।' और जैसे बादल छंट गये और मैं देख सका सामने : उनकी आंखों में जो उलझन थी, वह विदा हो गयी। जैसे सूरज निकल आया आकाश में !

मीरा को, कृष्ण ने क्या कहा है, इसमें उत्सुकता ही नहीं है। कृष्ण की दर्शन-प्रणाली, कृष्ण का सिद्धांत-शास्त्र, कृष्ण के वक्तव्य--मीरा के लिए गौण हैं। विचार के विषय नहीं हैं। कृष्ण सीधे-सीधे हैं।

अगर कृष्ण ने गीता न कही होती तो शंकराचार्य को उनमें कोई रस न होता। अगर कृष्ण ने गीता न कही होती तो लोकमान्य तिलक ने उन पर कोई किताब न लिखी होती। मीरा फिर भी उनके गीत गाती। मीरा फिर भी गुनगुनाती।

मीरा का रस कृष्ण के व्यक्तित्व में है। सीधा-सीधा है। कृष्ण क्या कहते हैं, कहने दो जो कहते हों। कृष्ण क्या हैं, इसमें मीरा का रस है। इसलिए मैंने कहा कि गीता के कृष्ण से कोई संबंध नहीं है मीरा का।

तुम पूछते हो : 'आप ने कहा कि गीता के कृष्ण से मीरा का कोई संबंध नहीं।' तुम मेरी बात समझे नहीं। 'लेकिन मीरा तो कहती है कि मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।' मुझे भी मालूम है कि मीरा ऐसा कहती है। मगर ख्याल रखना, गिरधर गोपाल की कोई चर्चा ही गीता में नहीं है। यह गिरधर गोपाल, कृष्ण का बड़ा दूसरा आयाम है।

कृष्ण बहु-आयामी हैं। महावीर एक-आयामी हैं। उसमें चुनाव ज्यादा करने की सुविधा नहीं है। महावीर में क्या चुनाव करोगे ? बहुत चुनाव की सुविधा नहीं है। जैनों के दो संप्रदाय हैं : श्वेतांबर और दिगंबर। विपरीत हैं एक-दूसरे से, भिन्न हैं एक-दूसरे से; लेकिन फिर भी कितना फर्क करोगे महावीर में ? ज्यादा फर्क नहीं कर पाते, थोड़ा ही सा फर्क कर पाते हैं। बड़ा क्षुद्र ! दिगंबर की मूर्ति में आंख बंद होती है, श्वेतांबर की मूर्ति में आंख खुली होती है। बस ! और फर्क ज्यादा करोगे भी क्या ? और कुछ है भी नहीं वहां, नंग-धड़ंग खड़े हैं। आंख ही बची थी; उसको चाहे खोल लो, चाहे बंद कर लो। यह भी कोई फर्क है ? मगर लड़ना हो तो यह भी काफी है। खोजा होगा उन्होंने बहुत, सब तरफ से निरीक्षण किया होगा। आगे-पीछे गये होंगे। देखा कि इस आदमी की आंख भर हिलती, बंद होती है। बस यही इसके दो ढंग हैं--कभी आंख खोलकर खड़ा होता है, कभी आंख बंद कर लेता है। इतना ही फर्क मिला दिगंबर और श्वेतांबरों को। इतना-सा झगड़ा है। झगड़े जैसा झगड़ा भी नहीं। क्षुद्र, दो कौड़ी का है।

महावीर एक-आयामी हैं। ऐसे ही बुद्ध भी एक-आयामी हैं। कृष्ण बहु-आयामी हैं। खूब चुनाव की सुविधा है। इसलिए ऐसा भी हो सकता है कि सूरदास को सुनो

तो तुम्हें समझ में न आए कि किस कृष्ण की बात कर रहे हैं। और मीरा को सुनो तो वह कुछ दूसरे ही कृष्ण की बात कर रही है। और शंकराचार्य को सुनो तो वे किसी तीसरे ही कृष्ण की बात कर रहे हैं। मगर वे एक ही कृष्ण की बात कर रहे हैं। लेकिन सबने अपने अंग चुन लिए हैं, जो जिसको रुचिकर लगा है।

कृष्ण तो एक सागर हैं। उनके बहुत घाट हैं। तुम जो घाट से चाहो, उतर जाओ। गीता एक घाट है। फिर कृष्ण का बालपन दूसरा घाट है। फिर कृष्ण का युवावस्था तीसरा घाट है। बहुत घाट हैं। कृष्ण के साथ बड़ी स्वतंत्रता है। तुम्हारा जैसा भाव हो, कृष्ण की तुम मूर्ति वैसी ही गढ़ ले सकते हो। कृष्ण को तुम अपने ढंग से प्यार कर सकते हो, तुम्हें स्वतंत्रता है।

चौथा प्रश्न : मैं बहुत दुखी हूं, मुझे मार्ग दिखाएं !

*

दुखी कौन नहीं है ? सभी दुखी हैं। और मार्ग भी एक है।

दुखी हो इसीलिए कि जो है उससे राजी नहीं होते हो। क्या कारण है दुख का ? इतना ही कारण है कि जो है उससे राजी नहीं होते हो; कुछ और होना चाहिए। जहां हो वहां राजी नहीं होते; कहीं और होना चाहिए। जैसे हो वैसे से राजी नहीं होते; कुछ और रूप होना चाहिए। सदा सपना देखते हो। सपने के कारण दुखी हो।

सपनों को जाने दो। जिस दिन सपने चले जाते हैं, उसी दिन सुख उतर आता है। सुख सपनों के अभाव में उतरता है। मांगो मत। कहो मत कि क्या होना चाहिए। जैसा है, जो है--इससे अन्यथा न हो सकता है, न होगा। इससे राजी हो जाओ। इसके साथ आनंदित हो जाओ--जैसा है। फिर कैसा दुख ?

दुख तुम्हारी आकांक्षा के कारण है। दस हजार रुपये तुम्हारे पास हैं--क्या दुख है दस हजार रुपये में ? दस हजार रुपये में दुख कैसे हो सकता है ? होगा तो कुछ सुख ही होगा, दुख कैसे हो सकता है ? लेकिन पड़ोसी के पास बीस हजार हैं, यह दुख है। तुम्हारे पास भी बीस हजार होने चाहिए, यह दुख है।

मैं एक घर में मेहमान होता था। बड़े धनपति थे। मुझे लेने एयरपोर्ट आए थे। उनकी पत्नी भी साथ थी। कुछ उदास से लगे। मुझे जब भी लेने आते थे तो कभी उदास उन्हें देखा नहीं था। कम-से-कम मैं जब तक रहता था उनके घर, तब तक वे प्रसन्न रहते थे। उस दिन उदास थे। मैंने पूछा : बात क्या है ? उनकी पत्नी बोली। उनकी पत्नी ने कहा : 'अब आप न ही पूछें तो अच्छा है। इनके हिसाब से पांच लाख का नुकसान लग गया है।' मैंने पूछा : 'इनके हिसाब से ?' उसने कहा : 'हां, इनके हिसाब से। मेरे हिसाब से पांच लाख का लाभ हुआ है।' मैंने पूछा : 'मामला क्या है ?'

पति बोले कि यह अपनी ही जिद्द हांके चली जाती है। इधर मुझे पांच लाख की हानि हो गयी है, यह अपनी ही लगाये चली जाती है।

मैंने पूछा कि मुझे पूरी बात कहें। उन्होंने कहा कि बात यह है कि कोई धंधा किया था। दस लाख मिलने की आशा थी, पांच ही लाख मिले। दस लाख मिलने का पक्का ही था, आशा ही नहीं थी। मिलने ही चाहिए थे, और नहीं मिले। पांच ही लाख मिले।

अब कौन ठीक कह रहा है? दोनों ही ठीक कह रहे हैं। पांच लाख नहीं मिले तो दुख हो रहा है। पांच लाख मिले, उनका सुख भी गंवाया जा रहा है। जो नहीं मिले, उनके कारण जो मिले हैं, उनका सुख भी नहीं भोग पा रहे हो।

जीवन को देखने का ढंग बदलो। तुम्हारी व्याख्या में कहीं भूल है। कहीं तुम्हारी दृष्टि में भूल है। जो है वह बहुत है। अहोभाग्य! जितना है उसका रस लो। तो रूखी-सूखी रोटी भी परम भोग हो जाती है। और नहीं तो परम भोग भी पड़े रहते हैं सामने, तुम उदास बैठे देखते रहते हो; भूख ही नहीं लगती। भूख लगे तो कैसे लगे? तुम्हारी कल्पनाएं आकाश छूती रहती हैं। छूती हुई आकाश को जो कल्पनाएं हैं, उनके कारण तुम बिलकुल कीड़े-मकोड़े की तरह मालूम पड़ते हो, जमीन पर रेंगते हुए—उनकी तुलना में। यह तुलना की भ्रांति है।

सभी दुखी हैं, क्योंकि सभी वासनातुर हैं। तुम जहां हो, जैसे हो, जरा उसे तो देखो! वर्तमान के इस क्षण में कहां दुख है? या तो दुख अतीत से आता है। कल किसी ने गाली दी थी, अब तुम अभी तक दुखी हो रहे हो; न गाली रही, न गाली देने वाला रहा। गंगा में कितना पानी बह गया! अब तुम बैठे गाली लिए : कल आया, एक आदमी गाली दे गया। अब तुम उसी की उधेड़बुन कर रहे हो। गाली को फिर-फिर सोच रहे हो। इधर से, उधर से सजा रहे, संवार रहे। घाव में और अंगुलियां चला रहे। घाव को भरने नहीं दे रहे। फिर-फिर बैठ जाते हो कि अरे! उसने गाली दी। लेटते, करवट लेते और गाली। ऐसा क्यों हुआ? क्यों उसने गाली दी? कैसे बदला लूं? क्या करूं? क्या न करूं?

या तो दुख अतीत से आता है, या भविष्य से। कल सुख मिलेगा या नहीं मिलेगा? कैसे आयोजन करूं? कल महल में कैसे मेरा प्रवेश हो? कल कैसे साम्राज्य मेरे हो जाएं? और डर लगता है कि हो नहीं पाएंगे। क्योंकि पहले भी तो तुम ऐसे ही सोचते रहे थे। कई कल आए और गए और राजमहल तुम्हारे न हुए। तो अब भी क्या है कि कल हो जाएंगे राजमहल तुम्हारे? इतने कल आकर धोखा दे गये, यह कल भी उसी पंक्ति में जाएगा। तो घबड़ाहट लगती है। भय होता, दुख होता है। लेकिन कभी सोचा—इस क्षण में—जो न तो अतीत से आक्रांत है और न भविष्य से आंदोलित—कहीं दुख है? दुख पाया है कभी इस क्षण में?

तुम कहोगे : हां, कभी-कभी होता है। सिर में दर्द हो रहा हो, फिर? या पैर

म कांटा गड़ा हो, फिर?

मैं तुमसे कहना चाहूंगा : जब सिर में दर्द हो रहा हो तब भी तुम शांति से बैठ जाओ, सिर के दर्द को स्वीकार कर लो। राजी हो जाओ। दर्द को अलग मत रखो। ऐसे दूर खड़े मत रहो कि मैं अलग, और यह रहा दर्द। दर्द है तो दर्द है। तो तुम दर्द हो। तो एक हो जाओ। डूब जाओ सिरदर्द में। स्वीकार कर लो। और तुम चकित हो जाओगे। तुम्हारे हाथ में एक कुंजी लगेगी उस दिन। तुम पाओगे : जितना तुम राजी हो जाते हो, उतना दर्द कम हो जाता है। सिरदर्द नाराजगी है। सिरदर्द बेचैनी है, तनाव है। जैसे तुम राजी होने लगते हो...सिरदर्द से भी राजी हो गये कि ठीक चलो दुआओं का असर है! परमात्मा ने भेजा, कुछ मतलब होगा। ऐसे अकारण तो भेज नहीं देगा। तुमको ही भेजा, इतना ख्याल रखा। इतने सिर हैं—और दर्द तुमको भेजा! मतलब होगा। तुम पर विशेष कृपा है। दुआओं का असर है। स्वीकार कर लो, झुक जाओ।

और तुम चकित होओगे : जैसे-जैसे तुमने स्वीकार किया वैसे-वैसे दर्द कम हुआ। और अगर स्वीकृति परिपूर्ण हो जाए, सौ प्रतिशत, उसी क्षण दर्द खो जाएगा। तुम करके देखो! और उस दिन तुम पाओगे कि दुख को मिटाने की कला तुम्हारे हाथ में है।

> जिंदगी राहे गम से निकल जाएगी,
> तेरी दुनिया ही यक्सर बदल जाएगी।
> उनके कदमों में इक बार सर तो झुका,
> उनकी चश्मे करम फिर मचल जाएगी।
> दिल को मिल जाएगा तेरे अमनो सकूं
> वक्त रुक जाएगा जां सम्हल जाएगी।
> तेरे सर पर है जो आज मुश्किल घड़ी
> तू यकीं रख कि कल तक वो टल जाएगी।
> चांदनी में धुली रात भी आएगी
> धूप रंजो अलम की भी ढल जाएगी।
> तेरी रग रग में दौड़ेगी सच्ची खुशी
> झूठी ख्वाहिश इक दिन दिल की जल जाएगी।
> जिंदगी राहे गम से निकल जाएगी
> तेरी दुनिया ही यक्सर बदल जाएगी।

बदल सकती है जिंदगी। जहां दुख है वहां सुख हो सकता है। दुख तुम्हारे कारण है। तुम्हारी गलत दृष्टि सुख की जन्मदात्री है। दृष्टि सृष्टि है। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।

> उनके कदमों में इक बार सर तो झुका!

स्वीकार करो! समर्पण करो! कहीं चरण खोज लो, जहां झुक सको। असली सवाल झुकना है, ख्याल रखना। चरण कुशल उपाय है। कहां झुकते हो, कुछ मतलब नहीं है। झुको कहीं। बुद्धं शरणं गच्छामि!––चलेगा; कि महावीर के शरण में झुक जाओ, चलेगा; कि कृष्ण के पैर पकड़ लो, चलेगा। ये सब बहाने हैं। जिस दिन पहुंचोगे, उस दिन पाओगे: चरण सब उसी के हैं। किसी के भी चरण में झुक जाओ। चरण तो निमित्त है; झुकना असली बात है। इसलिए अगर वृक्ष के सामने भी झुक गये तो भी चलेगा।

वह जिसने पीपल को देवता मान लिया है और झुक जाता है, तो भी चल जाता है। जो जाकर गंगा में परम श्रद्धा से झुक जाता है, तो भी चल जाता है। असली सवाल न गंगा है, न पीपल का वृक्ष है, न पत्थर की मूर्ति है, न काबा है––असली बात है झुक जाना। स्वीकार कर लिया: ठीक है, जैसी प्रभु ने जीवन-यात्रा दी है, वैसी ही शुभ है।

उनके कदमों में इक बार सर तो झुका
उनकी चश्मे करम फिर मचल जाएगी।

तुम इधर झुके कि वहां परमात्मा की अनुकंपा बिखरी तुम पर। उनकी चश्मे करम फिर मचल जाएगी। तुम्हारे झुकते ही परमात्मा अपनी अनुकंपा को नहीं रोक कर रख सकता; वह मचल जाती है। इधर तुम झुके कि उधर परमात्मा तुम पर ढला। तुम अकड़े रहे तो परमात्मा कुछ भी नहीं कर सकता; उसकी अनुकंपा आती है और लौट-लौट जाती है। तुम उसे अंगीकार नहीं करते।

दिल को मिल जाएगा तेरे अमनो सकूं
वक्त रुक जाएगा जां सम्हल जाएगी।

एक बार झुको तो! वक्त रुक जाएगा। समय रुक जाएगा। न फिर कोई अतीत है न फिर कोई भविष्य है। बस वर्तमान! बस वर्तमान! वर्तमान ही वर्तमान है!

वक्त रुक जाएगा जां सम्हल जाएगी
चांदनी में धुली रात भी आएगी।
धूप रंजो अलम की भी ढल जाएगी
जिंदगी राहे गम से निकल जाएगी
तेरी दुनिया ही यक्सर बदल जाएगी।

आखिरी प्रश्न: मैं आपका संदेश घर-घर पहुंचाना चाहता हूं, लेकिन कोई मेरी सुनता ही नहीं है। मैं क्या करूं? तड़फता हूं और चुप हूं।

*

परख के, देख-भाल के फरेबे जीस्त खाये जा
समझ के, जान-बूझ के जहां से जी लगाये जा

यहां बनी है जो भी शै बिगड़ने को ही बनी है
य देख के भी खूबतर हर इक शै बनाए जा
नहीं बना कोई कभी किसी का इस जहान में
ये जानते हुए भी सबको अपना तू बनाए जा
बुझे-बुझे हैं दिल यहां––दिमाग हैं धुआं-धुआं
तू इन स्याहियों में दीप प्रेम के जलाए जा
इक और हां इक और जाम की तलब है सबको यां
जो तश्नगी को दे मिटा वो जाम तू पिलाये जा
न सोच ये कि तेरी बात पा भी जाएगा कोई
है बात काम की अगर तू गलगला मचाये जा
यही सदा उठेगी नारा बन के कायनात में
कोई सुने नहीं सुने सदाए हक लगाए जा।

अगर तुम्हें लगता है कि जो तुम्हें मिला है, वह सत्य है, तो फिर फिकर मत करो।

न सोच ये कि तेरी बात पा भी जाएगा कोई
है बात काम की अगर तू गलगला मचाए जा।

फिर चढ़ जाओ मकानों की मुंडेरों पर और चिल्लाओ!

यही सदा उठेगी नारा बन के कायनात में
कोई सुने नहीं सुने सदाए हक लगाए जा

सत्य को कहना होगा। चुप रहने की जरूरत नहीं है। जो तड़प भीतर है, उसे प्रगट करो। सौ से कहोगे, दस सुनेंगे। दस सुनेंगे, एक गुनेगा। मगर तो भी काफी है। सौ में से एक भी बदल जाए तो भी काफी है। तुम धन्यभागी हो कि तुम निमित्त बने एक व्यक्ति को परमात्मा से जोड़ देने के, कि तुम सेतु बने! इसकी फिकर न करो कि लोग पागल समझेंगे। उन्होंने सदा समझा है। इसकी भी फिकर न करो कि वे नहीं सुनना चाहेंगे।

वे क्यों सुनना चाहें? तुम उनकी बनी-बनाई बिगाड़ते हो। वे अपना कागज का मकान, पत्तों का मकान बनाए बैठे हैं और आप आ गये––कि यह कागज का, पत्तों का मकान है, यह गिर जाएगा। वे बड़े सपने देख रहे थे, तुम कहां का अपशगुन वचन बोल रहे हो कि वह गिर जाएगा! वे नाव चला रहे थे, सोचते थे पार उतर जाएंगे। इधर आप आ गये, कहने लगे: कागज की नाव है, डूब जाओगे! इसमें उतरना मत!

उन्होंने बड़ी आशाएं बांधी थीं, तुमने सब पानी फेर दिया। वे तुम पर नाराज भी होंगे।

लोग सपनों में जी रहे हैं। तुम हांक लगाते हो जग जाओ और वे मधुर सपने

देख रहे हैं। उनके सपने टूटते हैं। उनकी नाराजगी स्वाभाविक है। वे सुनना भी नहीं चाहते।

तुमने देखा, कभी-कभी तुम कहकर सो जाते हो कि सुबह मुझे पांच बजे उठा देना, ट्रेन पकड़नी है। तुम्हारे कहने की वजह से ही कोई तुम्हें उठाता है और तुम नाराज होते हो। और तुम दिल ही दिल में भुनभुनाते हो कि यह दुष्ट पीछे पड़ा है और तुम्हीं ने कहा था। लेकिन सुबह-सुबह भोर में जब अच्छे सपने चलते हों...ब्रह्ममुहूर्त में जैसे सपने चलते हैं और कभी नहीं चलते...उस वक्त यह जगाने आ गया। अरे, मानो भूल से कह दिया था कि जगाना--इसका मतलब यह थोड़े ही था कि जगाना ही ? कह गये, गलती हो गयी, क्षमा करो; मगर इतना कुछ मान ही लेने की जरूरत थोड़े ही थी कि जगा ही दो।

कौन नींद से जागना चाहता है ! कोई भी नहीं जागना चाहता है। मगर फिर भी तुम कहो। जगाओ। लोग नाराज हों, घबड़ाना मत। लोग न सुनें, बुरा न मानना।

न सोच ये कि तेरी बात पा भी जाएगा कोई
है बात काम की अगर तू गलगला मचाए जा।

आज इतना ही।
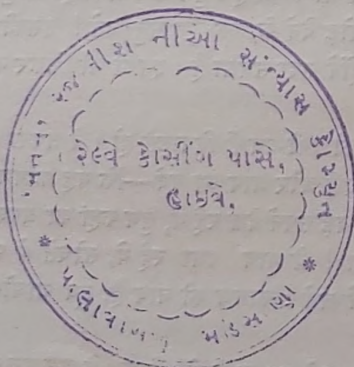
हेरी ! मैं तो दरद दिवानी

पांचवां प्रवचन

दिनांक : १५ नवम्बर, १९७७; श्री रजनीश आश्रम, पूना

हेरी ! मैं तो दरद दिवानी, मेरो दरद न जाणे कोइ ।
घायल की गति घायल जाणे, की जिन लाई होइ ।
जौहरि की गति जौहरि जाणे, की जिन जौहर होइ ।
सूली ऊपर सेज हमारी, सोवण किस विधि होइ ।
गगन मंडल पै सेज पिया की, किस विधि मिलना होइ ।
दरद की मारी बन बन डोलूं, बैद मिल्या नहिं कोइ ।
मीरां की प्रभु पीर मिटेंगी, जब बैद सांवलिया होइ ।

बंसीवारा आज्यो म्हारो देस, थांरी सांवरी सूरत बाला भेस ।
आऊं-आऊं कर गया सांवरा, कर गया कौल अनेक ।
गिणता-गिणता घस गई जी, म्हारी आंगलिया की रेख ।
मैं बैरागण आदि की जी, थारि म्हारि कदको सनेस ।
बिन पाणी बिन सावण सांवरा, हो गई धोय सफेद ।
जोगण होकर जंगल हेरूं, तेरो नाम न पाये भेस ।
तेरी सुरत के कारण मैं तो, धारया छे भगवा भेस ।
मोर मुकुट पीताम्बर सो हे, घूंघरवाला केस ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, मिल्यां मिटेगा क्लेस ।

बाला मैं वैरागण हूंगी ।
जिन भेषों म्हारो साहब रीझै, सो ही भेष धरूंगी ।
शील संतोष धरूं घट भीतर, समता पकड़ रहूंगी ।
जाको नाम निरंजन कहिये, ताको ध्यान धरूंगी ।
गुरु के ज्ञान रंग तन कपड़ा, मन मुद्रा पैरूंगी ।
प्रेम प्रीत सूँ हरिगुण गाऊं, चरणन लिपट रहूंगी ।
या तन की मैं करूं कींगरी, रसना नाम कहूंगी ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, साधा संग रहूंगी ।
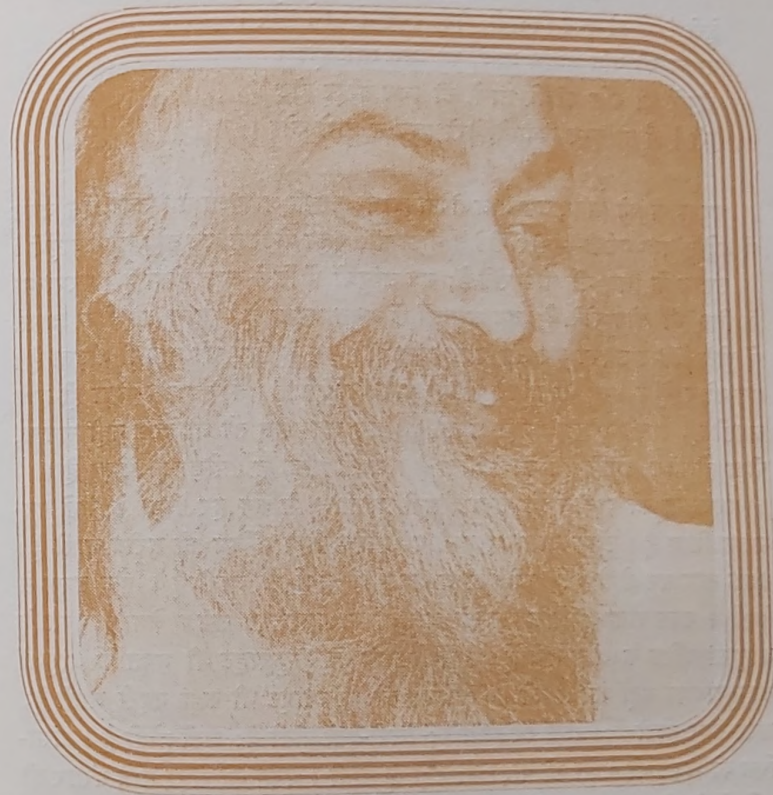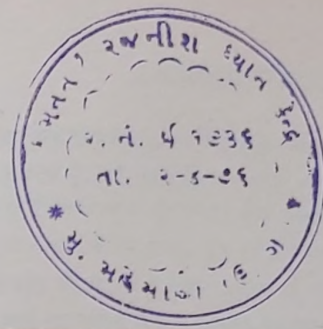
हेरी ! मैं तो दरद दिवानी, मेरो दरद न जाणे कोइ ।
घायल की गति घायल जाणे, की जिन लाई होइ ।
जौहरि की गति जौहरि जाणे, की जिन जौहर होइ ।
हेरी ! मैं तो दरद दिवानी, मेरो दरद न जाणे कोइ ।

परमात्मा को पाना, उसकी अभीप्सा करनी उसकी आकांक्षा म जलना, इस जगत में बड़े से बड़ा दर्द है--और मीठे से मीठा भी ! गहन पीड़ा है, पर बड़ी सौभाग्यपूर्ण ।

संसार के लिए भी लोग रोते हैं; तब आंसुओं में सिर्फ जहर होता है । परमात्मा के लिए भी लोग रोते हैं; तब आंसुओं में अमृत बहता है । आंसू तो दोनों हालत में होते हैं, पर उनका गुण-धर्म बदल जाता है । धन के लिए भी आदमी दौड़ता है । धन को पाने के लिए भी हजार पीड़ाएं भोगनी पड़ती हैं । लेकिन बस पीड़ा ही हाथ लगती है; धन कभी हाथ नहीं लगता है । धन लग जाए तो भी हाथ नहीं लगता, पीड़ा ही हाथ लगती है । कोरी पीड़ा है । खाली पीड़ा है । पीड़ा ही पीड़ा है ।

परमात्मा को पाने में भी पीड़ा झेलनी पड़ती है, लेकिन हर पीड़ा के पीछे परमात्मा छिपा है । उसके नाम पर झेली गई प्रत्येक पीड़ा मंजिल को करीब लाती है । उसके नाम पर झेली गई प्रत्येक पीड़ा अमृत की वर्षा हो जाती है । एक तरफ से देखने में भक्त रोता है, लेकिन उसके आंसुओं को गलत मत समझ लेना । भक्त के आंसू सांसारिक के आंसू नहीं हैं । सांसारिक की तो मुस्कुराहट भी भक्त के आंसुओं का मुकाबला नहीं कर सकती । सांसारिक की मुस्कुराहट भी कहां गहरी जाती है; ऊपर-ऊपर होती है; ओठों पर होती है; लिपी-पुती होती है; झूठी होती है । सांसारिक की खुशी भी भक्त की पीड़ा को नहीं छू पाती । भक्त की पीड़ा सारे संसार की खुशियों से श्रेष्ठ है । यह दर्द बड़ा अनूठा है !

मीरा कहती है : 'हेरी ! मैं तो दरद दिवानी' । यह दरद दीवाना करने वाला है, मस्ती से भरनेवाला है । इस दर्द में बड़ी शराब है । इसे जिसने पी लिया, उसे इस संसार में फिर कुछ और पीने जैसा नहीं लगता । परमात्मा के विरह की पीड़ा जिसने पी ली है, अब सिवाय परमात्मा के और कुछ इसके ऊपर पीने को बच नहीं जाता । परमात्मा के लिए झेली गयी पीड़ा बस परमात्मा से एक कदम नीचे है । फिर उसके ऊपर परमात्मा को ही पाने का सुख है; और कोई सुख नहीं । इसलिए भक्त को

कुछ भी देकर तृप्त नहीं किया जा सकता । सब छोटा पड़ता है । सब ओछा पड़ता है ।

तुम्हारा संसार जो भी दे सकता है, वह खिलौनों से ज्यादा नहीं है । और भक्त को जीवन्त परमात्मा की झलक मिलनी शुरू हो गयी; अब खिलौनों में नहीं उलझाया जा सकता है । और दर्द पागल करने वाला है; क्योंकि जैसे-जैसे दर्द बढ़ता है वैसे-वैसे परमात्मा की उपस्थिति भी बढ़ती है । इधर हृदय में दर्द की बढ़ती गहराई परमात्मा के करीब आ जाने का लक्षण है । जब भक्त का हृदय लपटों से जलता है तो उसे पक्का भरोसा आ जाता है कि परमात्मा दूर नहीं--बहुत करीब है; यहीं कहीं है; पास-पड़ोस में है; मुझे घेरे खड़ा है ।

दर्द से ही भक्त जानता है कि परमात्मा कितनी दूर है । दर्द कम, तो परमात्मा बहुत दूर है; दर्द ज्यादा, तो बहुत पास । और दर्द की आत्यंतिक स्थिति भी आती है, जब भक्त सिर्फ पीड़ा ही पीड़ा रह जाता है । उस सौ डिग्री पर, जहां भक्त सिर्फ पीड़ा ही पीड़ा रह जाता है, उसी सौ डिग्री पर परमात्मा से मिलन है ।

तो दर्द से ऐसा मत समझना कि मीरा रो रही है । रोती भी है और हंस भी रही है ।

'हेरी ! मैं तो दरद दिवानी, मेरो दरद न जाणे कोइ ।' इसलिए कहती है कि मेरे दर्द को कोई पहचानता नहीं । लोग आते होंगे, समझाते होंगे : मत रोओ । खेल-खिलौने सुझाते होंगे । इस संसार के बड़े प्रलोभन हैं; उन प्रलोभनों को दिखाते होंगे । तो मीरा कहती है : मेरे दर्द को कोई समझता नहीं है ।

नानक प्रभु के स्मरण को करते-करते बीमार पड़ गये । वह बीमारी शारीरिक नहीं थी । वैद्य बुलाये गये । तो वैद्य नानक की नाड़ी हाथ में लेकर जांच कर रहा है । और नानक हंसते हैं और वे कहते हैं : यह ऐसी बीमारी नहीं जो नब्ज को पकड़ने से पहचानी जा सके । और यह ऐसी भी बीमारी नहीं कि तुम्हारी दवा कुछ काम आ सके । यह परम बीमारी है । यह परमात्मा के मिलने से ही पूरी हो सकेगी । तुम व्यर्थ कष्ट न करो । तुम्हारे पास वैसी औषधि नहीं है, जिस औषधि से यह बीमारी मिट जाए ।

स्वभावतः, मीरा को रोते देखकर प्रियजन, परिवार के लोग शुभेच्छु समझाते होंगे, बुझाते होंगे, कि मीरा पागल न हो । अनेक-अनेक सांत्वना देते होंगे । इसलिए मीरा कहती है : 'मेरो दरद न जाणे कोइ ।' लोग गलत समझ रहे हैं, मीरा कहती है । लोग समझ ही नहीं पा रहे हैं । ये आंसू नहीं हैं । ये सिर्फ आंसू नहीं हैं । ये आंसू आनंद के आंसू हैं । मैं सौभाग्यशाली हूं, इसलिए रो रही हूं । परमात्मा करीब आ रहा है, इसलिए रो रही हूं । यह जो तीर मेरे प्राणों में चुभ रहा है, यह उसकी मौजूदगी का तीर है । मुझ से मेरा दर्द मत छीनो । मुझे सांत्वना मत दो । म सांत्वना की तलाश नहीं कर रही हूं । यह पीड़ा मेरी किसी औषधि की तलाश नहीं है । मैं तो परम औषधि से ही तृप्त हो सकूंगी । ये आंसू तो उससे मिलन हो जाए,

तभी विदा होंगे। इन आंसुओं से उसकी प्रार्थना कर रही हूं। इन आंसुओं से उसकी मनुहार कर रही हूं। इन आंसुओं से उस रूठे को मना रही हूं। तुम मेरे दर्द को नहीं समझ पाते हो।

...'मेरो दरद न जाणे कोई।'

मीरा कहती है : और ठीक भी है। तुम नहीं समझ पाते, मैं समझती हूं कि क्यों नहीं समझ पाते। 'घायल की गति घायल जाणे...।'

ऐसी पीड़ा तुमने जानी नहीं। यह तुम्हारा अनुभव नहीं है। तो तुम कैसे समझ पाओगे? तुम मुझे नहीं समझ पाते हो, लेकिन मैं तुम्हारी नासमझी को समझ पाती हूं।

स्वभावतः, हम उतना ही समझ पाते हैं जितना हमारा अनुभव है। अनुभव से ज्यादा हमारी समझ न होती है, न हो सकती है। तुम गीता पढ़ो, कुरान पढ़ो, बाइबल पढ़ो--तुम उतना ही समझ पाओगे जितना तुम समझ सकते हो। तुम सागर के पास भी चले जाओ तो उतना ही ला पाओगे, जितना बड़ा तुम्हारा पात्र है। सागर कितना ही बड़ा हो, तुम्हारे पास पात्र ही बहुत छोटा है, तो उतना ही भरकर ले आओगे। तुम वही खोज लोगे जिसका तुम्हें अतीत में अनुभव हुआ है। तुम उसी को फिर-फिर सम्हालने लगोगे जिसकी तुम्हें स्मृति है। लेकिन जिसकी स्मृति नहीं, अनुभव नहीं, वह तुम्हारे पास भी पड़ा हो, तो भी तुम चूक जाओगे।

इसी तरह तो हम परमात्मा से चूक रहे हैं। परमात्मा दूर नहीं है। दूर कैसे हो सकता है? तुम्हारी श्वास-श्वास में वही है। तुम्हारी धड़कन-धड़कन में वही है। वही धड़कता है। और कौन धड़केगा! क्योंकि वही जीवन है। वही जीवन का आधार है। सब तरफ से उसने ही तुम्हें घेरा है। बाहर भी और भीतर भी! फिर भी तुम पूछते हो : परमात्मा कहां है? तुम्हारा पूछना सिर्फ इतना ही बताता है कि तुम्हें कुछ भी बोध नहीं है। तुम्हें कुछ भी अनुभव नहीं हुआ है जीवन का। जीवन का अनुभव होता, तुम न पूछते कि परमात्मा कहां है। उसी अनुभव में परमात्मा भी पहचान में आ जाता है।

न तुमने प्रेम जाना, न तुमने जीवन जाना। तुमने कुछ जाना ही नहीं है। तुम्हारे भीतर कोई होश नहीं है। तुम्हारे अनुभव की संपदा बड़ी दरिद्र है। 'संपदा' कहने जैसी नहीं।

तुमने जाना क्या है? कुछ धन कमाया होगा। कुछ पद कमाया होगा। कुछ प्रतिष्ठा बनाई होगी। यही जाना है। इन जानकारियों से परमात्मा को जानने का कोई भी संबंध नहीं है।

यह तो ऐसे ही है जैसे लुहार के हाथ में सोना दे दो। जिसने लोहा ही लोहा जाना हो, वह सोने को नहीं पहचान सकेगा। जैसे छोटे बच्चे के हाथ में हीरा दे दो, वह अपने कंकड़-पत्थरों की ढेरी में उसे भी रख देगा।

हम उसे ही पहचान सकते हैं, जिससे हमारी थोड़ी-थोड़ी पहचान हो गयी है। फिर पहचान बढ़ती जाती है। इसलिए इस जगत में सद्गुरु समझ में नहीं पड़ते, समझ में नहीं आते। उनको समझने का प्राथमिक आधार भी हमारे भीतर नहीं है। बाराखड़ी भी हमें मालूम नहीं है। अ ब स का भी हमें पता नहीं है। हम सुन लेते हैं।

समझो। जब मैं 'परमात्मा' शब्द का उपयोग करता हूं तो तुम्हारे कान में आवाज तो पड़ती है निश्चित और शब्द भी सुनाई पड़ता है। और शब्द से तुम परिचित भी हो। भाषा में शब्द का क्या अर्थ है, वह भी तुम्हें मालूम है। लेकिन जीवन्त कोई अनुभव तुम्हारे पास नहीं। तो परमात्मा शब्द गूंजता है और खाली का खाली निकल जाता है। तुम्हारे भीतर कोई तरंग नहीं होती। तुम्हारे भीतर कोई तार नहीं छिड़ता। कोई मस्ती नहीं छा जाती। तुम डोलने नहीं लगते। लेकिन कोई कहे धन, तो तुम्हें समझ में आता है।

एक रास्ते पर दो व्यक्ति चले जा रहे थे। भीड़ थी, बाजार था, बड़ा शोरगुल था जैसा बाजार में होता है। दुकानें चल रही थीं, ग्राहकी हो रही थी, ग्राहक मोलतोल कर रहे थे। मेला भरा था। और तभी दूर पहाड़ पर बने हुए मंदिर की घंटियां बजने लगीं। एक उनमें से ठिठककर खड़ा हो गया सिर झुकाकर। दूसरे ने पूछा : 'क्या कर रहे हो?' उसने कहा : तुम्हें सुनाई नहीं पड़ता, मंदिर की घंटियां बज रही हैं? कितनी प्यारी घंटियां!' उस दूसरे आदमी ने कहा : 'हद हो गयी! इस बाजार के शोरगुल में कहां मंदिर की घंटियां तुम्हें सुनाई पड़ीं, कैसे तुम्हें सुनाई पड़ीं! यहां तो कुछ भी सुनाई नहीं पड़ रहा है। मुझे तो कुछ भी सुनाई नहीं पड़ रहा है। तुमने सुना? मंदिर की घंटियां बजती हुईं! इस भरे बाजार में! यह असंभव मालूम होता है।'

उस पहले व्यक्ति ने अपने खीसे से एक रुपया निकाला और जोर से रास्ते पर गिरा दिया। उसकी खननखन की आवाज...और कोई बीस आदमी एकदम दौड़ पड़े और उन्होंने कहा : किसी का रुपया गिर गया!

उस पहले आदमी ने कहा : देखा! इस भरे बाजार में, इस भीड़ में रुपये की आवाज बीस आदमियों को एकदम सुनाई पड़ गयी! मंदिर की घंटियां सुनाई नहीं पड़ रही हैं।

तुम्हें वही सुनाई पड़ता है जो तुम्हें समझ में आता है। ये जो लोग इकट्ठे हुए हैं, रुपये की आवाज के अतिरिक्त इनके जीवन में दूसरा कोई संगीत नहीं है। तो भरी बाजार, आवाज, शोरगुल; लेकिन एक छोटे-से रुपये के गिरने की आवाज इन्हें तत्क्षण सुनाई पड़ गयी।

तुमने देखा, रात मां सोती है बच्चे को लेकर। तूफान उठे, आंधी आए, बादल गरजें, बिजली चमके, सोई रहती है, नींद नहीं टूटती। बच्चा कुनमुनाए और उसकी

नींद टूट जाती है। बच्चा जरा कुनमुनाए और वह थपकी देने लगती है या लोरी गाने लगती है या बच्चे को हृदय से लगा लेती है। आकाश में चमकती हुई बिजलियां, बादलों की गड़गड़ाहट नहीं उसे उठा पायी, लेकिन बच्चे की कुनमुनाहट ने उठा दिया। क्या हुआ? मां के पास बच्चे की कुनमुनाहट को समझने का हृदय है; वह उसका अनुभव है। वह उसके लिए तत्पर है। वह उसके लिए आतुर है।

तुम्हें वही समझ में आता है जिसके लिए तुम तत्पर हो, आतुर हो, जिसकी तुम्हारे भीतर अभीप्सा है। तुम पक्का मानो, तुम्हें रास्ते पर अगर परमात्मा मिल जाए, तो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ेगा। क्योंकि तुम्हें वही दिखाई पड़ सकता है, जिसे तुम खोजने चले हो। हम जो खोजते हैं, वही हमें मिलता है। जो हम खोजते ही नहीं, वह मिल भी जाए, तो मिलकर भी नहीं मिलता।

तुम सभी एक ही दुनिया में रह रहे हो। लेकिन यह कहना ठीक नहीं है कि तुम एक ही दुनिया में रह रहे हो। सभी अपनी-अपनी दुनिया में रह रहे हैं, क्योंकि सभी के अनुभव अलग हैं। इसी संसार में, इसी बाजार में मीरा भी गुजरती है, लेकिन उसे कृष्ण की बांसुरी सुनाई पड़ती रहती है। वह बांसुरी बंद ही नहीं होती। तुम भी गुजरते हो। तुमसे मीरा कहे कि मुझे कृष्ण की बांसुरी सुनाई पड़ती है, तुम हंसोगे। कहोगे: पागल हो गयी है, मस्तिष्क खराब हो गया है। यहां कहां कृष्ण, कहां की बांसुरी! कैसी बातें कर रही है!

मीरा की बात तुम्हें बेबूझ मालूम पड़ेगी। मीरा की बात बेबूझ लगी होगी लोगों को, इसलिए कहा: 'मेरो दरद न जाणे कोइ।'

'घायल की गति घायल जाणे'...। जिसके हृदय में तीर लगा हो वही समझेगा। जिसने चोट खाई हो वही पहचानेगा। जिसे थोड़ा-सा अनुभव हुआ हो, वह और बड़े अनुभव को समझने के लिए तैयार हो जाता है।

...'की जिन लाई होइ।' या तो कोई घायल हो गया हो, या जिसने अपने ही हाथ से घाव पैदा कर लिया हो। या तो कोई आकस्मिक रूप से घायल हो गया हो, या फिर किसी ने संकल्पपूर्वक अपने भीतर घाव कर लिया हो। वही जान पायेगा।

परमात्मा की प्यास, परमात्मा की प्रार्थना--एक घाव है। इसलिए तो थोड़े-से लोग हिम्मत कर पाते हैं। इस पीड़ा को झेलने की तैयारी किसकी है? तुम तो अगर कभी परमात्मा का नाम भी लेते हो तो इसलिए कि हे प्रभु, इस संसार की पीड़ा से छुटकारा दिलाओ। तुमने कभी प्रार्थना की? कि हे प्रभु, उस संसार की पीड़ा मेरे भीतर पैदा करो! तुमने कभी प्रार्थना की है? कि मेरे हृदय को छेद दो, कि मैं तड़फूं कि जैसे मछली तड़फती है पानी के बाहर! ऐसा कुछ करो कि तुम्हारे लिए तड़फूं जैसे मछली तड़फती है पानी के बाहर।

नहीं, तुमने ऐसी प्रार्थना नहीं की है। की होती तो सुन ली गयी होती। तुमने प्रार्थना भी अगर की है तो धन के लिए की है—कि दुकान ठीक नहीं चलती, हे प्रभु,

ठीक से चलाओ; कि नौकरी नहीं लगती, नौकरी लगाओ; कि पत्नी बीमार है, इलाज करो; कुछ चमत्कार करो। तुमने प्रार्थना भी की है तो संसार के लिए की है। और संसार के लिए की गयी प्रार्थना परमात्मा तक नहीं पहुंचती--नहीं पहुंच सकती है!

इसलिए तुम्हारी प्रार्थनाएं व्यर्थ चली जाती हैं। उन पर पता ही गलत होता है। पता संसार का होता है और भेजते परमात्मा को हो। वे नहीं पहुंचतीं। परमात्मा से तो प्रार्थना यही की जा सकती है कि 'संसार... देखा बहुत! ये पीड़ाएं बहुत देख लीं। इन पीड़ाओं से न कोई निखार आया, न जीवन में कोई क्रांति हुई, न कोई ज्योति पैदा हुई। अब तेरी पीड़ा को जानने का मन है। अब तेरी प्यास पकड़े। अब तू सब तरफ से घेर ले! झकझोर डाल! उखाड़ दे जड़ों को! मिटा दे मुझे! ऐसा घाव कर कि फिर कभी न भरे और ऐसी पीड़ा दे कि जब तक तुझे न पा लूं तब तक चुके नहीं!' ऐसी तुमने प्रार्थना की? ऐसी प्रार्थना तो पागलपन की लगेगी कि संसार का दुख ही तो झेलना कुछ कम है, अब और परमात्मा का दुख झेलें! तो फिर तुम मीरा को न समझ पाओगे।

या तो तुम घायल हो गये हो, या तुमने घावों के लिए खुद आरजू-मिन्नत की है और तुमने अपने घाव निमंत्रित किये हैं और तुम अपने हृदय के घावों को ऐसे सम्हाल रहे हो जैसे फूल हों--तो तुम समझ पाओगे। तो तुम समझ पाओगे कि यह किस तरह की दीवानगी है; यह किस तरह का पागलपन है; यह मीरा को क्या हुआ है? और जो मीरा को हुआ है वह तुम्हें समझ में आ जाए, तो तुम्हारे जीवन की सबसे बड़ी घटना घटी।

इस जगत में जब तक परमात्मा न घटे तब तक कुछ भी नहीं घटा। तब तक सब घटता रहे और फिर भी याद रखना, कुछ भी नहीं घटा। तुम रेत के घर बनाते रहे और गिराते रहे। तुम कागज की नावें तैराते रहे और डुबाते रहे। तुम मन ही मन में मनसूबे बांधते रहे। वे मनसूबे कभी पूरे नहीं होते। स्वप्नवत् हैं। पानी पर खींची गई लकीरों जैसे हैं; खिंच भी नहीं पातीं लकीरें और मिट जाती हैं।

'हेरी! मैं तो दरद दिवानी, मेरो दरद न जाणे कोइ।
घायल की गति घायल जाणे, की जिन लाइ होइ।
जौहरि की गति जौहरि जाणे, की जिन जौहर होइ।'

जौहरी पहचानता है हीरे को। हीरे की परख चाहिए; नहीं तो कई बार कोहिनूर भी पड़ा हो तुम्हारे रास्ते में, तो तुम कंकड़-पत्थर समझोगे। कोई आंख चाहिए जो पहचान लेती हो; जो भीतर पत्थर के झांक लेती हो; भीतर छिपी हुई आभा को पकड़ लेती हो। तो या तो तुम जौहरी हो, तो समझ पाओगे; और या तुम स्वयं हीरे हो, तो पहचान पाओगे। या तो जौहरी या जौहर, दो में से कुछ होना चाहिए। हीरा भी हीरे को पहचान लेगा।

बुद्ध महावीर को पहचान लेंगे। महावीर कृष्ण को पहचान लेंगे। और जिसने

महावीर को पहचाना है, वह भी कृष्ण को पहचान लेगा। इसको मैं कसौटी मानता हूं। अगर तुमने महावीर को पहचाना और कृष्ण को नहीं पहचान पाते, तो तुम्हारी महावीर की पहचान झूठी है; तुमने महावीर को नहीं पहचाना।

इसे ऐसा समझो : क्या तुम यह कहोगे कि मैं एक हीरा तो पहचानता हूं, मगर और कोई हीरा नहीं पहचान में आता? तो यह पहचान कच्ची है। तुमने मान लिया है हीरे को हीरा, पहचाना नहीं है। अगर तुम एक हीरा पहचान गये, तो सारे संसार के हीरे पहचान गये। अब क्या अड़चन रही?

बुद्ध ने कहा है : सागर का पानी जिसने एक बार पी लिया, वह सब सागर के पानियों को पहचान गया। वह जो खारा स्वाद है, उसे आ गया। तुमने हिन्द महासागर का पानी पीया, कि प्रशांत महासागर का, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुमने सागर को चख लिया, कहीं से चखा, किसी घाट से चखा--तुम्हें सब सागर पहचान में आ गये।

इसलिए तो मैं कहता हूं कि लोग झूठे हैं। कोई कहता है : मैं महावीर को पहचानता हूं कि महावीर तीर्थंकर हैं, परम ज्ञानी हैं, सर्वज्ञ हैं। लेकिन यही आदमी कृष्ण को नहीं पहचानता। यह कहता है : कृष्ण में क्या रखा है? यही आदमी बुद्ध को नहीं पहचानता। कहता है : हां, अच्छे हैं, लेकिन वह बात नहीं। यही आदमी मुहम्मद को तो बिलकुल नहीं पहचानता। तो इसकी महावीर की पहचान गलत है। यह महावीर को मानता है, पहचानता नहीं है। और मानना पहचान नहीं है। यह जैन घर में पैदा हुआ होगा, तो मानता है। हिन्दू घर में जो पैदा हुआ है, वह कृष्ण को मानता है।

मानने को पहचानना मत समझ लेना। मान्यता उधार है; दूसरे से मिलती है। पहचानना अपने भीतर जगता है। पहचान अपनी है। अपनी समझ, अपनी दृष्टि, अपनी आंख पैदा होती है, तब पहचान।

और मैं तुमसे यह कह दूं कि तुमने एक ज्ञानी को पहचान लिया, तो सब ज्ञानियों को पहचान लिया; उसी पहचान में सब पहचान पूरी हो गयी। इसलिए जो सच में हिन्दू है, वह हिन्दू नहीं रह जाएगा। और जो सच में मुसलमान है, वह मुसलमान नहीं रह जाएगा। जो सच में हिन्दू है या सच में मुसलमान है या सच में जैन है, वह सिर्फ धार्मिक रह जाएगा। और सारे जगत के धर्मगुरु उसके अपने हो जाएंगे। और सारे धर्मशास्त्र उसके अपने हो जाएंगे। ऐसे लोग तो कभी दिखाई पड़ते हैं, मुश्किल से दिखाई पड़ते हैं। धार्मिक लोग ही कम हैं दुनिया में। ये जिनको तुम धार्मिक समझे हो, ये सिर्फ अधार्मिक हैं जिनको धार्मिक शिक्षा मिल गयी है। ऊपर-ऊपर से रंग-रोगन कर लिया गया है। कोई हिन्दू है, कोई मुसलमान, कोई जैन, कोई बौद्ध। सब झूठ है। इनकी पहचान सच्ची नहीं है।

'घायल की गति घायल जाणे,...

जौहरि की गति जौहरि जाणे, कि जिन जौहर होइ।'

या तो फिर तुम हीरे होओ। दोनों में फर्क है। महावीर को पहचान सकते हो --अगर तुम सरल-चित्त हो, शांत-चित्त हो, समतावान हो--तो महावीर को पहचान लोगे, कृष्ण को पहचान लोगे, बुद्ध को पहचान लोगे। या फिर तुम स्वयं बुद्ध होओ, तब पहचान पाओगे।

मान्यता से तो पहचान होती नहीं। वह झूठ है, पाखंड है। जानने से पहचान होती है। लेकिन जानने से भी पहचान दूर-दूर की होती है। जैसे हिमालय को देखा दूर से। सैकड़ों मील दूर से हिमालय के शिखर दिखाई पड़ते हैं। उत्तुंग शिखर! शाश्वत बर्फ से लदे! सुबह सूरज की किरणों में दूर से दिखाई पड़ते हैं--चमकते हुए सोने की तरह! मगर यह पहचान अभी दूर से है; अभी आश्वस्त नहीं हो सकते। अभी तुम शिखर पर नहीं पहुंचे हो। अभी तुम शिखर नहीं हो गये हो। इसलिए तुम्हारी पहचान का नाम होगा : श्रद्धा।

अब इसको समझ लेना। जिसको तुम अभी तक पहचान मानते रहे हो, वह मान्यता है। उसका नाम है विश्वास। मैं जिसको पहचान कह रहा हूं, जिसको मीरा पहचान कहती है, उसका नाम है : श्रद्धा। दूर से देखा है शिखर। श्रद्धा उमगी है। प्राण आंदोलित हुए हैं। ठगे रह गये हो सौंदर्य को देखकर। लेकिन अभी शिखर पर नहीं पहुंचे हो। जिस दिन शिखर पर पहुंच जाओगे या जिस दिन शिखर ही हो जाओगे, उस दिन ज्ञान।

विश्वास, श्रद्धा, ज्ञान। जौहरी में श्रद्धा होती है। लेकिन उससे भी ऊपर एक अवस्था है--ज्ञान की, अनुभव की, साक्षात्कार की। तुम भी महावीर हो जाओ। तुम भी बुद्ध हो जाओ। तुम भी मीरा हो जाओ। तब जो जानना होगा, उस जानने में कोई संदेह की रेखा न रह जाएगी। उस जानने में धुंधलापन न बचेगा। उस जानने में जरा भी धुआं न होगा। वह प्रतीति होगी। उस प्रतीति को सारी दुनिया भी विरोध में चली जाए तो भी कोई तोड़ न सकेगा। कितना ही कोई खंडन करे और कितने ही कोई तर्क जुटाए, तुम्हारी प्रतीति पर कोई आंच न आएगी।

विश्वासी झूठी श्रद्धा में जीता है; इसलिए कहीं पहुंच नहीं पाता। जहां का तहां रहता है। जैसा का तैसा रहता है। श्रद्धालु यात्रा पर चल पड़ता है। श्रद्धा की यात्रा ही एक दिन ज्ञान की मंजिल पर पहुंचा देती है। ज्ञानी पहुंच गया, श्रद्धालु चल पड़ा। विश्वासी सिर्फ सोच रहा है कि चलेंगे, कि चल रहे हैं, कि पहुंच रहे हैं। न तो चल रहा है, न पहुंच रहा है। विश्वासी निद्रा में पड़ा है।

विश्वासी मत रहो। या तो जौहरी बनो या जौहर बनो। दो से कम पर राजी मत होना। अगर जौहर बनो तो बड़ी बात। अगर अभी एकदम से जौहर बनने की संभावना न हो तो कम से कम जौहरी तो बनो! तो ही तुम समझ पाओगे कि मीरा क्या कह रही है।

'जौहरि की गति जौहरि जाणे, की जिन जौहर होइ।
सूली ऊपर सेज हमारी, सोवण किस विधि होइ।'

लोग समझाते हैं: मीरा विश्राम कर, कि मीरा सांत्वना रख। कि परमात्मा मिलेगा; यहां थोड़े ही मिलता है, मरने के बाद मिलता है। अच्छे काम करो, सत्कर्म करो--मिलेगा परमात्मा मृत्यु के बाद। स्वर्ग में मिलेगा। ऐसी बहुत-सी बातें लोग मीरा को समझा रहे हैं।

और मीरा कहती है: 'सूली ऊपर सेज हमारी, सोवण किस विधि होइ।'

इधर सूली पर हम बैठे हैं और तुम कहते हो सो जाओ। सूली पर सेज लगी हो तो कोई कैसे सोये! कल सुबह तुम्हारी मौत आने वाली हो, कल सुबह तुम्हें फांसी लगने वाली हो, तुम आज रात सोओगे? कैसे सोओगे? कोई उपाय नहीं सोने का।

मीरा कहती है: 'सूली ऊपर सेज हमारी'...। यह संसार तो सूली है। इस में सोना कैसे हो सकता है!

इस बात को समझो। यह संसार सूली है, क्योंकि इस संसार में सिवाय मौत के और कुछ नहीं घटता। जन्म के बाद बस एक ही बात निश्चित है: मौत। जन्म के बाद मृत्यु के अतिरिक्त यहां कुछ भी नहीं घटता। बाकी तो सब व्यर्थ की बात-चीत है, जिसे तुम घटना कहते हो--कि राष्ट्रपति हो गये, कि खूब धन कमा लिया, कि खूब प्रसिद्धि हो गयी। इस सब का कोई भी मूल्य नहीं है। तुम मरे कि सब भूल जाएगा। सब धन खो जाएगा, सब पद खो जाएगा। चार दिन के बाद तुम्हें कोई याद करने वाला भी न बचेगा। कुछ वर्षों के बाद, तुम हुए थे या नहीं हुए थे, इसमें भी कुछ भेद करना मुश्किल हो जाएगा। कुछ सदियों के बाद तुम न हुए होते तो, हुए तो--जरा भी अंतर न बचेगा।

जरा ख्याल करो! तुमसे पहले अरबों-अरबों लोग इस पृथ्वी पर हो चुके हैं। तुम्हारे जैसे ही सपने देखने वाले लोग। तुम्हारे जैसा ही धन इकट्ठा करने वाले लोग। तुम्हारे जैसे ही पद-लोलुप, पदाकांक्षी, धन-लोलुप, धनाकांक्षी! वे सब अब कहां हैं? उनका नाम भी तो पता नहीं। वे कहां खो गये? हो सकता है, जिस धूल पर तुम चल कर आए हो उस धूल में पड़े हों। तुम जिस जगह बैठे हो, हो सकता है, वहीं उनकी लाश गड़ी हो, वहीं उनकी हड्डियां गल गयी हों। कभी वे भी अकड़कर चलते थे जैसा अकड़कर तुम चलते हो। कभी किसी का जरा-सा धक्का लग गया था तो नाराज हो गये थे, तलवारें खिंच गयी थीं। आज धूल में पड़े हैं और कोई भी उनको पैरों से रौंदे चला जा रहा है। न नाराज हो सकते हैं, न तलवारें खींच सकते हैं।

च्वांगत्सु एक मरघट से निकलता था। सांझ का वक्त था, अंधेरा हो रहा था और उसका एक खोपड़ी से पैर लग गया, तो वह वहीं बैठ गया। उसके शिष्य भी

साथ थे। वे भी चौंककर खड़े हो गये कि वह क्या कर रहा है। उसने उस खोपड़ी को सिर से लगाया और बहुत क्षमा मांगी, कि क्षमा करिये, माफ करिये, नाराज मत होइये। थोड़ी देर तो शिष्य बरदाश्त करते रहे। फिर उन्होंने कहा: आप पागल हो गये हैं या क्या बात है? इस खोपड़ी से क्षमा मांगते हैं?

च्वांगत्सु ने कहा: जरा सोचो, अगर यह आदमी जिंदा होता तो आज अपनी मुसीबत हो गयी होती। और यह कोई छोटा-मोटा आदमी नहीं, मैं तुमसे कह दूं, क्योंकि यह बड़े लोगों का मरघट है। यहां सिर्फ राजा-महाराजा इस मरघट में दफनाये जाते हैं। आज अपनी गरदन कट गयी होती। वह तो संयोग की बात कहो कि यह मर चुका है। मगर क्षमा मांग लेना उचित है। बड़े लोग, इनका क्या भरोसा, कहीं नाराज हो जाए, भूत-प्रेत हो, नाराज हो जाए, कुछ उपद्रव खड़ा करे!

और वह तो उस खोपड़ी को अपने घर ले आया और उसको सदा अपने पास रखने लगा। लोग जब भी आते तो चौंककर पूछते कि यह खोपड़ी किस लिए? तो वह कहता कि यह खोपड़ी इस बात की याद दिलाने के लिए कि एक दिन अपनी खोपड़ी भी इसी तरह पड़ी होगी कहीं मरघट में, लोगों की लातें लगेंगी, कोई क्षमा भी नहीं मांगेगा। जिस दिन से इस खोपड़ी को ले आया हूं, उस दिन से अब कोई मुझे मार भी जाता है, तो मैं इसकी तरफ देखता हूं और मुस्कुराता हूं। और मैं कहता हूं: यह देखो, यह अभी से ही लोग मारने लगे। अभी हम मरे भी नहीं और लोग मारने लगे। मगर यह तो होना ही है, आज नहीं कल होना है। सत्तर साल की जिंदगी है और उसके बाद अनंत काल तक यह खोपड़ी कहां पड़ी रहेगी!

तुम से पहले बहुत लोग हुए हैं। कहां हैं अब? तुम से कम अकड़ वाले न थे वे। तुम्हारे जैसी ही अकड़ थी। तुम्हारी अकड़ भी ऐसे ही खो जाएगी।

यह संसार सूली है। यहां हर आदमी अपनी फांसी की प्रतीक्षा कर रहा है। यहां हम क्यू में खड़े हैं; फांसी लगती जाती है, क्यू आगे बढ़ता जाता है। जो-जो आदमी मरता है, वह तुम्हारी मृत्यु को करीब ले आता हैं, क्योंकि तुम करीब पहुंचने लगे। क्यू आगे सरकने लगा। जल्दी ही तुम्हारा नाम भी पुकारा जाएगा।

यहां मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ घटता ही नहीं। यहां रोज मौत घटती है। यहां मौत ही एक वास्तविक घटना है। बाकी सब घटनाओं का कोई मूल्य नहीं है, क्योंकि मौत सारी घटनाओं को पोंछ जाती है। अखीर में मौत की ही लकीर बचती है, बाकी सब मिट जाता है।

मीरा कहती है: यहां सोना भी चाहूं, कैसे सो जाऊं? यहां सूली पर सेज कैसे लगे?

तो एक तो इस अर्थ को समझना कि संसार सूली है; दूसरे, इस अर्थ में भी मीरा कहती है कि 'डार गयो मनमोहन फांसी।' और जब से यह परमात्मा की धुन सवार हुई है, दोहरी फांसी हो गई है। यहां तो मौत थी ही, यहां तो जीवन कष्टपूर्ण था

ही, यहां तो हजार दुख थे ही; अब एक और बड़े दुख का जन्म हुआ है। अब एक और एक नयी फांसी लग गयी है कि जब तक परमात्मा से मिलन न हो जाए तब तक चैन नहीं हो सकता; तब तक शांति नहीं हो सकती।

यहां भक्त और ज्ञानी के मार्ग का भेद समझना। इस सूत्रों में दो-तीन जगह भेद ख्याल में आएगा।

ज्ञानी कहता है: तुम शांत हो जाओ तो सत्य मिल जाएगा।

भक्त कहता है: सत्य मिले, तो ही मैं शांत हो सकूंगा, नहीं तो शांत कैसे हो जाऊं?

ज्ञानी कहता है: अंधेरे को हटा दो तो रोशनी हो जाएगी।

भक्त कहता है: रोशनी हो, तो ही अंधेरा हटेगा, अन्यथा अंधेरा हटेगा कैसे?

ज्ञानी कहता है: तुम सरल हो जाओ। तुम सब तरह की चिंताओं से मुक्त हो जाओ। तुम शांति को उपलब्ध हो जाओ।

भक्त कहता है: कैसे? अभी तो अशांति रहेगी ही, जब तक कि परमप्रिय से मिलन न हो जाए। उससे मिलने के पहले शांति हो कैसे सकती है? शांति तो छाया की तरह होगी। वह मिला कि शांति हो जाएगी।

भक्त के मार्ग पर विरह, परमात्मा की प्यास की पीड़ा सहयोगी है। भक्त तो दुखी रहेगा; शांत नहीं हो सकता। शांत हो जाने में तो खतरा है। शांत होने में तो पुकार खो जाएगी। शांत होने में तो खोज ही बंद हो जाएगी।

तो एक तो संसार की सूली लगी है और दूसरे, मीरा कहती है: जब से उस प्यारे की आंख में झलक पड़ गयी, जब से उस प्यारे की छवि आंख में उतर गयी, एक दूसरी फांसी भी लग गयी है। 'सूली ऊपर सेज हमारी सोवण किस वि‍ि होइ।'

तो एक तो संसार के दुख पर्याप्त हैं जगाने को। मगर फिर भी किसी तरह सो लेते--सांसारिक सो ही जाता है--लेकिन एक और एक नया दुख पकड़ गया। एक नया तीर प्राणों में चुभ गया है। और यह ऐसा तीर है कि इसका कोई इलाज नहीं, कोई औषधि इसको शांत नहीं कर सकती। परम प्यारा आए तो ही कुछ हो सकता है। इसलिए सोना कहां, चैन कहां, सांत्वना कहां?

'गगन मंडल पै सेज पिया की, किस विधि मिलना होइ।'

यहां तो चिंता ही सोने की नहीं है। चिंता एक ही है कि उस प्यारे से मिलना कैसे हो? और अड़चन बड़ी है: हम जमीन पर हैं, और गगन-मंडल पे सेज पिया की। हम क्षुद्र में बंधे हैं और वह विराट में है। हम सीमा में हैं और वह असीम। हम पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण के भीतर और वह सारे गगन के विस्तार में। हम बड़े क्षुद्र। कैसे उससे मिलन होगा? यह हमारी छोटी-सी बूंद उस सागर को कैसे मिलेगी, कैसे खोजेगी?

'गगन मंडल पै सेज पिया की'...। 'गगन मंडल' शब्द का प्रयोग कबीर ने, दादू ने, मीरा ने एक बहुत विशेष अर्थों में किया है। इसको तो गगन कहते ही हैं, जो आकाश हमें दिखाई पड़ता है। लेकिन भक्त कहते हैं: तुम्हारे भीतर भी ऐसा ही आकाश है, इतना ही बड़ा। उसे गगन मंडल कहते हैं। जितना बड़ा आकाश भीतर है, उतना ही बड़ा आकाश बाहर है। दोनों समतुल हैं। तुमने भीतर झांका नहीं, नहीं तो इतना बड़ा विस्तार वहां भी है। सहस्रार में जब कोई पहुंचता है तो गगन मंडल में पहुंचता है। जब अपने सातवें चक्र में कोई थिर हो जाता है, तो भीतर के आकाश में थिर हो जाता है।

तो मीरा कहती है: उस सातवें चक्र पर, सहस्रार पर, उस प्राण प्यारे का वास है।

तुमने देखा न, विष्णु कमल पर विराजमान! बुद्ध भी कमल पर विराजमान। कृष्ण भी कमल पर विराजमान। हमने सारे अवतारों की अवधारणा कमल पर की है। क्योंकि हमारे भीतर वह जो सातवां चक्र है, वह कमल जैसा है; इसलिए उसको सहस्रार कहा है। सहस्रदल कमल! उसकी हजार पंखुड़ियां हैं। और जब भीतर का हमारा अंतिम चक्र खुलता है तो हजार पंखुड़ियों वाला कमल खुलता है। उसी में परमात्मा विराजमान है।

मीरा कहती है: हम कीचड़ में घसिट रहे हैं। और प्रभु विराजमान है गगन में। बड़ी दूरी है। किस विधि मिलना होइ? तड़फते हैं प्राण। हम इस पार, तुम उस पार। नाव का कुछ पता नहीं। कैसे हम उस पार आएं? कैसे तुम इस पार आओ? कैसे मिलना हो? और जब तक मिलना न हो तब तक कैसी सांत्वना, कैसी शांति? कैसा विश्राम?

'सूली ऊपर सेज हमारी, सोवण किस विधि होइ।
गगन मंडल पै सेज पिया की, किस विधि मिलना होइ।
दरद की मारी बन बन डोलूं, वैद मिल्या नहिं कोइ।'

वैद्य मिल भी नहीं सकता। यह बीमारी ऐसी नहीं कि जिसकी चिकित्सा हो जाए। यह तो परम वैद्य मिलेगा, तो ही बीमारी जाएगी।

'दरद की मारी बन-बन डोलूं'...। मीरा कहती है: घूमती हूं--इस कोने से उस कोने, इस नगर से उस नगर, इस बन से उस बन। पुकारती फिरती हूं। सब तरफ आवाज देती हूं। सब द्वार खटखटाती हूं--इस मंदिर के, उस मंदिर के--लेकिन कहीं कोई वैद्य नहीं मिलता। कहीं कोई नहीं मिलता जो इस बाण को खींच ले, घाव को भर दे। नहीं कोई वैद्य मिल सकता। और अच्छा ही है कि वैद्य नहीं मिल सकता। उस वैद्य का उपाय ही नहीं किया है परमात्मा ने। जिसको भक्ति का घाव लगा, वह फिर भरने वाला नहीं है; वह बढ़ता ही चला जाता है।

भक्त एक दिन पूरा का पूरा घाव हो जाता है, पूरा प्यास हो जाता है। उस दिन मिलन है। उसके पहले मिलन नहीं। यह कीमत चुकानी पड़ती है।

'मीरा की प्रभु पीर मिटेगी, जब बैद सांवलिया होइ।' यह पीड़ा तो तभी मिटेगी

जब सांवलिया खुद वैद्य होकर आएगा, खुद प्रियतम वैद्य होगा। खुद परमात्मा ही जब हाथ रखेगा इस घाव पर, तभी यह भरेगा। किसी और हाथ से भर नहीं सकता। किसी और हाथ से भरे जाने की इच्छा भी नहीं है, संभावना भी नहीं है।

सिसकता हुआ मन अभी चुप हुआ है
जरा ठहरो, अभी मत रुलाओ
लगी चोट जब से तभी से रुदन है
बहुत ही कसक है बहुत ही जलन है
न आंसू थमे हैं नहीं दर्द कम है
भरेगा नहीं कि यह ऐसा जखम है
गये चोट करके पुनः लौट आए
कि कितने निठुर हो तुम्हें क्या बतायें
अभी घाव गीला है पीड़ा बहुत है
इसे फिर न छू लो न फिर से दुखाओ।

लेकिन परमात्मा दुखाये चला जाता है। तब तक दुखाये चला जायेगा, जब तक घाव पूरा न हो जाए। घाव पकना चाहिए। पके घाव में ही भराव हो सकता है।

लगी चोट जब से तभी से रुदन है
बहुत ही कसक है बहुत ही जलन है
न आंसू थमे हैं नहीं दर्द कम है
भरेगा नहीं कि यह ऐसा जखम है
गये चोट करके पुनः लौट आए!

और परमात्मा चोट पर चोट किये जाता है। हर घड़ी चोट किये जाता है।

तुम्हें भक्त की दशा का पता नहीं। फूल खिलता है और उसको चोट लगती है। चांद निकलता है और उसे चोट लगती है। पक्षी आकाश में उड़ता है और उसे चोट लगती है। कोयल कुहू-कुहू करती है और उसे चोट लगती है। और पपीहा पुकारता है पी-कहां और उसे चोट लगती है। मंदिर की घंटियां बजीं और उसे चोट लगती है। मस्जिद में नमाज पढ़ी है और उसे चोट लगती है। उसे चोट लगती ही चली जाती है। उसे सब तरफ से चोट लगती है। नाजुक हो जाता है भक्त।

कि कितने निठुर हो तुम्हें क्या बताएं
गये चोट करके पुनः लौट आए
अभी घाव गीला है पीड़ा बहुत है
इसे फिर न छू लो, न फिर से दुखाओ
बहुत नींद तैरी झुकी पर न पलकें
गयी भाल पर छा परेशान अलकें
कि बेचैन करवट शिकन हर चिढ़ाती

कि घायल की पीड़ा रही है बढ़ाती
कि पल भर हुआ है अभी पीर चुप है
सपन देखता प्राण का कीर चुप है
कि आंखें रुआंसी अभी ही लगी हैं
सपन यह न टूटे अभी मत जगाओ।

लेकिन भक्त को भगवान जगाये ही चला जाता है। सपना भी नहीं देखने देता। हर सपने को तोड़ देता है।

किसी तरह सपने की चादर ओढ़ कर तुम सो जाना चाहते हो और वह आ जाता है। वह पीछा छोड़ता ही नहीं और उचित है कि वह पीछा नहीं छोड़ता। तो ही तुम पकोगे। तो ही फल गिरेगा।

शलभ की लगन है जला दीप आया
मचल ज्वाल चूमी अधर को जलाया
कि बलिदान पर भी मिटी है न दूरी
अभी अर्चना है हृदय की अधूरी
गड़ी फांस मन में कि सोने न देगी
अभी पंख झुलसे सभी तन न झुलसा
निठुर दीप तुम यह अभी मत बुझाओ
सिसकता हुआ मन अभी चुप हुआ है
जरा ठहरो, अभी मत रुलाओ।

लेकिन परमात्मा फिर नहीं ठहरता। एक बार तुमने उसे पुकारा कि आता ही चला जाता है। शायद इसीलिए तो लोग डरते हैं और पुकारते भी नहीं। शायद इसीलिए तो लोग बचते हैं, किनारा काट जाते हैं। जहां चोट लगती है वहां नहीं जाते। लोग मरहमपट्टी खोजते हैं, चोट नहीं खोजते। और जो चोट नहीं खोजता, वह परमात्मा को नहीं खोज रहा है। तुम मरहमपट्टी खोजते हो। तुम जाते हो पंडित-पुरोहित को सुनने; क्योंकि वह मरहमपट्टी करता है। वह तुम्हें सस्ते नुस्खे बताता है। वह कहता है: घबड़ाओ मत, धर्मशाला बनवा दो, सब ठीक हो जाएगा; कि एक मंदिर बनवा दो। मंदिर ऐसे ही बहुत हैं। कि सब ठीक हो जाएगा; कि गरीबों को भोजन करा दो, कि एक अस्तपाल खोल दो, सब ठीक हो जाएगा। वह तुम्हें सस्ते नुस्खे बताता है। वह तुम्हें कुछ करने को बताता है। वह तुम्हें होने का नया ढंग नहीं बताता। वह यह नहीं कहता कि घाव बन जाओ, तब सब ठीक होगा।

इसलिए तो लोग महावीर के पास कम जाते हैं, बुद्ध के पास कम जाते हैं, मीरा के पास कम जाते हैं। दो कौड़ी के पंडित-पुरोहितों के पास ज्यादा जाते हैं। वहां सुविधा है। वे तुम्हें किसी झंझट में नहीं डालते। वहां क्रांति नहीं सुलगती। वहां तुम जाते हो, वे तुम्हें थपकारते हैं, वे लौरी सुनाते हैं। तुम लौरी सुनकर झपकी

खाने लगते हो। तुम बड़े प्रसन्न हो जाते हो। तुम घर लौट आते हो कि सब ठीक हो गया। वे तुम्हारे घाव भर देते हैं।

सद्गुरु वही है, जो तुम्हारे घाव को इस तरह गहन कर दे कि फिर परमात्मा के अतिरिक्त उसे कोई न भर सके। इसलिए सद्गुरु के पास तो साहसी, दुस्साहसियों का काम है। वहां तो हिम्मतवर, पागलों का काम है। वहां तो वे ही जाते हैं जो जीवन को दांव पर लगाना जानते हैं--लगाना चाहते हैं--लगाने की हिम्मत रखते हैं। वहां जुआरियों का काम है। तुम दुकानदार हो। तुम पुरोहित के पास जाते हो।

जीवन की गलियों में
हम तो चुपचाप रहे

मिलन बहुत प्यारा है
विरह बहुत खारा है
जीवन की प्याली में दोनों ही साथ रहे
जीवन की गलियों में
हम तो चुपचाप रहे

आंसू में थिरकन है
आहों में कंपन है
जीवन की लहरों पर आशा की नाव बहे
जीवन की गलियों में
हम तो चुपचाप रहे

लिखना मजबूरी है
खुद से भी दूरी है
अब तक तो गीतों ने मन के ही दर्द कहे
जीवन की गलियों में
हम तो चुपचाप रहे।

भक्त कहना भी नहीं चाहता और कभी कह उठता है, तो सिर्फ भीतर आह के कारण। दर्द ही बोलता है, इसलिए। ये गीत मीरा ने गाये, ऐसा मत समझना, अन्यथा भूल जाएगी। वह जो मीरा का घाव है हरा, उसने गाये हैं। अन्यथा मीरा चुप रहती। कहने को क्या था? कहना किससे था? जिससे कहना था, उससे शब्दों में कहने की कोई जरूरत नहीं। और जिनकी समझ में शब्द आते हैं, उनसे कहने का कोई सार नहीं, क्योंकि वे समझ न सकेंगे। घायल की गति घायल जाणे।

फिर भी मीरा रो रही है। ये कहे गये हैं शब्द। ये अनायास प्रगट हुए हैं। ये गहन पीड़ा से निकले हैं। इनको मीरा रोक नहीं सकी। जैसे घाव से खून बह गया है, ऐसे ये शब्द बहे हैं।

मिलन बहुत प्यारा है! विरह बहुत खारा है! और जिसने विरह के खारेपन को न सहा, उसे मिलन की मिठास भी नहीं मिलेगी। मिलन तो सभी चाहते हैं। विरह कोई भी नहीं झेलना चाहता। इसलिए मिलन नहीं हो पाता। विरह झेलना होगा। विरह की कसौटी से गुजरना होगा। वह परीक्षा देनी ही पड़ेगी। और परीक्षा कठिन है, बहुत कठिन है! क्योंकि तोड़ती ही चली जाती है। तोड़ती ही चली जाती है। जलाती ही चली जाती है। रोज-रोज पीड़ा सघन होती चली जाती है।

जैसे-जैसे परमात्मा के करीब आते हो, पीड़ा बढ़ती है। पीड़ा मिटती है जरूर, जब मिलन हो जाता है। तब बड़ा स्वाद है, बड़ी मिठास है, बड़ा माधुर्य है, बड़ी मदिरा है! लेकिन उसके पहले बड़ा खारापन है। सागर के सागर पी लेने पड़ते हैं, तब कहीं स्वाति की एक बूंद हाथ लगती है।

'बंसीवारा आज्यो म्हारो देस।'

वह जो भीतर का लोक है, उसको मीरा कहती है मेरे देश में आओ कभी! मेरे भीतर आओ कभी! मेरे भीतर के शून्य में आओ, बजाओ अपनी बांसुरी। भरो मुझे! मैं रिक्त हूं, मैं खाली हूं। तुम्हारे स्वर ही मुझे भर सकते हैं। और किसी सस्ती चीज से भरने की मेरी आकांक्षा भी नहीं है।

'बंसीवारा आज्यो म्हारो देस, थारी सांवरी सूरत बालो भेस।'

कृष्ण की सूरत हमने सांवरी रंगी है। बहुत सोचकर रंगी है। सांवरेपन में एक गहराई है जो गोरेपन में नहीं होती। गोरेपन में एक तरह का छिछलापन होता है। जैसे नदी जहां उथली होती है, वहां सफेद होती है और जहां गहरी होती है वहां नीली हो जाती है--ऐसा ही सौंदर्य जहां बहुत गहरा हो जाता है, वहां नीला हो जाता है। कृष्ण में अप्रतिम सौंदर्य को स्थापित करने के लिए हमने उनकी सूरत सांवली बनाई है। उनको नाम श्याम दिया है, घनश्याम दिया है। यह सिर्फ अपूर्व सौंदर्य की अवधारणा है।

...'थारी सांवरी सूरत बालो भेस।'

लेकिन वह जो चेहरा दिया है कृष्ण को, वह बालक जैसा दिया है। गहरा सौंदर्य है, लेकिन बच्चे जैसी सरलता और निर्दोष भाव है। सभी संत अंततः बच्चों जैसे हो जाते हैं। हो जाएं, तभी संत हैं। वर्तुल पूरा हो गया। बच्चे से चले थे, फिर बच्चे हो गये। बच्चे तो सभी भोले होते हैं, इसमें कुछ गौरव नहीं, इसमें कुछ गरिमा नहीं। यह स्वाभाविक है। अभी संसार नहीं जाना, अभी संसार की धूल नहीं पड़ी, दर्पण ताजा-ताजा है। लेकिन संसार को जानने के बाद जो बच्चे जैसा रह जाए, तो फिर गौरव है, तो फिर गरिमा है। संसार की भीड़ से गुजरे और अछूते। संसार की काजल-कोठरी से गुजरे और काजल जरा भी न लगा। क्वांरे के क्वांरे वापिस।

कबीर ने कहा है : ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया।

तो जो परम अवस्था है, जो परम सौंदर्य है, वह सिर्फ देह का ही सौंदर्य नहीं है। अगर देह का ही होता तो सांवली सूरत से बात पूरी हो गयी थी। वह आत्मा का सौंदर्य भी है। इसलिए 'बालो भेस'! छोटे बच्चे जैसा भाव--निर्दोष, निष्कपट, निर्मल, दर्पण--जिस पर जरा भी धूल नहीं।

'बंसीवारा आज्यो म्हारो देस, थारी सांवरी सूरत बालो भेस।
आऊं-आऊं कर गया सांवरा, कर गया कौल अनेक।'

भक्त और उसके भगवान के बीच बहुत वायदे चलते हैं, वायदा-खिलाफी भी चलती है।

मीरा कहती है : 'आऊं-आऊं कर गया सांवरा'।

और कितनी बार तुम वायदा कर गये! और कितनी बार कहा कि आता हूं, आता हूं! भगवान कह ही रहा है प्रतिक्षण। जब तुम सुनोगे प्यास से भरे, घाव से भरे, तो तुम पाओगे : हर क्षण कहता है आता हूं, आता हूं। उसका यह कहना तुम्हारे घाव को और गहरा करता चला जाता है। हर तरफ से संकेत और इशारे आते हैं कि अब आया तब आया, कि अब आता ही है, यह देखो पगध्वनि सुनाई पड़ने लगी! यह देखो कौन बांसुरी बजा उठा! यह देखो, जो आ रहा है यह तो वही है --मोरमुकुटधारी! यह तो वही है-- पीतांबर वेश वाला!

बहुत बार झलक मिलती है। पैरों की ध्वनि सुनाई पड़ती है। बहुत बार उसकी आवाज आती है। बहुत बार सपनों में उतरता है। बहुत बार पास ही उसकी सुगंध छू जाती है। नासापुट भर जाते हैं उसकी सुगंध से। बहुत बार इतने करीब होता है कि भक्त को लगता है हाथ बढ़ाऊं तो पकड़ लूं, और फिर-फिर दूरी हो जाती है।

यह जरूरी है। इसी तरह भक्त पीड़ा में पकता है। पीड़ा निखरती है, गहन होती है, गहरी होती है। अगर परमात्मा कोई वचन भी न दे, अगर भगवान कोई वायदे भी न करे, तो भक्त थक जाएगा, निराश हो जाएगा। तो बीच-बीच में आशा की किरण आती रहती है। भक्त को निराश नहीं होने देता है। आशा की किरण भक्त को तल्लीन रखती है। मगर मिलन तो तभी होगा जब भक्त पक जाएगा, उसके पहले मिलन नहीं हो सकता।

'आऊं-आऊं कर गया सांवरा, कर गया कौल अनेक।'

जब भी आशा-लहरों के हाथों नैया सौंपी
तूफानों से मिल तट ने सपने नीलाम किये
जानी-अनजानी भूलों का कर्ज चुकाने में
सौंधी माटी जैसी सुघर उमरिया बीत चली
सम्बंधों के चौराहे पर किरण अकेली है

सुबह-सुबह पनघट पर नवल गगरिया रीत चली
किसने चाहा नहीं अमा के द्वार दिवाली हो
किन्तु तिमिर की गलियों में दीपक बदनाम हुए
अश्रु-धरा पर गीतों के बिरवों को प्राण मिले
अनबोली अभिशप्त विवशता डाल-डाल फूली
ढलते वैरागी दिन जैसी प्रीत बावरी है
मेरी ही परछाई मुझको अनायास भूली
ठिठक गए विश्वासों के पग सर्पीले पथ पर
अनब्याही अल्हड़ निष्ठा कब तक निष्काम जिए
तन की अंजुरी में मन पारे जैसा बिखर गया
चपला की चितवन सुरधनु को बांध नहीं पायी
तरुछाया को मीत मान कर जीना मुश्किल है
बिना प्यार की छांव जिंदगी कभी न मुस्कायी।

बिना उस परमप्यारे की प्रीति की वर्षा के तृप्ति नहीं, नृत्य नहीं, गीत नहीं, गायन नहीं। कब तक भक्त अपने को समझाये आशाओं में? तो कभी-कभी उसकी आशाएं बड़ी बलवती हो जाती हैं। लगता है : अब आया, अब आया। यह द्वार पर दस्तक पड़ी। भक्त सजग हो जाता है। उमंग से भर जाता है। प्यास गहन हो जाती है। द्वार खोलता है और नहीं पाता है। सन्नाटा है। कोई न गुजरा है, न कोई गुजर रहा है। घाव और गहरा हो जाता है। यह घाव को गहरे करने की प्रक्रिया है।

'आऊं-आऊं कर गया सांवरा, कर गया कौल अनेक।
गिणता गिणता घस गइ जी, म्हारी अंगलियों की रेख।'

ये तुझसे किसने कहा गम से दिल तबाह नहीं
ये और बात कि मेरे लबों पे आह नहीं
वो एक मैं कि सरापा सवाल हूं कब से
वो एक तू कि तुझे फुरसते निगाह नहीं।
ये तुझसे किसने कहा कि गम से दिल तबाह नहीं?

कभी-कभी भक्त नाराज भी हो जाता है कि बहुत हो गयी बात। ये तुझसे किसने कहा कि गम मे दिल तबाह नहीं? इधर मैं मरा जा रहा हूं, तड़फा जा रहा हूं।

ये तुझसे किसने कहा कि गम से दिल तबाह नहीं?

यहां मैं तबाह हुआ जा रहा हूं, यहां सब पतझड़ है।

ये और बात कि मेरे लबों पे आह नहीं

शिकायत नहीं करता हूं, यह और बात; लेकिन तबाह हूं, यह पक्का है।

वो एक मैं कि सरापा सवाल हूं कब से

एक मैं हूं कि प्रश्न ही प्रश्न पूछे जा रहा हूं। एक मैं हूं कि प्रार्थना ही प्रार्थना किये जा रहा हूं। एक मैं हूं कि प्यास ही प्यास दोहराये जा रहा हूं।

वो एक मैं कि सरापा सवाल हूं कब से
वो एक तू कि तुझे फुरसते निगाह नहीं।

और एक तू है कि तू मेरी तरफ देखता भी नहीं। तेरी नजर ही इस तरफ नहीं होती।

'गिणता-गिणता घस गई जी, म्हारी आंगलिया की रेख।
मैं वैरागण आदि की जी, थांरे म्हारे कदको सनेस।'

मीरा कहती है कि जरा याद तो करो! भूल गये क्या? 'मैं वैरागण आदि की जी!' मैं शुरू से ही वैरागण हूं। यह कोई आज का प्रेम नहीं। यह कुछ नया प्रेम नहीं। यह प्रीत बड़ी पुरानी है। यह सनातन प्रीति है। मैं पहले से ही तुम्हीं को खोज रही हूं।

और जिस दिन तुम परमात्मा की प्यास से भरोगे, उस दिन तुम्हें भी यह पता चलेगा कि तुम भी सदा से उसी को खोज रहे हो। कभी-कभी गलत जगहों में खोजा था, यह और बात, मगर खोजा उसी को था। कभी किसी स्त्री में खोजा था, लेकिन खोजा उसी सांवले को था। वही अनंत सौंदर्य चाहा था स्त्री में, इसीलिए तो तृप्ति नहीं हुई। स्त्री के पास सौंदर्य था, लेकिन अनंत सौंदर्य नहीं था। इसलिए कोई स्त्री किसी को कभी तृप्त नहीं कर पायी। स्त्री का कोई कसूर नहीं है। तुम्हारी आकांक्षा विराट की है। और तुम विराट की मांग करते हो। स्त्री सब चेष्टा करती है—रंगती है, रोगन लगाती है, चेहरा बनाती है, कपड़े पहनती है, आभूषण! सब तरफ से कोशिश करती है कि किसी तरह तुम्हारी मांग पूरी हो जाए। मगर तुम्हारी मांग क्षुद्र से पूरी होने वाली नहीं है।

कभी किसी पुरुष में खोजा। सभी स्त्रियां पुरुषों में परमात्मा को खोज रही हैं। इसलिए तो स्त्री को बड़ी पीड़ा होती है, जब पति में खोट देखती है। जरा-सी खोट उसे खा जाती है। जरा-सा दोष देखती है तो अड़चन में पड़ जाती है। क्योंकि वह चाहती है कि उसका पति निर्दोष हो। वह कृष्ण को खोज रही है। उसे पता नहीं है। मगर अब इस बेचारे साधारण पति का क्या कसूर? इसमें खोट है। यह सीमा है इसकी। और तुम असीम की मांग कर रहे हो। उस निर्दोष सौंदर्य की खोज चल रही है। मगर यह सौंदर्य तो निर्दोष नहीं है। यह सौंदर्य तो बड़ा कपट से भरा है। यह तो सौंदर्य मन का ही है—मन से ज्यादा गहरा नहीं हो सकता।

जिस दिन परमात्मा को तुम खोजने चलोगे, उस दिन तुम्हें पहली दफा ख्याल आएगा कि अरे, मैं सदा-सदा से इसी को खोजता था। अलग-अलग जगह खोजा, अलग-अलग दिशाओं में खोजा—मगर खोजा इसी को था! इसीलिए तो धन कितना ही मिल जाए, तृप्ति नहीं होती। क्योंकि तुम परम धन खोज रहे हो। करोड़ हो तो दस करोड़ चाहिए। दस करोड़ हों तो दस अरब चाहिए। बढ़ती ही जाती है मांग। संख्या गिनते-गिनते तुम्हारी अंगुलियों की रेखाएं भी तो सब मिट गईं—रुपया गिनते-गिनते! मगर तुम चाहते क्या हो, गौर से देखो। कभी मन में तुमने सोचा, क्या चाहते हो?

मैंने सुना है, एक गुरुकुल में एक युवक उत्तीर्ण हुआ। गुरु उससे बहुत प्रसन्न था। गुरु ने कहा: तू मांग ले, तुझे क्या चाहिए? मैं तुझसे प्रसन्न हूं।

उस युवक ने कहा: मुझे कुछ और मांगना नहीं। जब घर से आया था तो मेरे पिता बड़े कर्जदार थे, गरीब थे। मैं तो यहां वर्षों आश्रम में रहा, पता नहीं उनकी कैसी हालत है, चुका पाये कर्ज, नहीं चुका पाये। चुका भी दिया होगा तो भी गरीब ही होंगे, भूखे होंगे। बस एक ही आकांक्षा है कि जाकर किसी तरह उनकी सेवा कर सकूं।

तो उसके गुरु ने कहा: तू एक काम कर। इस देश का जो सम्राट है, तू वहां चला जा। वह रोज सुबह एक व्यक्ति को वरदान देता है, जो भी मांगो। तो तू जल्दी से जाकर खड़े हो जाना। चार बजे रात ही पहुंच जाना, ताकि तू पहला मिलने वाला व्यक्ति हो।

तो वह खड़ा हो गया चार बजे से। पांच बजे सम्राट अपने बगीचे में घूमने निकला, तो उस युवक को खड़े देखा। पूछा, क्या चाहते हो? जब सम्राट ने यह पूछा क्या चाहते हो...गुरु ने कहा था: जो मांगेगा, वह सम्राट दे देगा। तो तुम सोच सकते हो कि उसकी हालत बहुत मुश्किल हो गई होगी। सोचा था कि पांच सौ रुपये मांग लूं। उस पुराने जमाने की बात। पांच सौ रुपये तो जिंदगी भर के लिए बहुत हो जाते हैं। मगर जब सम्राट ने कहा मांग ले जो तुझे मांगना हो, तो उसने सोचा मैं पागल हूं, अगर पांच सौ मांगूं। पांच हजार क्यों न मांगूं? पांच लाख क्यों न मांगूं? पांच करोड़ क्यों न मांगूं?

बात बढ़ती चली गई। सम्राट ने कहा: मालूम होता है तू तय करके नहीं आया। तू विचार कर ले। मैं तब तक बगीचे का चक्कर लगा लूं।

जब तक सम्राट ने बगीचे का चक्कर लगाया तब तक तो वह युवक बिलकुल पागल हालत में आ गया। संख्या बढ़ती ही चली जाती। जब देने को ही राजी है कोई, तो फिर कम क्यों मांगना! जितनी उसे संख्या आती थी, वहां पहुंच गया, आखिरी संख्या पर पहुंच गया। तब सिर पीट लिया उसने कि गुरु सदा कहते थे गणित पर ध्यान दे, मैंने ज्यादा ध्यान न दिया। आज काम आ जाता! यह संख्या इससे ज्यादा मुझे आती नहीं। अब अटक गया।

तब तक सम्राट आया। उसने पूछा: तू बड़ा बेचैन, परेशान मालूम होता है। बात क्या है? तू मांग ही ले, तुझे जो मांगना है।

तो उसने कहा कि संकोच लगता है। सम्राट ने कहा: संकोच का सवाल ही

नहीं। तू बोल।

तो उसने कहा : ऐसा करें, मैंने बहुत सोचा, बहुत संख्या सोची, लेकिन गणित मेरा ठीक नहीं है और संख्या पर जाकर मैं अटक गया हूं। और अगर उतना मैं मांगूं तो जिंदगी भर मैं पछताऊंगा कि और क्यों न मांग लिया। तो आप ऐसा करें कि आप जिस दरवाजे से मैं आया हूं बाहर निकल जाएं और जो आपके पास है, सब मुझे दे दें। तो मुझे जिंदगी में दुख नहीं होगा कि जो था सभी मिल गया, अब संख्या का कोई सवाल ही नहीं था। जितना है, सब दे दें।

युवक तो सोचता था सम्राट घबड़ा जाएगा यह सुनकर। लेकिन सम्राट ने तो आकाश की तरफ हाथ जोड़े और कहा : हे प्रभु, तो तूने भेज दिया वह आदमी, जिसकी मुझे तलाश थी ! तब तो युवक थोड़ा घबड़ाया। उसने कहा : बात क्या है ? आप क्या कह रहे हैं ?

वह सम्राट बोला : अब तू सोच-विचार में मत पड़ जाना। तू भीतर जा, सम्हाल ! मैं थक गया हूं बहुत। और मैं वर्षों से प्रार्थना कर रहा हूं कि हे प्रभु, किसी को भेज दो, जो सब मांग ले। आज सुन ली !

उस युवक ने कहा : मुझे एक दफा और सोचने का मौका दें। आप एक चक्कर और बगीचे का लगा आएं।

सम्राट ने कहा कि नहीं, मुश्किल से तू आया है। वर्षों हो गये मुझे दान देते; मगर छोटे-छोटे दान लोग मांगते, उससे क्या बनता-बिगड़ता है ! तू हिम्मतवर आदमी है। सोचने की अब क्या जरूरत है ? फिर सोचना मजे से। महल में जा, वहीं सोचना। जैसे हम सोचते रहे जिंदगीभर, तू भी सोचना। जल्दी क्या है ? तू अभी जवान है।

उस युवक ने कहा कि नहीं, एक मौका तो मुझे देना ही पड़ेगा। सम्राट चक्कर लगाकर आया और जो उसने सोचा था वही हुआ, युवक भाग गया था। द्वारपाल को कह गया था : मेरी तरफ से क्षमा मांग लेना। क्योंकि जब सम्राट इतने सब होने से तृप्त नहीं हुआ, तो अब इस झंझट में मैं क्यों पड़ूं ! इसकी जिंदगी खराब हुई, मेरी भी खराब करूं।

धन कितना ही हो, तुम निर्धन बने ही रहते हो। तो धन में परम धन की तलाश चल रही है—परमात्मा की तलाश चल रही है। आदमी सभी दिशाओं में उसी को खोज रहा है। इसलिए मीरा ठीक कहती है : 'मैं वैरागण आदि की जी।' यह कोई नयी प्रीति नहीं—पुरानी प्रीति है। मैं सदा से तुम्हीं को खोज रही हूं, सदा से तुम्हीं को पुकार रही हूं। ...'थारि म्हारे कद को सनेस।' जरा सोचो तो कि कब का अपना पुराना प्रेम है। कद का ! कितना पुराना !

'बिन पाणी बिन साबण सांवरा, हो गई धोय सफेद।'

इतने दिनों से पुकार रही हूं, इतनी सदियों से, इतने जन्मों से तुम्हारे लिए रो

रही हूं कि आंसुओं ने ही धो-धोकर मुझे सफेद कर दिया।

'बिन पाणी बिन साबण सांवरा...'। न तो पानी की जरूरत पड़ी और न आकाश में मेघ घिरे, न उनकी वर्षा की जरूरत पड़ी। आंसुओं के ही कारण धुल-धुलकर सफेद हो गयी हूं। जरा मेरी तरफ देखो ! ....'हो गई धोय सफेद'।

'जोगण होकर जंगल हेरूं, तेरो नाम न पायो भेस।' और भटकती हूं जंगल-जंगल, तुझे कुछ दया नहीं आती ? तुझे मेरी तरफ कुछ करुणा नहीं आती ? 'तेरो नाम न पायो भेस।' न तो तेरे नाम का पता चलता है, न तेरे रूप का पता चलता है। जगह-जगह ठोकर खाती हूं, पुकारती फिरती हूं। तू मिलता नहीं। हां, तेरी झलक दूर-दूर दिखायी पड़ती है। कभी उस तारे के पास, कभी उस चांद के पास। जब तक मैं वहां पहुंचती हूं, तू वहां से अंतर्धान हो गया होता है।

'तेरी सूरत के कारण मैं तो, धारया छे भगवा भेस।' और ये जो गैरिक वस्त्र मैंने पहन लिये हैं, ये मैंने किसी स्वर्ग या किसी मोक्ष को पाने के लिए नहीं।

यह भक्त का भेद समझ लेना। ज्ञानी चाहता है मोक्ष। ज्ञानी चाहता है स्वर्ग। ज्ञानी चाहता है सच्चिदानंद की परम अवस्था। भक्त कहता है : मुझे यह कुछ नहीं चाहिए। सिर्फ तू मिल जाए, तेरे चरण मिल जाएं !

'तेरी सूरत के कारण मैं तो'...। वह तेरी सांवली सूरत मन भा गयी। वह तेरा बालक जैसा निर्दोष भाव मन भा गया।

'बंसीवारा आज्यो म्हारो देस, थांरी सांवली सूरत बालो भेस।
तेरी सूरत के कारण मैं तो, धारया छे भगवा भेस।'

ये जो मैंने गैरिक वस्त्र पहने हैं, ये किसी मोक्ष की तलाश में नहीं—तुझ से मिलने के लिए।

भक्त भगवान से मिलना चाहता है। उसकी और कोई आकांक्षा नहीं। इसलिए भक्त एक अर्थ में परम वासना-मुक्त होता है। मोक्ष की आकांक्षा भी अपने ही लिए की गयी आकांक्षा है : 'मुझे मोक्ष मिले !' भक्त अपने लिए कुछ भी नहीं मांगता। वह कहता है : तुम्हारे पास तुम्हारी छाया में बैठने को मिल जाए ! तुम मिल जाओ ! इतना पर्याप्त है।

'मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, घूंघरवाला केस।'

बस मेरे मन में तो एक ही बात गूंज रही है—मीरा कहती है—तुम्हारे वे घूंघरवाले बाल ! वह तुम्हारा पीताम्बर वेश ! वह तुम्हारी सांवली सूरत ! वह तुम्हारा निर्दोष चेहरा ! वे तुम्हारी निर्दोष आंखें ! बस इतना पर्याप्त है। ये गैरिक वस्त्र मैंने इसीलिए पहने हैं।

'मीरा के प्रभु गिरधर नागर, मिल्या मिटेगा क्लेस।'

महावीर ने कहा है : क्लेश मिट जाएं तो सत्य की उपलब्धि होती है। मीरा कहती है : तुम मिल जाओ तो क्लेश मिटें, दुख मिटें, चिंताएं मिटें।

दो तरह के गैरिक संन्यासी हैं दुनिया में। मेरे पास दोनों तरह के लोग हैं। एक तो वे लोग हैं, जिन्होंने गैरिक वस्त्र इसलिए पहने हैं कि संसार के प्रति उनके मन में विराग पैदा हो गया है। और एक वे लोग हैं जिन्होंने गैरिक वस्त्र इसलिए पहने हैं कि उनके मन में परमात्मा के प्रति राग पैदा हो गया। दोनों की फलश्रुति एक ही है अंततः। लेकिन दोनों के ढंग बड़े अलग होंगे। संसार के प्रति जो विरागी है, वह भी गैरिक वस्त्र पहनता है; लेकिन तुम उसे उदास पाओगे। तुम उसे गंभीर पाओगे। तुम उसे शांत पाओगे, किन्तु गंभीर। और जिसमें परमात्मा का राग पैदा हो गया है, तुम उसे नाचता हुआ पाओगे। तुम उसे गुनगुनाता हुआ पाओगे।

मीरा कहती है: ये गैरिक वस्त्र संसार के किसी दुख से घबड़ाकर नहीं पहने हैं मैंने। तुम्हारे आनंद की झलक मिलने लगी है, इसलिए पहने हैं। ये मेरे गैरिक वस्त्र तुम्हारे प्रति राग के प्रमाण हैं--संसार के प्रति विराग के नहीं। यद्यपि जिसका परमात्मा के प्रति राग हो गया, उसका संसार के प्रति अपने-आप विराग हो जाता है। मगर वह गौण बात है। वह उसका लक्ष्य नहीं है।

'बाला मैं बैरांगण हूंगी।'

प्यारा वचन है! कृष्ण को कहती है: बाला। मतलब होता है: लाला।

'लाला मैं वैरागण हूंगी।'

लेकिन यह मेरा वैराग्य तुम्हारे राग से ज्योतिर्मय है। यह मेरा वैराग्य संसार के विपरीत नहीं—तुम्हारी अभीप्सा से भरा है।

'जिन भेषां म्हारो साहब रीझै, सो ही भेष धरूंगी।'

जिन भेषां म्हारो साहब रीझै...'। वह परम प्यारा जिस बात से रीझे, वही भेष धरूंगी। अगर ये गैरिक वस्त्र तुम्हें प्रिय हैं तो ठीक, गैरिक वस्त्र। तुम्हें जो प्रिय है, वैसी ही हो जाऊंगी। तुम्हारे योग्य बनना है, पात्रता अर्जित करनी है, अधिकार पाना है।

'जिन भेषां म्हारो साहब रीझै, सो ही भेष धरूंगी।'

तुम जो कहोगे, वही करूंगी।

'शील संतोष धरूं घट भीतर, समता पकड़ रहूंगी।'

तुम अगर कहो कि शील चाहिए, तो शील। तुम कहो संतोष, तो संतोष। और तुम कहो समता, तो समता।

भेद समझना। ज्ञानी इन सारी प्रक्रियाओं को साधता है--शर्तबंदी की तरह। क्योंकि समता के बिना कैसे सत्य मिलेगा, और शील के बिना कैसे सत्य मिलेगा, और संतोष के बिना कैसे सत्य मिलेगा? सत्य पाना है उसे, इसलिए वह शील भी साधता, संतोष भी साधता, समता भी साधता। लेकिन साधना में पीछे बराबर देखता रहता है कि अभी तक मिला नहीं सत्य। मैंने इतना शील साधा, इतना त्याग किया, इतना व्रत किया, अभी तक मिला नहीं। उसकी साधना व्यवसायिक मालूम

होती है--साधन की तरह; लेकिन नजर कहीं और लगी है।

मीरा की साधना में भेद होगा। भक्त की साधना में भेद है। भक्त कहता है: सुना कि तुझे शील रुचता है, तो शील साधते हैं। सुना कि तुझे समता प्यारी लगती है, तो समता साधते हैं। जैसे कोई स्त्री, उसके पति को प्यारा लगता, वैसा आभूषण पहन लेती है, वैसे कपड़े पहन लेती है, जैसा पति को प्यारा लगता है, जैसा उसके प्यारे को प्यारा लगता है।

'जिन भेषां म्हारो साहब रीझै...'।

ऐसे ही भक्त कहता है कि जिस भेष में तुम रीझोगे मुझ पर, जिस भेष में तुम पाओगे मैं तुम्हारे योग्य हुआ, जिस भेष में तुम मुझ से मिलना चाहोगे, इशारा भर कर दो--साधने में देर नहीं लगेगी।

भक्त साधता भी है, लेकिन परम आनंद से साधता है। उसकी साधना में वही भाव होता है जो तुमने कभी स्त्री को अपने प्रिय के लिए सजते हुए देखा हो--दर्पण के सामने, अपने प्रिय के लिए सज रही है! प्यारा आता है बहुत दिन के बाद, तो वह सज रही है! परम आनंद भाव से। गंभीरता नहीं पाओगे वहां। कपड़े पहन रही, कि बिंदी लगा रही, कि बाल संवार रही। तुम गंभीरता नहीं पाओगे। गंभीरता यहां कैसी? प्यारे से मिलने को जा रही है। बड़ी आनंदित है, आह्लादित है। याद कर रही है कि प्यारे को क्या-क्या ठीक लगता है—काली बिंदी ठीक लगती है कि लाल बिंदी ठीक लगती है? प्रिय के योग्य बनना है।

ऐसे ही भक्त जीता है। भक्त का चरित्र उसका श्रृंगार है। ज्ञानी का चरित्र श्रृंगार नहीं है। इसलिए ज्ञानी को तुम उदास देखोगे। वह काम करता है--समता भी साधता है, शील भी साधता है, ध्यान भी करता है—लेकिन तुम उसको उदास देखोगे। उसके चेहरे पर तुम्हें प्रफुल्लता नहीं दिखाई पड़ेगी, क्योंकि प्रेम की वहां कोई संभावना नहीं। और प्रेम के बिना कोई प्रफुल्लता नहीं है।

'शील संतोष धरूं घट भीतर, समता पकड़ रहूंगी।
जाको नाम निरंजन कहिये, ताको ध्यान धरूंगी।'

तुम अगर कहते हो कि ध्यान रखो तो ध्यान धरूंगी। तुम अगर कहते हो निरंजन को याद करो, तो निरंजन को याद करूंगी।

'गुरु के ज्ञान रंग तन कपड़ा, मन मुद्रा पैरूंगी।'

अगर तुम कहते हो कि गुरु के चरण पकड़ो तो 'गुरु के ज्ञान रंग तन कपड़ा'...। तो गुरु जो ज्ञान देगा, उसी में तन को रंग लूंगी, कपड़े को रंग लूंगी। तुम जो कहो, राजी हूं; जिधर भेजो, राजी हूं। तुम्हारी आज्ञा की प्रतीक्षा है।

'...मन मुद्रा पैरूंगी।'

मुद्रा पारिभाषिक शब्द है। मुद्रा का अर्थ होता है एक ऐसी चित्त की शून्य दशा जहां कोई विचार नहीं रह जाता। उस शून्य दशा में ही परमात्मा की पूर्णता उतरती

है। उसको महामुद्रा कहते हैं। ध्यान की परम दशा को महामुद्रा कहते हैं, जहां अहंकार बिलकुल शून्य हो जाता है; सिर्फ एक शून्य वर्तुल रह जाता है। इसलिए अंगूठी को भी मुद्रा कहते हैं, क्योंकि वह भी शून्य वर्तुल है।

प्रेम में अंगूठी दी जाती है--बहुत देशों में! जिससे तुम्हारा प्रेम होता है, प्रेम के प्रतीक की तरह तुम अंगूठी देते हो। वह मुद्रा है। वह प्रतीक मात्र है। अब परमात्मा को सोने की अंगूठी तो नहीं दी जा सकती, लेकिन चित की शून्य दशा दी जा सकती है। चित शून्य हो जाए--जैसे मुद्रा, जैसे अंगूठी एक वर्तुल होती है और बीच में शून्य होता है। ऐसे तुम्हारा व्यक्तित्व एक वर्तुल रह जाए और बीच में शून्य हो। उसी शून्य में परमात्मा का प्रवेश होता है। उसी मुद्रा के द्वारा तुम उसे बुला सकते हो। वही मुद्रा तुम्हारे और परमात्मा के बीच प्रणय का प्रतीक है।

तो मीरा कहती है:

'गुरु के ज्ञान रंग तन कपड़ा, मन मुद्रा पैरूंगी।
प्रेम पीतसूं हरिगुण गाऊं, चरणन लिपट रहूंगी।'

एक बार तुम मिल भर जाओ, फिर छोड़ूंगी नहीं; चरणों में लिपट जाऊंगी, जैसे बेल लिपट जाती है वृक्ष पर। 'प्रेम पीतसूं हरिगुण गाऊं, चरणन लिपट रहूंगी। या तन की मैं करूं कींगरी ....।' मिल भर जाओ एक बार ....।

बड़ी-बड़ी आशाएं हैं भक्त की, कि मिल जाओ तो ऐसा करूं, ऐसा करूं। जैसे तुम्हारे मन में उठती हैं। कभी प्यारा आता है तो तुम सोचते हो: ऐसा करूं वैसा करूं; घर को ऐसा सजाऊं; भोजन ऐसा बनाऊं। भक्त भी बड़ी आशाएं रखता है कि प्रभु मिलेगा तो क्या करेगा?

मीरा कहती है: 'या तन की मैं करूं कींगरी...'। इस तन की तो सारंगी बना लूंगी। इस तन की मैं करूं कींगरी, रसना नाम कहूंगी।

जीभ को हमने रसना कहा है—दो कारणों से। दूसरा कारण शायद तुम्हें पता न हो। एक कारण तुम्हें पता है कि भोजन का रस जीभ से मिलता है, इसलिए रसना। यह असली कारण नहीं। असली कारण दूसरा है, क्योंकि जीभ से ही परमात्मा का स्मरण होता है और उसका स्वाद मिलता है, इसलिए रसना। भोजन का भी स्वाद जीभ से मिलता है और परमात्मा का भी स्वाद जीभ से मिलता है। तो रसना।

मीरा कहती है: 'या तन की मैं करूं कींगरी, रसना नाम कहूंगी।' शरीर को तो बना लूंगी सारंगी और फिर गाऊंगी गीत तेरे आनंद के, तेरे गुण गाऊंगी।

'प्रेम पीतसूं हरिगुण गाऊं, चरणन लिपट रहूंगी।
या तन की मैं करूं कींगरी, रसना नाम कहूंगी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, साधां संग रहूंगी।'

और फिर तुम से मिलन हो जाए, तुम्हारे चरणों में मेरा गीत अर्पित हो जाए, जो संगीत मैं लिए फिर रही हूं जन्मों-जन्मों से वह प्रगट हो जाए--तो फिर क्या बचता है? फिर एक ही बात बचती है कि इसी गीत को गुनगुनाऊंगी, लोगों तक पहुंचाऊंगी।

... 'साधां संग रहूंगी।'

--जिनकी भी आकांक्षा तुम्हें पाने की है, जो भी साधु होने को तत्पर हैं या साधु हो गये हैं, जो तुम्हें खोजने निकल पड़े हैं। बजाऊंगी सारंगी। एक बार तुम मिल जाओ, एक बार तुम्हारे चरणों में मेरा गीत और मेरा संगीत अर्पित हो जाए, तो फिर जाऊंगी दूर-दूर। साधां संग रहूंगी! फिर जगाऊंगी सोयों को। फिर पुकारूंगी। एक बार मुझे भर दो अपने अमृत से, तो उसे लुटाऊंगी।

... 'साधां संग रहूंगी।' जहां-जहां सत्संग होता होगा, वहां-वहां नाचूंगी। जहां लोग प्रभु-प्रेम में इकट्ठे होते होंगे, वहां मस्त होकर गुनगुनाऊंगी। एक बार तुम्हें चख लूं, एक बार मेरी इस जीभ पर तुम्हारा स्वाद उतर आए, तो फिर इस जीभ में बड़ा बल होगा; तो फिर जिसको पुकारूंगी उसके जीवन में भी रस की धार बह जाएगी। फिर कुछ और बचता नहीं। फिर एक ही काम बचता है कि तुम्हारे गुण गाऊं, सोयों को जगाऊं।

और मीरा ने वही किया। जब उसके प्राणप्यारे उसे मिल गये, तो उसने वही किया। जगाती फिरी। सच उसने जैसा कहा, वैसा ही किया।

'या तन की मैं करूं कींगरी...'।

किस दूसरे व्यक्ति ने अपने तन की ऐसी सारंगी बनायी, जैसी मीरा ने बनायी? किसी और ने नहीं। मनुष्य-जाति के इतिहास में अप्रतिम है मीरा। बुद्ध को ज्ञान हुआ तो चुप रहे, मौन रहे, शांत रहे। महावीर को ज्ञान हुआ तो निर्विकार, निर्दोष, मौन में रहे। महामुनि थे। बारह वर्ष तक चुप रहे। फिर बोले भी तो संक्षिप्त।

कौन नाचा मीरा जैसा? किसने तन की कींगरी बनायी?

मीरा अनूठी है उन अर्थों में! सत्य का संस्पर्श--इतने संगीत को किसी और में कभी पैदा नहीं किया। मीरा में बाढ़ आ गयी। बह चली। जो पास आया, उसको डुबाया। जिसको छुआ उसको मस्ती से भर दिया। जो मीरा की हवा में आ गया, वह नशे में भर गया। जो उसने कहा, किया भी।

'या तन की मैं करूं कींगरी, रसना नाम करूंगी,
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, साधां संग रहूंगी।'

एक बार तुम मिल जाओ तो मैं तुम्हें बांटने निकल जाऊं; तो गांव-गांव पुकारूं कि मीरा के तो गिरधर नागर; तो जहां-जहां साधु हों, जहां-जहां तुम्हारे प्यासे हों, वहां-वहां जाऊंगी। जिनकी अजुंरी तुम्हें पुकारती होगी, जिनकी प्रार्थना तुम्हें पुकारती होगी—उनमें तुम्हें उंडेल दूंगी।

और मीरा ने ऐसा किया। अब भी उसके वचनों में जैसा रस है, वैसा किसी

और के वचनों में नहीं। अब भी मीरा का नाम ही हृदय में रस घोल जाता है।

उसके पद सीधे-साधे हैं। वह कोई कवयित्री नहीं है। प्रेम में गाये हैं। योजना नहीं की है। बैठ-बैठकर मात्रा, छंद नहीं बिठाये हैं। बैठ गये हैं! अपने से हो गया है। सहजस्फूर्त हैं ये वचन। फिर बहुतों ने मीरा जैसे पद लिखे हैं, हजारों पद लिखे हैं, मीरा का नाम भी जोड़ दिया उनमें। अब तो तय करना लोगों को मुश्किल होता है कि कौन-से पद मीरा के हैं, कौन-से दूसरों ने लिख दिये हैं। लेकिन पहचाने जा सकते हैं वे पद। क्योंकि दूसरों ने लिखे हैं, उनमें कविता है, उनमें व्यवस्था है। उन्हें पकड़ा जा सकता है। उनमें भाषा का सौंदर्य है, लेकिन भाव दरिद्र है। देह सुंदर है, आत्मा अनुपस्थित है। मगर जिसको आत्मा की पहचान हो, वही भेद कर पाएगा। घायल की गति घायल जाने। जौहरि की गति जौहरि जाने। नहीं तो मुश्किल है।

मीरा से बड़े कवि हुए हैं, मगर मीरा-सा बड़ा भक्त कहां? यह कविता बड़ी और है। अपौरुषेय है। जैसे वेद अपौरुषेय हैं, जैसे वेद उतरे हैं ऋषियों में, जैसे कुरान उतरी है मुहम्मद में--ऐसे ये वचन उतरे हैं मीरा में। और जितने प्यार से उसने गाया है, जितने प्यार से उसने गुंजाया है, अपने स्वाद को जिस रस से उसने बांटा है--किसी ने कभी भी नहीं बांटा है।

डुबकी लेना हो तो मीरा में लो! ऐसा प्यारा घाट और कहीं नहीं है।

आज इतना ही।

संन्यास है—दृष्टि का उपचार

छठवां प्रवचन

दिनांक : १६ नवम्बर, १९७७; श्री रजनीश आश्रम, पूना

आप कहते हैं—संन्यासी को संसार छोड़ना आवश्यक नहीं। क्यों?

आप अपने संन्यासियों को संसार से अलग नहीं होने की सलाह देते हैं। फिर आपके प्रवचनों में संन्यासियों और संसारियों के बीच लक्ष्मण-रेखा क्यों बनती है?

मैं पूना के लिए यह निश्चय करके चला था कि अब की बार संन्यास लेकर लौटूंगा। किन्तु यहां आपके सान्निध्य में होकर संन्यास का भाव ही विलीन हो गया।

वर्ष भर से सक्रिय ध्यान करता हूं। पांच-छह बार ध्यान की क्षणिक अनुभूतियां भी हुईं। एक बार तो आंखें आप ही आप ऊपर चढ़ गईं और आज्ञाचक्र एकदम से प्रकाशित हो गया। किन्तु हर ध्यान के बाद यह भाव बना रहा : आखिर इससे क्या हुआ? अनुग्रह का भाव तो उठता नहीं। भगवान, बताएं कि मैं क्या करूं?

समाधि क्या है?

मैं परमात्मा को खोजता फिर रहा हूं और परमात्मा मिलता नहीं। प्रभु, कितनी यात्रा और करनी होगी? संन्यास भी लिया है, परमात्मा तो नहीं मिला; उलटा लोग मुझे पागल समझने लगे।
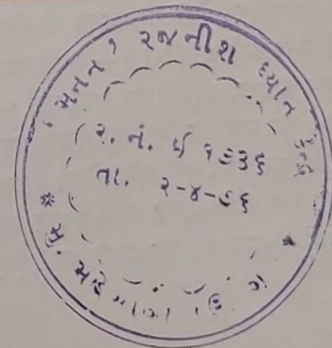
पहला प्रश्न : आप कहते हैं--संन्यासी को संसार छोड़ना आवश्यक नहीं। क्यों ?

*

क्योंकि संसार परमात्मा का है। संसार को छोड़ना प्रकारांतर से परमात्मा को ही छोड़ना है। संसार का अपमान उसके स्रष्टा, उसके मालिक का अपमान है।

संसार को छोड़ने की बात का एक ही अर्थ होता है कि तुम परमात्मा से भी ज्यादा समझदार हो रहे हो। उसने अभी तक संसार नहीं छोड़ा। उसने छोड़ दिया होता संसार तो संसार खो गया होता। वही तो डालता है श्वास प्राणों में। वही तो हरा है वृक्षों में। वही तो गीत गाता पक्षियों में। संसार उसने छोड़ा नहीं है।

और ऐसा भी मत सोचना कि संसार को बनाकर परमात्मा दूर हो गया है। उसके बिना संसार जी ही न सकेगा। परमात्मा प्रतिपल संसार बना रहा है। किसी इतिहास की घड़ी में संसार बनाया और फिर हट गया--ऐसा नहीं है। इस क्षण भी सृजन जारी है। नये बीजों में अंकुर आ रहे हैं। नये बच्चे पैदा हो रहे हैं। नये तारे निर्मित हो रहे हैं। प्रतिपल सृजन चल रहा है।

संसार को छोड़ोगे, परमात्मा का अपमान करोगे।

इसलिए कहता हूं : संसार को मत छोड़ना, क्योंकि संसार में परमात्मा छिपा है। और परमात्मा को खोजोगे कहां ? संसार के अतिरिक्त और कोई जगह कहां है ? भागोगे कहां ? जहां जाओगे वहां संसार है। बाजार में संसार है, हिमालय में संसार नहीं ? मनुष्यों में संसार है, वृक्षों में संसार नहीं ? अगर मनुष्यों में संसार है, तो वृक्षों में भी संसार है। सभी पर उसी एक मालिक के हस्ताक्षर हैं। जाओगे कहां? चांद-तारों पर जाओगे ! जहां जाओगे तुम, वहीं संसार होगा। संसार में ही जा सकते हो।

और अगर ऐसी कोई जगह भी होती--कल्पना करके मान लें, तर्क के लिए मान लें, ऐसी कोई जगह भी है--जहां संसार नहीं, वहां भी तुम पहुंच जाओगे, तो संसार पहुंच जाएगा, क्योंकि तुम संसार हो। तुम संसार के सारे सूत्र अपने हृदय में लिए हो। तुम जहां जाओगे वहां संसार बस जाएगा। तुम जहां जाओगे वहां प्रेम होगा, वहां घृणा होगी, वहां क्रोध होगा, वैमनस्य होगा, मित्रता होगी, शत्रुता होगी, कभी खिन्न मन, कभी प्रसन्न मन। संसार वहां बस जाएगा। तुम किसी वृक्ष के नीचे बैठे रहोगे दो-चार वर्ष तक ध्यान करते हुए और फिर कोई दूसरा संन्यासी आकर वृक्ष

के नीचे बैठ जाएगा, तुम कहोगे : कहीं और खोजो ! यह वृक्ष मेरा है ! मैं चार वर्ष से यहां बैठा हुआ हूं। रास्ता नापो ! कहीं और जाओ। यह गुफा मेरी है !

और जहां मेरा आया वहां संसार आया। और तुम वृक्ष के नीचे बड़े शांत बैठे हो और एक कौवा बीठ कर जाए ... । अब कौवों को कोई फिक्र तो होती नहीं कि तुम संन्यासी हो, कि संसारी हो, कि त्यागी हो, कि व्रती हो कि मुनि हो, यति हो। कौवा बीठ कर जाएगा, मन क्रोध की आग से भर जाएगा। तुम वैसे ही क्रुद्ध हो जाओगे जैसे किसी ने गाली दी। और सिंह दहाड़ मारेगा, तो तुम्हारी छाती कंपेगी --वैसे ही भय से, जैसे कभी किसी दुश्मन ने छाती पर छुरी रख दी होती, तब कंपी होती। जाओगे कहां ? अपने से कहां भागोगे ?

परमात्मा बाहर भी मौजूद है--तुम में भी मौजूद है।

यदि तुम मुझ से पूछो तो मैं कहना चाहूंगा कि परमात्मा और संसार दो हैं, यह भाषा ही गलत है। संसार परमात्मा है। जब तुम दो मान लेते हो तो अड़चन में पड़ जाते हो। फिर छोड़ने-पकड़ने का उपद्रव शुरू होता है। जब दो मान लिया तो द्वंद्व शुरू होता है : 'क्या पकड़ूं क्या छोड़ूं ?' विकल्प खड़े हो गये : 'संसार पकड़ूं कि सत्य पकड़ूं ? ' एक छोड़ना पड़ेगा, क्योंकि तुमने अपने हाथ से द्वंद्व खड़ा कर लिया।

मैं तुमसे कहना चाहता हूं : एक ही है। यहां दो हैं ही नहीं। दो तुम्हारे मन की कल्पना है। और जब भी तुम दो बना लोगे, तभी द्वंद्व में पड़ोगे, तभी कलह में पड़ोगे, तभी कष्ट में, तभी नर्क में उतर जाओगे।

एक में होना ही स्वर्ग में होना है। दो में हो जाना ही नर्क में हो जाना है।

संसार और परमात्मा को दो की तरह मत सोचो। सृष्टि और स्रष्टा को दो में मत बांटो। स्रष्टा और सृष्टि एक ही घटना के दो नाम हैं।

परमात्मा ने संसार बनाया, ऐसा मत कहो। परमात्मा संसार बना, ऐसा कहो। बनायेगा भी कहां से ? लायेगा कहां से ? अपने में से ही निकालेगा।

इसलिए पुराने शास्त्र कहते हैं : जैसे मकड़ी जाला बुनती है, अपने ही भीतर से निकालती है, ऐसे परमात्मा ने यह संसार रचा। अपने ही भीतर से निकाला ! यह उसका अंतरतम है जो बाहर फैला है।

तुम्हें भागने की जरूरत नहीं--जागने की जरूरत है। स्थान नहीं बदलना है--स्थिति बदलनी है। कहां रहो, यह सवाल नहीं है--कैसे रहो, यह सवाल है।

अंधा आदमी अंधेरे में हो तो अंधेरा है और रोशनी में खड़ा हो जाये तो अंधेरा है। रोशनी में भी खड़े होकर अंधे आदमी को अंधेरा होगा। असली सवाल अंधा आदमी अंधेरे में बैठे कि रोशनी में बैठे, यह नहीं है। असली सवाल यह है कि अंधा आदमी कैसे आंख खोले, कैसे उसकी आंख सुधरे, कैसे उसकी आंख का उपचार हो ?

दृष्टि का उपचार संन्यास है। देखने की कला आनी चाहिए। दर्शन आना चाहिए। गहरे देखने की क्षमता आनी चाहिए। तो जब तुम पत्थर में गहरे देखोगे

तो परमात्मा मिलेगा। ऊपर-ऊपर संसार है, भीतर-भीतर परमात्मा है।

इसलिए मैं तुम से नहीं कहता कि छोड़कर जाओ। छोड़ने की बात ही कायरता की, कमजोरी की, नपुंसकता की है। भगोड़ेपन की बात में कुछ बहुत सार नहीं है। जूझो! भागोगे कहां? जूझने से मिलेगा कुछ। चुनौती को स्वीकार करो।

मैं तुमसे रणछोड़दासजी बनने को नहीं कहता। यह जीवन का युद्ध है, इसको छोड़कर कहां जाओगे? वही तो अर्जुन कर रहा था गीता में--जीवन के युद्ध से भाग रहा था। कृष्ण ने खींचा उसे।

जाओगे कहां?

जो दिया है परमात्मा ने, उसको कैसे ढंग से जीएं--सारी बात इसकी है।

अक्सर ऐसा होता है: नाच नहीं आता तो तुम आंगन को टेढ़ा कहते हो। नाच सीखो! जो नाचना जानता है, टेढ़े आंगन में भी नाच सकता है। और जो नाचना नहीं जानता, चौकोर आंगन भी होगा तो क्या करेगा?

मगर लोग सस्ती बात पकड़ लेते हैं। पत्नी छोड़ दो, बच्चे छोड़ दो--यह सस्ती बात है। तुम सोचते हो: पत्नी के कारण मोह है, या कि मोह के कारण पत्नी है? जरा विचार करना, ध्यान करना। पत्नी पहले या मोह पहले? मोह न होता तो तुम पत्नी को ले ही कैसे आये होते? तुमने पत्नी बनायी क्यों होती? मोह पत्नी के पहले था और अब तुम बेचारी पत्नी पर थोप रहे हो कि पत्नी के कारण मोह है।

मोह के कारण पत्नी है। तुम पत्नी छोड़कर भाग जाओगे, मोह कहीं और टिकेगा, कोई और निमित्त खोज लेगा।

पुरानी कथा है। एक खोजी ने विष्णु को खोजते-खोजते एक दिन पा लिया। चरण पकड़ लिए। बड़ा आह्लादित था, आनंदित था। जो चाहिए था, मिल गया था। खूब-खूब धन्यवाद दिये विष्णु को और कहा कि बस एक बात और: मुझ से कुछ थोड़ा-सा काम करा लें, कुछ सेवा करा लें। आपने इतना दिया, जीवन दिया, जीवन का परम उत्सव दिया और अब यह परम जीवन भी दिया। मुझसे कुछ थोड़ी सेवा करा लें! मुझे ऐसा न लगे कि मैं आपके लिए कुछ भी न कर पाया, आपने इतना किया! मुझे थोड़ा-सा सौभाग्य दे दें! जानता हूं, आपको किसी की जरूरत नहीं, किसी बात की जरूरत नहीं। लेकिन मेरा मन रह जाएगा कि मैं भी प्रभु के लिए कुछ कर सका!

विष्णु ने कहा: कर सकोगे? करना बहुत कठिन होगा।

मगर भक्त जिद्द पर अड़ गया। तो कहा: ठीक है, मुझे प्यास लगी है।

क्षीरसागर में तैरते हैं विष्णु, वहां कैसी प्यास! पर इस भक्त के लिए कहा कि चल ठीक, मुझे प्यास लगी है। तू जाकर एक प्याली भर पानी ले आ।

भक्त भागा। तुम कहोगे क्षीरसागर था, वहीं से भर लेता। लेकिन जो पास है, वह तो किसी को दिखाई नहीं पड़ता। पास तो दिखाई ही नहीं पड़ता। पास के

लिए तो हम बिलकुल अंधे हैं। हमें दूर की चीजें दिखाई पड़ती हैं। जितनी दूर हों, उतनी साफ दिखाई पड़ती हैं। चांद-तारे दिखाई पड़ते हैं। निकट पड़ोस नहीं दिखाई पड़ता। उसे भी नहीं दिखाई पड़ा होगा। तुम जैसा ही आदमी रहा होगा। भागा। उसने कहा: अभी लाता हूं।

चला। उतरा संसार में। एक द्वार पर जाकर दस्तक दी। एक सुंदर युवती ने द्वार खोला। उस भक्त ने कहा कि देवी, मुझे एक प्याली भर शीतल जल मिल जाए।

उस युवती ने कहा: आप आये हैं, ब्राह्मण देवता! भीतर विराजें! मेरे घर को धन्य करें! ऐसे बाहर-बाहर से न चले जाएं। फिर मेरे पिता भी बाहर गये हैं। मैं घर में अकेली हूं। वे आएंगे तो बहुत नाराज होंगे कि ब्राह्मण देवता आये और तूने बाहर से भेज दिया! नहीं-नहीं, आप भीतर आएं!

एक क्षण को तो ब्राह्मण देवता डरे! युवती है, सुंदर है, अति सुंदर, ऐसी सुंदर स्त्री नहीं देखी। विष्णु भी एक क्षण को फीके मालूम पड़ने लगे। विष्णु के फीके हो जाने में देर कितनी लगती है! ऐसा दूर का सपना मालूम होने लगे। तो भक्त डरा, घबड़ाया। घबड़ाया इसीलिए कि विष्णु एक क्षण को भूलने ही लगे। आवाज दूर से दूर होने लगी।

उसने कहा कि नहीं-नहीं। माथे पर पसीना आ गया। लेकिन युवती तो मानी न। उसने हाथ ही पकड़ लिया ब्राह्मण देवता का--कि आप आएं भीतर, ऐसे न जाने दूंगी। उसके हाथ का पकड़ना--ब्राह्मण देवता के विष्णु बिलकुल विलीन हो गये। वह भीतर ले गयी। उसने कहा: जल तो आप ले जाएंगे, लेकिन पहले स्वयं तो जलपान कर लें। तो नाश्ता करवाया, पानी पिलाया।

एकांत! उस युवती का सौंदर्य! उस युवती का भाग-भागकर ब्राह्मण देवता की सेवा करना! विष्णु धीरे-धीरे स्मृति से उतर गये। कभी-कभी बीच-बीच में याद आ जाती कि बेचारे प्यासे होंगे, फिर सोचता कि ठीक है अब, भगवान को क्या प्यास! वह तो मेरे लिए ही उन्होंने कह दिया है, अन्यथा उनको क्या प्यास! वे तो परम तृप्ति में हैं! तो ऐसी कोई जल्दी तो है नहीं। और दो क्षण रुक लूं।

और युवती ने जब निमंत्रण दिया कि जब आप आ ही गये हैं, मेरे पिता भी थोड़ी देर में आते ही होंगे, उनसे भी मिलकर जाएं, तो वह सहज ही राजी हो गया। और युवती सेवा करती रही। और युवती का सौंदर्य और रूप मन को मोहता रहा। सांझ हो गयी, पिता तो लौटे नहीं। युवती ने कहा: आप भोजन तो कर ही लें। अब सांझ को कहां भोजन करेंगे!

भोजन बना, भोजन किया। रात हो गई। युवती ने कहा: इस रात में अब कहां जाएंगे!

सोच तो ब्राह्मण देवता भी यही रहे थे कि रात अब कहां जाएंगे! सुबह-सुबह भोर होते, ब्रह्म-मुहूर्त में निकल जाना। राजी हो गये। फिर तो वर्षों बीत गये।

फिर वह वहां से निकले नहीं। फिर एक पर एक काम आते गये। ब्राह्मण देवता करें भी तो क्या करें! सुबह युवती कहने लगी कि पिता तो आये नहीं हैं, गाय का दूध लगाना है, मुझसे लगता नहीं, आप लगा दें। तो गाय का दूध लगाया। फिर बैल बीमार था। तो युवती ने कहा कि ब्राह्मण देवता, इसकी भी कुछ सेवा करें, मैं कहां औषधि लेने जाऊं! और फिर ये सब भी परमात्मा के ही हैं।

बात भी जंची।

ब्राह्मण देवता रुके सो रुके। फिर उनके बेटे हुए, बेटियां हुईं, बड़ा फैलाव हो गया। कोई पचास-साठ साल बीत गये। बेटों के बेटे हो गये। तब गांव में बाढ़ आई। भयंकर बाढ़ आई! ब्राह्मण देवता बूढ़े हो गये हैं। लेकर अपने बच्चों को, नाती-पोतों को किसी तरह बाढ़ से निकलने की कोशिश कर रहे हैं। सारा गांव डूबा जा रहा है। भयंकर बाढ़ है! ऐसी कभी न देखी न सुनी। जैसे बाढ़ में से जा रहे हैं बचाकर, पत्नी बह गयी। पत्नी को बचाने दौड़े तो जिस बच्चे का हाथ पकड़ा था, उसका हाथ छूट गया। उस किनारे पहुंचते-पहुंचते सारा परिवार विलीन हो गया बाढ़ में।

उस किनारे एक पत्थर की चट्टान पर ब्राह्मण देवता खड़े हैं और बाढ़ की एक बड़ी उत्तुंग लहर आती है। उत्तुंग लहर पर आते हैं विष्णु बैठे हुए और कहते हैं: मैं प्यासा ही हूं, तुम अभी तक पानी नहीं लाए? मैंने तुम से पहले ही कहा था, तुम न कर सकोगे। क्योंकि तुम संसार छोड़कर भागे थे। जो छोड़कर भागता है उसका आकर्षण शेष रहता है।

यह कथा बड़ी प्यारी है।.... क्योंकि तुम संसार छोड़कर भागे थे। संसार से जागकर ऊपर नहीं उठे थे। संसार की तरफ आंख बंद करके भागे थे। तो छोटे-से काम के लिए भी संसार में जाओगे तो उलझ जाओगे। लेने गये थे जल और सारा संसार बस गया। गये थे हरिभजन को, ओटन लगे कपास! फिर जब कोई कपास ओटता है तो ओटता ही चला जाता है। कपास का ओटना ऐसा है, कभी पूरा नहीं होता।

मैं तुमसे भागने को नहीं कहता। मैं तुमसे जागने को कहता हूं। भागना सस्ता काम है। बच्चों को छोड़कर भाग जाने में कोई बड़ी शूरवीरता की जरूरत नहीं है—सिर्फ थोड़ी-सी अनुत्तरदायित्व की भावना चाहिए, बस। उत्तरदायित्व का बोध न हो, बस इतना काफी है बच्चों, पत्नी को छोड़कर भाग जाने में। थोड़ी अकर्मण्यता हो, बुद्धिहीनता हो, जड़ता हो--बस इतना काफी है। कोई बहुत बड़ी बुद्धिमानी नहीं चाहिए बच्चे छोड़कर भाग जाने में। सिर्फ थोड़ा-सा कठोर हृदय चाहिए, थोड़ा पाषाण हृदय चाहिए।

बच्चे छोड़कर भाग जाओगे, लेकिन यह पाषाण हृदय परमात्मा को पा सकेगा? यह पाषाण हृदय तो परमात्मा को पाने में बिलकुल असमर्थ हो जाएगा। क्योंकि

परमात्मा को पाने के लिए संवेदनशीलता चाहिए, हार्दिकता चाहिए। और यह तो तुम उलटा ही कर चुके। इसलिए नहीं कहता कि संसार से भाग जाओ। कहता हूं: यह अवसर है परमात्मा का दिया हुआ। इसके पीछे राज है। तुम्हें जगाने के लिए यह एक व्यवस्था है। यह पाठशाला है। यहां से भागने से तुम ज्ञानी न हो जाओगे। इस पाठशाला में उत्तीर्ण होओगे तो ज्ञानी होओगे।

कोई विद्यार्थी भाग जाता है विश्वविद्यालय से, इससे कुछ ज्ञानी नहीं हो जाएगा। विश्वविद्यालय में जूझना पड़ेगा, उत्तीर्ण होना होगा, संघर्ष करना होगा। विश्वविद्यालय के पार होना है; भागने से क्या होगा?

यह संसार विद्यापीठ है। इसकी परीक्षाओं से उतरो। इसकी हर परीक्षा बहुमूल्य है। और जिस-जिस परीक्षा से उतर जाओगे, उतने-उतने परमात्मा के करीब आ जाओगे।

और आखिरी परीक्षा है: पदार्थ में परमात्मा को देखने की क्षमता; रूप में अरूप को पहचानने की क्षमता; क्षुद्र में विराट का दर्शन। वह आखिरी परीक्षा है। वह जिस दिन हो जाएगी, उस दिन ही पाओगे।

इसलिए मेरे संन्यासी को मैं भागने को नहीं कहता। मेरे संन्यासी को मैं जागने को कहता हूं। जागना श्रमपूर्ण है। जागने की प्रक्रिया कठिन प्रक्रिया है—पहाड़ पर चढ़ने जैसी। भागने की प्रक्रिया सरल है--घाट उतरने जैसी है।

यहीं है, जिसे तुम खोज रहे हो। तुम्हारी पत्नी में भी वही छिपा है, तुम्हारे बच्चों में भी वही छिपा है। तुम्हारे पड़ोसियों में भी वही विराजमान है। तुम में भी वही बैठा है। उसके अतिरिक्त दूसरा नहीं है, दूजा नहीं है।

मैं बनाऊं घर इसी मझधार में
अगम जल की सोनमछरी मन बसी।
मैं बनाऊं घर इसी मझधार में!

किनारे मत तलाशो। इसी मझधार में जो घर बना ले, वही कुशल है।

मैं बनाऊं घर इसी मझधार में
अगम जल की सोनमछरी मन बसी।
गढ़ा उसको किसी चतुर सुनार ने
नये सांचे में ढली वह कामिनी
रंग ऐसा भर दिया करतार ने
दिपे सोना अंग जैसे दामिनी।
प्राण की हर पोर में उसकी चुभन
ज्यों अंगूठी अंगुली में हो कसी।
जब हटे जल का रुपहला आवरण
दीख जाए वह सलोनी एक क्षण।

दृष्टि की आराधना साकार हो
ज्योति-पुलकित हो उठे वातावरण ।
दिशाएं हैं मौन उसके ध्यान में
चेतना के लोक की वह उर्वशी ।
बनिज नौकाएं लुटाएं लाख धन
गीत माझी के करें अनगिन गुहार ।
व्यर्थ हैं ये सभी आकर्षण मुझे
मैं न जाऊं छोड़कर यह अगम धार ।
प्रीत की बंसी इसी जल में लगे——
मूढ़ जग चाहे उड़ाये जो हंसी ।
मैं बनाऊं घर इसी मझधार में
अगम जल की सोनमछरी मन बसी ।

कला भागने में नहीं है । कला यहीं खोज लेने में है । कला इसी क्षण जीवन की गहराइयों में, अगम गहराइयों में उतर जाने में है ।

लेकिन तुम्हारे प्रश्न का अर्थ मैं समझता हूं । सदियों से संन्यास का वही रूप रहा—भगोड़े का । उस रूप के कारण अनंत-अनंत लोग संन्यास की अपूर्व संपदा से वंचित रह गये । जो भागे, उनमें से बहुत कम ने पाया । जिन्होंने पाया, वे संसार में भी पा लेते । उन्होंने भागने से पाया, इस भ्रांति में पड़ना मत ।

मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं : महावीर अगर न गये होते जंगल, तो भी पा लिया होता । और मैं ऐसे ही नहीं कह रहा हूं । उसके पीछे गहरे प्रमाण हैं । महावीर युवा थे, तब उन्होंने अपनी मां को कहा कि मैं सब छोड़कर जंगल चला जाना चाहता हूं । मां ने कहा : मेरे रहते यह बात दुबारा उठाना मत । जब तक मैं जिंदा हूं, मैं न सह सकूंगी । और तुम गये भागकर, तो अगर मैं मर गयी, तो उसकी हत्या, हिंसा तुम्हीं को लगेगी ।

महावीर ने बात न उठाई । बात ही न उठाई ! फिर मां भी चल बसी । पिता को पूछा । पिता ने कहा : मेरे रहते यह न हो सकेगा । अगर मुझे कुछ हुआ जुम्मेवारी तुम्हारी होगी ।

फिर पिता भी चल बसे । महावीर चुप रहे । फिर पिता को दफनाकर लौट रहे हैं । रास्ते में अपने बड़े भाई से कहा कि अब मुझे आज्ञा हो जाए । मां के लिए रुका, पिता के लिए रुका । दोनों चले गए । लेकिन बड़े भाई की आज्ञा तो लेनी ही होगी । अब मुझे आज्ञा हो जाए ।

बड़े भाई तो एकदम आगबबूला हो गये । उन्होंने कहा : मां चली गयी, पिता चले गये । मुझ पर ऐसा पहाड़ टूटा और तू भी छोड़कर चला जाना चाहता है ! यह नहीं होगा । यह बात ही मत उठाना ।

अब यह जरा कठिन मामला था कि बड़ा भाई, कब जाएगा दुनिया से ! आखिर माता-पिता की आशा रखी जा सकती थी; आज नहीं कल जाएंगे, वृद्ध थे । ये बड़े भाई तो शायद ज्यादा भी जी जाएं । और अगर जाएं भी तो महावीर भी वृद्ध हो चुके होंगे तब तक, तब तक जंगल जाने की क्षमता भी न रह जाएगी । लेकिन महावीर चुप हो गये । घर में ही ऐसे रहने लगे जैसे न हों । उपस्थित शरीर से, प्राणों से अनुपस्थित हो गये । किसी को पता ही न चले कि हैं या नहीं हैं । दो वर्ष तक यह अवस्था रही । घर के लोग भूल-भूल जाएं, क्योंकि किसी के बीच में न आएं, किसी के आड़े न आएं । महावीर की वाणी ही न सुनी गयी दो साल तक । चुप्पी साधे रहें । जैसे होना न होना बराबर हो गया । आखिर घर के लोग इकट्ठे हुए । बड़े भाई ने भी कहा कि अब रोकना उचित नहीं । और रोकने से सार भी क्या है ! जिसे जाना था, वह तो जा ही चुका । अब तो ऊपर की खोल पड़ी है घर में, हम कब तक रोके रखेंगे ? इसका कोई मतलब भी नहीं । हम क्यों पाप के भागीदार हों ? हम क्यों स्वतंत्रता में बाधा आएं ?

घर के लोगों को ही चिंता हुई । उन्होंने सबने इकट्ठे होकर महावीर से प्रार्थना की कि आप तो चले ही गये, अब हम रोक न सकेंगे । आप की जैसी मर्जी ।

उस दिन महावीर छोड़कर चले गये । मैं तुमसे कहता हूं : अगर भाई ने यह न कहा होता तो महावीर कभी छोड़कर न गये होते । फिर भी महावीर ज्ञान से वंचित रह जाने वाले नहीं थे । प्रक्रिया शुरू हो गयी थी । घर में ही वन हो गया था ।

बुद्ध जब बारह वर्ष के बाद वापिस लौटे हैं—— बुद्धत्व को प्राप्त करके—— रवीन्द्रनाथ ने एक कविता लिखी है, यशोधरा से पुछवाया है । बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न पुछवाया है ! किसी शास्त्र में नहीं है । रवीन्द्रनाथ ने पुछवाया है ढाई हजार साल के बाद । लेकिन फिर भी मैं कहता हूं कि यह प्रश्न यशोधरा ने जरूर पूछा होगा । दो हजार साल में किसी ने किसी शास्त्र में उल्लेख नहीं किया, मैं उसकी फिकर नहीं करता । रवीन्द्रनाथ ने पूछा है, मैं कहता हूं यह शास्त्रीय हो गया । यह प्रामाणिक है । और प्रश्न ऐसा है कि पूछा ही होगा यशोधरा ने । जब वापिस लौटे बारह वर्ष के बाद घर, तो यशोधरा ने जो पहला प्रश्न पूछा, वह यही— कि मेरे प्रभु, एक ही प्रश्न मेरे मन में है, और वह यह कि जो जंगल जाकर मिला, वह यहां नहीं मिल सकता था ? बुद्ध जो कभी किसी प्रश्न के उत्तर में चुप नहीं रहे, चुप खड़े रह गये, उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया । उत्तर देने को था भी नहीं ।

जिसने जाना है, वह यह भी जान लेगा कि यह जानना कहीं भी हो सकता था । इस पर किसी परिस्थिति का कोई बंधन नहीं था । तो वे जो हजारों-लाखों लोग जंगल गये उनमें से दो-चार ने जाना । और जिन दो-चार ने जाना, मेरा यह दावा है कि वे न भी जंगल गये होते तो जान लेते । जंगल से उस जानने का कोई संबंध नहीं है । और जो बाकी मूढ़ों की तरह जंगल चले गये, न उन्होंने वहां जाना,

न वे यहां जान सकते थे।

जो यहां नहीं जान सकता, वह कहीं नहीं जान सकता। और जो कहीं भी जान लेता है, वह यहां भी जान सकता है। जानने की बात है। क्या फर्क पड़ेगा कि तुम पहाड़ पर गुफा में बैठे हो, कि अपने घर में बैठे हो?

मैं जानता हूं तुम्हारे प्रश्न की आधारशिला क्या है। तुम कहते हो : पहाड़ पर बैठेंगे तो अशांति नहीं होगी। यहां घर में बैठे हैं, बच्चा रोने लगा। पत्नी कहती है : 'बैठे-बैठे क्या कर रहे हो, कुछ काम-धाम में लगो! ऐसे बैठे-बैठे क्या होगा?' बाधा पड़ती है।

इसलिए तुम सोचते हो कि वहां जाएंगे तो बाधा न पड़ेगी। तुम गलती में हो। गुफा में बैठोगे, भूख लगेगी, पेट कहेगा : क्या कर रहे हो बैठे-बैठे? अब उठो! अब गांव की तरफ चलो, कुछ भीख मांग लाओ।

पत्नी को तो छोड़कर चले जाओगे, पेट को कैसे छोड़ोगे? महावीर को भी तो लौट आना पड़ता था गांव में भिक्षा मांगने। सर्दी लगेगी, शरीर कंपेगा, शरीर कहेगा कि चलो अब कहीं से कंबल जुटाओ। इसको कैसे रोकोगे? वर्षा आएगी और पानी गिरेगा और सिर छप्पर मांगेगा, तो कहीं सिर झुकाना पड़ेगा, छिपाना पड़ेगा। कभी बीमार हो जाओगे, तो दवा-दारू की भी जरूरत पड़ेगी। यह सब जारी रहेगा। इसके ढंग बदल जाएंगे, मगर बाधाएं जारी रहेंगी।

मेरी प्रक्रिया दूसरी है। मेरी प्रक्रिया यह है कि बाधाओं को बाधा मत मानो। बाधाओं को बाधा मानने में ही भूल हो जाती है।

तुम बैठे हो शांति से और बच्चे आकर घर में ऊधम करने लगे, तो तुम्हें बाधा पड़ती है, क्योंकि तुम सोचते हो : कोई ऊधम न करे। तुम शांत बैठे हो। तुम सोचते हो कि बड़ा भारी काम कर रहे हो शांत बैठकर। बड़ा पवित्र काम कर रहे हो! धार्मिक कृत्य कर रहे हो! और बच्चे, ये नासमझ मूढ़ बच्चे, ये शोरगुल मचा रहे हैं। इनको पता नहीं कि मैं ध्यान कर रहा हूं।

तुम्हारी धारणा में भ्रांति है। चूंकि तुम मानते हो कि तुम ध्यान कर रहे हो, कुछ विशिष्ट काम कर रहे हो, सब को शांति रखनी चाहिए, इसी से अड़चन हो रही है। संसार अपने ढंग से चल रहा है। बच्चे ऊधम कर रहे हैं, करने दो। तुम स्वीकार कर लो इसे भी। विरोध मत करो। और तब तुम चकित हो जाओगे : स्वीकार करने में ही बच्चों का ऊधम भी जारी है, तुम्हारी शांति भी जारी है। कहीं कोई व्यवधान नहीं पड़ता। व्यवधान पड़ता है—तुम्हारी धारणा से : कोई ऊधम न करे, कोई शोरगुल न मचाये।

यह विराट संसार, तुम्हारे ध्यान करने से सब चुप हो जाए! तो एक ध्यानी मार डाले सबको।

नहीं; तुम ध्यान करो। तुम्हारी ध्यान की प्रक्रिया में कहीं भूल है। तुम एकाग्रता

को ध्यान समझते हो, इसलिए अड़चन हो जाती है। ध्यान का अर्थ है : स्वीकार-भाव, एकाग्रता नहीं। जो हो रहा है, स्वीकार है। सब स्वीकार है। तथाता—ध्यान का अर्थ है। जैसा है ऐसा ही स्वीकार है। मैं इससे राजी हूं।

जरा करके देखो। जब तुम इस तथाता में बैठोगे, एक बच्चा शोरगुल मचाने लगा, शोरगुल सुनाई पड़ेगा, लेकिन विघ्न बिलकुल नहीं पड़ेगा। शोरगुल गूंजेगा, लेकिन विघ्न बिलकुल नहीं पड़ेगा। विघ्न तो पड़ता ही तब है, जब तुम इसके विरोध में खड़े हो जाते हो। तुम कहते हो यह नहीं होना चाहिए और हो रहा है, तब उपद्रव शुरू होता है। तुम्हारे इस भाव से कि नहीं होना चाहिए। बच्चों के शोरगुल से नहीं।

जंगल में बैठोगे, लड़ैये हू-हुवा करने लगेंगे, फिर क्या करोगे? बच्चे तो शायद तुम्हारी मान भी लें कि चलो, पिताजी हैं, ध्यान करते हैं, कभी-कभी क्षमा कर दो, इनको कर लेने दो ध्यान, एक आधा घंटा और कहीं खेल आओ; लेकिन जंगल के लड़ैये जब हू-हा करेंगे तो तुम्हारी बिलकुल न सुनेंगे। उनको बिलकुल मतलब नहीं कि आप कौन हो और क्या कर रहे हो। वहां क्या करोगे? जोर की हवा चलने लगेगी। वृक्षों में शोरगुल हो जाएगा। वहां क्या करोगे? आकाश में बादल गरजेंगे, बिजली चमकेगी। वह तुम्हारी तो न सुनेगी। वहां क्या करोगे?

तुम्हारी दृष्टि अगर गलत है और तुम्हारे भाव अगर गलत हैं, तो तुम जहां रहोगे वहीं उत्पात हो जाएगा। उत्पात को मिटाने का उपाय तथाता का भाव है।

और मैं संन्यासी को चाहता हूं, तथाता में पक जाए। और संसार से अच्छी जगह और कहीं नहीं हो सकती, क्योंकि यहां बड़ी चुनौतियां हैं। यहां जरा तथाता चूकी कि उपद्रव हुआ। तो हर उपद्रव तुम्हें बताता रहेगा—कब तुम चूके, कब भूल हो गयी, कब पैर छिटका।

'मेरो मन बड़ो हरामी'। तुम्हें पता चल जाएगा कि कब मन ने धोखा दिया। संसार में सुविधा से पता चल जाएगा। संसार में हजार परीक्षाएं हैं। तुम धोखा नहीं खा सकते यहां।

हां, कभी-कभी जंगल में बैठकर धोखा हो जाता है। पहाड़ की गुफा में बैठे-बैठे वर्षों तक तुम्हें यह लग सकता है कि मेरा अहंकार समाप्त हो गया, क्योंकि वहां कोई अहंकार को चुनौती नहीं है। न किसी ने गाली दी वर्षों में, न किसी ने पत्थर मारा, तो तुम्हें पता कैसे चलेगा? पता न चलने का नाम अहंकार का मिट जाना तो नहीं है। उतरकर आओगे बाजार में और क्षणभर में पता चल जाएगा।

मैंने सुना है, एक पहाड़ पर तीस वर्ष तक एक संन्यासी रहा। उसे यह ख्याल हो गया कि अहंकार समाप्त हो गया। फिर कुंभ का मेला भरा और उसने सोचा कि अब तो जा सकता हूं, अब तो अहंकार भी नहीं रहा। और कभी-कभी गांव से लोग आ जाते थे पहाड़ पर चढ़कर; वे कहते थे : महात्माजी, कुंभ का मेला भर रहा है,

दर्शन दें ! तो वह सोचकर चला आया कि अब दर्शन देने का समय आ गया।

जब वह कुंभ के मेले में आया, तो कुंभ का मेला तो कुंभ का मेला है ! भीड़-भड़क्का भारी था। धूम-धक्का। एक आदमी का पैर उसके पैर पर पड़ गया। एक क्षण में वे तीस साल मिट गये। एकदम पकड़ ली गरदन उस आदमी की और कहा : 'जानता नहीं, कौन हूं ?' तब उसे याद आया कि यह मैं क्या कर रहा हूं ! तीस साल से किसी की गरदन नहीं पकड़ी थी। किसी ने मौका नहीं दिया था। अवसर ही नहीं मिला था। गरदन ही नहीं थी। न किसी का पैर पैर पर पड़ा था। एक क्षण में होश आया। हाथ ढीला हो गया। उस आदमी से क्षमा मांगी। और कहा : तू मेरा गुरु है। तीस साल हिमालय मुझे जो नहीं बता पाया वह तूने एक क्षण में बता दिया।

संसार में साधक को बाधा है, अगर दृष्टि गलत हो; अन्यथा संसार में सीढ़ियां लगी हैं परमात्मा तक जाने की। संसार साधक हो जाता है, बाधक नहीं। जरा समझ की जरूरत है।

और चूंकि भगोड़े संन्यास के कारण करोड़ों लोग वंचित रह गये संन्यास की अपूर्व अवस्था से, मैं नहीं चाहता कि भगोड़ा संन्यास जारी रहे दुनिया में। संन्यास ऐसा हो कि जो जहां है वहीं संन्यस्त हो सके। संन्यास अंतरभाव की दशा हो, भीतर की क्रांति हो। और संसार में ही घटे तो ही मूल्यवान है।

दूसरा प्रश्न भी इससे ही संबंधित है। पूछा है : आप अपने संन्यासियों को संसार से अलग नहीं होने की सलाह देते हैं। फिर आपके प्रवचनों में संन्यासियों और संसारियों के बीच लक्ष्मण-रेखा क्यों बनती है ?

★

क्योंकि लक्ष्मण-रेखा है। बनती नहीं है। कोई बनाता नहीं है। रेखा है। संन्यासी मात्र संसारी ही नहीं है, उसमें कुछ और भी हुआ है; हो रहा है; कम-से-कम होने की आकांक्षा है। जब मैं कहता हूं संन्यासी संसार में रहे, तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि संसारी और संन्यासी एक ही हो गये। भेद तो रहेगा।

भेद क्या रहेगा ?

संसारी वह है जो संसार में है--और संसार का है। संन्यासी वह है जो संसार में है--और संसार का नहीं है। भीतर-भीतर बाहर है ! बाहर-बाहर भीतर है। बैठा बाजार में है, हृदय का पक्षी आकाश में उड़ रहा है। बैठा है भीड़-भाड़ में और फिर भी अकेला है।

संन्यास का अर्थ है : जिसने अपने प्रत्येक क्षण को ध्यान के लिए समर्पित किया है। कुछ भी कर रहा है, दुकान चला रहा है, गड्ढा खोद रहा है, रोटी बना रहा है, बुहारी लगा रहा है; लेकिन भीतर सजगता को साध रहा है, अलिप्तता को

साध रहा है। भीतर प्रभु का स्मरण चल रहा है। बाहर संसार का काम चल रहा है। देह संसार में है, क्योंकि संसार की है; और आत्मा परमात्मा में है, क्योंकि परमात्मा की है। ऐसा जो सरगम है, बाहर और भीतर के बीच ऐसा जो तालमेल है--ऐसा अपूर्व तालमेल--वही संन्यास है ! संसार में होकर भी संसार से बाहर होने की जो कला है, वही संन्यास है।

तो संसारी और संन्यासी में भेद तो है ही। और स्वभावतः जिन्होंने यहां संन्यास लिया है, उन्होंने हिम्मत जाहिर की है। जिन्होंने नहीं लिया है, वे अभी हिम्मत नहीं जुटा पाये हैं। जिन्होंने संन्यास लिया है, निश्चित ही वे मेरी बात को समझने में ज्यादा कारगर होंगे। उन्होंने हृदय को खोला है। उन्होंने मेरे साथ चलने में जग-हंसाई मोल ली है। जिन्होंने इतनी हिम्मत नहीं की है, वे सिर्फ श्रोता हैं, साधक नहीं हैं।

जो सुनने आया है, उसकी एक दशा है। जो अपने जीवन को बदलने में लग गया है, उसकी दूसरी दशा है।

मेरे पास लोग लिखकर भेजते हैं कि मैं संन्यासी नहीं हूं, लेकिन पहली पंक्ति में मैं क्यों नहीं बैठ सकता हूं ?

...क्योंकि तुम संन्यासी नहीं हो। पहली पंक्ति में बैठने का हक भी कमाओ। पहली पंक्ति में बैठने का अर्थ है : मेरे करीब होना। वह तो केवल प्रतीक है। उस हक को कमाओ। और तुम जानकर हैरान होओगे कि अगर कभी ऐसा हो जाता है कि गैर-संन्यासी मेरे सामने बैठे होते हैं, तो मुझे बोलना कठिन हो जाता है। क्योंकि उन्हें फिर मुझे उनके तल की बात कहनी पड़ती है, जो उनकी समझ में आए। जब मैं गैरिक संन्यासी को अपने आसपास देखता हूं, तो मैं वह कह सकता हूं जो मैं कहना चाहता हूं। उसकी पात्रता है। उसने अपने पात्र को खोला है। वह झेलने को राजी है। वह आतुर है। वह प्यासा है।

और तुम्हें इसमें भी अड़चन होती है कि लक्ष्मण-रेखा क्यों ! लक्ष्मण-रेखा मिटानी हो, संन्यासी हो जाओ। तो रेखा के भीतर आ जाओगे; नहीं तो रेखा के बाहर रहोगे। और जल्दी करो, क्योंकि धीरे-धीरे लाखों संन्यासी होंगे। फिर अगर तुम देर करके आए, तो भी पीछे ही रहोगे। अभी मौका है। अभी आगे आ जाना सुगम है।

मेरे पास होने को तुम्हें कमाना पड़ेगा। इसलिए मैंने जाना बंद कर दिया। अब मैं आम जनता में बोलने नहीं जा रहा हूं, क्योंकि आम जनता में बोलने का मतलब होता है : आम जनता जो समझ सके वह बोलो। जरा तुम ऊंचाई की बात कहो कि आम जनता जम्हाई लेने लगती है। उनको मैं रेखा के बाहर रखता हूं। क्योंकि जो आदमी यहां बैठकर जम्हाई लेने लगे, उसको आना ही नहीं था। यहां कोई मनोरंजन नहीं हो रहा है। यहां कोई नाटक नहीं है। यहां तो जो समझने

आया है, जागने आया है, उसके लिए ही अवसर है।

इसलिए इससे दुख मत लेना कि तुम्हें पंक्ति में पीछे खड़े होना होता है। तुम्हीं ज़ुम्मेवार हो। पंक्ति में तुम आगे हो सकते हो, लेकिन आगे होने की तत्परता दिखाओ।

और तीसरा प्रश्न भी इससे संबंधित है : मैं पूना के लिए यह निश्चय करके चला था कि अब की बार संन्यास लेकर लौटूंगा। किन्तु यहां आपके सान्निध्य में होकर संन्यास का भाव ही विलीन हो गया है।

★

बड़े गजब के आदमी हो! खुद को भी धोखा दे रहे हो, मुझको भी धोखा देना चाहते हो!

पहली बात, तो जब घर से तुम दृढ़ निश्चय करके चले थे तभी बात कमजोर हो गई। दृढ़ निश्चय कमजोर आदमी ही करता है। नहीं तो निश्चय की बात क्या होती, समझ की बात होती है। संन्यास समझ में आ गया, अब इसमें निश्चय क्या करना है?

सांप रास्ते पर आ जाता है तो तुम निश्चय करते हो कि हट जाएं रास्ते से? दृढ़ निश्चय करते हो कि रास्ते से हट जाएं? छलांग लगाकर कूद जाते हो। बाद में सोचते हो कि सांप था, छलांग लग गई।

घर में आग लगती है तो तुम दृढ़ निश्चय करते हो कि निकल जाएं बाहर? तुम निकल जाते हो।

दृढ़ निश्चय करके चले थे, उसका मतलब कमजोर हो। जब भी कोई कहता है दृढ़ निश्चय, तब पक्का समझ लेना कि वह आदमी कमजोर है; नहीं तो दृढ़ निश्चय किसके खिलाफ कर रहा है?

कहते हो : इस बार...। मतलब––इसके पहले भी आ चुके हो। पहले भी आए होओगे, लेकिन पहले कजोमर निश्चय रहे होंगे। ऐसा सोच-सोचकर आए होओगे कि देखें, हो जाए तो ठीक है। इस बार दृढ़ निश्चय करके चले थे। दृढ़ निश्चय बहुत काम नहीं आया।

यहां संन्यास की बात चल रही है और तुम्हारा भाव विलीन हो गया! तुम विलीन हो जाते तो कुछ बात थी। संन्यास का भाव विलीन हो गया!

मन चालाक है। मन मेरो बड़ो हरामी! जरा मन की चालाकी देखो! अब मन ने एक नयी तरकीब निकाली। उसने कहा कि हम तो समझ ही लिए बात कि भीतर की है, अब बाहर से क्या संन्यास लेना? यह वही मन है, जिसके खिलाफ तुम दृढ़ निश्चय करके चले थे। यह मन ने तुम्हारा दृढ़ निश्चय दो कौड़ी का कर दिया और इसने तुम्हें नयी तरकीब बता दी कि अब तो कोई जरूरत ही नहीं है। यह तो भीतर की बात है।

मैं भी कहता हूं : भीतर की बात है। लेकिन भीतर तो तुम तभी पहुंचोगे जब बाहर से शुरू हो जाए; नहीं तो यह उपाय है बचने का। जब तुम्हें भूख लगती है तो भूख तो भीतर होती है, भोजन बाहर से करना पड़ता है। तब तुम यह नहीं कहते कि भूख तो भीतर है, बाहर के भोजन से क्या लेना-देना? भीतर ही भीतर भोजन करें। दो-चार दिन भीतर ही भीतर भोजन करो, पता चलेगा!

भूख जरूर भीतर है और भोजन बाहर से आता है। क्योंकि बाहर और भीतर भी दो कहां हैं? जुड़े हैं। बाहर भीतर हो रहा है प्रतिक्षण; और भीतर बाहर हो रहा है प्रतिक्षण। दोनों एक साथ जुड़े हैं; एक ही तरंग बाहर-भीतर हो रही है।

यह श्वास भीतर गई और यह श्वास बाहर गई। यह वही श्वास है जो भीतर जाती है, वही जो बाहर जाती है। यही तुम्हें जीवित किये है। बाहर और भीतर के बीच लेन-देन चल रहा है।

तुम कहते हो : 'मैं पूना के लिए यह निश्चय करके चला था कि अब की बार संन्यास लेकर लौटूंगा।'

कहां गया तुम्हारा दृढ़ निश्चय? खूब! दृढ़ निश्चय का मतलब क्या होता है? मगर मैं जानता हूं कि दृढ़ निश्चय में ही कमजोरी छिपी है।

जब कोई तुमसे बहुत कहे कि मैं तुम्हें बहुत प्रेम करता हूं, बहुत प्रेम करता हूं। और बार-बार दोहराये, तो जरा सावधान हो जाना। क्योंकि प्रेम काफी है; बहुत प्रेम का क्या मतलब होता है? निश्चय पर्याप्त है। निश्चय में अब और क्या जोड़ा जा सकता है? दृढ़ निश्चय का तो मतलब हुआ कि निश्चय भी निश्चय नहीं था; अब दृढ़ता जोड़नी पड़ी। निश्चय ही नपुंसक था। उसको दृढ़ता से कैसे तुम भरोगे?

समझ से निश्चय आने दो। नहीं तो तुम फिर-फिर नयी-नयी तरकीबें निकालकर धोखा खा जाओगे।

यहां मुझसे लोग संन्यास ले जाते हैं। घर जाकर सोचते हैं कि क्या फर्क पड़ता है गैरिक वस्त्र पहनो कि सफेद पहनो, यह तो सब एक ही है! यहां से माला ले जाते हैं और जैसे ही वे आश्रम के दरवाजे के बाहर हुए कि माला को जल्दी अपने कमीज के भीतर कर लेते हैं। कहते हैं : यह तो भीतर की बात है! माला को बाहर क्यों रखो?

जरा सोचना कि क्या कर रहे हो! डरते हो कि लोग देख लेंगे माला तुम्हारे गले में, तो लोग समझेंगे कि तुम भी पागल हुए? तो तुम भी सम्मोहित हो गये? तो तुम भी उलझ गये? तुम जैसा समझदार आदमी, और उलझ गया? नासमझों को उलझने दो। तुम तो बड़े बुद्धिमान थे! तुम तो बड़े कुशल थे! तुम कैसे उलझ गये?

लोक-लाज से डरते हो, इसलिए तो चूक रहे हो। जिंदगी में कुछ न पाओगे।

यह लोक-लाज ही इकट्ठी कर लेना। यह लोग क्या कहते हैं, इसी की चिंता करते रहना। कभी यह भी सोचोगे कि परमात्मा क्या कहता है ? यह लोगों के सर्टिफिकेट इकट्ठे करते हुए जिंदगी गंवानी है ?

मगर मन बड़ा होशियार है। मन कहेगा: क्या फर्क पड़ता है, रंग तो सभी उसी के हैं !

लेकिन मैं जानता हूं कि फर्क पड़ता है। पुलिसवाला अपनी वर्दी में खड़ा हो तो तुम उससे डरते हो। और पुलिसवाला सफेद वर्दी में खड़ा हो, तुम एक झापड़ लगा दो उसे।

डॉक्टर जब अपना बैग और स्टैथोस्कोप गले में लटकाकर आता है, तब तुम जल्दी प्रसन्न हो जाते हो। यही डॉक्टर ऐसे ही चला आए, बिना बैग और बिना स्टैथोस्कोप के, और ऐसे ही कपड़े पहने चला आए-- रद्दी-खद्दी, या लंगोटी ही लगाये चला आए-- तो तुम उठकर बैठ जाओगे। तुम कहोगे: इस आदमी को बाहर करो। तुम इसका भरोसा न करोगे।

ऐसा हुआ, मेरे गांव में एक डॉक्टर आए। वे जरा ऊंचाई से बड़े छोटे थे। बहुत ठिगने थे। पत्नी भी उनकी बड़ी थी। उन्होंने दुकान खोली। उनका कम्पाउन्डर भी उनसे मजबूत और शानदार लगता था। मेरे परिचित थे। चार-छह दिन बाद मैं उन्हें मिला तो वे मुझसे बोले कि तुम्हारा गांव बड़ा अजीब है। लोग मुझ से आकर कहते हैं: 'कम्पाउन्डर साहब, डॉक्टर साहब कहां हैं ?' वह जो कम्पाउन्डर था, उसको लोग डॉक्टर समझें, स्वभावतः। वह लगता था डॉक्टर जैसा। अब जब डॉक्टर से ही पूछोगे कि कम्पाउन्डर साहब, डॉक्टर साहब कहां है ? तो डॉक्टर भी बेचारा कैसे कहे कि मैं ही डॉक्टर हूं ! उन्हें भी बड़ी अड़चन होती थी।

मैंने कहा: तुम ऐसा करो, और एक छोटा लड़का खोज लो। तुम से भी गया-बीता, उसको कम्पाउन्डर बनाओ। यह कम्पाउन्डर नहीं चलेगा। नहीं तो तुम्हारी दुकान चलनेवाली नहीं है।

तुम कहते हो: 'कपड़े से क्या होगा ?' लेकिन कपड़े से बहुत कुछ हो रहा है। आदमी जीता तो बाहर से है। बाहर का ही सारा परिणाम होता है। क्योंकि तुम अभी बाहर हो, अभी भीतर तुम गये ही नहीं हो। भीतर की बात ही अभी फिजूल है। भीतर जाना है, और बाहर की सीढ़ियां बनानी हैं। ये गैरिक वस्त्र भी फर्क लायेंगे।

एक शराबी ने मुझे आकर कहा। संन्यास ले लिया। उसने कहा कि मैं शराबी हूं, आपके सिवा मुझे कोई स्वीकार भी नहीं करेगा।

मैंने कहा: तुम फिकर छोड़ो। तुम संन्यासी हो जाओ, फिर देखेंगे।

उसने कहा: लेकिन मैं शराबी हूं, मैं कहे दे रहा हूं। और शराब मुझ से छूटने वाली भी नहीं।

मैंने कहा: तुम से कहता कौन है कि तुम छोड़ो ! मैं तो शराबियों की ही तलाश म हूं।

फिर वह कहने लगा: आप भी खूब कह रहे हैं !

वह खुद ही डरने लगा। उसने कहा कि आप समझे नहीं शायद मेरा मतलब। मैं असली शराब पीता हूं।

मैंने कहा: मैं भी असली शराब की ही बात कर रहा हूं।

वह सिर हिलाने लगा। वह कहने लगा: आप समझ नहीं पा रहे। गैरिक वस्त्रों में दिक्कत होगी।

मैंने कहा: कोई दिक्कत न होगी। मैं तुम्हें मना नहीं करता।

पंद्रह-बीस दिन बाद वह आया। बोला: दिक्कत आपने करवा दी। कल मैं खड़ा था शराबखाने के बाहर, दो-चार शराबियों से गपशप कर रहा था, एक आदमी मेरे पांव में आकर गिर पड़ा। बोला: स्वामीजी ! मैं भागा वहां से। मैंने कहा कि यह शराबघर में स्वामीजी होकर और खड़े होना ठीक नहीं। एक दिन जाकर खड़ा था सिनेमा-घर में, टिकिट के लिए भीड़ लगी थी लाइन में और एक आदमी बोला: स्वामीजी, आप यहां ? मैं वहां से भागा। ये कपड़े दिक्कत दे रहे हैं।

अब तुम घर से निश्चय करके चले थे कि 'अब की बार संन्यास लेकर लौटूंगा, किन्तु यहां आपके सान्निध्य में होकर संन्यास का भाव विलीन हो गया।'

तुम मुझको भी पाप लगवाओगे ! नर्क मुझे भी साथ ले चलोगे ! जुम्मेवारी मेरी लगती है, जैसे मैंने तुम्हारा संन्यास का भाव छिनवा दिया। तो दूसरे जो संन्यासी हो रहे हैं, वे शायद यहां आये नहीं। तुम अकेले आये हो।

अपनी बेइमानियां पहचानो। अपनी होशियारियां पहचानो। अपनी चालाकियां पहचानो। दूसरों को धोखा देते-देते आदमी खुद को भी धोखा देने में कुशल हो जाता है।

...'वर्ष भर से सक्रिय ध्यान करता हूं। पांच-छह बार ध्यान की क्षणिक अनुभूतियां भी हुईं। एक बार तो आंखें आप ही आप ऊपर चढ़ गईं और आज्ञाचक्र एकदम से प्रकाशित हो गया। किन्तु हर ध्यान के बाद यह भाव बना रहा: आखिर इससे क्या हुआ ? अनुग्रह का भाव तो उठता नहीं। भगवान, बताएं कि मैं क्या करूं?'

मेरा बताया करोगे ? जैसा विष्णु ने कहा था कि ले आओ एक कटोरा जल, वैसे ही कहीं खो मत जाना ब्राह्मण देवता !

पहली तो बात है कि वह जो दृढ़ निश्चय करके आए थे, उसको चूको मत ! डूबो संन्यास में ! उस डुबकी से अहोभाव भी आना शुरू होगा।

और ये जो छोटे-छोटे अनुभव हो रहे हैं--अज्ञाचक्र प्रकाशित हो गया--इनमें उलझ जाने की जरूरत नहीं है। लेकिन धन्यवाद तो करने की जरूरत है ही। क्योंकि धन्यवाद से आगे और अनुभव होंगे।

दो भूलें हो सकती हैं ऐसी घड़ियों में। शुभ हो रहा है कि ध्यान करते-करते क्षणभर को सारा अंतरतम ज्योतिर्मय हो जाता है। एक खतरा तो यह है कि तुम समझ लो कि पहुंच गये। तो चूक हो गई। यह कुछ पहुंचना नहीं हो गया। ये झलकें हैं। लेकिन इन झलकों से पहुंच सकते हो, इसकी खबर मिलती है। ये मील के पत्थर हैं, जिन पर तीर लगा है कि और एक मील आगे बढ़ गये तुम, यात्रा और एक मील कम बची। पहुंच नहीं गये। मैं यह नहीं कहता कि मील के पत्थर को छाती से लगाकर बैठ जाना। तो कहीं नहीं पहुंचोगे। ये मील के पत्थर हैं। इसलिए यह ठीक है कि इससे क्या हुआ? लेकिन अगर हर मील के पत्थर पर तुम कहोगे कि एक मील चला, इससे क्या हुआ? तो आगे चलने की हिम्मत कम हो जाएगी, रस कम हो जाएगा। अगर इससे नहीं हुआ, तो एक मील चलकर फिर भी क्या होगा? तो फिर तुम पहुंचोगे कैसे?

तो एक तो भूल होती है कि सब हो गया। छोटा-सा कुछ हुआ, किसी को जरा-सी रीढ़ में खुजली आ गई कि वह समझे कि कुंडलिनी जाग्रत हो गई, कि सब हो गया। पहुंच गये। और एक दूसरे आप हैं कि कुछ होता है थोड़ा-सा, तो धन्यवाद करने का भाव नहीं उठता।

यही क्या कम है? इस अंधेरे से भरी जिंदगी में अगर क्षणभर को भीतर रोशनी हो जाती है, कोई कम चमत्कार है? क्योंकि वहां न तो बिजली का कोई कनेक्शन है, न वहां कोई ईंधन है, न वहां कोई तेल है। बिन बाती बिन तेल! यह रोशनी चमत्कार है। जहां सदा से अंधकार रहा है, वहां अचानक ज्योति उठ आती है—यह चमत्कार है। प्रभु की तुम पर अनुकंपा हो रही है। धन्यवाद करो! धन्यवाद से और अनुकंपा बढ़ेगी।

इस बात को सदा ख्याल में रखो: जितना तुम्हारा धन्यवाद गहरा होगा, उतनी ही तुम्हारी उपलब्धि बढ़ती चली जाएगी। क्योंकि जो छोटी भेंटें आती हैं, अगर उनको इन्कार कर दिया तो बड़ी भेंटें फिर नहीं आएंगी। क्योंकि तुम पात्र ही सिद्ध न हुए। तुम समझे ही नहीं। ये छोटी भेंटें हैं। परमात्मा ने तुम्हारी तरफ डोरे फेंकने शुरू किये हैं। आनंदित होओ! नाच उठो! मगन हो जाओ कि मुझ अपात्र को इतना भी हुआ, यही क्या कम है! होना तो यह भी नहीं चाहिए था। मगर फिर भी यह हुआ, तो उसकी अनुकंपा से हुआ होगा, मेरी पात्रता से नहीं।

झुको! उसके चरणों में सिर रख दो। और तब तुम पाओगे कि कुछ और होने लगा। धीरे-धीरे पहले सूक्ष्म ऐंद्रिक अनुभव होते हैं। अतींद्रिय अनुभव होने के पूर्व। तीन तरह के अनुभव हैं जगत में—स्थूल ऐंद्रिक अनुभव...। तुमने एक सुंदर फूल को खिला देखा। उसकी सुवास तुम्हारे नासापुटों में भर गयी। क्षणभर को सुख मालूम हुआ। तुमने चांद को आकाश में देखा। शीतल चांदनी तुम्हें नहा गयी। तुम चांदनी में नहाकर प्रफुल्लित हो उठे, ताजे हो उठे, ठगे रह गये। चांद का सौंदर्य तुम्हें घेर

लिया, स्पर्श किया। एक तरह का सुख मिला। ये ऐंद्रिक सुख हैं।

फिर दूसरे सुख होते हैं: सूक्ष्म ऐंद्रिक। यह जो तुम्हें हुआ है, आज्ञाचक्र में रोशनी हो गयी—यह सूक्ष्म ऐंद्रिक अनुभव है। इनका बाहर से कोई संबंध नहीं है। इनका भीतर से भी अभी कोई संबंध नहीं है। ये दोनों के मध्य के अनुभव हैं। लेकिन सूचक हैं कि भीतर चलने लगे। चलो स्थूल इंद्रियों का अनुभव बंद हुआ, सूक्ष्म इंद्रिय के अनुभव शुरू हुए!

जैसे पांच इंद्रियां स्थूल अनुभव लाती हैं, वैसे ही पांच तरह के सूक्ष्म अनुभव होते हैं। कभी तुम अचानक पाओगे कि अकारण भीतर एकदम सुवास हो गयी, जैसे हजारों फूल खिल गये हों! तुम भरोसा ही न कर पाओगे। चौंककर देखोगे: कहीं कोई बाहर गंध नहीं है। और भीतर एकदम गंध ही गंध है! ऐसी गंध जैसी तुमने कभी नहीं जानी! तुम्हारे भीतर का कस्तूरी का नाफा जैसे टूट गया! कभी भीतर संगीत उठेगा, नाद उठेगा। अपूर्व संगीत तुम्हें भर लेगा! लयबद्ध हो जाओगे! और बाहर कुछ भी नहीं है। बाहर का संगीत सब फीका हो जाएगा, जब भीतर का नाद उठेगा। बाहर की रोशनी अंधेरे जैसी मालूम पड़ेगी, जब भीतर की रोशनी का अनुभव होने लगेगा। मगर अभी यह मध्य की है। यह अभी भीतर की लगेगी, क्योंकि और भीतर का तो तुम्हें पता नहीं है। यह देहली पर खड़े हो गये तुम—न बाहर न भीतर। देहली पर खड़े हो गये। मगर देहली पर खड़े हो गये, यह सूचक है: अब घर में जा सकते हो।

जब पांचों इंद्रियों के अनुभव, सूक्ष्म अनुभव, तुम्हारे जीवन में प्रगट हो जाएंगे, एक दिन अचानक पाओगे कि स्वाद आ रहा है—ऐसा स्वाद जैसा तुमने कभी नहीं जाना! उस दिन रसना का नया अर्थ प्रगट होगा। जब ये अनुभव गहन हो जाएंगे, तब एक दिन तुम अतीन्द्रिय अनुभव में उतरोगे। स्थूल इंद्रिय से सूक्ष्म इंद्रिय, सूक्ष्म इंद्रिय से अतीन्द्रिय। जब अतीन्द्रिय अनुभव होगा, तभी तुम्हारे हृदय में होगा: हां, अब हुआ! तब परम तृप्ति हो जाती है।

मगर उसको पाने के लिये ये जो सूक्ष्म इन्द्रिय के अनुभव हो रहे हैं, इनका स्वागत करो, इनका अभिनंदन करो। इनको बढ़ने दो। ऐसा मत कहो कि क्या हुआ? इतने दरिद्र मत बनो। कम से कम धन्यवाद देने की संपदा तो रखो! कम से कम धन्यवाद दे सको, इतने अमीर तो रहो।

दुनिया में सबसे दरिद्र आदमी वही है जो धन्यवाद भी नहीं दे सकता।

पूछते हो: 'अब मैं क्या करूं?'

संन्यास से शुरू करो। और मैं तुमसे कहना चाहूंगा कि दृढ़ निश्चयवाला संन्यास नहीं चाहिए। क्योंकि दृढ़ निश्चयवाला संन्यास कभी भी ढीला हो सकता है। घर पहुंचने के पहले ही ढीला हो जाएगा। रास्ते में ट्रेन में जाओगे न, चौबीस घंटे ट्रेन में लग जाएंगे। वह दृढ़ निश्चय उसी में ढीला हो जाएगा। दृढ़ निश्चय का भरोस

मत करो।

संन्यास लेना हो--समझ से लो, निश्चय से नहीं। निश्चय अलग बात है। निश्चय का मतलब : संकल्प। और समझ का अर्थ है : समर्पण। जिद्द से मत लो।

कई बार आदमी जिद्द से काम करता है। हो सकता है, तुम्हारी पत्नी संन्यास के खिलाफ हो। अब तुम पत्नी को बताना चाहते हो : 'देख, कौन मालिक है! कौन मुझे चला सकता है? मैं संन्यास लेकर दिखा दूंगा।' कि हो सकता है तुम्हारे पड़ोसी कहते हों कि 'अरे छोड़ो जी, तुम क्या संन्यास लोगे! देख लिया, तुमसे नहीं होगा यह।' और तुम्हें उनको दिखाना है, तो तुम दृढ़ निश्चय करके संन्यास ले बैठे। यह गलत संन्यास होगा।

किसी को दिखाने के लिए संन्यास लेना गलत है; कोई देख लेगा, इस डर से न लेना गलत है। दूसरे का ध्यान करना गलत है।

हो सकता है, पत्नी जिद्दी है और कहती है कि मैं तुम्हें मजा चखा दूंगी अगर संन्यास लेकर आए। क्योंकि अक्सर ऐसा होता है : जब घर से लोग आते हैं, पत्नी उनकी कह देती है कि और सब करना, संन्यास लेकर भर मत आना।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन मस्जिद में बैठा है। धर्मगुरु बोल रहा है। बोलते बीच में उसने कहा कि जो लोग स्वर्ग जाना चाहते हैं, हाथ ऊपर उठाएं। सबने उठा दिये, मुल्ला ऐसे ही नीचे हाथ किये बैठा रहा। धर्मगुरु को जरा हैरानी हुई। उसने कहा कि अब जो लोग नर्क जाना चाहते हैं, वे हाथ उठाएं। क्योंकि एक ही बचा था-- मुल्ला। उसने नर्क जाने के लिए भी हाथ नहीं उठाया। धर्मगुरु ने पूछा : क्या इरादा है? तुम्हें कहीं नहीं जाना है?

तो उसने कहा कि कहीं जा ही नहीं सकते। धर्मगुरु ने कहा : मतलब? उसने कहा कि क्या अब टांग तुड़वानी है मेरी? धर्मगुरु ने कहा : टांग तुड़वाने का सवाल ही कहां! तुम्हें स्वर्ग जाना है कि नर्क जाना है?

उसने कहा : पत्नी, जब घर से चलने लगा, तो बोली--'मस्जिद से सीधे घर आना, नहीं तो टांग तोड़ दूंगी।' अब तुम झंझटें बता रहे हो--स्वर्ग जाओ, नर्क जाओ...! कहीं नहीं जाना है! अपनी टांग नहीं तुड़वानी।

पत्नियां आती हैं। उनके पति उन्हें समझा देते हैं कि और सब करना, संन्यास लेकर भर मत आ जाना।

तो हो सकता है, अहंकार को चोट लगती है कि दिखला दूं इस पत्नी को, कि ले, आ गया संन्यास लेकर, अब क्या करती है? एक दफा तो दिखला दूं जिंदगी में कि मालिक कौन है, मैं हूं कि तू है! किस पति को नहीं उठती यह आकांक्षा कि एक दफा दिखला दूं!

मुल्ला की पत्नी मुल्ला के पीछे दौड़ रही है, बुहारी लेकर मारने। मुल्ला एकदम घबड़ाकर बिस्तर के नीचे घुस गया। पलंग के नीचे चला गया। पत्नी है

मोटी। वह जा नहीं सकती पलंग के नीचे, इसलिए वही एक उपाय है। पलंग के नीचे चला जाता है तो निश्चित हो जाता है। फिर उसका कोई बाल बांका नहीं कर सकता। पत्नी चारों तरफ घूमने लगी। कहने लगी : निकलो बाहर!

इतने में ही द्वार पर पड़ोसियों ने दस्तक दी। तो पत्नी ने धीरे से कहा कि देखो, पड़ोसी आ गये, निकल आओ बाहर। अब मैं तुम्हें नहीं मारूंगी।

उसने कहा : आज नहीं निकलूंगा और आज पड़ोसियों को भी दिखला दूंगा कि इस घर में किसकी चलती है!

बिस्तर के नीचे बैठे हैं, लेकिन पड़ोसियों को दिखला दूंगा कि किसकी चलती है! देखें कौन मुझे निकालता है बिस्तर के नीचे से! मेरा घर है! जहां बैठना है वहां बैठूंगा! जिसको जो करना हो कर लो। आज तय ही हो जाए कि कौन मालिक है! पड़ोसियों को भी पता चल जाए।

तो कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि तुम किसी को दिखलाने के लिए संन्यास लेना चाहते हो--संसार को कि पत्नी को कि बच्चों को कि मित्रों को कि बाप को। तो गलत संन्यास होगा।

संन्यास आना चाहिए प्रभु-प्रेम से, किसी और कारण से नहीं। तुम्हारा अगर प्रभु में लगाव है, अगर तुम खोजने चले हो, तो। निश्चय से नहीं। क्योंकि निश्चय तो अहंकार का अंग है। निश्चय तो अहंकारी बना देगा तुम्हें। और अहंकारी तो कैसे संन्यासी बनेगा! निरहंकारी ही संन्यासी बनता है।

तो सोचना, विचारना, समझना। संन्यास के सार पर ध्यान करना। और अगर स्फुरणा उठती हो तो फिर न मन की सुनना, न संसार की सुनना। लेकिन स्फुरणा से लेना संन्यास। किसी जिद्द, किसी हठ से नहीं। हठी मूढ़ होता है।

संन्यासी संसार में है और संसार का नहीं है।

> शादाबिये जमाले बुतां मेरे दिल में है
> बेताबिये जनूं जदगां मेरे दिल में है
> दरियाये इम्बसात रवां मेरे दिल में है
> तूफाने सोजो आहो फुगां मेरे दिल में है
> नाचे कोई तो नाचता हूं मैं भी उसके साथ
> कूहे निशाते हर दो जहां मेरे दिल में है
> तड़पे कोई तो मैं भी तड़पता हूं उसके साथ
> जिन्नो बशर का दर्दे निहां मेरे दिल में है
> होता हुआ भी सबका किसी का नहीं हूं मैं
> इक बंद सोज बर्के तपां मेरे दिल में है
> हैं वुसअतों पे वुसअतें मुझमें--यही नहीं

इक वुसअते मकानो जमां मेरे दिल में है
लब पे मेरे सकूते मुसलसल है मोअजन
इक शोरे मावराये बयां मेरे दिल में है
जो परदाये नमूद में छिप कर है जौफिशां
इक एक रंग इसका अयां मेरे दिल में है
एहले नजर को जिसने गजल खां किया वो खुद
सरशारो मस्त नगमा कुनां मेरे दिल में है ।

वह गीतों का गीत तुम्हारे हृदय में छिपा है । वह गीतों का परम गीत तुम्हारे हृदय में छिपा है। जिससे सारे जगत के गीत पैदा हुए हैं, वह गीत का स्रोत तुम्हारे भीतर छिपा है। जिससे सारी खुशियां उतरी हैं और जिससे सारे आनंद पैदा हुए हैं, वह मालिक तुम्हारे भीतर बैठा है । उसे खोज लेने की तरकीब एक ही है :

होता हुआ भी सबका किसी का नहीं हूं मैं
इक बन्द सोज बर्के तपां मेरे दिल में है ।

सबके रहो और फिर भी किसी के नहीं । पति--और पति नहीं । पत्नी--और पत्नी नहीं । मित्र--और मित्र नहीं । शत्रु--और शत्रु नहीं । नाटक है बड़ा । उसे कुशलता से पूरा करो ।

संन्यासी का अर्थ है : कुशल अभिनेता । संसार अभिनय है, नाटक का बड़ा मंच है । सब पूरा करो । तुम्हें जो पात्र दिया गया है पूरा करने को, तुम्हें जो कथा का अंश दिया गया है पूरा करने को--उसे पूरा करो । उसे पूरे अहोभाव से निपटा देना है । और फिर भी उसके साथ एक नहीं हो जाना है, तादात्म्य नहीं कर लेना है ।

नाचे कोई तो नाचता हूं मैं भी उसके साथ
कूहे निशाते हर दो जहां मेरे दिल में है
तड़पे कोई तो मैं भी तड़पता हूं उसके साथ
जिन्नो बशर का दर्दे निहां मेरे दिल में है
होता हुआ भी सबका किसी का नहीं हूं मैं
इक बंद सोज बर्के तपां मेरे दिल में है।

संन्यास है ऐसी कला कि चलो पानी में तो भी पैर पानी को न छूएं। जल में कमलवत् हो जाने की कला का नाम संन्यास है ।

समाधि क्या है--चौथा प्रश्न ।

*

कहने से समझ न आएगी । जौहरि की गति जौहरि जाने । समाधि तो अनुभव की बात है । घायल की गति घायल जाने ।

कही जा सके, ऐसी बात नहीं समाधि । कुछ इशारे जरूर किये जा सकते हैं। जैसे कोई अंगुली से चांद को बताए । अंगुली चांद नहीं है, ख्याल रखना । अंगुली से चांद का क्या लेना-देना ? चांद चांद है, अंगुली अंगुली है । अंगुली में मत उलझ जाना, नहीं तो चांद से चूक जाओगे । चांद देखना हो तो अंगुली को तो विस्मरण ही कर देना । अंगुली की तरफ देखना ही मत । अंगुली से इशारा ले लेना, उस इशारे पर यात्रा कर जाना । उस यात्रा पर तुम्हारी दृष्टि दौड़ जाए, तो चांद दिखाई पड़ जाएगा ।

तो जो भी समाधि के संबंध में कहा गया, चांद को दिखायी गयी अंगुली है ।

'समाधि' शब्द बना है--'समाधान' से । शब्द का अर्थ है : जहां सब समाधान हो गया; जहां कोई समस्या न रही; जहां कोई प्रश्न न बचा; जहां कोई खोज बाकी न रही; न कोई तृष्णा, न कोई आकांक्षा, न कोई दौड़; जहां कोई भविष्य न बचा । जहां समय ही न रहा, उस अवस्था का नाम समाधि है । जहां सब थिर हो गया, निष्कंप हो गया !

जैसे दीये की ज्योति जलती हो, ऐसे घर में, जहां हवा का झोंका न आ सके, निष्कंप जलती हो, जरा भी कंपती न हो--ऐसी जब तुम्हारी चेतना की ज्योति जलती है, निष्कंप, जहां विचार के झोंके नहीं आते, जहां विचार की तरंगें नहीं आतीं, उस दशा का नाम समाधि है ।

समाधि परम रस है । समाधि में हो जाना संगीतपूर्ण हो जाना है ।

समाधि का अर्थ है : द्वन्द्व न रहा, द्वैत न रहा, तनाव न रहा, चिंता न रही ।

समाधि का अर्थ है : जान लिया, पहचान लिया, अनुभव कर लिया--उसका, जो शाश्वत है; उसका, जो अमृत है ।

मगर जानोगे तो ही जानोगे । इसलिए बजाय समाधि के संबध में समझने के, ध्यान के संबंध में समझना चाहिए, क्योंकि ध्यान प्रक्रिया है जो समाधि पर ले जाती है । ध्यान औषधि है, जो बीमारी को काट देती है । और जब बीमारी कट जाती है, तो जो शेष रह जाता है वही स्वास्थ्य है ।

स्वास्थ्य की कोई परिभाषा नहीं है । इतने शास्त्र लिखे गये हैं स्वास्थ्य पर, स्वास्थ्य की कोई परिभाषा नहीं है । हमारा शब्द बड़ा प्यारा है । अंग्रेजी का शब्द 'हैल्थ' भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है । 'स्वास्थ्य' लेकिन उससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है । स्वास्थ्य का अर्थ होता है : स्वयं में स्थित हो जाना । वह समाधि की ही बात हो गयी । जिसके भीतर कुछ तनाव है, वह स्वयं में स्थित नहीं हो पाता ।

तुमने ख्याल किया ? पैर में कांटा गड़ा हो, तो सारा ध्यान वहीं-वहीं जाता है, कांटे की तरफ जाता है । तुम अपने में ठहर नहीं पाते । सिर में दर्द हो तो ध्यान सिर की तरफ जाता है । जब कहीं कोई पीड़ा न हो तो ध्यान कहीं नहीं जाता, अपने में ठहर जाता है । तो पक्षी अपने नीड़ में बैठ जाता है ।

स्वास्थ्य का अर्थ हुआ : जब ध्यान को जाने की कहीं कोई जरूरत न हो। ध्यान जाता ही दुख के कारण है, पीड़ा के कारण है। जब कहीं कोई पीड़ा नहीं है, तो ध्यान अब कहां जाए? अब इस पक्षी को जाने के लिए कोई उपाय न रहा। यह अपने पंखों में दुबककर भीतर बैठ जाता है, शांत हो जाता है। स्वास्थ्य है ऐसी स्थिति।

समाधि स्वास्थ्य की ही अंतिम अवस्था है। शरीर के संबंध में ऐसी स्थिति आ जाए तो स्वास्थ्य। आत्मा के संबंध में ऐसी स्थिति आ जाए तो समाधि।

अंग्रेजी का शब्द 'हेल्थ' भी सुंदर है। वह आता है 'होल' से, पूर्ण से। जो पूर्ण हो गया, वह स्वस्थ हो गया। जब तक अपूर्णता है, तब तक अस्वास्थ्य है। जब कोई पूर्णता को उपलब्ध हो जाता है तो स्वस्थ हो जाता है। जब शरीर पूर्ण होता है तो स्वस्थ। और जब आत्मा भी पूर्ण होती है तो समाधि।

इन वचनों पर ध्यान करो :

न हैं चांद-सूरज न कोई सितारे
कहीं रोशनी का निशां तक नहीं है
खलाये फजा की है बस बेकरानी
जहां नक्शे मौहूम आलम का साया
है अम्बवाजे हस्ती के दामन में रक्सां
खला मन की है मौज दर मौज पैदा
खुदी की जबरदस्त रौ चल रही है
इसी रौ में दुनिया बहे जा रही है
कभी डूबती है कभी तैरती है
ये सारा हजूमें नक्शे खयाली
है मौहूम सायों का रक्से तमाशा
हुआ वतने तखलीक में फिर से गायब
रहा सिर्फ एहसास बाकी खुदी का
रही मोअजन सिर्फ इक रौ अना की
वो देखो अना की भी रौ रुक गई है
खला से खला अब गले मिल रही है
बयां ऐसी हालत का मुमकिन नहीं है
ये आलम तो अदराक से मावरा है
ये दिल जिस दिल पे गुजरे वही जानता है।

इन्हें समझो।

न हैं चांद-सूरज न कोई सितारे

समाधि ऐसी दशा है, जहां कुछ भी शेष नहीं रह जाता--जहां कोई विषय शेष नहीं रह जाता; जहां देखने को कुछ शेष नहीं रह जाता। दृष्टि शुद्ध हो जाती है। दर्शन दर्पण की भांति होता है। और कोई प्रतिफलन नहीं होता।

न हैं चांद-सूरज न कोई सितारे

उस परम शांति में चांद-तारे भी नहीं हैं, सूरज भी नहीं है। रोशनी भी नहीं है, तो अंधेरे की तो बात ही क्या! इसे समझना।

कहीं रोशनी का निशां तक नहीं है।

तुम कहोगे : यह तो बड़ी अजीब बात हुई! हम तो सोचते थे, जब समाधि होगी तो रोशनी ही रोशनी हो जाएगी। लेकिन रोशनी तो वहीं हो सकती है जहां अंधेरा हो। जहां अंधेरा ही नहीं है, वहां रोशनी भी नहीं हो सकती। रोशनी और अंधेरा तो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, वे साथ ही साथ हैं।

समाधि ऐसी दशा है, जहां अंधेरे की तो क्या कहो, रोशनी भी खो जाती है। अंधेरा तो खो ही जाता है, रोशनी भी खो जाती है। मौत की तो क्या कहो, जीवन भी खो जाता है। दुख की तो क्या कहो, सुख भी खो जाता है। क्योंकि ये सब साथ जुड़े हैं--दुख-सुख, अंधेरा-रोशनी, जीवन-मृत्यु। ये सब जुड़े हैं। ये अलग-अलग नहीं हैं। इनमें से एक बचेगा तो दूसरा किनारे पर खड़ा रहेगा। अगर रोशनी होगी तो अंधेरा उसकी सीमा बनायेगा। अगर सुख होगा तो दुख किनारे पर मौजूद है, प्रतीक्षा कर रहा है कि कब मुझे अवसर मिले। वह तैयार है तुम्हारी छाती पर सवार हो जाने को।

द्वन्द्व ही खो जाता है, तब समाधि है।

न हैं चांद-सूरज न कोई सितारे
कहीं रोशनी का निशां तक नहीं है
खलाये फजा की है बस बेकरानी

एक शून्य है--असीम शून्य!

खलाये फजा की है बस बेकरानी

एक रिक्तता है। सब शून्य हो गया है। असीम शून्य है, जिसकी कोई सीमा नहीं।

जहां नक्शे मौहूम आलम का साया
है अम्बवाजे हस्ती के दामन में रक्सां

और जहां माया की सब तरंगें सो गई हैं--अस्तित्व में सो गई हैं।

साधारणत: इससे उलटी दशा है। वही तुम्हारी दशा है। उसे पहले समझो, तो समाधि समझ में आए।

खला मन की है मौज दर मौज पैदा

मन में तरंगें उठ रही हैं। यह साधारण अवस्था है। तरंगों पर तरंगें! चुकतीं

ही नहीं। कभी मन खाली नहीं होता। आती ही चली जाती हैं। एक बाढ़ है--अंतहीन बाढ़ है! एक क्षण को भी मन खाली नहीं होता। असीम रिक्तता को तो क्या समझोगे, जब एक क्षण भी रिक्तता नहीं आती! उठते-बैठते सोते-जागते चल रहे विचार, चल रहे विचार। रास्ता कभी खाली ही नहीं होता। ट्रैफिक चलता ही रहता है। कभी दुख, कभी सुख। कभी सफलता, कभी असफलता। कभी क्रोध, कभी प्रेम। मगर चलता ही रहता है। भीड़ चलती ही रहती है, गुजरती ही रहती है।

खला मन की है मौज दर मौज पैदा
खुदी की जबरदस्त रौ चल रही है

और जब तक यह रास्ता चलता रहता है, यह भीड़ चलती रहती है विचारों की, तब तक अहंकार बना रहता है। अहंकार तुम्हारे विचारों के जोड़ का ही नाम है। अहंकार तुम्हारी सारी बीमारियों का जोड़ है।

समाधि में न विचार होंगे, न अहंकार होगा। इतना कहा जा सकता है कि समाधि में क्या नहीं होगा। क्या होगा, शायद नहीं कहा जा सकता; लेकिन क्या नहीं होगा, यह निश्चित कहा जा सकता है। विचार नहीं होंगे। यह भीड़-भाड़ नहीं होगी, जो तुम्हारे मन में मची है। यह कीचड़ जो तुम्हारे मन में मची है, नहीं होगी। और अहंकार नहीं होगा, क्योंकि इसी कीचड़ के जोड़ का नाम अहंकार है। तुम्हारी सारी बीमारियां, इन सबका इकट्ठा नाम अहंकार है।

खला मन की है मौज दर मौज पैदा
खुदी की जबरदस्त रौ चल रही है

और बड़ी हवा चल रही है अहंकार की! अंधड़ चल रहा है अहंकार का।

इसी रौ में दुनिया बहे जा रही है
कभी डूबती है कभी तैरती है
ये सारा हजूमें नक्शे खयाली!

यह जो दुनिया में डूबना-उतरना चल रहा है, यह सब मन के ही ख्यालों का है। सफलता भी मन का ख्याल है, असफलता भी मन का ख्याल है। सब ख्याल की बात है।

मैंने सुना है, एक आदमी एक अजनबी देश में गया, जहां की वह भाषा नहीं समझता है। उसने एक बड़ी होटल देखी--ताजमहल समझो। वहां लोग आ-जा रहे हैं। वह भी भीतर गया। उसने समझा कि यह राजा का महल है। वह जाकर एक टेबल पर बैठ गया, एक बैरा आया—शुभ्र कपड़ों को पहने हुए। उसने सोचा कि अद्भुत राजा है, सब का स्वागत चल रहा है। मेरे लिए भी एक विशेष आदमी भेजा स्वागत के लिए! उस बैरे ने झुककर नमस्कार किया। वह बैरा थाली ले आया। सुस्वादु भोजन। वह अजनबी तो बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कहा: हद्द हो

गयी! अजनबी हूं, कोई जानता भी नहीं, कोई पहचानता भी नहीं; फिर राजा हो तो ऐसा हो!

उसने खूब दिलभर कर भोजन किया। फिर झुक-झुककर धन्यवाद करने लगा बैरा का। लेकिन बैरा बिल लिये खड़ा है। वह बिल पकड़ाना चाहता है और वह धन्यवाद कर रहा है। उसने बिल भी ले लिया। उसने सोचा कि शायद राजा ने चिट्ठी लिखकर भेजी है कि आप आये, बड़ी कृपा की! हमारे धन्यभाग हैं! और भी आते रहना!

वह और-और झुककर...। चिट्ठी तो उसने खीसे में रख ली कि अपने देश में जाकर दिखाने के काम आएगी। बैरा ने देखा, यह आदमी कुछ अजीब है! वह पैसे मांग रहा है और वह झुक-झुककर नमस्कार कर रहा है और धन्यवाद दे रहा है। और कुछ-कुछ कह रहा है, जो बैरा की समझ में नहीं आता, वह कौन-सी भाषा बोल रहा है। तो वह उसे ले गया मैनेजर के पास। तो उस आदमी ने सोचा कि शायद, बैरा, यह जो अतिथि का स्वागत करनेवाला राजा का प्रतिनिधि है, इतना प्रसन्न हो गया है कि राजा के पास ले जा रहा है; या कम से कम वजीर के पास तो जरूर...। जब मैनेजर के कमरे में गया तो उसने समझा कि यह वजीर का कमरा, बड़ा शानदार! मैनेजर ने उसे बिठाया। उससे कहा कि भाई पैसे चुकाओ। मगर वह तो कुछ समझे ही नहीं, क्योंकि उसको भाषा ही समझ में नहीं आती थी। तो मैनेजर ने उसे अदालत में भेजा। अब वह सोचा कि अब राजा के पास ले जाया जा रहा है। और जब उसने अदालत देखी...विशाल भवन! और जब उसने मजिस्ट्रेट को देखा, उसने समझा कि यह महाराजा है। वह खूब झुक-झुककर नमस्कार करने लगा। किसी को किसी की बात समझ में न आए।

आखिर मजिस्ट्रेट ने कहा कि या तो यह आदमी पागल है या पक्का चालबाज है। हम कहते हैं, वह सुनता ही नहीं है। वह अपनी ही लगाये जा रहा है। इसको दंड दिया जाए। इसका मुंह काला कर दिया जाए और गले में जूतों की माला पहना दी जाए और एक गधे पर उलटा मुंह बिठाकर इसको पूरे गांव में घुमाया जाए।

पुराने जमाने की कहानी है। जब उसके गले में जूतों की माला पहनाई गयी, तो उसने कहा: अजीब रिवाज हैं इस देश के मगर। शायद यहां फूल न होते हों या रिवाज-रिवाज की बात है। मगर लोग बड़े अद्भुत मालूम होते हैं!

और जब उसका मुंह काला रंगा गया, तब तो वह बड़ा ही प्रसन्न हुआ। उसने सोचा कि रंग-रोगन भी कर रहे हैं। अब देखें आगे क्या होता है!

और वह तो बड़ा प्रसन्न! रंगनेवाले भी थोड़े हैरान। उन्होंने औरों के भी रंगे थे; लेकिन जिसका मुंह काला रंगो, वह दुखी ही होता है। और वह बड़ा ही आनंदित हो रहा है। उसकी आंखों में बड़ी चमक है। और जब उसको गधे पर बिठाया गया, तब तो कहना ही क्या! उसने कहा: हद्द हो गयी, सवारी निकलती है! और

जब जुलूस चला, क्योंकि बच्चे साथ हो लिए, भीड़-भाड़ हो ली, तो वह बड़ी प्रसन्नता से अकड़कर बैठा है और चारों तरफ देखता जाता है। और बड़ा खुश हो रहा है। और सोच रहा है: एक ही कमी रह गयी। मैं जब लौटकर अपने देश जाऊंगा और कहूंगा कि ऐसा-ऐसा स्वागत हुआ तो कोई मेरी मानेगा नहीं। काश, एकाध और कोई होता गवाह! मेरे देश का कोई निवासी इस समय मिल जाए तो बड़ा अच्छा हो!

तभी उसे दिखायी पड़ा एक आदमी भीड़ में खड़ा है, जो उसके देश का है। अरे --उसने कहा--देखते हो, कैसा स्वागत हो रहा है! और वह आदमी तो बहुत दिन से इस देश में है, इस देश की भाषा समझने लगा है। वह जल्दी से सिर झुकाकर भीड़ में खिसक गया। उसने सोचा कि यह तो मूढ़, गधे पर इसका जुलूस निकल रहा है और यह अकड़कर बैठा है! और अगर लोगों को पता चल जाए कि मैं भी इसके देश का वासी हूं तो मेरा भी अपमान होगा। तो वह जल्दी से सिर झुकाकर भीड़ में खिसक गया।

इस आदमी ने क्या सोचा? इसने सोचा: हद्द हो गयी! ईर्ष्या की भी हद्द होती है। जला जा रहा है। इसका स्वागत नहीं हुआ, इस तरह जिस तरह हमारा हो रहा है। इसकी जलन तो देखो!

मन का खेल है। तुम्हारी सफलता, तुम्हारी असफलता—तुम्हारी व्याख्याएं हैं। तुम्हारी मान्यताएं हैं।

खला मन की है मौज दर मौज
खुदी की जबरदस्त रौ चल रही है
इसी रौ में दुनिया बहे जा रही है
कभी डूबती है कभी तैरती है
ये सारा हजूमे नक्शे ख्याली

यह सब काल्पनिक है, सब सपने जैसा है।

है मौहूम सायों का रक्से तमाशा
हुआ वतने तखलीक में फिर से गायब

और जब समाधि आती है तो यह सारा तमाशा गायब हो जाता है।

हुआ वतने तखलीक में फिर से गायब

यह सारा सपना शांत हो जाता है--वहीं खो जाता है, जहां से उठा था।

रहा सिर्फ एहसास बाकी खुदी का

जब सारे विचार चले जाते हैं और सारी तरंगें खो जाती हैं, तब भी थोड़ी देर को अहंकार टिका रहता है। ऐसे ही जैसे तुम साइकिल चलाते हो तो पैंडल मारना पड़ता है, फिर दो-चार मील पैंडल मारने के बाद, अगर तुमने पैंडल चलाना बंद भी कर दिया, तो भी साइकिल थोड़ी दूर चल जाएगी--पुरानी गति के आधार पर। एकदम नहीं रुक जाएगी; दस-पांच कदम चल जाएगी। और अगर उतार हो तो थोड़ी ज्यादा भी चल सकती है। पैंडल तो रुक जाएंगे पहले, फिर थोड़ी देर बाद साइकिल रुकेगी।

ऐसा ही अहंकार है। विचार तो पहले रुक जाएंगे, लेकिन सूक्ष्म खुदी, सूक्ष्म अहंकार थोड़े दिन तक तरंगें मारता रहेगा। पुरानी आदत के वश।

हुआ वतने तखलीक में फिर से गायब
रहा सिर्फ एहसास बाकी खुदी का
रही मोअजन सिर्फ इक रौ अना की

सब खो गया; सिर्फ एक तरंग बची--अहंकार की।

रही मोअजन सिर्फ इक रौ अना की
वो देखो अना की भी रौ रुक गई है

और जब समाधि करीब आती है, तो जो घटना घटती है--वह यह कि अचानक अहंकार की लहर भी रुक जाती है। अचानक तुम पाते हो कि तुम हो और मैं का कोई भाव नहीं। मैं गया। होना तो है, लेकिन मैं का भाव नहीं रहा। अस्तित्व शुद्ध हो गया।

वो देखो अना की भी रौ रुक गई है
खला से खला अब गले मिल रही है

शून्य से शून्य गले मिल रहा है। यह समाधि की परिभाषा है।

वो देखो अना की भी रौ रुक गई है
खला से खला अब गले मिल रही है
बयां ऐसी हालत का मुमकिन नहीं है

अब इस बात को कहने का उपाय नहीं है। दो शून्य गले मिल रहे हैं। तुम शून्य हो गये और परमात्मा तो सदा से शून्य है। और तुम जब शून्य हो जाओगे, तभी परमात्मा के शून्य से मिल सकोगे। क्योंकि उस जैसे हो जाओ तो ही उससे मिल सकोगे। जब तुम मिट जाओगे तो उससे मिल सकोगे। जब तक तुम हो, तब तक बाधा है। जब तक तुम हो, तब तक मिलन नहीं। जब तुम बिलकुल न रह जाओगे, तभी मिलन होगा; क्योंकि न होना परमात्मा के होने का ढंग है। इसलिए तो परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। अनुपस्थिति उसकी उपस्थिति का ढंग है। जब तुम भी अनुपस्थित हो जाओगे, जब तुम भी परिपूर्ण शून्य हो जाओगे, तभी--तभी समाधि।

खला से खला अब गले मिल रही है
वो देखो अना की भी रौ रुक गई है
बयां ऐसी हालत का मुमकिन नहीं है
ये आलम तो अदराक से मावरा है

यह घटना बुद्धि के परे है।

ये आलम तो अदराक से मावरा है

यह बुद्धि के अतीत है। इसलिए इसे बुद्धि से कहने का उपाय नहीं। बुद्धि तो बचती नहीं, जब समाधि घटती है। जब समाधि घटती है तो बुद्धि साक्षी नहीं होती। होती ही नहीं। इसलिए बुद्धि को कोई अनुभव नहीं है। समाधि बुद्धि के पार है।

ये आलम तो अदराक से मावरा है
ये दिल जिस दिल पे गुजरे वही जानता है।

तुम पूछते हो : समाधि क्या है ?

--ये दिल जिस दिल पे गुजरे वही जानता है।

घायल की गति घायल जाने।
जौहरि की गति जौहरि जाने।

पर जौहरि तुम बन सकते हो। बनने को पैदा हुए हो। न बनो तो तुम्हारा कसूर है। घायल होने की तुम्हारी क्षमता है। प्रभु तो तीर लिए खड़ा है। उसने तीर धनुष-बाण पर कब से चढ़ा रखा है! तुम जरा ठहर जाओ, क्योंकि तुम डांवां-डोल रहो तो वह कितना ही बड़ा धनुर्विद हो तो भी तुम्हारे हृदय को वेध न पाएगा। तुम जरा ठहर जाओ तो यह तीर लगे। तुम्हारा हृदय विंध जाए, तुम घायल हो जाओ, तो तुम जानोगे।

समाधि अनुभव है, अनुभूति है। लेकिन समाधि में क्या-क्या नहीं है, वह कहा जा सकता है। द्वन्द्व नहीं है, द्वैत नहीं है, विचार नहीं हैं, भाव नहीं हैं, अहंकार नहीं है। ये सब जहां नहीं हैं, फिर वहां पूर्ण अवतरित होता है। जब तुम शून्य हो जाते हो, तो तुम पात्र बनते हो। जब तुम खाली होते हो, तब परमात्मा प्रवेश करता है।

समाधि--तुम्हारा परमात्मा में लीन हो जाना और परमात्मा का तुम में लीन हो जाना। समाधि अपने मूलस्रोत को पा लेना है। गंगा गंगोत्री पहुंच जाए, ऐसी है समाधि। वृक्ष फिर बीज हो जाए, ऐसी है समाधि। तुम फिर परमात्मा हो जाओ। जो तुम थे मूलतः, जो तुम्हारा मौलिक स्वभाव है--फिर से तुम उसे पा लो। उस पा लेने, उस उपलब्धि का नाम समाधि है।

समाधि यानी समाधान। सब समस्याएं समाप्त हो गयीं।

आखिरी प्रश्न : मैं परमात्मा को खोजता फिर रहा हूं और परमात्मा मिलता नहीं। प्रभु, कितनी यात्रा और करनी होगी? संन्यास भी लिया है, परमात्मा तो नहीं मिला; उलटा लोग मुझे पागल समझने लगे।

★

परमात्मा खोजने से नहीं मिलता। खोज में तो फिर भी अहंकार शेष रह जाता है।

परमात्मा खोने से मिलता है--खोजने से नहीं। तुम खो जाओ, तो मिलेगा। तुम अगर मजबूती से खोज रहे हो तो तुम मजबूत बने हो। तुम कहते हो : मैं खोजकर रहूंगा! तो तुम्हारी खोज भी तुम्हारे मैं को परिपुष्ट कर रही है। तुम कहते हो : मैं रुक नहीं सकता, चाहे कुछ भी हो जाए--पहाड़ लांघू तो लांघ जाऊं; सात समंदर पार करने हों तो कर जाऊं; तू चांद-तारों पर हो तो कोई फिकर नहीं, वहां आ जाऊंगा--लेकिन मैं तुझे पाकर रहूंगा!

यह मैं-भाव ही तो बाधा है। अन्यथा, कहीं नहीं जाना। न तो पहाड़ लांघने हैं, न समुंदर लांघने, न चांद-तारों पर जाना है। इस अहंकार को समझो।

मैं समझा। तुम कहते हो, कि तुम खोज रहे हो। तो तुम काशी गये हो या काबा गये हो। वेद पढ़े, कुरान पढ़े, बाइबिल पढ़ी--इसको तुम खोज कह रहे हो। उपवास किये, सिर के बल खड़े हुए, आसन लगाये--इसको तुम खोज कह रहे हो। माला जपी, शरीर को तपाया, गलाया--इसको तुम खोज कह रहे हो! लेकिन ये सब तुम्हारे अहंकार को मजबूत कर देंगे। कुरान समझ गये, तो अहंकार और भर गया कि मैं कुरान जानता हूं। वेद पढ़ लिया, वेद कंठस्थ हो गया, तो और अकड़ गये कि वेद जानता हूं। आसन-व्यायाम कर लिया, थोड़ी कसरत सीख ली, तो अहंकार और मजबूत हो गया--योगी हो गये। व्रत-उपवास कर लिये--त्यागी हो गये। मौन रख लिया कुछ दिन, तो मुनि हो गये। यह अकड़ तो बढ़ती चली जाएगी। और यही अकड़ रुकावट है।

कौन रोक रहा है तुम्हें परमात्मा से मिलने से? सिवाय तुम्हारे और कोई भी नहीं। न तो उपवास करने की जरूरत है, न व्रत, न त्याग। समझ चाहिए। बोध चाहिए कि अहंकार बाधा है। अहंकार को विसर्जन करना है। जिस दिन तुम खोजी भी न रह जाओगे, जिस दिन तुम कहोगे--'मेरा क्या वश! मैं असहाय! मैं कहां तुझे खोजूं! तुझे देखा नहीं पहले, मिल भी जाए तो कैसे पहचानूंगा? तेरी कुछ पहचान भी तो नहीं। तेरा कुछ नाम-पता भी तो नहीं। मैं कैसे खोजूंगा!'--जिस दिन तुम्हें यह बात दिखायी पड़ जाएगी अपनी असहाय अवस्था की, उसी असहाय अवस्था में सब खोज गयी, खोजी गया। उस क्षण शांति आ जाती है, एकदम शांति आ जाती है।

समझना मेरी बात। शांति लाई नहीं जाती। ऐसा बैठ-बैठकर पालथी मार-मारकर शांति नहीं आती। जिस दिन तुम समझोगे अपनी परम असहाय अवस्था कि मेरे किये कुछ भी तो नहीं हुआ, कभी तो नहीं हुआ; सदियों-सदियों से, जन्मों-जन्मों से कर रहा हूं, कुछ भी नहीं हुआ; मेरे किये कुछ होता नहीं है--यह बात जिस दिन तुम्हें दिखायी पड़ जाएगी कि मेरे किये कुछ होता ही नहीं, होता ही नहीं है, हो ही नहीं सकता--उस क्षण क्या होगा? एक अपूर्व शांति सघन हो जाएगी! सब कृत्य रुक जाएगा। सब खोज खो जाएगी। खोजी भी खो जाएगा। एक गहन

शांति तुम्हें घेर लेगी । उसी शांति में परमात्मा तुम्हें खोजता आएगा । तुम परमात्मा को नहीं खोज सकते, परमात्मा ही तुम्हें खोज सकता है ।

तुम पूछते हो : 'मैं परमात्मा को खोजता फिर रहा हूं ।'

अब काफी खोज लिए, अब रुको । अब फिरो मत । काफी फिर लिए । फिरकनी बनने से नहीं परमात्मा मिलेगा । अब रुको, ठहरो, शांत हो जाओ । समझो बात को। यह परमात्मा कोई जद्दो-जहद नहीं है कि चले जा रहे हैं भागे, कि खोजकर रहेंगे! कहां जाओगे? बैठो। समझो, क्या हो रहा है? समझो स्थिति को कि क्यों परमात्मा से मिलन नहीं हो रहा है ? कौन-सी बाधा है ? कौन-सी अड़चन है? निदान करो अपने रोग का। और उसी निदान में शांति आएगी । उसी शांति में परमात्मा कब तुम्हारे पास आ जाएगा, तुम्हें पता भी न चलेगा । एक क्षण पाओगे कि नहीं था, एक क्षण पाओगे कि अचानक उसने तुम्हें घेर लिया। एक क्षण पाओगे कि वही-वही है, सब तरफ वही-वही है । हंसोगे कि मैं भी खोजता फिरता था और तू सब तरफ था ! तू ही तू था !

तुम पूछते हो : 'प्रभु, कितनी और यात्रा करनी होगी? ' तुम्हारी जितनी मर्जी हो, कर सकते हो । यात्रा से परमात्मा नहीं मिलेगा । परमात्मा दूर होता तो यात्रा से मिल जाता। परमात्मा पास है, यात्रा करोगे कैसे? यात्रा दूर के लिए करनी पड़ती है। पास ही हो, उसके लिए कैसे यात्रा करोगे ? और जो तुम्हारे हृदयों के हृदयों में विराजमान हो, उसके लिए कहां यात्रा करोगे ? कैसी यात्रा ?

'यात्रा' शब्द ही भूल जाओ । यात्रा शब्द गलत है । कहीं जाना नहीं है, क्योंकि परमात्मा यहां है । जाना है ही नहीं--आना है । तुम काफी दूर वैसे ही निकल गये हो, घर लौट आओ ।

तो मैं कहता हूं : प्यारे, घर लौट आओ ! कहां जा रहे हो ? कहीं जाना नहीं। भीतर शांत होकर बैठ जाओ । रुको ! दौड़ने से नहीं मिलेगा--परमात्मा रुकने से मिलेगा । यह रुकने का गणित समझो ।

यात्रा सदा दूर के लिए होती है । चांद पर जाना हो तो यात्रा करनी पड़ेगी । कैलाश जाना हो तो यात्रा करनी पड़ेगी । खुद पर आना हो तो क्या यात्रा करनी पड़ेगी ? विक्षिप्त हो जाओगे । खुद पर आने के लिए कोई यात्रा नहीं करनी होती । सब यात्राएं जब छूट जाती हैं, तब तुम अपने पर आ जाते हो । सब यात्राओं का छूट जाना, स्वयं पर आ जाना है ।

तो परमात्मा यात्रा से नहीं मिलता--यात्राओं के छूटने से मिलता है। कर लिए खूब मेले, खूब यात्राएं, अब रुको !

और तुम कहते हो कि संन्यास तो लिया, परमात्मा तो मिला नहीं; लोग उलटे पागल समझने लगे ।

स्वाभाविक है कि लोग पागल समझें । क्योंकि लोग जिस बात को सार्थक समझते

हैं--धन को, पद को, प्रतिष्ठा को--उसको तुमने लात मार दी । तुम्हें पागल न समझें तो क्या समझें ? जो उन्हें मूल्यवान लगता है, तुम्हें निर्मूल्य लगने लगा—तो पागल न समझें तो क्या समझें ? वे तो तुम्हें नहीं समझ सकते, लेकिन तुम तो उन्हें समझ सकते हो--कि बेचारे ठीक ही तो कह रहे हैं ! उन पर दोष मत दो ।

तुम कहते हो : हम परमात्मा खोज रहे हैं । वे कहते हैं : भाई, धन खोजो, पद खोजो । अगर कहीं जाना है तो दिल्ली जाओ । चुनाव आ रहे हैं, चुनाव लड़ लो। लॉटरी की टिकिट खरीद लो । कुछ करो । यह परमात्मा से क्या होगा ? कहां की बातें कर रहे हो ? सपने देख रहे हो ? कवि हो गये, कि दिमाग खराब हो गया ?

दोनों का मतलब एक ही होता है--कवि हो गये कि पागल हो गये ।

मुहम्मद को जब पहली दफा कुरान उतरी तो घर लौटकर उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि मुझे लगता है, या तो मैं पागल हो गया या कवि हो गया। कुछ उतर रहा है मेरी खोपड़ी में, जो मेरे बस के बाहर है । कुछ घोषणाएं हो रही हैं मेरे भीतर, जो मेरी नहीं हैं । मैं किसी और ही शक्ति के हाथ में पड़ गया हूं । किसी विराट भंवर में उछल गया हूं । मैं छोटा तिनका हूं, जो किसी अंधड़ में पड़ गया हूं ।

जो शब्द उन्होंने अपनी पत्नी से आकर कहे कि मुझे जल्दी से रजाई ओढ़ा दे, मुझे बहुत कपकपी लग रही है; या तो मैं कवि हो गया हूं या मैं पागल हो गया हूं ।

तो लोग यही तो समझेंगे । जो भले आदमी हैं, वे कहेंगे : 'आप कवि हो गये क्या ?' मतलब तुम समझ जाना । जो जरा इतने सुसंस्कृत नहीं हैं, वे सीधी बात सीधे ही कह देते हैं । वे कहेंगे : पागल हो गये क्या ? मगर बात एक ही है ।

तुम तो समझो । लोग क्या करेंगे ? लोग देखते । उनके अनुभव को सही मानते । तुम उनके अनुभव के विपरीत जाते हो । तुम उनको कहना कि मैं तो पागल हो ही गया और पागल होकर जो मुझे मिल रहा है, वह समझदार होकर कभी न मिला था । तुम भी पागल हो जाओ । तुम उनको आशीर्वाद देना कि आप भी पागल हो जाएं ।

> कहां कहां तू फिरेगा भटकता आवारा
> न इस जहां से न उससे मिलेगा कोई पता
> नहीं है दोनों जहानों में कोई तेरे सिवा
> तू अपने आप में खोकर खुद अपने आप को पा
> खुदी में देख खुदा ओम् ओम् तत् सत् ओम्
> तुझे जहान में संन्यासी कम ही समझेंगे
> यहां के लोग हिकारत से तुझको देखेंगे
> हर एक बात पै तेरी हंसी उड़ाएंगे
> तुझे सताएंगे, पागल तुझे पुकारेंगे
> दुआएं सब को दिये जा तू ओम् तत् सत् ओम्

और दुआ यही देना कि प्रभु करे, तुम भी पागल हो जाओ !

खोजने की व्यर्थता समझो। जिसे तुम खोज रहे हो, वह तुममें छिपा बैठा है।

जिससे हर दो जहां मुनव्वर हैं
तेरे इस हुस्न की जमा हूं मैं
नाज है अपनी जिस अदा पै तुझे
इसका इक अक्से हश्र जा हूं मैं
मैं तेरी आरजू की हूं तशकील
शौक तेरा, तेरी दुआ हूं मैं
तेरा ही नगमाए निशात हूं मैं
तेरे ही दिल की इक सदा हूं मैं
इन्तहाये कमाल हुस्न है तू
इश्क कामिल की इन्तहा हूं मैं
तू है आज़ाद हर तआल्लुक से
हर तआल्लुक में मुबतला हूं मैं
फिर भी मैं कोई दूसरा तो नहीं
तेरा ईमां तेरी रजा हूं मैं
जिंदगी मेरी--आरजू तेरी
जीते जी--तालिबे फना हूं मैं।

तुम सब कुछ हो। परमात्मा भी तुम्हारे भीतर विराजमान है। घर लौट आओ।

जिससे हर दो जहां मुनव्वर हैं
तेरे इस हुस्न की जमा हूं मैं।

जिससे यह सारी दुनिया का सौंदर्य भरा है, सारी दुनिया--यह दुनिया, वह दुनिया--दोनों दुनियाओं का सौंदर्य, उस की जमा मेरे भीतर है।

नाज है अपनी जिस अदा पै तुझे
इसका इक अक्से हश्र जा हूं मैं

और परमात्मा से कहा जा रहा है कि तुझे जो नाज है अपने ऊपर, मैं भी उसी नाज की एक लहर हूं।

मैं तेरी आरजू की हूं तशकील
शौक तेरा तेरी दुआ हूं मैं

मैं तेरी अनुकंपा, तेरी करुणा हूं। तुझसे भिन्न नहीं।

तेरा ही नगमाये निशात हूं मैं

मैं तेरा ही गीत हूं।

तेरे ही दिल की इक सदा हूं मैं
इन्तहाये कमाले हुस्न है तू

तू पूर्ण सौंदर्य है।

इश्क कामिल की इन्तहा हूं मैं

तो मैं भी पूर्ण प्रेम हूं !

प्रेम तुम बन जाओ। परमात्मा सौंदर्य है। दोनों का मिलन हो जाएगा। लेकिन खोज से नहीं--खो जाने से।

मिटो ! मिटना ही उसे पाने का उपाय है।

आज इतना ही।
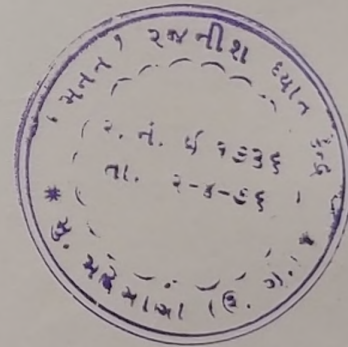
भक्ति का प्राण : प्रार्थना

सातवां प्रवचन

दिनांक : १७ नवम्बर, १९७७; श्री रजनीश आश्रम, पूना

झुक आई बदरिया सावन की, सावन की मनभावन की ।
सावन में उमंग्यो मेरा मनवा, भनक सुनी हरि आवन की ।
उमड़ घुमड़ चहुं दिसि से आये, दामण दमक झर लावन की ।
नन्हीं-नन्हीं बुंदिया मेहा बरसे, सीतल पवन सुहावन की ।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, आनंद मंगल गावन की ।

राणाजी, मैं सांवरे रंग राची ।
सज सिंगार पद बांध घुंघरू, लोकलाज तजि नाची ।
गई कुमति लहि साधु संगति, भक्ति रूप भई सांची ।
गाय-गाय हरि के गुण निसदिन, काल-ब्याल ते बांची ।
उन बिन सब जग खारो लागत, और बात सब कांची ।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, भक्ति रसीली जांची ।

मीरां को प्रभु सांची दासी बनाओ । झूठे धन्धों से मेरा फंदा छुड़ाओ ।
लूटे ही लेत विवेक का डेरा । बुधिबल यदपि करूं बहुतेरा ।
हाय राम नहिं कछु बस मोरा । मरती बिबस प्रभु धाओ धाओ ।
धर्म उपदेस नित ही सुनती हूं । मन कुचाल से बहुत डरती हूं ।
सदा साधु सेवा करती हूं । सुमिरण ध्यान में चित धरती हूं ।
भक्ति मार्ग दासी को दिखाओ । मीरां को प्रभु सांची दासी बनाओ ।

अभी तक स्पर्श-संवेदित सुनहली धूप की बालें
प्रतीक्षा से सतत चित्रित घने हेमन्त की छाया
अभी तक सुन रहा आकाश अपने छोर फैला कर
अरुण आलोक के मन में दिवा का गीत गदराया
अभी तक है सहेजे पंछियों की पांत बादल तक
बिछुड़ती, बेसंवारी, फैलती रेखा सगेपन की
अभी तक है बसाये डूबता दिन वक्र किरणों में
अचिह्नित तलतृणों की राह देखी लय विसर्जन की ।

प्रभु के सान्निध्य के क्षण भूले नहीं भूलते । उसकी पगध्वनि एक बार सुनाई पड़ जाए तो अमिट रेखा छूट जाती है हृदय पर । उसकी सुवास एक बार घेर ले, तो फिर उसे भुलाने का, विस्मरण करने का कोई उपाय नहीं ।

प्रभु-सान्निध्य की जो रेखाएं बनती हैं, वे मन पर नहीं बनतीं, आत्मा पर बनती हैं । परमात्मा का संस्पर्श आत्मा से होता है । मन पर बनी स्मृति तो मिट जाती है, धूमिल हो जाती है । आज नहीं कल, समय की धूल जम जाती है। लेकिन आत्मा पर जो संस्पर्श होते हैं, वे सदा ताजे हैं, सदा ताजे बने रहते हैं । वे कभी बासे नहीं पड़ते । मन पर तो बात घटी नहीं कि अतीत हो जाती है, व्यतीत हो जाती है । आत्मा पर जो घटता है, वह शाश्वत है, सदा वर्तमान है । अतीत नहीं होता, व्यतीत नहीं होता । क्योंकि परमात्मा का जो संस्पर्श है, वह समय के भीतर नहीं होता—वह शाश्वत घटना है, कालातीत है । यद्यपि काल की धारा में उतरती हैं वे किरणें, लेकिन वे काल की नहीं हैं ।

जैसे अंधेरे में उतरे कोई किरण; अंधेरे में उतरती है, लेकिन अंधेरे की नहीं है । ऐसे ही समय की धारा में भी भक्त कभी-कभी कालातीत को बुला लेता है । उसके रुदन से, उसके प्राणों की पुकार से, जो नहीं होना चाहिए वह भी घट जाता है। अघट घट जाता है । असंभव भी संभव हो जाता है ।

भक्त के जीवन का सबसे बड़ा चमत्कार यह नहीं है कि वह पानी पर चल ले । पानी चलने को बना भी नहीं है। भक्त के जीवन का बड़ा चमत्कार यह नहीं है कि वह आकाश में उड़ ले । परमात्मा को आदमी को आकाश में उड़ाना होता तो पंख दिये होते । भक्त के जीवन का बड़ा चमत्कार यही है--एकमात्र चमत्कार

यही है कि समय की धारा में समयातीत को खींच लाता है; क्षुद्र के मध्य विराट को बुला लेता है । यहां जहां वासना ने सभी को मरुस्थल बना दिया है, वहां प्रभु के प्रसाद की वर्षा हो जाती है। यह चमत्कार है भक्त का । भक्त सावन की बदरिया-बुला लेता है । जन्मों-जन्मों से पड़ी थी जो भूमि हृदय की--सूखी, तपती हुई, दरारें पड़ गयी थीं जिस हृदय में, सिवाय पीड़ा के जिस हृदय ने कभी कुछ नहीं जाना था--वहां महोत्सव घट जाता है । भक्त का यही चमत्कार है ।

भक्त से और तरह के चमत्कार चाहने मूलतः गलत हैं । वह आकांक्षा ही भूल-भरी है । इससे बड़ा और क्या चमत्कार हो सकता है कि परमात्मा, जो अदृश्य है, भक्त के सामने दृश्य हो जाता है ? उन्हीं अपूर्व क्षणों का स्मरण है मीरा के इन शब्दों में--

'झुक आई बदरिया सावन की ।
सावन की मनभावन की ।'

जैसे बादल झुक आते हैं सावन में । स्मरण करो । पृथ्वी उमंग से भर जाती है, अहोभाव से भर जाती है । मंगलगान छिड़ जाता है । वृक्ष नाचने लगते हैं । पक्षी गीत गाने लगते हैं । सब तरफ हरियाली हो जाती है । सब तरफ हरा-भरा हो जाता है । पृथ्वी दुल्हन बनती है ।

अभी कुछ दिन पहले आये होते तो सब रूखा पड़ा था, सब सूखा पड़ा था, सब विदग्ध था, मरुस्थल था । संसार वैसा ही मरुस्थल है—जहां सब दग्ध पड़ा है, सब जल गया है, ठूंठ खड़े हैं । लोग ठूंठ हो गये हैं । न उनमें पत्ते लगते हैं, फूलों की तो बात ही क्या करनी ! वसंत आता ही नहीं; पतझड़ नियति हो गयी है । जो है, वह खोता जाता है । जो मिलना चाहिए, वह तो मिलता नहीं । जो पास का है, वह भी रीतता चला जाता है । बूंद-बूंद-कर लोग धीरे-धीरे बिलकुल सूख जाते हैं, जड़ हो जाते हैं । कठोर हो जाते हैं, पथरीले हो जाते हैं । फूल खिलें तो खिलें कहां ?

ठीक मीरा ने प्रतीक चुना है, जैसे सावन की बदरिया घिर आई हो । और जैसे पृथ्वी मंगलगान से नाच उठती है, ऐसे ही एक दिन मनमोहन की बदरिया भी भक्त पर घिर आती है । हृदय उमंग बन जाता है । रोआं-रोआं नृत्य-मग्न हो जाता है । जीवन में पहली दफे अर्थ का उदय होता है । पहली बार अनुभव में आना शुरू होता है : सब व्यर्थ नहीं है । कुछ सार्थक भी है ! और सार्थक जो है वह इतना बड़ा है कि उसके लिए सारी व्यर्थता झेली जा सकती है । जन्मों-जन्मों तक जो पीड़ा झेली, वह नाकुछ हो जाती है--उस घड़ी में, जब पहली बार मनभावन की बदरिया भक्त को घेर लेती है ।

बादल का प्रतीक समझने जैसा है । बादल लाता है जल । और सावन के बादल तो बहुत जल-भरे होते हैं ! जैसे आकाश में सागर लहराता हो ! बादल सागर से ही आते हैं, सागर से ही उठते हैं, सागर का ही रूप हैं । तो पहले तो बादल

के प्रतीक में यह बात भी ख्याल रखना : अनंत सागर से आते हैं ! ऐसे ही परमात्मा के अनंत सागर से, उसकी महाकृपा की बदली भक्त को घेर लेती है ।

जैसे सावन के बादल खूब भरे होते हैं, तैयार ही होते हैं बरस जाने को, जरा-सा बहाना मिल जाए और बरसने को आतुर ! और बहाना न मिले तो भी बरसने को आतुर । और बेशर्त बरसते हैं । ऐसा नहीं कि सूखी पृथ्वी पर ही बरसते हैं, भरी झीलों में भी बरसते हैं । फिर देखते नहीं कहां बरस रहे हैं । बरसना ही है ! जब बादल इतना भरा हो तो बरसना ही पड़ेगा ।

भक्त को जब पहली बार परमात्मा की सन्निधि मिलती है, तब उसे पता चलता है कि मेरे कारण नहीं, मेरे किसी कृत्य के कारण नहीं, न मेरी प्रार्थनाओं के कारण, न मेरे भजन के कारण, न मेरे व्रत-नियम-उपवास के कारण—बल्कि इसलिए कि परमात्मा की अनुकंपा है, प्रसाद है, इसलिए वर्षा हो रही है । इसलिए नहीं कि मैंने पुकारा था। इसलिए नहीं कि मैंने बड़ी प्रार्थना और पूजा की थी । बल्कि इसलिए कि परमात्मा इतना भरा है कि न बरसेगा तो करेगा क्या ! मेरे प्रयास से नहीं, उसके प्रसाद से वर्षा हो रहीं है ।

सावन के बादल के घिरते ही सारा माहौल बदल जाता है, सारा वातावरण बदल जाता है । वातावरण जीवंत हो जाता है । वर्षा के बादल जल ही नहीं लाते, जीवन लाते हैं । जल के बिना जीवन हो भी नहीं सकता ।

तुम्हें पता है, तुम्हारी देह में अस्सी प्रतिशत जल है ! तुम्हारी देह जल को खो दे कि तुम जी न सकोगे । अस्सी प्रतिशत, तुम्हारा बड़ा हिस्सा जल है । अस्सी प्रतिशत तुम जल हो । और यही अनुपात आत्मा का है तुम्हारे भीतर । बीस प्रतिशत ही संसार है । अस्सी प्रतिशत तुम्हारे भीतर परमात्मा छिपा है, लेकिन तुम बीस में इस बुरी तरह उलझे हो कि अस्सी का पता नहीं चलता । तुम जितने हो, उससे बहुत ज्यादा गुना परमात्मा तुम्हारे भीतर है । लेकिन तुम अपनी क्षुद्रता में ऐसे तल्लीन हो गये हो, ऐसे व्यस्त हो गये हो कि तुम्हारी आंख ही विराट की तरफ नहीं उठती । तुमने देह को ही पकड़कर समझा है कि सब मिल गया । और देह तो केवल दीवाल है । मालिक तो भीतर बैठा है । देह तो मंदिर है । परमात्मा तो भीतर विराजा है ।

जैसे कोई मंदिर की दीवालों की ही पूजा करके लौट आये और भीतर के देवता तक न पहुंचे—ऐसा अधिक लोगों का जीवन है ।

आकाश में जब बादल घिर जाते हैं सावन के, तो सब तरफ जीवन की वर्षा हो जाती है । जमीन अंकुरित होने लगती है । हरियाली छा जाती है । घास ही घास फैल जाती है । फूल ही फूल खिलने लगते हैं । ठीक ऐसा ही हरापन, ऐसा ही जीवंत रूप भक्त के भीतर प्रगट होता है । तो मीरा ठीक कहती है :

'झुक आई बदरिया सावन की ।

सावन की मनभावन की ।'

वह जो मन के लिए सदा से प्यारा है, जो मनचीता है, जिसको सदा से चाहा है, अनेक-अनेक रूपों में जिसकी मांग की है, जिसे न मालूम कितने-कितने ढंग से खोजा है—वह आ गया ! वह शुभ घड़ी आ गयी, जिसकी जन्मों तक प्रतीक्षा की थी । प्रतीक्षा करते-करते न मालूम कितनी बार आशा की डोर भी हाथ से छूट गयी थी । बहुत बार लगा था कि शायद परमात्मा नहीं है; होता तो मिलता । बहुत बार लगा था शायद मैं व्यर्थ ही खोज रहा हूं, लौट चलूं । बहुत बार लगा था कि मैं भी किस उलझन में पड़ गया हूं ! यह मुझे कौन-सा पागलपन सवार हो गया है ! सारी दुनिया एक अर्थ में प्रसन्न मालूम होती है । धन को खोजती है, पद को खोजती है—पा लेती है । मैं किस पागलपन में पड़ गया—परत्मामा को खोजने निकला ! शायद परमात्मा है ही नहीं । शायद यह मनुष्य की कल्पना ही है।

स्वभावतः लम्बी यात्रा में बहुत बार इस तरह का संदेह पकड़े, बहुत बार इस तरह की दुविधा उठे, बहुत बार पैर लौटने-लौटने को हो पड़ें । बहुत बार लौट भी जाता है भक्त । फिर लौट आता है । फिर लौट आता है। बहुत बार पीछे चला जाता है । बहुत बार रास्ता छोड़ देता है। बहुत बार थककर पटक देता है अपनी माला को, बहुत बार सोच लेता है कि नहीं, कोई नहीं है, आकाश खाली है, मैं किस से प्रार्थना कर रहा हूं ? ये सब प्रार्थनाएं व्यर्थ का अरण्यरोदन है । मैं जंगल में रो रहा हूं, जहां कोई सुनने वाला नहीं है । और मेरी ये प्रार्थनाएं मेरी विक्षिप्तताएं हैं । मैं किससे कह रहा हूं ? यहां कोई भी तो नहीं है ।

यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि भक्त को हो । ऐसा तुम्हें कभी-कभी हो तो बहुत घबड़ा मत जाना । यह बिल्कुल स्वाभाविक है । यात्रा लम्बी है । आदमी असहाय है । आदमी की क्षमता सीमित है और असीम को खोजने निकला है । सफलता मिलती है, यह चमत्कार है । विफलता मिलती है, यह बिल्कुल स्वाभाविक है । परमात्मा न मिले तो कुछ बहुत ऐसा मत सोच लेना कि महापापी हो, इसलिए नहीं मिलता; यह स्वाभाविक है । परमात्मा मिल जाये तो ऐसा मत सोच लेना कि महा पुण्यात्मा हो, इसलिए मिलता है । उसकी करुणा है, इसलिए मिलता है ।

आदमी अपने ही प्रयास से खोजता रहे तो खोजता ही रहेगा—और खोज न पाएगा । इस बात को भी ख्याल में लेना । खोजते-खोजते-खोजते एक दिन ऐसी घड़ी आती है कि खोज तो मिट जाती है, क्योंकि अपनी असहाय अवस्था का पूर्ण बोध होता है, कि मेरे किये कुछ भी न होगा । जिस दिन यह बात इतनी सघन हो जाती है कि सौ प्रतिशत तुम्हारे भीतर बैठ जाती है कि मेरे किये कुछ भी न होगा, उसी दिन तुम्हारी प्रार्थना सच्ची होती है । उसके पहले प्रार्थना में संकल्प होता है । तुम कहते हो : प्रार्थना के जरिये तुझे पा लूंगा । तुम्हें अपने पर भरोसा होता है । तुम कहते हो : उपवास करूंगा, व्रत करूंगा, नियम पालूंगा—तुझे पा लूंगा । लेकिन

भरोसा तुम्हें अपने पर है--अपने व्रत, अपने नियम, अपनी प्रार्थना, अपनी पूजा पर। जब तक यह भरोसा है तब तक तुम भटकोगे। यह अहंकार है। यह अहंकार का बड़ा सूक्ष्म रूप है। इसमें बहुत सार मिलने वाला नहीं है। कुछ भी मिलने वाला नहीं है। लेकिन यह जाते ही जाते जाएगा। इसे तुम आज छोड़ भी दो तो नहीं छोड़ सकते--जब तक तुम्हारा अनुभव ही तुम्हें न बता दे और एक बार नहीं हजार बार बता दे कि तुम्हारे किये कुछ भी नहीं होने वाला है; जिस दिन तुम्हें अपने पर पूरा भरोसा खो जाएगा--उस दिन जो प्रार्थना उठेगी वही सच हो जाएगी। उसी दिन सावन की बदरिया घिर आयेगी।

खूब बरीकी से इस बात को ख्याल में ले लेना, ध्यान में समाहित हो जाने देना। तुम्हारी प्रार्थनाएं चूकती हैं--इसलिए नहीं कि परमात्मा बहरा है। तुम्हारी प्रार्थनाएं चूकती हैं, क्योंकि तुम्हारे अहंकार से उठती हैं। अहंकार कैसे प्रार्थना करेगा? अहंकार प्रार्थना का धोखा दे सकता है। प्रार्थना अहंकारपूर्ण हृदय में उठ ही नहीं सकती। अहंकार तो प्रार्थना से बिल्कुल ही विपरीत है।

तो अहंकार धोखा पैदा कर लेता है प्रार्थना का। जाते हो तुम मंदिर में, हाथ जोड़ते हो, झुकते भी हो--जरा भीतर देखना, तुम्हारे भीतर कोई नहीं झुका, सिर्फ देह झुकी। यह देह की कवायद हो गयी।

एक मुसलमान मित्र ने एक किताब लिखी है। उसमें सिद्ध करने की कोशिश की है कि इस्लाम में जो नमाज का ढंग है, वह एक तरह का योग है। क्योंकि मुसलमान झुकता है, बार-बार झुकता है। तो उस किताब में यह सिद्ध करने की कोशिश की गयी है कि यह झुकने से शरीर का व्यायाम होता है; यह एक तरह का योग-आसन है। यह इस्लामिक योग है।

वे मित्र किताब लेकर मेरे पास आए थे। मैंने उनसे कहा : तुमने बिल्कुल ठीक ही किया। यह कवायद ही है।

वे बोले : आपका मतलब?

मैंने कहा : तुमने सच्ची बात कह दी, हालांकि तुम्हारा प्रयोजन यह नहीं था। तुम तो सिद्ध कर रहे थे कि बहुत बड़ी बात है, यह योग है; लेकिन बात सच्ची निकल गयी है। यह कवायद ही है। क्योंकि आदमी तो झुकता ही नहीं; देह ही झुकती है। आदमी तो भीतर अकड़ा खड़ा है।

तुम जब मंदिर में जाकर झुकते हो, तुम झुके हो? तुम नहीं झुके। देह झुक गयी है। तुम जरा गौर से देखना। तुम अपने को अकड़ा हुआ खड़ा पाओगे। हो सकता है, मंदिर में प्रार्थना के समय, झुकते समय भी तुम चारों तरफ ध्यान रखे हो कि लोग देख रहे हैं कि नहीं, कि मैं कितना बड़ा धर्मात्मा, कितना बड़ा प्रार्थना करने वाला, जरा मेरी तरफ देखो!

जब मंदिर में भीड़-भाड़ होती है तो तुम्हारी प्रार्थना लम्बी हो जाती है; तुम

जरा ज्यादा देर तक झुके रहते हो। तुम पड़ ही जाते हो बिल्कुल परमात्मा के चरणों में--जरा लोग ठीक से देख ही लें। और अगर फोटोग्राफर भी मौजूद हो, फिर तो कहना क्या है! अगर अखबार वाले भी उस दिन मंदिर आए हों तब तो फिर बात ही क्या है! फिर तो तुम उठोगे ही नहीं। उस दिन तुम छोड़ोगे, कि जाने दो दफ्तर आज, आज प्रार्थना में ही लग जाओ।

मगर यह प्रार्थना तुम किसकी कर रहे हो? तुम परमात्मा की कर रहे हो, या लोगों की जो तुम्हें देख रहे हैं? या फोटोग्राफर की? या पत्रकारों की? तुम किसके चरणों में झुके हो? तुम किसको धोखा दे रहे हो? यह तो तुम अहंकार ही अर्जित कर रहे हो कि मैं कितना बड़ा प्रार्थना करने वाला, कैसा पुण्यात्मा, कैसा विनम्र!

जिस दिन भक्त प्रार्थना कर-करके हारता है, हारता चला जाता है; पराजय के सिवा और कोई स्वाद नहीं मिलता; विफलता, विफलता, विफलता...विफलता बिल्कुल छाती पर पत्थर की तरह बैठ जाती है--तब एक दिन बोध होता है : परमात्मा बहरा नहीं है। जरूर मेरी प्रार्थना में कहीं भूल हुई जा रही है। मैं जो भाषा बोल रहा हूं, वह परमात्मा तक नहीं पहुंच सकती। अहंकार मेरी प्रार्थना का गला घोंट देता है।

उस दिन अहंकार चारों खाने चित जमीन पर गिर जाता है। फिर उठती है एक प्रार्थना। तुम उस प्रार्थना को कर नहीं सकते--वह प्रार्थना उठती है। तुम्हारे किये की प्रार्थना नहीं है वह। अचानक तुम पाते हो, तुम्हारे भीतर से एक आह उठी! एक तुमुलनाद उठा! तुम देखते हो कि उठ रहा है। तुम उठाने वाले नहीं हो। तुम करने वाले नहीं हो। तुम कर्ता नहीं हो अब। अब तो यह अवश हुआ जा रहा है।

जिस दिन तुम्हारे बिना किये प्रार्थना हो जाती है, उसी दिन पहुंच जाती है। तुम्हारे द्वारा की गयी प्रार्थना नहीं पहुंचेगी। तुमने की कि खराब कर दी। तुम जो भी करोगे, उससे तुम्हारा अहंकार भरेगा। कृत्य से अहंकार भरता है। जिस दिन प्रार्थना सहज उठेगी, जिसको कबीर ने कहा है--साधो सहज समाधि भली! जिस दिन सहज उठेगी...। सहज का मतलब? तुम्हारे किये न उठेगी, तुम्हारे आयोजन से न उठेगी, तुम्हारी व्यवस्था से न उठेगी। जिस दिन तुम पाओगे कि तुम तो कुछ भी नहीं कर रहे हो और प्रार्थना उठी जा रही है; तुम तो नहीं झुक रहे हो और झुके जा रहे हो; तुम हो ही नहीं मौजूद, तुम बिल्कुल रिक्त खड़े हो; तुम तो हार गये; तुम तो अपनी हार में मर गये--अब तुम्हारे चले जाने के बाद जो बचा है तुम्हारे भीतर, वह प्रार्थना में तल्लीन है। उसी दिन प्रार्थना पहुंच जाती है। उसी दिन परमात्मा की बदली तुम्हें घेर लेती है।

'झुक आई बदरिया सावन की।
सावन की मनभावन की।'

वह बदली तो तुम्हारी राह देख रही है कि कब तुम झुको कि वह भी झुक आए।

क्योंकि वह, झुक गया है जो, उसी पर झुक सकती है। जो मिट गया है, उसी पर बरस सकती है। जो अभी अकड़ा खड़ा है, उस पर नहीं।

जो खाली है, उसी को भर सकेगा परमात्मा। जो अभी भरा है, उसको कैसे भरेगा?

झेन कथा है। एक विश्वविद्यालय का प्रोफेसर सद्गुरु नानइन के पास गया। पहाड़ पर नानइन का झोंपड़ा था। हांफ गया प्रोफेसर चढ़ते-चढ़ते। पहुंचा। जाकर बैठा। जाते ही उसने कहा कि दर्शनशास्त्र पर कुछ बात करने आया हूं। ईश्वर है?

नानइन, बूढ़े फकीर ने कहा : थके-मांदे हैं आप, थोड़ा विश्राम कर लें। चेहरे पर पसीना है, थोड़ा सूख जाने दें। और तब तक मैं चाय बना लाता हूं। जहां तक तो चाय पीते-पीते ही उत्तर मिल जाएगा; अगर न मिला तो पीछे उत्तर दे लूंगा।

नानइन यह कह कर भीतर चाय बनाने चला गया। वह प्रोफेसर सोचने लगा : चाय पीते-पीते उत्तर मिल जाएगा! यह आदमी पागल तो नहीं है? मैं पूछता हूं, ईश्वर है? यह कहता है चाय पीते-पीते उत्तर मिल जाएगा! ईश्वर के होने का उत्तर चाय पीते-पीते कैसे मिल सकता है? शक होने लगा कि मैं नाहक इतना पहाड़ चढ़ा। यह आदमी कुछ विक्षिप्त मालूम होता है। खैर, लेकिन अब आ ही गया हूं, तो दो घड़ी और सही।

नानइन चाय बना लाया। उसने प्रोफेसर के हाथ में प्याली दे दी। चाय ढालने लगा केटली से। प्याली भर गयी, कप भर गया, फिर भी ढालता गया। बसी भी भर गयी, फिर भी ढालता जा रहा था, तो प्रोफेसर चिल्लाया कि रुकिये! मुझे पहले ही शक हो गया कि आपका दिमाग कुछ खराब है। एक बूंद रखने की जगह नहीं है प्याली में, अब क्या फर्श पर भी चाय उंडेल देनी है?

नानइन हंसने लगा। उसने कहा : तो उत्तर यही है। तुम्हें दिखायी पड़ रहा है कि प्याली में एक बूंद चाय रखने की जगह नहीं है। तुम्हारे भीतर परमात्मा को रखने की एक बूंद भी जगह है? पूछने चले आए हो, ईश्वर है या नहीं! पहले यह तो पूछो कि तुम्हारे भीतर उसे रखने की जगह है! तुम खाली हो? जो खाली है, वही प्रश्न पूछने का हकदार है, क्योंकि खाली में ही प्रवेश हो सकता है।

परमात्मा तो चारों तरफ से कोशिश कर रहा है तुम में प्रवेश कर जाने की, मगर तुम्हारी प्याली इतनी भरी है कि कहीं कोई जगह ही नहीं। उसकी बदलिया तो तुम्हें अभी भी घेरे खड़ी है। उसके लोक में तो सदा सावन है। उसके लोक में तो कभी सावन के अतिरिक्त और कोई ऋतु होती ही नहीं; वहां तो सदा एक ही ऋतु है--सदा हरापन, सदा जीवन, सदा यौवन! वहां पतझड़ कभी नहीं आता।

परमात्मा तो केवल वसंत को ही जानता हैं। जैसे तुम केवल पतझड़ को ही जानते हो, ऐसे परमात्मा केवल वसंत को ही जानता है। जैसे तुम केवल मृत्यु को ही जानते हो, परमात्मा केवल अमृत को ही जानता है।

परमात्मा तुमसे ठीक विपरीत छोर पर खड़ा है, और चारों तरफ से घेरे हुए है कि कभी मौका मिल जाए, कभी तुम से भूल-चूक हो जाए, द्वार-दरवाजे खुले छूट जाएं, तो वह प्रवेश कर जाए। वह चोर की तरह रात भी तुम्हारे चारों तरफ खड़ा रहता है। इसलिये तो हिन्दुओं ने उसको एक नाम दिया है--हरि! हरि का अर्थ होता है चोर। जो हर ले, वह हरि! जो झपट ले, जो मौका पा जाए तो तुम्हें ले उड़े--वह हरि! तुम्हें घेरे खड़ा है। कभी मौका मिल जाए, शायद, तुम्हारे बावजूद, कभी तुम द्वार पर सांकल लगाना भूल जाओ, कि खिड़की रात छूट जाए, कि कहीं से दरवाजे में संध मिल जाए--तो वह घुस आए। मगर कहीं से तुम्हारे भीतर जगह नहीं, तुम बिल्कुल भरे हो। बूंदभर भी रखने को जगह नहीं। नहीं तो उसकी बदली तुम्हें सदा घेरे है।

देखते हो, वर्षा जब होती है, पहाड़ पर भी होती है, लेकिन पहाड़ खाली रह जाते हैं! क्योंकि पहले से ही भरे हैं, अब और भरें कैसे? गड्ढों में जल भर जाता है, पहाड़ खाली रह जाते हैं। तुम गड्ढों से राज सीखो भक्ति का। गड्ढे की कला क्या है? क्योंकि गड्ढा खाली है, इसलिए भर जाता है, झील बन जाती है। जो खाली है, वह भर जाता है। और जो भरा खड़ा है, वह खाली का खाली रह जाता है। वर्षा उस पर भी होती है। हिमालय के शिखर पर भी वर्षा होती है, लेकिन सब बहकर गड्ढों में चला जाता है। पहाड़ पर कुछ भी रुकता नहीं।

तुम पर भी परमात्मा बरस रहा है, मीरा पर भी बरस रहा है। मीरा में भर जाता है, तुम पर नहीं भर पाता। तुम्हारे अहंकार के पहाड़ बड़े ऊंचे हैं। तुम्हारा अहंकार बिल्कुल गौरीशंकर जैसा है। मीरा झील बन जाती है। खूब प्यारी झील बन जाती है! खूब गहरी झील बन जाती है।

उतना ही गहरा परमात्मा तुम में उतरेगा जितना गहरा तुम खाली हो गये। उसी अनुपात में उतरेगा। उससे ज्यादा उतर नहीं सकता। कैसे तुम खाली होओ? तुम्हारा कृत्य पर भरोसा छूट जाए, तो तुम खाली हो जाओ।

'सावन में उमंग्यो मेरो मनवा,
भनक सुनी हरि आवन की।'

मीरा कहती है : हरि के आने की भनक सुनाई पड़ी, इतना ही काफी हो गया : अभी दिखाई भी नहीं पड़ा हरि। अभी तो उसकी पदचाप सुनाई पड़ी, दूर...... लेकिन बादल उमड़-घुमड़कर आ रहा है। उसकी आवाज आने लगी है। इतना भी काफी है।

'सावन में उमंग्यो मेरो मनवा......' और मेरा मन उमंग से भर गया है। और मेरा मन नाच रहा है। और मैंने पग घुंघरू बांध लिए हैं।

'...भनक सुनी हरि आवन की।' और अभी हरि आ नहीं गया है, सिर्फ भनक पड़ी है कान में कि आता है; कि आता हूं, ऐसी आवाज आ गयी है। इतना भी

काफी है। परमात्मा को मिलने पर तो आनंद होता ही है। मिलने की भनक भी पड़ जाए तो भी अपार आनंद होता है। सम्हाले न सम्हले, ऐसा आनंद होता है।

'उमड़-घुमड़ चहुं दिसि से आये,
दामण दमक झर लावन की।'

और जैसे बादल चारों दिशाओं से उमड़-घुमड़ कर आते हैं, ऐसा ही परमात्मा आता है। उसकी कोई दिशा नहीं है कि पूरब से कि पश्चिम से। हिन्दू पूरब की तरफ सिर झुकाते, मुसलमान पश्चिम की तरफ सिर झुकाते। परमात्मा की कोई दिशा नहीं है। तुम जहां भी सिर झुकाओ, उसी को झुकता है, क्योंकि सब दिशाओं में वही है। सब दिशाएं उसकी हैं।

नानक के जीवन की कहानी पढ़ी न? वे गये काबा और सो गये रात पैर करके काबा की तरफ। पुजारी नाराज हो गये। लाख लोग कहें कि हम मूर्ति नहीं पूजते, मगर मूर्ति वापस लौट-लौट आती है। तो काबा ही की मूर्ति बन गयी। काबा का पत्थर, वह मूर्ति बन गया। उसकी तरफ पैर नहीं कर सकते।

अब, इस्लाम का मौलिक सिद्धांत यही है कि परमात्मा की कोई मूर्ति मत बनाना। क्यों? क्योंकि मूर्ति बनाने से दिशा हो जाती है। मूर्ति को कहीं रखोगे, तो उससे यह भ्रांति पैदा होती है कि परमात्मा बस यहीं है। और परमात्मा सब जगह है, तो यह तो बड़ी भ्रांति हो गयी कि परमात्मा बस यहीं है। पूजा होगी तो मंदिर में होगी, प्रार्थना होगी तो मंदिर में होगी। और कहीं प्रार्थना नहीं हो सकती? इन वृक्षों के नीचे बैठकर प्रार्थना नहीं हो सकती?

जब तुम परमात्मा को कहीं आरोपित कर लेते हो तो संकुचित कर देते हो, सीमित कर देते हो। तुम तो विराट होने से रहे, उसको भी सीमा में बांध देते हो! होना तो यह था कि तुम भी सीमा तोड़कर विराट होते, तुम भी सीमा के बाहर असीम में उड़ते। तुम ने उलटा किया। तुमने, परमात्मा असीम था, उसको भी सीमा में बांध दिया। तुम परमात्मा जैसे होते, तो तो क्रांति घटती; तुमने उलटा किया: परमात्मा को अपने जैसा बना लिया।

बाइबल कहती है कि परमात्मा ने आदमी को अपनी शकल में बनाया। वह बात गलत है। आदमी ने परमात्मा को अपनी शकल में बना लिया है। इसलिए मूर्तियां खड़ी हो गयीं।

इस्लाम का मौलिक सिद्धांत है कि मूर्ति मत बनाना। मगर बात रुकती नहीं। बन ही जाती है मूर्ति। आदमी ऐसा मूढ़ है कि मूर्ति बिना बनाये रह नहीं सकता। सिर्फ परम भक्ति को जिसने जाना है, वही मूर्ति बनाने से बचे तो बचे।

...तो काबा के पुजारी नाराज हो गये। उन्होंने नानक को कहा कि बदतमीज हो! देखने में साधु मालूम पड़ते हो। लेकिन तुम्हें इतना भी सऊर नहीं, इतना भी संस्कार नहीं है कि पवित्र पत्थर की तरफ पैर करके सो रहे हो? परमात्मा के मंदिर की तरफ पैर करके सो रहे हो?

नानक ने ठीक कहा। नानक ने कहा: तो मेरे पैर तुम वहां कर दो, जहां परमात्मा न हो।

मुश्किल में पड़ गये होंगे पुजारी। लेकिन पुजारियों जैसे मूढ़ तो खोजने कठिन हैं। कहानी यह कहती है कि उन्होंने कोशिश की। नानक के पैर उन्होंने दूसरी दिशा में करने चाहे। लेकिन जहां-जहां उन्होंने नानक के पैर किये, काबा उसी तरफ सरक गया। यह बात शायद हुई हो न हुई हो। जहां तक तो नहीं हुई होगी। लेकिन इसके पीछे अर्थ गहरा है।

इस तरह की कहानियां इतिहास नहीं हैं। इस तरह की कहानियां पुराण हैं। और पुराण इतिहास से बहुत मूल्यवान हैं। इतिहास तो कूड़ा-कर्कट का हिसाब है। पुराण शाश्वत की दृष्टि है।

अब तुम यह जिद्द मत करना--जैसा कि सिक्ख करते हैं—कि सच में ही काबा चारों तरफ हटा। लेकिन बात बड़ी मूल्य की है। नानक के पैर जिस तरफ गये होंगे, उसी तरफ पुजारियों को ख्याल आया होगा कि परमात्मा तो यहां भी है! ऐसी कौन-सी जगह है जहां परमात्मा नहीं है? यही काबा के हटने का अर्थ है। तो फिर उन्होंने पहले पूरब कर दिये होंगे, फिर दक्षिण कर दिये होंगे और फिर उत्तर कर दिये होंगे--और सब दिशाओं में करके उन्होंने बार-बार सोचा होगा कि नानक ने शर्त यह रखी है कि मेरे पैर उस तरफ कर दो जहां परमात्मा नहीं है। हर तरफ पैर करके उनको संदेह पैदा हुआ होगा कि परमात्मा तो यहां भी है; यह बात भी ठीक नहीं है। नानक के पैर उस तरफ करने नहीं हैं, जहां परमात्मा न हो। क्योंकि ऐसी कौन-सी जगह है जहां परमात्मा नहीं?

परमात्मा सब दिशाओं में है। सब दिशाएं उसकी हैं। सारा अस्तित्व उसका है। वह अस्तित्व में सब तरफ डूबा है, हर तरफ डूबा है। वही पत्थर है, वही नदी है, वही वृक्ष है, वही पशु-पक्षी है, वही चांद-तारा है। सब तरफ काबा है। कहां करोगे पैर?

नानक ने कहा: अब तुम्हीं सोचो। आखिर मुझ गरीब को सोना भी पड़ेगा कि नहीं? कहीं तो पैर करूंगा? तो काबा की तरफ करूं कि काबा की तरफ न करूं, क्या फर्क होता है? पैर तो परमात्मा की तरफ ही होंगे। फिर पैर भी तो उसी के हैं। फिर पैर के भीतर भी तो वही विराजमान है। तो अड़चन क्या है? नाराजगी क्या है?

मीरा कहती है: 'उमड़-घुमड़ चहुं दिसि से आये'! वह चारों दिशाओं से आता है। वह सब तरफ से आता है। तुम भर खाली हो जाओ। तुम भर शून्य हो जाओ। तुम भर रिक्त हो जाओ। इसी तरह तो सावन के बादल भी आते हैं।

तुम वैज्ञानिक से पूछो: बादल क्यों उमड़-घुमड़ कर आते हैं? तो वैज्ञानिक

कहता है कि गर्मी में जब धूप पड़ती है सघन, सूरज तपता है अग्नि की तरह, तो जहां-जहां सूरज बहुत गहन अग्नि की तरह बरसता है, वहां-वहां वायु विरल हो जाती है। ताप के कारण वायु विरल हो जाती है, फैल जाती है। ताप को सह नहीं पाती और भाग खड़ी होती है। तो वह जहां-जहां से वायु भाग खड़ी होती है, वहां-वहां गड्ढे हो जाते हैं। वायु में गड्ढे हो जाते हैं। जैसे पृथ्वी में गड्ढे होकर झील बनती है, ऐसे वायु में गड्ढे हो जाते हैं। और उन गड्ढों को भरने के लिए बादल चारों तरफ से भागने लगते हैं। बादल भी भागते हैं गड्ढों की तरफ।

और परमात्मा के बादल भी तभी भागते हैं जब तुम्हारे भीतर ध्यान का गड्ढा हो, प्रार्थना का गड्ढा हो। जब तुम इतने विरल हो जाओ कि यह पत्थर जैसा सख्त तुम्हारा अहंकार, छितर-बितर हो जाए!

'उमड़-घुमड़ चहुं दिसि से आये,
दामण दमक झर लावन की।'

खूब बिजली चमकती है...। 'दामण दमक झर लावन की।' और पानी से भरी हुई बदली करीब आती है। और खूब बिजली चमकती है।

ठीक ऐसी ही घटना भीतर भी घटती है। इसलिए यह प्रतीक मीरा ने खूब प्यारा चुना है। परमात्मा के बादल जब तुम्हारे भीतर आते हैं तो खूब बिजली चमकती है। खूब रोशनी होती है! उसी रोशनी की चर्चा तो संतों ने की है। कबीर ने कहा है: जैसे हजार-हजार सूरज एक साथ आ गये हों, ऐसी रोशनी हो जाती है। भीतर आलोक ही आलोक फैल जाता है। आलोक के झरने बह जाते हैं। आलोक के फव्वारे फूट उठते हैं। रोआं-रोआं भीतर आलोक से भर जाता है, कोना-कोना आलोक से भर जाता है। सब अंधकार भीतर मिट जाता है।

इस बिजली के चमकने की अलग-अलग तरह से कथाएं हैं। अलग-अलग परंपराएं अलग-अलग ढंग से इस बात को कहती हैं। लेकिन सभी इस बात को कहती हैं, कि भीतर परमात्मा के आने के पूर्व खूब रोशनी हो जाती है। जैसे रोशनी परमात्मा के रास्ते को साफ करती है! जैसे उसे आने के लिए रास्ता बनाती है! जैसे रोशनी के पीछे-पीछे परमात्मा चला आता है!

बादल भी बिना बिजली के नहीं बरसते। अगर तुम वैज्ञानिक से पूछोगे तो वैज्ञानिक कहता है: बिजली के बिना पानी बन नहीं सकता। पानी बनता ही बिजली की मौजूदगी में है। बिजली की मौजूदगी केटेलिटिक एजेंट है। बनता तो है पानी हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के मिलने से। लेकिन दोनों का मिलन तभी होता है जब बिजली मौजूद हो। अगर बिजली मौजूद न हो तो मिलन नहीं होता। उतना उत्ताप चाहिए बिजली का। उसी उत्ताप में, उसी उत्ताप की मौजूदगी में ऑक्सिजन और हाइड्रोजन मिल जाते हैं और पानी बन जाता है।

शायद वैसी ही कुछ घटना भीतर रस के पैदा होने में भी होती है। उसका विज्ञान अभी खोजा नहीं गया। उसका रसायनशास्त्र किसी ने लिखा नहीं है। लेकिन सारे संत कहते हैं कि उसके आने के पूर्व खूब बिजली चमकती है, खूब रोशनी होती है। फिर ही वह आता है।

तो जरूर परमात्म-अनुभव भी, वह परमात्मा की जो रसधार बहेगी, वह भी, शायद रोशनी के बिना नहीं बह सकती। शायद रोशनी रास्ता बनाती है। रोशनी केटेलिटिक एजेंट का काम करती है। रोशनी की उपस्थिति में तुम्हारे भीतर जो बिखरे हुए तत्त्व पड़े हैं, वे संगृहीत हो जाते हैं, एक हो जाते हैं। तुम्हारे भीतर एकता का जन्म हो जाता है। शायद उसी एकता में परमात्मा बरस सकता है। उस एकता के बिना परमात्मा नहीं बरस सकता।

तो दो तत्त्व मिले। एक कि तुम शून्य हो जाओ, दूसरा कि शून्य में तुम एक हो जाओ। ये दो तत्त्व पूरे हो जाएं तो भक्त और भगवान में फिर कोई दूरी नहीं रह जाती। भक्त भगवान हो जाता है।

इन दोनों तत्त्वों को स्मरण रखो। पहला कि शून्य हो जाओ। और जब तुम शून्य हो जाओगे तो एक होना बहुत कठिन न रहेगा। शून्य में अपने-आप एक का आविर्भाव हो जाता है, क्योंकि शून्य में खंड नहीं हो सकते, शून्य के टुकड़े नहीं हो सकते। तुम अगर दो शून्यों को पास रखो तो एक शून्य बनेगा, जल्दी ही एक शून्य बन जाएगा। दो शून्यों को दूर रखने वाली कोई सीमा नहीं है। तुम पचास शून्य रखो, वे भी एक हो जाएंगे। इसलिए तो गणित में तुम एक शून्य, दो शून्य, तीन शून्य, कितने ही शून्य जोड़ो, एक ही शून्य बनता है। दस शून्य जोड़ने से दस शून्य नहीं बनते, एक शून्य बनता है। शून्य का एकता स्वभाव है।

तो पहले शून्य हो जाओ—निर-अहंकार! और फिर तुम अचानक पाओगे, तुम्हारे भीतर एक तत्त्व का उदय हुआ। तुम्हारे भीतर एकता सधी। इस एकता का ही पूरा शास्त्र योग है। योग यानी जुड़ जाओ, एक हो जाओ। भक्ति का सारा जोड़ है: शून्य हो जाओ। योग का सारा जोड़ है: एक हो जाओ। अगर तुम शून्य हो जाओ तो एक हो जाओगे। अगर तुम एक हो जाओ तो शून्य हो जाओगे। ये एक ही घटना को दो तरफ से पकड़ने के उपाय हैं।

भक्त कहता है: शून्य हो जाओ, पूर्ण उतरेगा। योग कहता है: तुम एक हो जाओ, तो तुम पूर्ण हो जाओगे। मगर ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

कसक बढ़-बढ़ के दर्दे दिल का दरमा होती जाती है
खिजा आखिर मेरी रश्के बहारां होती जाती है
जहां में जब से अपने-आप को मैंने मिटाया है
यहां हर शै खुशी का मेरी सामां होती जाती है
तेरी चश्मे करम की बिजलियों की मेहरबानी से
जरा-सी खाक इश्के मेहरे ताबां होती जाती है

जहां का जर्रा-जर्रा नूरे जल्वा से चमक उठा है
जमीं खुर्शीद से बढ़ कर दरक्शां होती जाती है ।
कसक बढ़-बढ़ के दर्दे दिल का दरमां होती जाती है
खिजां आखिर मेरी रश्के बहारां होती जाती है ।

दर्द बढ़ते-बढ़ते ही दवा हो जाता है । पीड़ा बढ़ते ही बढ़ते एक ऐसी घड़ी आ जाती है कि उसी पीड़ा में तुम डूब जाते हो और मिट जाते हो । वही इलाज है । तुम्हारा मिट जाना तुम्हारा इलाज है । और फिर...खिजां आखिर मेरी रश्के बहारां होती जाती है । फिर तुम्हारा पतझड़ वसंत में रूपांतरित होने लगता है । फिर गये उमस और धूप के दिन । झुक आई बदरिया सावन की !

जहां में जब से अपने-आप को मैंने मिटाया है

ख्याल रखना, तुम्हारे मिटने में ही सारा राज है । तुम मिटो तो परमात्मा हो जाए । तुम रहो तो परमात्मा मिटा रहेगा । दो में से एक ही हो सकता है । तुम भी और परमात्मा भी, ऐसा नहीं हो सकता । या तुम या परमात्मा ।

जहां में जब से अपने-आप को मैंने मिटाया है,
यहां हर शै खुशी का मेरी सामां होती जाती है ।

तो फिर हर घटना, हर घड़ी आनंद का आधार बनती जाती है । मिटो भर... फिर आनंद ही आनंद है ।

तेरी चश्मे करम की बिजलियों को मेहरबानी से...और तेरी अनुकंपा की जो बिजलियां मुझ पर कौंध रही हैं, तेरी कृपा की जो बिजलियां मुझ पर कौंध रही हैं...

तेरी चश्मे करम की बिजलियों की मेहरबानी से,
जरा-सी खाक इश्के मेहरे ताबां होती जाती है ।

यह प्रेम की जो छोटी-सी धूल मैं तेरे चरणों में चढ़ाने को ले आया था, इस धूल का कण-कण ऐसी रोशनी से भर गया है कि जैसे सूरज बन गया हो । यह तेरी कृपा की बिजलियों का ही परिणाम है ।

जहां का जर्रा-जर्रा नूरे जलवा से चमक उठा

और जब तक तुम न चमक उठोगे नूरे-जल्वे से, जब तक तुम्हारे भीतर परमात्मा का नूर पूरा प्रगट न होगा, तब तक तुम्हें उसका नूर बाहर भी दिखायी न पड़ेगा । तुम वही देख सकते हो, जो तुम हो । तुम अपने से ज्यादा को नहीं देख सकते हो । तुम अपने से प्यार को नहीं देख सकते हो ।

दृष्टि उतना ही देख सकती है, जितनी दृष्टि की क्षमता है । जो तुमने भीतर देखा है, वही तुम बाहर देख सकते हो । जो तुमने भीतर नहीं देखा है, उसे तुम बाहर भी न देख सकोगे । इसलिए तो चोर, चारों तरफ चोर को देखता है । बेईमान बेईमानों को देखता है । ईमानदार को बेईमानी नहीं दिखाई पड़ती । और अगर ईमानदार को बेईमानी दिखाई पड़ती हो तो समझ लेना अभी ईमानदारी ऊपर-ऊपर

है, भीतर नहीं गयी ।

भक्त को तो सब तरफ भगवान दिखाई पड़ता है । चोर कैसे दिखाई पड़ेगा ! बेईमान कैसे दिखाई पड़ेगा ! जिस दिन तुम्हें भीतर अनुभव हो जाएगा...वही तो तुम्हारे बाहर फैलने लगता है ।

जहां का जर्रा-जर्रा नूरे जल्वा से चमक उठा

एक बार भीतर रोशनी हो जाए, तो फिर सब तरफ रोशनी पड़ने लगती है ।

जमीं खुर्शीद से बढ़कर दरक्शां होती जाती है

और फिर तो यह साधारण-सी पत्थर मिट्टी की बनी जमीन चांद से भी ज्यादा सुंदर होने लगती है ।

सब तरफ सौंदर्य है । अगम सौंदर्य है, अपार सौंदर्य है ! लेकिन तुम्हारे पास सौंदर्य को देखने की आंख नहीं है, रोशनी नहीं है ।

'उमड़-घुमड़ चहुं दिसि से आये,
दामण दमक झर लावन की ।
नन्हीं-नन्हीं बुंदिया मेहा बरसे ।'

और परमात्मा जब बरसता है तो नन्हीं-नन्हीं बूंदों में, कि तुम्हें जरा भी चोट न हो । फुहार की तरह बरसता है । 'नन्हीं-नन्हीं बुंदिया मेहा बरसे'... मेह की तरह बरसता है । ऐसी भयंकर जलधार नहीं लग जाती । तुम जितना पचा सको उतना बरसता है ।

तुमने देखा ? जीवन की यही व्यवस्था है । छोटा बच्चा सिर्फ दूध पचा सकता है, तो परमात्मा उसके लिये दूध बनकर आता है मां के स्तन से । जैसे-जैसे बच्चा ज्यादा पचाने लगेगा वैसे-वैसे मां के स्तन का दूध विदा होने लगेगा । जिस दिन बच्चा भोजन को पचाने में समर्थ हो जाएगा, दूध विलीन हो जाएगा । अब बच्चा दूध से बंधा रहे, इसकी आवश्यकता नहीं है ।

तो पहले तो परमात्मा बूंदों की तरह बरसता है । जब तुम उतनी बूंदें पचा लेते हो, तब और बड़ी धार आती है । जब तुम और बड़ी धार पचा लेते हो, तब सागर की तरह तुम पर बरसता है । परमात्मा की अनुकंपा प्रतिपल मौजूद है । तुम जितना पचा सकते हो उतना ही तुम्हें मिलता है । इसलिए परमात्मा को खोजने की बजाय अपनी पाचन-शक्ति को बढ़ाना जरूरी है ।

लोग कहते हैं, परमात्मा कहां है ? यह ऐसे ही है कि जैसे तुम कहो कि सूरज कहां है, और सूरज के सामने खोलकर खड़े हो जाओ तो आंखें अंधी हो जाएं । पचाने की क्षमता...कितनी है तुम्हारी पचाने की क्षमता ? जितने तुम खाली हो, उतनी पचाने की क्षमता है । अगर तुम परम शून्य हो गये तो पूरे परमात्मा को पचा लेने की क्षमता है ।

'नन्हीं-नन्हीं बुंदिया मेहा बरसे,
सीतल पवन सोहावन की।'

बादल भी बरस रहा है—छोटी-छोटी बूंदों में फुहार की तरह। और ठंडी हवा बहने लगी है।

जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर हरियाली आएगी वैसे-वैसे शीतल हवा भी आएगी। असल में तुम जब हरे हो जाते हो, तो जो भी तुम्हें छूता है वह शीतल हो जाता है। यह शीतलता बाहर से नहीं आती—तुम्हारी हरियाली का परिणाम है। चूंकि तुम तप्त हो और जल रहे हो और नरक लिए चल रहे हो और सब तरह की आग तुम्हारे भीतर है...इसलिए जो भी तुम्हें छूता है, वह भी तप्त मालूम होता है, उष्ण मालूम होता है।

तुमने कहानी सुनी है कि नर्क में भयंकर आग जल रही है। और लोग उस आग में फेंके जा रहे हैं। तुमने अगर इसे ठीक से समझा तो तुम पाओगे, यह तुम्हारी दशा अभी है।

लोग सोचते हैं : मरने के बाद अगर पाप किये तो नर्क जाएंगे, लेकिन प्रत्येक पाप तुम्हारे भीतर नर्क पैदा कर देता है। बुद्ध ने कहा है कि आदमी का मकान प्रतिपल जल रहा है। तुम लपटों से घिरे हो, बुद्ध लोगों से कहते थे। जो उनके पास आता, वे कहते : पागल ! तेरा मकान लपटों से घिरा है !

और बुद्ध ने कहा : तीन तरह की लपटें हैं। एक तो तृष्णा की लपट है—कि जो मेरे पास नहीं है, वह मेरे पास हो। जो मेरे पास अभी नहीं है, वह कल मेरे पास हो। दूसरी लपट, क्रोध की लपट है। जब तुम्हारी तृष्णा को कोई पूरी नहीं होने देता और बाधा डालता है तो क्रोध पैदा होता है। तुम धन कमाने जा रहे हो, किसी ने बाधा डाल दी, किसी ने अड़ंगा लगा दिया, क्योंकि दूसरे लोग भी धन कमाने निकले हैं, तुम अकेले ही नहीं निकले हो। तो प्रतियोगी जितने कम हो जाएं, उतना ही अच्छा। क्योंकि धन सीमित है और आकांक्षी बहुत हैं। तो तुम जब जाओगे धन कमाने तो तुम्हें जगह-जगह बाधाएं मिलेंगी। जगह-जगह लोगों ने रास्ता रोक रखा है। जगह-जगह लोग बंदूकें लिए खड़े हैं। वे कहते हैं : लौट जाओ, अपना भला चाहते हो तो बस आगे मत बढ़ो अब। यहीं तक बहुत है।

तो जिस व्यक्ति के जीवन में तृष्णा है उसके जीवन में आज नहीं कल क्रोध की लपट भी जलेगी। जब कोई रुकावट डालेगा तो क्रोध पैदा होगा। और अगर रुकावट के पार निकल गये तुम, अगर रुकावटें तुम्हें न रोक पायीं और तुम सफल हो गये धन पाने में, पद पाने में, तो फिर लोभ पैदा होगा। लोभ का मतलब होता है : जो मुझे मिल गया, वह मेरे पास रहे। तृष्णा का अर्थ होता है : जो मेरे पास नहीं, मेरे पास हो। लोभ का अर्थ है : जो मेरे पास है, अब किसी और के पास न जाए। और दोनों के बीच में क्रोध है।

बुद्ध ने कहा : ये तीन अग्नियां हैं, जिनमें हर आदमी जल रहा है। हर आदमी इन तीन लपटों में घिरा है। और इन तीन लपटों से तुम्हारे भीतर अहंकार पैदा होता है।

क्रोध, अहंकार का भोजन है। तृष्णा, अहंकार का फैलाव है। लोभ, अहंकार का पैर जमाकर खड़ा हो जाना है। 'जो मेरा है वह मेरा है, और जो तेरा है वह भी तेरा नहीं रहने दूंगा, उसे भी मेरा करके रहूंगा ! फैलूंगा, घेर लूंगा सारी पृथ्वी को !' इन तीन लपटों में तुम जलते हो तो तीनों लपटों का जो परिणाम है—वह है अहंकार ! और अहंकार नर्क है। बुद्ध ने कहा : अगर ये तीन लपटें बुझ जाएं तो अहंकार भी बुझ जाता है। क्योंकि ये तीन लपटें अहंकार के लिए ईंधन का काम करती हैं।

जो तुम्हारे पास नहीं है, उसे चाहो मत। और जो तुम्हारे पास है, उस पर मालकियत मत रखो। प्रभु की कृपा कि तुम्हारे पास है और जब लेना चाहे ले ले ! जिसने दिया है वह वापिस ले ले, तो तुम अड़चन मत डालो।

और, लोग अगर दौड़ रहे हैं धन पाने को और तुम्हारे मार्ग में बाधा डाल देते हैं, तो क्रोध मत करो। क्योंकि तुम भी उनके मार्ग में बाधा डाल रहे हो। तुम्हें मार्ग में पाकर ही तो वे हटा रहे हैं। तो उन जगहों से हट जाओ, जहां क्रोध पैदा होता हो।

लोभ, क्रोध और वासना—ये तीनों अगर न हों तो तुम्हारा अहंकार बुझ जाएगा। और जहां अहंकार बुझा कि शून्य पैदा हुआ। उसी शून्य में परमात्मा अवतरित होता है। उसी खाली जगह में...! अहंकार जिस सिंहासन पर बिराजा है, उसी सिंहासन पर परमात्मा भी बैठेगा। अहंकार को हटा दो। सिंहासन खाली करो।

'नन्हीं-नन्हीं बुंदिया मेरा बरसे,
सीतल पवन सोहावन की।'

और जब सब शांत हो जाता है भीतर—अहंकार, वासना, तृष्णा, मोह, लोभ, क्रोध—स्वभावतः शीतल हवाएं बहने लगती हैं। सुगंधित हवाएं बहने लगती हैं।

'मीरा के प्रभु गिरिधर नागर,
आनंद मंगल गावन की।'

मीरा कहती है : आ गयी घड़ी ... आनंद मंगल गावन की ! आ गयी घड़ी नाचने की ! आ गयी घड़ी पैर में घुंघरू बांध लेने की ! आ गयी घड़ी, जिसकी प्रतीक्षा थी जन्मों-जन्मों से !

जो इन आंखों ने देखा क्या बताएं
जो गुजरी दिल पे अपनी क्या सुनाएं
फ़लक ने ढाये हम पर जुल्म क्या-क्या

जमीं ने हम पे कीं क्या क्या जफायें
न पूछ ऐ दोस्त रूदादे गमे दिल
तुझे भी साथ अपने क्यों रुलाएं
तमन्नाओं, उम्मीदों, हसरतों के
फिर अब खाबीदा फितने क्यों जगाएं
इसी में मसलहत है चुप रहें हम
जहां में हश्र आखर क्यों उठाएं
इनायत जिसने दर्दे दिल किया है
उसी को देते जाएंगे दुआयें
चमक उठी हैं तेरे नक्शे पा से
जहाने शौक की तारीक राहें
तेरी चश्मे करम की एक झलक से
मिटी हैं आसमां की सब जफाएं
तेरे एक हर्फे ज़ेरे लब से उठें
खलूसे इश्क की सारी वफायें
दमे जां बख्श से तेरे हुई हैं
मुअत्तर दोनों आलम की फिजाएं
रुखे रोशन अम्बवाजे तबस्सुम
मेरी बख्शी गयी हैं सब खताएं
भुला सकते हैं दुनिया की हर इक शै
मुहब्बत को तेरी कैसे भुलाएं !

जब भक्त भगवान के सान्निध्य में आना शुरू होता है तब उसे पता चलता है कि इतने दुख झेले, इतनी पीड़ाएं झेलीं, रास्ते में इतने कांटे चुभे, राह में इतने नरक भोगे—लेकिन सब अब भूले जा सकते हैं। उसकी अनुकंपा की एक बूंद भी उन सब को भुला देने के लिए काफी है।

जो इन आंखों ने देखा क्या बताएं
जो गुजरी दिल पे अपने क्या सुनाएं
फलक ने ढाये हम पर जुल्म क्या क्या
जमीं ने हम पे कीं क्या क्या जफायें
न पूछ ऐ दोस्त रूदादे गमे दिल
तुझे भी साथ अपने क्यों रुलाएं

सब मिट जाता है, जैसे एक दुख-स्वप्न देखा था। उसकी बात भी छेड़ने का मन नहीं रह जाता। भक्त बहुत बार सोचता है कि जब भगवान को मिलेगा तो

करेगा सब शिकायतें। खोलकर रख देगा अपनी पीड़ाओं का चिट्ठा। कहेगा : 'ये तुमने क्यों इतने कष्ट दिये? क्यों इतनी तकलीफें दीं? क्यों ऐसा संसार बनाया? क्यों हमारे मन को ऐसा उपद्रवी रूप दिया? क्यों इतनी वासनाएं भरीं? क्यों?' पूछूंगा...।

स्वभावतः सभी भक्तों के मन में यह भाव होता है कि जिस दिन भगवान मिलेगा, कुछ सवाल तो पूछ ही लेने हैं। ऐसा क्यों किया तूने? क्यों इतना दुख-भरा संसार बनाया? तू तो करुणावान है, फिर तूने इतना दुख-भरा संसार क्यों बनाया? तू तो परम रोशनी है, इतना अंधेरा रास्ते पर क्यों घना किया? क्या है हमारा कसूर? क्या था हमारा कसूर? हमें क्यों दिये ऐसे पाप से भरी हुई वृत्तियों के तूफान? हमारे मन में क्यों ऐसी वृत्तियां पैदा कीं? हमें क्यों इस ढंग से रचा?

लेकिन जब परमात्मा से मिलन होता है तब समझ में आता है—

तमन्नाओं, उम्मीदो, हसरतों के
फिर अब खाबीदा फितने क्यों जगाएं

अब उन खोयी हुई बातों को क्यों उठाना? अब व्यर्थ की बातों का क्यों राग छेड़ना?

इसी में मसहलत है चुप रहें हम
जहां में हश्र आखर क्यों उठाएं

अब बात गयी सो गयी...।

इनायत जिसने दर्दे दिल किया है

उस क्षण तो परमात्मा के मिलन से क्षण में तो सब शिकायतें खो जाती हैं। उस क्षण तो धन्यवाद उठता है।

इनायत जिसने दर्दे दिल किया है
उसी को देते जाएंगे दुआएं

तब शिकायत नहीं उठती, दुआ उठती है। प्रार्थना उठती है, धन्यवाद उठता है।

चमक उठी हैं तेरे नक्शे पा से
जहाने शौक की तारीक राहें

और तेरे पैरों के चिह्न से सब अंधेरे मिट गये हैं। रास्ते रोशन हो गये हैं।

तेरी चश्मेकरम की एक झलक से, तेरी अनुकंपा की एक बिजली कौंधी...मिटी हैं आसमां की सब जफ़ाएं। सब दुख-दर्द मिट गये, सब पीड़ाएं मिट गयीं, सब नर्क समाप्त हो गये। वह जो देखा था, एक दुख-स्वप्न था, असलियत न थी।

भुला सकते हैं दुनिया की हर इक शै
मुहब्बत को तेरी कैसे भुलाएं

वह सब भूल गया। वह सब समाप्त हो गया।

ऐसा कभी-कभी तुम्हारे सामान्य जीवन में भी घटता है। अगर कोई स्त्री अपने

प्रेमी की राह देख रही है तो हजार शिकायतें करती है मन में, कि इस बार आओ, तो यह कहूं, यह कहूं, यह कहूं,...कितना रुलाया है, कितना सताया है, कितना गम दिया! इस बार आओ तो मुंह से बोलूंगी भी नहीं। और जब प्रेमी आता है तो नाचने लगती है। तो भूल जाती है। वह जो सब हुआ था, गया। उसकी बात भी छेड़ने जैसी नहीं लगती। इस शुभ घड़ी में, इस मंगल घड़ी में, इस गीत गाने की घड़ी में, उन कांटों की बात बेहूदी लगती है, उठाने जैसी नहीं लगती। यह एक झलक प्रेमी की—और सब दुख समाप्त हो गये!

यह तो साधारण प्रेम में हो जाता है। तो तुम उस परम प्रेम की कल्पना कर सकते हो। याद ही नहीं पड़ता कि कभी दुख उठाये थे। याद ही नहीं आता कि कभी अंधेरा था। याद ही नहीं आता कि कभी चिंताओं ने घेरा था। याद ही नहीं आता कि कभी रास्ते पर नर्क भी मिले थे। याद ही नहीं आता।...भरोसा भी नहीं होता कि ऐसा कभी हुआ था। वह जरा-सी रोशनी उसकी, उसकी छोटी-से-छोटी पड़ी हुई बूंद, तृप्त कर जाती है। आनंद मंगल गावन की! घड़ी आ गयी!

'राणाजी, मैं सांवरे रंग रांची।'

उस घड़ी के लिए ही मीरा कहती है: 'राणाजी, मैं सांवरे रंग रांची।'

मैं तो उस सांवरे के रंग में रंग गयी, मैं तो सांवरी हो गयी। मैं तो उसी जैसी हो गयी। मैं तो वही हो गयी।

यह परिवार को संबोधन है। यह उसके देवर को संबोधन है—मीरा के। मीरा के देवर को अड़चन थी। पूरे परिवार को अड़चन थी। देवर तो चूंकि गद्दी पर बैठा था, इसलिए सबसे ज्यादा अड़चन उसे थी। मीरा का गांव-गांव भटकना, जंगल-जंगल भटकना, सब लोकलाज खोकर रास्तों पर नाचना, साधु-संगति में बैठना! राज-घर की महिला ऐसे रास्तों पर घूमे...तो परिवार परेशान था। परिवार चाहता था घर में आ जाए, घर में रहे। यहां जो करना हो करे। लेकिन जो एक बार पिंजड़े से उड़ गया वह पिंजड़े में नहीं लौटना चाहता। जिसे खुला आकाश मिल गया, अब वह क्या फिकर करे? हालांकि पिंजड़ा सोने का था, मगर पिंजड़ा पिंजड़ा है, सोने का हो कि लोहे का हो। पिंजड़े पर हीरे-जवाहरात जड़े थे, यह सब सच है। मीरा कभी राजमहलों से नीचे न उतरी थी और फिर नंगे पैरों, धूल-भरे रास्तों पर भटकने लगी और जगह-जगह अपनी वीणा लेकर गीत गाने लगी। तो राणा बार-बार खबर भेजता है: अब भी लौट आओ, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। हम क्षमा कर देंगे।

मीरा कहती है: 'राणाजी, मैं सांवरे रंग रांची।' अब लौटना नहीं हो सकता। लौटनेवाला बचा नहीं अब। जो लौट सकता था, वह खो गया अब। अब तो सांवरिया बचा है। अब तो सांवरिया ही है, मैं नहीं हूं। अब तुम्हें मैं दिखायी

पड़ती हूं, वह तुम्हारी भ्रांति है। मैंने तो अपने भीतर सब तरफ खोजकर देख लिया कि मैं नहीं हूं। अब वही है। अब वही विराजमान है। अब वही मुझमें जी रहा है। वही श्वास लेता है। अब वही देखता है। अब वही चलता और नाचता है। मैं करूं भी तो क्या करूं, राणाजी?

'राणाजी, मैं सांवरे रंग रांची।' मैं तो रच गयी, पच गयी। अब उस जगह आ गयी जहां से लौटना हो ही नहीं सकता।

कुछ जगहें होती हैं, जहां से लौटना नहीं हो सकता। जैसे कोई मर गया। अब यह जगह आ गयी, अब यहां से लौटना नहीं हो सकता। अब लाख पुकारो, अब लाख कहो कि लौट आओ भाई, थोड़ी देर सही, घड़ीभर को बोल लो, चाल लो, और...। मगर अब जो मर गया सो मर गया। लेकिन कभी-कभी, कहते हैं, मुर्दा लौट आते हैं। शायद ठीक से मरे नहीं होंगे। अधूरे मरे होंगे और तुमने जल्दी मान लिया।...लोग तो बड़ी जल्दी में हैं। फुर्सत किसको है ज्यादा फिकर करने की! इधर सांस अटकी ही होगी कि तुमने मान लिया कि मर गये। तुम छाती पीटने को तैयार ही थे, पीटने लगे। कभी-कभी मुर्दे लौट आते हैं।

मगर, सांवरिया के रंग में जो रच गया, वह कभी नहीं लौटा है। तो वे मुर्दे शायद लौट भी आएं कभी, शायद चिकित्सा-शास्त्र थोड़ा उपाय करे, पंप वगैरह चलाये और हृदय में धड़कन मारे और किसी तरह धक्का-धुक्की करे, थोड़ी देर को आदमी घबड़ाहट में आंख खोल दे कि भई इत्ता परेशान कर रहे हो...! शायद कुछ देर और जिंदा रह जाए।

ऐसे ही मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मरी। जब उसके ताबूत को निकालने लगे तो रास्ता आंगन में थोड़ा कम था, संकरा था। एक वृक्ष आंगन में था बीच में, उससे ताबूत टकरा गया। ताबूत टकरा गया तो पत्नी ने अंदर से आवाज दी कि मैं तो अभी जिंदा हूं। ताबूत खोला गया, पत्नी को वापिस लाया गया। तीन साल पत्नी जिंदा रही। फिर तीन साल बाद मरी। जब फिर ताबूत उठाने लगे तो मुल्ला ने कहा: भाइयो, जरा सम्हालकर, जरा झाड़ से बचाना। तुम्हारी जरा-सी भूल... फिर भुगतना तो तीन साल हमको पड़ा। जरा बचाकर, जरा सावधानी से!

कभी-कभी मुर्दा लौट आते हैं। ताबूत टकरा गया। मरी न होगी पत्नी। मुल्ला ने जल्दी कर ली। मुल्ला सोच रहा होगा कि कब मरे, कब्र मरे...। भरोसा कर लिया कि मर गयी। जिंदा ही रही होगी, सुस्त पड़ी होगी, कि जरा बेहोश हो गयी होगी।

तो मरे हुए तो कभी-कभी लौट आते हैं। लेकिन जो सांवरे के रंग में रच गया वह कभी नहीं लौटता। वह महामृत्यु है। साधारण मृत्यु में तो देह ही मरती है, भीतर तो आत्मा रहती है। लौटना हो सकता है। अगर देह फिर से व्यवस्थित कर दी जाए तो फिर आत्मा इस देह में रहने के लिए थोड़े दिन के लिए राजी हो सकती

है। देह से संबंध टूट गया है आत्मा का, संबंध जोड़ दिया जाए तो शायद ... आत्मा फिर टिक जाए। अक्सर हृदय गति से जो मरते हैं, अगर छह सैकंड के भीतर सहायता पहुंचायी जा सके तो वे पुनरुज्जीवित हो सकते हैं। रूस में कोई आठ-दस आदमी इस तरह पुनरुज्जीवित हुए हैं। और वे अभी जिंदा हैं। छह सैकंड के भीतर। छह सैकंड के बाद मुश्किल हो जाता है। छह सैकंड गुजर जाने के बाद मस्तिष्क के तंतु टूटने शुरू हो जाते हैं। फिर आदमी लौट भी आए तो पागल होगा। क्योंकि सूक्ष्म तंतु टूट जाते हैं। इससे ज्यादा देर नहीं जी सकते। मस्तिष्क के तंतुओं को प्रतिपल ऑक्सिजन मिलनी चाहिए। छह सैकंड तक ऑक्सिजन न मिले तो वे शून्य हो जाते हैं। फिर उनको पुनरुज्जीवित नहीं किया जा सकता। शरीर लौट भी आए तो आदमी का मस्तिष्क खराब लौटेगा। लेकिन छह सैकंड के भीतर अगर हृदय की धड़कन फिर से पैदा की जा सके, जो कि की जा सकती है, तो शायद आदमी कुछ दिन और जी जाए, कुछ वर्ष जी जाए।

मगर भक्ति महामृत्यु है। भक्त तो परमात्मा को पाता ही तब है जब अहंकार मर जाता है। और अहंकार की मृत्यु असली मृत्यु है। क्योंकि फिर दुबारा जन्म नहीं होता।

यह शरीर तो मरेगा, फिर जन्मेगा। अगर चिकित्सक न पैदा कर पाए, इसी शरीर को फिर से ठीक न कर पाए, तो नया शरीर लेगा। अभी वासना जिंदा है। अभी शरीर को पकड़ने का आग्रह जिंदा है। किसी नये गर्भ में प्रवेश करेगा। फिर कष्ट झेलेगा नौ महीने गर्भ के। फिर नौ महीने गर्भ की गंदगी झेलेगा। फिर यही यात्रा शुरू हो जाएगी। फिर यही पागलपन। फिर यही दौड़। यही संसार ... !

लेकिन जिसका अहंकार समाप्त हो गया, वह दुबारा किसी गर्भ में प्रविष्ट नहीं होगा। वह बात खतम हो गयी। उसका तो महामरण हो गया। वह आत्यंतिक रूप से समाप्त हो गया।

वहीं मीरा कहती है: राणाजी! तुम व्यर्थ की खबरें मुझे मत भेजो। मेरे आने का उपाय नहीं क्योंकि मैं बची नहीं। बची होती तो जरूर आ गयी होती।

'मैं सांवरे रंग राची'। उसका रंग मुझे पूरी तरह रंग गया है।

'सज सिंगार पद बांध घूंघरू, लोकलाज तजि नाची।'

इसीलिए तो नाच सकी--लोकलाज तजकर। क्योंकि जिसे लोकलाज की चिंता होती थी, वह अहंकार बचा नहीं। जब तुम लोकलाज की फिकर करते हो, तो क्या फिकर करते हो? अहंकार की ही फिकर है कि लोग क्या कहेंगे? अगर मैं ऐसा नाचा तो लोग क्या कहेंगे? बदनामी होगी। लोग कहेंगे: विक्षिप्त हो कि पागल हो? होश गंवा दिया। भले-चंगे थे, यह तुम्हें क्या हो गया?

लोग क्या कहेंगे, यह विचार ही अहंकार का है। लोकलाज, अहंकार को पोषण देना है।

मीरा कहती है: अब बड़ी मुश्किल है राणाजी! 'सज सिंगार पद बांध घुंघरू'। अब तो मैंने शृंगार उसके लिए सजा लिया। अब तो मैं उसकी हो गयी और अब किसी और की नहीं हो सकती। अब न परिवार की हो सकती हूं, न प्रियजनों की हो सकती हूं, अब उसकी हो गयी। अब एकांतत: उसकी हो गयी। यह शृंगार अब उसके लिए है; अब किसी और के लिए नहीं हो सकता।

'सज सिंगार पद बांध घूंघरू...।' और ये जो घुंघरू मैंने पैरों में बांध लिए, ऐसे ही नहीं बांध लिए। आनंद मंगल गावन की घड़ी आ गयी। मैं क्या करूं? यह मेरे बस के बाहर है। ये मैंने चेष्टा करके घुंघरू पैरों में नहीं बांध लिए हैं। मैं कोई नर्तकी नहीं हूं। यह घुंघरू वही बांध गया है। ये घुंघरू उसी ने ही बांध दिये हैं। इतना आनंद बरसा है, अब न नाचूं तो करूं क्या? अब सम्हालूं कैसे? जैसे शराब पीकर शराबी डांवांडोल होने लगता है; राह पर चलता है, कहीं पैर रखता है, कहीं पैर पड़ते हैं--ऐसी मेरी हालत है। उसको पी लेने के बाद अब पैर इस ढंग से पड़ते हैं कि नृत्य बन जाता है। यह मैं कुछ नृत्य कर नहीं रही हूं। तुम नाराज न होओ। तुम यह मत सोचो कि यह मीरा क्यों नाचने लगी रास्तों पर? वह नचा रहा है। वही नाच रहा है। वही मेरे भीतर प्रविष्ट हो गया है।

'सज सिंगार पद बांध घूंघरू, लोकलाज तजि नाची।'

इसलिए लोकलाज छोड़ सकी, क्योंकि जिसको लोकलाज थी राणाजी, वह रहा नहीं। वह मर चुका। तुम किसे खबरें भेज रहे हो?

यही तो बुद्ध ने अपने पिता को कहा था, जब बारह वर्ष बाद लौटे। पिता नाराज थे। और पिता ने कहा: तू मुझे बुढ़ापे में छोड़कर भाग गया, तुझे शरम भी न आयी? क्षत्रिय होकर? और मैं बूढ़ा और तू मेरा अकेला बेटा और यह सारा राज्य तेरे लिए! और अब मैं थक गया हूं, चल भी नहीं सकता हूं, उठ भी नहीं सकता हूं, आंख से ठीक देख भी नहीं सकता... और यह सारा बोझ मुझे ढोना पड़ रहा है। यह समय मुझे सहायता देने का था, मेरे हाथ की लकड़ी बनने का था। मैं तुझे अभी भी क्षमा कर सकता हूं, मेरे भीतर हृदय है पिता का। तू घर वापिस लौट आ।

बुद्ध चुपचाप सुनते रहे पिता की नाराजगी। तब बुद्ध ने कहा: आप जरा गौर से तो देखें! जो आपका घर छोड़कर गया था, वही नहीं लौटा है। यह दूसरा ही व्यक्ति है।

बुद्ध के पिता नहीं समझ पाए। वे तो और नाराज हो गये। उन्होंने कहा: तू मुझे समझाने चला है? तू मुझे धोखा दे रहा है? मैं अपने बेटे को, और नहीं पहचानूंगा? मेरा खून तेरे खून में, मेरी हड्डी तेरी हड्डी में। मैंने तुझे पाला-पोसा, बड़ा किया। मैं तुझे नहीं पहचानूंगा कि तू मेरा बेटा है?

बुद्ध ने कहा: आप मेरी बात समझ नहीं रहे। जो गया था, वही नहीं लौटा

है। देह वही है, भीतर सब बदल गया है। आप जरा गौर से देखें ! आप जरा फिर से गौर से देखें ! पक्षपात छोड़ दें। यह ख्याल छोड़ दें कि मैं आपका बेटा हूं। जरा गौर से देखें ! यह वही चेहरा है ? हां, रंग-रूप वही है। आभा वही है ? यह मेरी आंखों में झांकें। ये आंखें वही हैं, लेकिन आंखों में जो आज झलक रहा है यह वही है ? मुझे फिर से देखें। मैं शपथ खाकर कहता हूं कि जो गया था, वह मर चुका है। मैं दूसरा ही व्यक्ति हूं।

बुद्ध ठीक कह रहे हैं। बुद्ध के पिता भी ठीक कह रहे हैं। दो अलग दुनियाओं की बात--जहां भाषाएं रूपांतरित नहीं हो पातीं, जहां भाषाएं एक-दूसरे के विपरीत खड़ी हो जाती हैं। बुद्ध के पिता देह की भाषा बोल रहे हैं। बुद्ध आत्मा की भाषा बोल रहे हैं।

वही मीरा कह रही है : लोक-लाज छोड़कर नाच सकी, राणाजी ! क्योंकि जो तुम्हारे घर से गयी थी, मैं वही नहीं हूं। मैं सांवरे रंग राची !

'गई कुमति लहि साधु संगति...।' वह जो तुम्हारे घर को छोड़कर गयी थी वह कुमति से भरी थी। अब मैं सुमति हो गयी हूं। यह सुमति साधु की संगति में घटी। यह दीवानों के पास बैठ-बैठकर घटी। इन प्रभु के प्यारों के पास बैठ-बैठकर घटी।

'गई कुमति लहि साधु संगति, भक्ति रूप भई सांची।'

और भक्तों के पास बैठ-बैठकर भक्ति का रूप सच्चा हो गया।

सांसारिकों के पास बैठे रहोगे--वही चर्चा...वही मशविरा सुनोगे--तो संसार का ही रूप सघन होता जाएगा। कहीं भक्त मिलते हों, चूकना मत। कहीं चार भक्त मिलकर बात करते हों, बैठ जाना। सुनना, उनके साथ डोलना। उनके साथ थोड़ा मस्त होना। उन पर बरस रही है प्रभु की बदरी, शायद उनके पास बैठने से कुछ छींटा-छांटी तुम पर भी हो जाए। उनको प्रभु ने घेरा है, शायद उनके पास बैठकर प्रभु की थोड़ी-सी झलक तुम्हें भी लग जाए। थोड़ी भनक तुम्हें भी पड़ जाए। और थोड़ी भनक काफी है। उसकी एक किरण काफी है, क्योंकि उस किरण के सहारे तुम चढ़ते चले जाओ, तो तुम सूरज तक पहुंच जाओगे।

'गई कुमति लहि साधु संगति, भक्ति रूप भई सांची।'

पहले तो सुना ही सुना था कि भक्ति ऐसी, भक्ति वैसी। साधु की संगति में रूप सघन हुआ।

ख्याल रखना, तुम्हारी संगति तुम्हें निर्माण करती है। तुम जैसों के पास बैठोगे, वैसे हो जाओगे। असल में तुम उन्हीं के पास बैठते हो जैसे तुम होना चाहते हो। तुम खोजते हो उन्हीं को, जैसे तुम होना चाहते हो। अगर तुमको पद पर पहुंचना है, तो तुम राजनेता की संगति करोगे। अगर तुम्हें धन खोजना है, तो तुम धनी की संगति करोगे कि इसके हाथ से शायद नुस्खा कभी लग जाए।

मैंने सुना है, एक भिखमंगा रास्ते पर खड़ा था। बड़ा अकड़ से खड़ा था। भिखमंगों की भी अपनी अकड़ होती है ! एक सेठ पास से गुजरते थे। भिखमंगे ने कहा : 'सुनो सेठ जी ! कुछ मिल जाए !' सेठ ने कहा : 'भले-चंगे हो, मस्त-मुस्तैद ! कुछ कमाते क्यों नहीं ?' और उस भिखारी ने कहा : आपको पता नहीं कि मैं कौन हूं ? मैंने एक किताब लिखी है। मैं एक लेखक हूं।

सेठ भी थोड़ा उत्सुक हुआ कि कौन-सी किताब लिखी है ? उस भिखमंगे ने कहा : मैंने एक किताब लिखी है--'धन कमाने के सौ तरीके'।

सेठ ने कहा : हद हो गई ! तुमने किताब लिखी और भीख मांग रहे हो ?

उसने कहा : यह भी उसमें एक तरीका है। कुछ मिल जाए !

भिखमंगे भी किताबें लिखते हैं--'धन कमाने के सौ तरीके' ! असल में भिखमंगे ही ऐसी किताबें लिखते हैं। जो धन कमा रहे हैं, उनको फुरसत कहां कि धन कमाने के सौ तरीके, यह किताब लिखें !

मैंने एक और घटना सुनी है। अमरीका का एक बहुत बड़ा अरबपति, एन्ड्रू कार्नेगी, एक किताब की दुकान पर गया। सामने ही उसने एक किताब देखी। उठाकर पन्ने पलटे, नयी-नयी छपी थी--'हाऊ टू ग्रो रिच' ? (धनी कैसे हों ?) उसने किताब को ऐसा पलटा-उलटा, रख दिया।

दुकानदार ने कहा : किताब पढ़ने जैसी है। और अगर आप चाहें तो मैं किताब के लेखक से भी मिला दूं। संयोग की बात, लेखक अभी मौजूद हैं, दुकान के भीतर बैठे हैं।

एन्ड्रू कार्नेगी ने कहा कि मैं लेखक को मिलूं, फिर यह किताब खरीद सकता हूं। लेखक को बुलाया। फटे-पुराने कपड़े पहने लेखक हाजिर हुए। एन्ड्रू कार्नेगी हंसने लगा। उसने पूछा : यहां कैसे आए ? लेखक से पूछा : यहां कैसे आए ? बस में आए, ट्रेन में आए, कार में आए, टैक्सी में आए ?

उसने कहा : पैदल आया।

तो एन्ड्रू कार्नेगी ने कहा : धन कमाना हो तो मेरे पास सीखने आना। धन कमाने के लिए किताब लिखी है, और अभी बस में चलने तक की हैसियत नहीं है ? तुम्हारी किताब काम किसके आएगी ?

एन्ड्रू कार्नेगी ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैंने जितनी किताबें पढ़ीं धन कमाने के बाबत, वे उनने लिखी हैं जिनके पास धन था ही नहीं। असल में धन कमाने के बाबत किताबें ही वे लोग लिखते हैं। असल में यह किताब भी धन कमाने का ही एक ढंग है, और कुछ खास मतलब नहीं है। क्योंकि लोग धन कमाना चाहते हैं तो किताब बिक जाती है।

भिखमंगा भी धन कमाने की योजनाएं बनाता रहता है। तो भिखमंगा भी कोशिश करता है कि कहीं से राज मिल जाए।

अगर तुम धन के पीछे दीवाने हो, तो तुम धनी की सेवा में रत रहोगे। अगर पद के पीछे दीवाने हो, तो राजनेता के हाथ-पैर दबाओगे। तुम वहीं जाओगे जो तुम पाना चाहते हो। जिस दिन तुम साधु के पास जाने लगे, उस दिन समझना शुभ घड़ी आई, तुम में प्रभु की प्यास उठी!

'गई कुमति लहि साधु संगति, भक्ति रूप भई सांची।'

और वहीं भक्ति का असली रूप प्रगट होगा। शास्त्रों में नहीं, किताबों में नहीं--भक्तों के पास; जो भक्त हैं। क्योंकि भक्ति कोई सिद्धांत नहीं है--जीवन-चर्या है। एक जीने की शैली है। एक और ही ढंग है जीने का। परमात्मा में जीने की एक प्रक्रिया है। तैरना सीखना हो तो किताब पढ़ने की जरूरत नहीं--कोई तैरना जानता हो, उसके पास जाना। किताबों से कोई तैरना नहीं सीखता; और सीखो तो नदी में मत उतरना। नहीं तो डूबोगे, बुरी तरह डूबोगे! किताबों से तैरना सीखो तो अपनी गद्दी पर ही तैरना। वहीं हाथ-पैर मार लिये, विश्राम कर लिये। नदी में मत जाना भूलकर।

कुछ लोग भगवान को भी किताबों से समझते हैं। चूक हो जाती है। उनका भगवान भी किताबी और कागजी होता है। असली भगवान को सीखना हो तो वहां सीखना, जहां असली भगवान की भनक पड़ गयी हो; जहां कोई भक्त मस्त हो।...

'गाय-गाय हरि के गुण निसदिन, काल-व्याल तें बांची।'

और मीरा कहती है: अब क्या तो करूं फिकर लोकलाज की? काल-व्याल से भी बच गयी! वह जो मौत आने वाली थी, वह भी गयी। अब मरने वाली नहीं हूं। वह मरण तो हो गया। जो मरने वाला था वह मर गया। जो अमृत है, वह मेरे भीतर प्रगट हुआ है। अब किसकी चिंता करनी है! शाश्वत से मेरा संबंध जुड़ गया। शाश्वत से सगाई हो गयी।

'गाय-गाय हरि के गुण निसदिन'...।

और कैसे यह हुआ? यह हुआ प्रभु की प्रशंसा करते-करते, उसकी स्तुति करते-करते। उसका गीत गाते गाते गाते, उसका गीत बैठ गया!

'गाय-गाय हरि के गुण निसदिन, काल-व्याल ते बांची।
उन बिन सब जग खारो लागत...।'

राणाजी! अब सारा जगत खारा है। अब तो और कोई स्वाद जचता नहीं। प्रभु का स्वाद लग गया, प्रभु का रस गया।

'उन बिन सब जग खारो लागत, और बात सब कांची।'

असली हीरा हाथ लग गया, अब और सब कांच है। कच्ची बातें हैं और सब अत तुम्हारे कांच मुझे सोहते नहीं। मैं क्या करूं, मेरी मजबूरी है। मुझे क्षमा करना।

'राणाजी, मैं सांवरे रंग राची।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, भक्ति रसीली जांची।'

दो मार्ग हैं प्रभु तक जाने के। एक तो ध्यान का--सूखा-साखा, मरुस्थल जैसा मार्ग; और एक भक्ति का--रसपूर्ण, रसीला मार्ग--जहां खूब फूल खिलते और पक्षी गीत गाते और वृक्षों की छाया है।

मीरा कहती है: मुझे ध्यान का मार्ग नहीं जचा। रूखा-सूखा था। हृदय का नहीं था। मुझे तो जची बात भक्ति की। भक्ति रसीली जांची!

और जिसको भक्ति का मार्ग जच जाएगा, उसको लोकलाज खोनी पड़ेगी। ध्यानी लोक-लाज बचाकर चल सकता है। किसी को पता भी न चले, इस तरह ध्यान कर सकता है। लेकिन भक्त कैसे बचेगा? पता चल ही जाएगा। नाचोगे तो पता चल ही जाएगा। नाचोगे कैसे छिपाकर? हां, यह हो सकता है कि ध्यानी, रात अपने बिस्तर में बैठकर अपनी आंख बंद करके ध्यान कर ले। चुप बैठा रहे, पत्थर की मूर्ति की तरह। पत्नी को भी पता न चले, जो पास ही सोयी हो। बच्चों को भी पता न चले, घर के लोगों को भी पता न चले। ध्यान तो गुप्त रखा जा सकता है, लेकिन भक्ति गुप्त नहीं रखी जा सकती। भक्ति तो अभिव्यक्त होती है। भक्ति तो नाचती है, गाती है। भक्ति को कैसे रुकाओगे?

तो मीरा कहती है: मुझे तो भक्ति जची। और जची ही नहीं, उससे मैं पहुंच भी गयी। बात भी हो गयी। अब लौटने का तो कोई उपाय नहीं है। और ध्यान का मार्ग मुझे कभी पसंद नहीं आया।

यह बड़ी हैरानी की बात है कि राजस्थान ने बहुत भक्तों को जन्म दिया। शायद इसलिए कि राजस्थान रूखा-सूखा है। वैसे ही रूखे-सूखे में परेशान हो रहे हैं, अब और ध्यान का और रूखा-सूखापन भीतर क्या ले जाएं! बाहर तो जल बरसता ही नहीं, चलो भीतर ही बरस जाए! झुक आई बदरिया सावन की!

राजस्थान ने बड़े भक्त पैदा किये। मीरा और सहजो...ये सारे भक्त राजस्थान में पैदा हुए। और बड़ी अनूठी प्यार की धारा बही!

और ऐसा ही अरब के रेगिस्तान में हुआ, सूफी भक्त पैदा हुए। वे भी रेगिस्तान में थे। और चिन्मय ने एक प्रश्न पूछा है कि--भगवान! अब आप क्यों कच्छ जा रहे हैं?

जाना पड़े...!

'मीरां को प्रभु सांची दासी बनाओ। झूठे धंधों से मेरा फंदा छुड़ाओ।,

सब मिल जाता है भक्त को, फिर भी और-और की प्यास जलती रहती है। भक्ति ऐसा मार्ग है कि सब मिलकर भी प्यास बुझती नहीं, बढ़ती ही चली जाती है। परमात्मा इतना प्यारा है कि कितना भी पा लो तो संतोष कहां? कितना ही मिल जाए, तो भी और मिले।

तो मीरा कहती है:

'राणाजी, मैं सांवरे रंग राची।
सज सिंगार पद बांध घुंघरू, लोकलाज तजि नाची।'

लेकिन इधर प्रभु से यह प्रार्थना करती है, राणाजी को यह कहती है। प्रभु को प्रार्थना करती है : 'मीरां को प्रभु सांची दासी बनाओ।' राणा को तो कह देती है कि प्रभु के प्रेम में रंग गयी, पग गयी, सब हो गया। लेकिन प्रभु को यह नहीं कहती कि सब हो गया। प्रभु को कहती है : सांची दासी बनाओ। और...और करीब लो, और पास लो। सब दूरी मिटाओ।

जरा-सी दूरी भक्त को अखरती है। जरा-सी दूरी अखरती है! इंचभर की दूरी अखरती है। भक्त जब तक भगवान में ही एक न हो जाए, जब तक मिलन परिपूर्ण न हो जाए...और ऐसा मिलन न हो जाए कि क्षणभर को भी विरह पैदा होने की सम्भावना न मिट जाए, तब तक...। और ऐसा कभी नहीं होता। कितना ही करीब आते चले जाओ, भगवान विराट है, महासागर है। तुम सागर में उतर गये, फिर भी तुम पूरे सागर को थोड़े ही अपने बांहों में बांध लोगे? सागर में डूब जाओ, फिर भी सागर विराट है, तुम्हारी बांहें छोटी हैं। तो भक्त मिल भी जाता है, आलिंगन में भी लग जाता है परमात्मा के, लेकिन फिर भी परमात्मा इतना विराट है, उसका ओर-छोर पता नहीं, इसलिए प्यास बनी रहती है।

और यह प्यास भी बड़ी प्यारी है। इसलिए प्रार्थना बनी रहती है।

ध्यानी जब परम ध्यान को उपलब्ध हो जाता है तो ध्यान छूट जाता है, ध्यान की जरूरत नहीं रह जाती। लेकिन भक्त परम भक्ति को उपलब्ध होकर भी प्रार्थना से मुक्त नहीं होता, प्रार्थना जारी रहती है। इस भेद को ख्याल में रख लेना। ध्यान की परम पूर्णता यही है, जब ध्यान छूट जाए।

ध्यान औषधि है। कट गया संसार, कट गया चित्त का विकार, कट गये विचार, हो गये निर्विचार। अब ध्यान की क्या जरूरत? तलवार का काम था, काट डाला। अब तलवार को म्यान में रख दिया, अब निकालने की जरूरत दुबारा न आएगी। तलवार को फेंका भी जा सकता है, सम्हाल कर रखने की भी कोई जरूरत नहीं।

ध्यान एक विधि है। भक्ति विधि नहीं है। भक्ति तो सार-तत्त्व है। ध्यान विधि है। तो जिस दिन विधि का काम पूरा हो गया, उस दिन विधि समाप्त हो गयी, तुम पार हो गये।

तो बुद्ध ने कहा है कि धर्म तो ऐसा है, जैसे नाव। वह ध्यानी का वचन है। नदी उतर गये, नाव बेकार हो गयी। अब थोड़े ही नाव को सिर पर लिये चलना पड़ेगा। जो सिर पर लेकर चले, वह पागल है। लेकिन यह ज्ञानी का वचन है।

भक्त तो नाचता ही रहेगा। तब भी नाचता था जब परमात्मा नहीं मिले थे। तब नाचता था कि मिल जाओ। फिर मिलन हुआ, फिर नाचने लगा कि अब मिल

गये। इसलिए नाचता है। पहले कहता था मिले नहीं, नाचूंगा, रिझाऊंगा, मनाऊंगा। और अब कहता है : मिल गये, अब रुकूं कैसे? अब मिलने के कारण नाचता है।

आनंद मंगल गावन की! घड़ी आ गयी। पहले भगवान नहीं मिले थे, इसलिए प्रार्थना करता था कि मिलो, कब मिलोगे! पुकारता था। अब मिल गये। अब इसलिए प्रार्थना करता है। पहले प्रार्थना में मांग थी, अब प्रार्थना में केवल धन्यवाद है। लेकिन प्रार्थना जारी रहती है।

प्रार्थना विधि नहीं है, उपचार नहीं है—प्रार्थना भक्ति का प्राण है।

ध्यान एक दिन छूट जाएगा। प्रार्थना सदा साथ रहेगी।

इसलिए परमात्मा से कहती है : 'मीरां को प्रभु सांची दासी बनाओ।' कई खोटें अभी हैं, इनको मिटाओ। बड़ी दूरियां हैं अभी भी। भनक तो पड़ गयी। पास भी तुम्हें देख लिया। तुमने मेघ की तरह घेर भी लिया। तुमने बूंदाबांदी भी की। मगर अभी और ... मगर अभी और ...।

... 'झूठे धन्धों से मेरा फंदा छुड़ाओ।' अभी और बहुत धंधे हैं झूठे। अभी यह देह लगी है साथ, यह भी बाधा बनती है।

तुमने कभी किसी को प्रेम से आलिंगन किया हो अगर, तो तुम्हें पता चला होगा कि देह बाधा बनती है। और अगर तुमने केवल वासना से आलिंगन किया होगा, तो तुम्हें कभी पता नहीं चलेगा कि देह बाधा बनती है। वासना में देह साधक है। असल में वासना बिना देह के हो ही न सकेगी। वासना देह पर ही चढ़कर चलती है। लेकिन प्रेम जब तुमने किसी को किया हो और किसी को गले लगाया हो, तब तुम को पता लगेगा कि दूरी रह गयी, क्योंकि यह छाती की हड्डियां रुकावट डाल रही हैं। हृदय तुम्हारा यहां धड़क रहा है, प्रेमी का हृदय वहां धड़क रहा है, ये हड्डियां बीच में खड़ी हैं दीवाल बनकर।

प्रेम में देह बाधा है। वासना में देह साधक है। वासना के लिए देह उपकरण है, प्रेम में बाधा है। तो फिर प्रार्थना का तो क्या कहना! वहां तो जरा-सा भी अस्तित्व अपना—बाधा है।

अभी मीरा है—देह में है। अभी कभी-कभी मन भी लौट आता है। अभी कभी मन खींच लेता है, गिरा देता है। कभी-कभी फिर अंधकार छा जाता है। कभी-कभी बदली बरसती है और कभी-कभी फिर रूखा-सूखा हो जाता है। मन अभी बिलकुल ही समाप्त नहीं हो गया है।

'...झूठे धन्धों से मेरा फंदा छुड़ाओ।
लूटे ही लेत विवेक का डेरा, बुधिबल यदपि करूं बहुतेरा।'

और कुछ ऐसा मन है यह कि सब तरह के उपाय करती हूं, फिर भी लुट जाती हूं। कभी-कभी इसके हाथ लुट जाती हूं। इस ढंग से धोखे देता है।... 'बुधिबल यदपि करूं बहुतेरा।'

बहुत उपाय करती हूं। लेकिन जब तक तुम्हीं इसे न सम्हाल लोगे, तब तक मेरे सम्हाले न सम्हलेगा। 'लूटे ही लेत विवेक का डेरा।' कभी-कभी विवेक खो जाता है, होश खो जाता है।

'हाय राम नहिं कछु बस मोरा'...। यह भक्त की भाव-दशा है : 'हाय राम नहिं कछु बस मोरा'...। मेरा कुछ भी बस नहीं है, बिल्कुल अवश हूं! 'मरती विवस प्रभु धाओ-धाओ।' और मैं मर रही हूं। जैसे कोई रेगिस्तान में मरता हो और पानी को चिल्लाता हो : धाओ-धाओ! अब देर न करो, जल्दी ही मुझे अपने में लीन कर लो।

लाख सदमे उठा रहा हूं मैं
जख्म पर जख्म खा रहा हूं मैं
इस तरह से दिलो जिगर ऐ दोस्त
तेरे काबिल बना रहा हूं मैं
गिन रहा हूं मौत की घड़ियां
जीस्त के दिन बिता रहा हूं मैं
आखिर इक दिन आओगे ऐ दोस्त
आज आओ—बुला रहा हूं मैं

भक्त कहता है : एक दिन तो आओगे। एक दिन तो जरूर आओगे! एक दिन आना ही होगा। तुम्हारा ही हूं तो आना ही होगा। मगर अभी बुला रहा हूं, अभी आ जाओ! 'धाओ-धाओ' में वही पुकार है : इसी क्षण आ जाओ, अभी आ जाओ! देर न करो, अब और प्रतीक्षा न कराओ।

'हाय राम नहिं कछु बस मोरा, मरती विवस प्रभु धाओ-धाओ।
धर्म उपदेस नित ही सुनती हूं, मन कुचाल से बहु डरती हूं।
सदा साधु सेवा करती हूं, सुमिरन ध्यान में चित धरती हूं।
भक्ति मार्ग दासी को दिखाओ।'

और मीरा कहती है : सब करती हूं, जो करने जैसा है। कुछ छोड़ती नहीं हूं, फिर भी कुछ चूकता है। मेरे किये पूरा न होगा, तेरे किये ही पूरा होगा। मेरे किये में अधूरा रहेगा ही, क्योंकि मैं अधूरी हूं।

'धर्म उपदेस नित ही सुनती हूं।' जाती हूं, साधु-संग करती हूं। जहां भक्त मिलते हैं, मस्त होते हैं, वहां नाचती हूं। स्तुति करती हूं। धर्म के वचन सुनती हूं... 'मन कुचाल से बहु डरती हूं।' और मन से बड़ा सावधान रहती हूं कि कोई भूल-चूक न हो, दुबारा यह कोई फंदा न फेंक दे! यह फंदा फेंकता ही चला जाता है।

आखिर-आखिर तक मन चेष्टा करता है, अंत-अंत तक चेष्टा करता है। अंत अंत में तो बहुत चेष्टा करता है कि खींच ले। तुमने जो सारी कहानियां सुनी हैं कि अंत-अंत में प्रत्येक महर्षि को शैतान सताता है। वह शैतान नहीं है। शैतान कहां है? वह मन ही है। मन अनेक रूप रख लेता है। मन अप्सराएं बन जाता है—नाचता है चारों तरफ नग्न होकर। आखिरी जाल फेंकता है कि निकल न जाओ मेरे फंदे से, आखिरी प्रलोभन देता है।

जीसस के जीवन में उल्लेख है। जब वे परम दशा के करीब पहुंचने को हैं, ध्यान उनका करीब-करीब आ रहा है, तब शैतान प्रगट होता है। और शैतान कहता है : तुमने तो पा लिया! अब यह बड़े मजे की बात है, शैतान कहता है : 'तुमने तो पा लिया!' शैतान यह चाह रहा है कि जीसस को यह ख्याल आ जाये कि हां, मैंने पा लिया, कि गिरे। क्योंकि 'मैंने पा लिया', तो अहंकार आ जाएगा। ऐसी चाल-बाजियां हैं। मन कहता है : 'अरे! तुमने तो पा लिया। अब कौन इनकार करेगा?' लेकिन जीसस ने कहा : शैतान, पीछे हट! तेरी बकवास बहुत हो चुकी, तू मुझे उत्ते-जित न कर पाएगा।

लेकिन शैतान आता है। और शैतान कहता है : 'अब तो तुम उस अवस्था में पहुंच गये कि अगर पहाड़ से कूद जाओ, तो भी चोट न खाओगे। आग में चले जाओ तो आग जलाएगी नहीं। चाहो तो पानी पर चल सकते हो।' अब शैतान यह कह रहा है कि तुम्हारे पास शक्ति आ गयी है, अब तुम इसका उपयोग करो। अब अहंकार को दूसरा उपाय सुझा रहा है। अब तुम चमत्कारी हो जाओ। पहाड़ से कूदो, देख लो। और शैतान कहता है : मेरी बात मानो, देख लो तुम कूद कर, चोट न लगेगी। आग में चले जाओ, जलोगे नहीं। तुमने तो पा लिया।

और जीसस चिल्लाते हैं कि तू हट पीछे! तू मुझे धोखा न दे सकेगा।

शैतान शास्त्रों का उल्लेख करता है। शैतान कहता है : तुम यह कर क्या रहे हो? शास्त्रों में उल्लेख है कि भक्त पानी पर चल गये हैं। शास्त्रों में उल्लेख है कि भक्त आग में चले गये हैं, और जले नहीं। और पहाड़ों से कूद गये हैं और परमात्मा ने उनको अपने हाथों में झेला। तुम उस दशा में पहुंच गये हो। तुम्हें पता नहीं है। शास्त्र कहते हैं।

तो जीसस ने कहा : मुझे पता है। मुझे पता है कि शैतान भी शास्त्रों के उल्लेख कर सकता है।

यह मन ही है, जो आखिरी दांव लगा रहा है। इसके पहले कि मन बिल्कुल चला जाए, आखिरी चेष्टा करेगा।

जैसे तुमने देखा, दीया जब बुझता है तो बुझने के पहले भभकता है! ऐसे ही मन भी बुझने के पहले भभक लेता है। जब कोई आदमी मरता है तो तुमने देखा? मरने के दो-चार मिनट पहले बिलकुल स्वस्थ हो जाता है, जीवन-धारा एकदम से चोट करती है। आखिरी चेष्टा करता है जीवन, बचने की। मरने के पहले लोग अक्सर स्वस्थ हो जाते हैं, बिलकुल ठीक हो जाते हैं। सारी तकलीफ चली जाती है। जीवन आखिरी कोशिश कर रहा है। ज्योति आखिरी लपट ले रही है। और ऐसा ही मन

भी आखिरी लपट लेता है।

'लूटें ही लेत विवेक का डेरा, बुधिबल यदपि करूं बहुतेरा।
हाय राम नहीं कछु बस मोरा, मरती विवस प्रभु धाओ धाओ ।।
धर्म उपदेस नित ही सुनती हूं, मन कुचाल से बहु डरती हूं।
सदा साधु सेवा करती हूं, सुमिरन ध्यान में चित धरती हूं।'

लेकिन यह सब मेरा किया है। मेरे किये से क्या होगा ?

'हाय राम नहीं कछु बस मेरा, भक्ति मार्ग दासी को दिखाओ।'

अब तो तुम्हीं मेरे गुरु बनो। अब मैं उस जगह आ गयी हूं, जहां तक साधु ला सकते थे। मैं उस जगह आ गयी जहां तक शास्त्र ला सकते थे। अब तुम हाथ पकड़ो।

'भक्ति मार्ग दासी को दिखाओ। मीरा को प्रभु सांची दासी बनाओ।'

सांची दासी का अर्थ होता है कि जिसके मन में जरा भी भेद न रह जाए, जरा भी अंतर न रह जाए, जरा भी सीमा-रेखा न रह जाए। सब सीमाएं टूट जाएं। बूंद जैसे सागर में गिरकर एक हो जाती है, ऐसे मीरा कहती है : अब मुझे भी बिल्कुल अपने में एक कर लो। मीरां को प्रभु सांची दासी बनाओ।

ग्रहण करती निज सत्य स्वरूप तुम्हारे स्पर्श मात्र से धूल,
कभी बन जाती घट साकार, कभी रंजित सुवासमय फूल,
और यह शिला खण्ड निर्जीव शाप से पाता सा उद्धार
शिल्पी, हो जाता पाकर स्पर्श एक पल में प्रतिमा साकार।
तुम्हारी सांसों का यह खेल जलद में बनते अगणित चित्र
मृत्ति, प्रस्तर मेघों का पुंज लिये मैं देख रहा हूं राह
कि शिल्पी आएगा इस ओर पूर्ण करने को मेरी चाह
खिलेंगे किस दिन मेरे फूल, प्रगट होगी कब मूर्ति पवित्र,
और मेरे नभ में किस रोज जलद बिहरेंगे बन कर चित्र
शिल्पी, जो मुझ में व्याप्त-विलीन किरण वह कब होगी साकार ?

जैसे शिल्पी पत्थर को छूकर एक जीवंत मूर्ति बना देता है, जैसे चित्रकार एक तूलिका से जीवन दे देता है, जैसे संगीतज्ञ छेड़ देता तार को, सोये संगीत को जन्म दे देता है—ऐसे ही भक्त अंतिम क्षण में पुकारता है कि अब तुम ही सम्हाल लो ! अब इस वीणा पर तुम ही अपनी अंगुलियां रखो। इस पत्थर को अब तुम ही मूर्ति में रूपांतरित करो। मेरे किये जो हो सकता है मैंने किया। जो मेरे किये नहीं हो सकता, अब तुम करो।

और एक बात ख्याल रखना, जब भक्त जो कर सकता था स्वयं पूरा कर चुकता है, जब भक्त के पास करने को कुछ भी नहीं बचता—उसी क्षण परमात्मा के हाथ में सारी बात चली जाती है। उसी क्षण परमात्मा का हाथ तुम्हें सम्हाल लेता है।

जब तुम बिल्कुल ही आवश हो जाते हो, जब तुम बिल्कुल असहाय हो जाते हो, जब तुम्हारा किया अब और कुछ हो नहीं सकता, तुम सब कर चुके जो किया जा सकता था—उसी क्षण अचानक पाते हो : आ गईं वे उंगलियां, बज गये तुम्हारे तार ! आ गया शिल्पी, बनने लगी तुम्हारी प्रतिमा, होने लगी साकार। जो तुम में छिपा था, उस दिन परमात्मा के हाथों प्रगट होता है।

तुम्हारा जो अन्तर्तम है वह परमात्मा के स्पर्श से ही खिलेगा। तुम्हारा अन्तर्तम का कमल उसके स्पर्श के बिना नहीं खिल सकता है। इसलिए मीरा कहती है : मीरा को प्रभु सांची दासी बनाओ। राणा को कहती है : राणाजी, मैं सांवरे रंग रांची।

जहां तक संसार का संबंध है, संसार से कह सकती है : मैंने प्रभु को पा लिया। लेकिन जहां तक प्रभु का संबंध है, कभी ऐसा नहीं होता कि भक्त कह पाए कि मैंने पूरा पा लिया। क्योंकि प्रभु अगर पूरा पाया जा सके तो सीमित हो जाएगा। प्रभु असीम है। इसलिए पूरा कभी पाया नहीं जा सकता। और यह सौभाग्य है, क्योंकि पाने को सदा शेष रह जाता है। यह सौभाग्य है क्योंकि पूरा अगर प्रभु को पा लिया जाए तो प्रभु से भी ऊब पैदा हो जाएगी। उससे ही जल्दी ही ऊब पैदा हो जाएगी। चूंकि उसे कभी पूरा नहीं पाया जा सकता, रस बहता रहता है, जीवन-धारा बहती रहती है, अनंत यात्रा चलती रहती है।

आज इतना ही।

जीवन का रहस्य—मृत्यु में

आठवां प्रवचन

दिनांक : १८ नवम्बर, १९७७; श्री रजनीश आश्रम, पूना

मैं असहाय हूं, मैं बेबस हूं ! मैं क्या करूं ?

मंसूर और सरमद के अफसाने पुराने हो गये।
ऐ रजनीश ! मेरे लिए किस्सा नया तजवीज कर।
क्या मेरी प्रार्थना सुनी जाएगी ?

सुना है कि जिंदगी चार दिनों की होती है और मिलन पांचवें दिन होता है। तो क्या करूं ?

परमात्मा कहां है और मैं उसे कैसे खोजूं ?

पहला प्रश्न : मैं असहाय हूं, मैं बेबस हूं। मैं क्या करूं ?

★

असहाय हो, बेबस हो, फिर भी कुछ करना चाहते हो ? असहाय हो, बेबस हो, अब तो करना छोड़ो। कृत्य पर भरोसा कब छोड़ोगे ? कृत्य पर भरोसा छूट जाए तो जो होना है अभी हो जाए।

मीरा की सुनो।

करने से ही परमात्मा मिलता होता तो मिल ही नहीं सकता था। आदमी की करने की बड़ी सीमा है। जो कर सकते हैं, उनका करना भी क्षुद्र है। आदमी कर ही क्या सकेगा ? हाथ छोटे हैं। चांद-तारों की तरफ बढ़ा सकते हो, लेकिन पा थोड़े ही पाओगे। और चांद-तारों की तरफ बढ़े हुए हाथ सिर्फ तुम्हारी भूख की खबर देते हैं, तुम्हारी प्यास की खबर देते हैं। और जितने तुम हाथ बढ़ाओगे उतने तुम विषाद से भर जाओगे, क्योंकि हाथ बढ़े रह जाते हैं, पहुंचते नहीं। हाथ छोटे हैं।

जिस दिन तुम्हें यह ठीक-ठीक समझ में आ जाए कि मैं असहाय हूं, उस क्षण तुम्हारी आंखों में आंसू आएंगे। और कुछ भी करने को नहीं है। और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम आंसू लाना। लाये गये आंसू दो कौड़ी के हैं। लाये गये आंसू तो अभिनय हैं। मैं कह रहा हूं : आंसू आएंगे जब तुम परिपूर्ण असहाय अवस्था को समझोगे। मझधार में डूबते हुए, न यह किनारा दिखायी पड़ता, न वह किनारा दिखायी पड़ता। सहारों की कौन कहे, तिनकों का सहारा भी नहीं है। कोई आशा नहीं। सब तरफ अंधकार है और निराशा है। उस परम हताशा की दशा में आंसू आएंगे, अपने से आएंगे। सारा प्राण आंसू बन जाएगा। वैसे ही आंसू प्रार्थना बनते हैं।

प्रार्थना की नहीं जाती--होती है। आह उठेगी। तुम उठाओगे, ऐसा नहीं है। तुम्हारी उठायी गयी आह का क्या मूल्य हो सकता है ? तुम्हारे बावजूद उठेगी। तुम न भी उठाना चाहो तो उठेगी। वही आह प्रार्थना बन जाती है।

तुम कहते तो हो कि मैं असहाय हूं, मैं बेबस हूं; लेकिन सुनी-सुनायी कहते हो। तुमने बात गुनी नहीं। तुमने बात पर बहुत ध्यान नहीं दिया। यह बात तुम्हारे अनुभव से नहीं आती। नहीं तो फिर तुम यह न पूछते कि मैं क्या करूं। करने में तो बल है। करने में तो अभी भरोसा कायम है। करने में तो अहंकार है। करने

वाला सोचता है : शायद अभी जिस ढंग से कर रहा था, वह ढंग गलत था, तो नये ढंग से करूंगा; जिस राह से चलता था वह राह गलत थी, तो नयी राह खोज लूंगा। यह असहाय अवस्था नहीं है।

असहाय अवस्था का अर्थ ही यही है कि मैं किसी भी राह से चलूं तो मैं ही चलूंगा न! मेरे पैर छोटे, मेरी क्षमता छोटी। यह राह की गलती नहीं है। मैं पहुंच ही नहीं सकता। मेरी तरह मैं पहुंच ही नहीं सकता। यह विधि की गलती नहीं है, विधान की गलती नहीं है, मार्ग की गलती नहीं है, शास्त्र की गलती नहीं है। मुझे ठीक शास्त्र मिल जाए, तो भी नहीं पहुंच सकता। मुझे ठीक मार्ग मिल जाए, तो भी नहीं पहुंच सकता। मैं ही कमजोर हूं।

जब ऐसी प्रतीति होती है कि मैं ही कमजोर हूं, तुम गिर जाते हो एक ढेर की तरह। उसी ढेर से उठती है प्रार्थना--की नहीं जाती। उसी ढेर में भक्ति का आविर्भाव होता है। उसी ढेर में... तुम गिर पड़े ढेर की तरह, परमात्मा तुम्हें तलाशता आता है। जब तक तुम्हें यह अस्मिता है कि मैं कुछ कर लूंगा, तब तक परमात्मा सोचता है : अभी तुम कर ही रहे हो, अभी बीच में बाधा देने की जरूरत भी क्या है ?

मुझे बड़ी प्यारी एक कथा है, जिसको मैं निरंतर कहता हूं। कृष्ण भोजन को बैठे हैं। एक कौर मुंह में लिया है, दूसरा लेने को हैं कि छोड़कर उठ खड़े हुए। रुक्मणी पंखा झलती है। उसने पूछा : कहां जाते हैं ? लेकिन उत्तर भी न दिया, भागे द्वार की तरफ। लेकिन फिर देहरी पर ठिठक कर खड़े हो गये। लौट आए उदास। फिर थाली पर बैठ भोजन करने लगे। रुक्मणी ने कहा : आप अचानक भागे, उससे तो मन में बड़ा प्रश्न उठा था कि क्या हुआ, किस लिए जा रहे हैं, जैसे कहीं आग लग गयी हो! उत्तर देने का भी आपके पास समय नहीं था। मैंने पूछा, कहां जाते हैं थाली अधूरी छोड़कर ? उत्तर भी नहीं दिया, उससे तो प्रश्न उठा ही था, अब और प्रश्न उठता है दूसरा कि द्वार पर ठिठक क्यों गये ? मैं तो अंधी हूं, मुझे दिखायी नहीं पड़ता, मुझे कुछ कहें। मेरी जिज्ञासा शांत करें। फिर लौट क्यों आए ? गये इतनी तेजी से, फिर इतनी उदासी से लौट क्यों आए ?

कृष्ण ने कहा : मेरा एक प्यारा एक राजधानी से गुजर रहा है। फकीर है--नंगा फकीर है। अपना एकतारा बजा रहा है। एकतारे के सिवाय उसके पास और कुछ भी नहीं है। उस एकतारे में भी मेरे नाम की धुन के सिवाय और कोई धुन नहीं है। उसके तन-प्राण में मैं ही बसा हूं। लोग पत्थर मार रहे हैं। लोग खिल्ली उड़ा रहे हैं। लोग उसे पागल समझ रहे हैं। उसके माथे से खून की धार बह रही है और वह एकतारे पर मेरा ही गुणगान किये जाता है। इसलिए आधा कौर गिराकर दौड़ना पड़ा। दौड़ना ही पड़ेगा, इतना असहाय है!

रुक्मणी ने पूछा : फिर लौट क्यों आए ? तो कृष्ण ने कहा : जब तक मैं द्वार

पर पहुंचूं, तब तक उसने एकतारा नीचे पटक दिया और पत्थर हाथ में उठा लिए। अब मेरी कोई जरूरत न रही। अब वह खुद ही उत्तर देने में तत्पर हो गया है। अब मेरा जाना व्यर्थ है। जरा और रुक जाता तो मैं पहुंच गया होता। मगर अब एकतारा गिर गया है। एकतारे में मेरे उठते नाम की धुन गिर गयी है। उसके भीतर से मैं विलीन गया हूं जैसे। वह मुझे भूल गया क्षणभर को।

'मेरो मन बड़ा हरामी !'

शायद वर्षों से हरि-गीत गाता हो और इन पत्थरों की चोट ने सब भुला दिया। मन खिसक आया नीचे। उत्तर देने को तैयार हो गया। पत्थर हाथ में उठा लिए। प्रतिशोध की अग्नि जल उठी। प्रार्थना खो गयी। प्रार्थना राख हो गयी। कृष्ण को जाने की जरूरत न रही।

यह कथा मधुर है। सूचक है। गहन संकेत है इसमें। तुम जब ढेर की तरह पड़ जाते हो, जब तुम जानते हो मेरे किये कुछ भी न होगा, पूछते भी नहीं कि मैं क्या करूं, जानते ही हो कि मेरे किए कुछ भी न होगा ! और कब जानोगे यह ? कितने जन्मों से कर रहे हो, कुछ भी तो नहीं हुआ। सब तो उपाय कर लिये। सब तो योग, जप-तप कर लिये। सब तो विधि-विधान कर लिये।... यज्ञ-हवन, पूजा-पाठ ! कितने मंदिरों में नहीं गये ! कितनी मूर्तियों के सामने सिर नहीं पटका ! मस्जिद में, मंदिर में, गुरुद्वारे में, चर्च में--कहां नहीं गये ! सब जगह हो आए हो। चारों धाम कर लिये। अब तो समझो कि मेरे किये कुछ भी न होगा। क्योंकि मैं ही कुछ नहीं हूं तो मेरे किये क्या हो सकता है ? मैं ही नहीं हूं तो मेरे किये क्या हो सकता है ? इस नहीं से कैसे कोई कृत्य निकलेगा ? मैं एक शून्य मात्र हूं। मेरी तरह मैं शून्य हूं, परमात्मा की तरह मैं पूर्ण हूं। लेकिन परमात्मा की तरह, मेरी तरह नहीं। मेरी तरह तो मैं नपुंसक हूं। परमात्मा की तरह सर्व शक्तिमान हूं। लेकिन परमात्मा की तरह। और जब परमात्मा है तो मैं नहीं हूं। और जब तक मैं हूं तो परमात्मा नहीं है।

तो मत पूछो कि क्या करूं। भक्ति उठती तभी है जब सब करना छूट जाता है। और इसका यह अर्थ नहीं कि भक्त कुछ नहीं करता। भक्त का करना छूट जाता है, फिर परमात्मा उससे करता है। भक्त का करना जब छूट जाता है, तभी असली करना शुरू होता है। फिर भगवान करता है। फिर भक्त निमित्तमात्र है। बहुत होता है भक्त से, लेकिन भक्त कर्ता नहीं होता; माध्यम हो जाता है।

जैसे बांसुरीवादक बांसुरी को ओंठ पर रखकर गीत गाता है, ऐसे ही भक्त को ओंठ पर रखकर भगवान गीत गाता है। भक्त बांसुरी हो जाता है। बांसुरी में क्या है ? पोला बांस का टुकड़ा है। ऐसे ही भक्त पोले बांस का टुकड़ा हो जाता है। कुछ भी नहीं, खाली है। खाली है, इसलिए आवाज गीत बनकर बह सकती है। भरा हो तो फिर नहीं बह सकती।

बांस की बांसुरी बनती है। और किसी लकड़ी की नहीं बनती। क्यों ? क्या बांस कोई आखिरी बात है लकड़ियों में ? सुंदर लकड़ियां हैं, बहुमूल्य लकड़ियां हैं। बांस भी कोई बात है ? बांस की कोई कीमत है ? लेकिन बांसुरी बनती बांस से है। देवदारू से नहीं, चीड़ से नहीं, टीक से नहीं, लेबनान के सीदारों से नहीं; आकाश छूते बड़े-बड़े वृक्ष हैं, उनसे नहीं बनती--बनती है बांस की पोंगरी से। क्या खूबी है बांस की ? क्या राज़ है बांस का ?

जो राज़ बांस का है, वही राज़ भक्त का है। भक्त बांसुरी बनता है। तपस्वी-त्यागी नहीं बनते। तपस्वी-त्यागी आकाश में उठे लेबनान के दरख्त हैं, लेबनान के सीदार हैं। बड़ी उनकी अकड़ है। बड़ा उनका बल है। दूर जमीन में फैली उनकी जड़ें हैं--तप की, तपश्चर्या की। उनका इतिहास है। भक्त का क्या इतिहास है ! दीन-हीन ! बांस की पोंगरी ! मगर बनता है परमात्मा के गीत का वाहन।

देखो न मीरा को ! जैसी मीरा गायी, कौन तपस्वी गाया है ? जैसा मीरा गायी है, कौन योगी गाया है ? जैसी मीरा नाची, कौन कब नाचा है ? मीरा बेजोड़ है। कला क्या है मीरा की ? बांस की पोंगरी है। एक बात जान ली कि मेरे किये कुछ भी न होगा, क्योंकि मैं ही नहीं हूं। कृत्य तो तब उठे जब मेरा होना सिद्ध हो। मेरा होना ही सिद्ध नहीं होता, तो कृत्य कैसे उठेगा ? कृत्य जाता है, मैं जाता है, तब कोई बहने लगता है--अज्ञात लोक से कोई उतरने लगता है ! कोई किरण आती दूर से ! कोई गीत आता दूर से ! कोई नृत्य आता दूर से ! भर जाता है तुम्हें। आपूर कर जाता है तुम्हें। इतना भर देता है कि तुम्हारे ऊपर से बहने लगता है। दूसरों को भी मिलने लगता है। बाढ़ आ जाती है।

तुम यह पूछो ही मत कि मैं क्या करूं ! असहाय हो, बस असहाय ही रह जाओ। अब करने को मत जोड़ो। करने को जोड़ने का मतलब है कि फिर तुम असहाय न रहे, फिर कुछ करने लगे। बेबस हो, अब बेबस ही हो जाओ। अब इसमें जोड़ो मत कुछ करना। अब पत्थर मत उठाओ, अन्यथा आते कृष्ण रुक जाएंगे, देहली पर रुक जाएंगे।

अब जो प्रभु कराए, उसे होने दो। उससे अन्यथा की चाह भी मत करो, मांग भी मत करो। तब तुम्हें कला आ गयी भक्ति की। असहाय अवस्था में पूरी तरह डूब जाना भक्ति का जन्म है।

नारद के सूत्रों को पढ़कर तुम भक्ति न समझ पाओगे। भक्ति का शास्त्र समझना हो--असहाय हो जाओ।

वो राग छेड़ तरन्नुम की जो करे तशकील
सुना वो नगमा जो तखलीक सोजो साज करे।
तेरा वजूद हकीकत को दे लबासे मजाज

कि जिसपे फखर बहार कायेनात नाज करे ।
तेरा गुजर हो चमन को नबीद रंगो बू
गुलों को फस्ले बहारां से बेनियाज करे।
तू ऐसे जी कि जमाना बइख्तयारे तमाम
तेरी गरीबी तेरी बेबसी पे नाज करे ।
जिसे शिकायतें हों हुस्न से वो इश्क नहीं
हवस है लालाओ गुल में जो इम्तयाज करे
कभी जो कहना पड़े कुछ तो ऐसी बात कहो
जो सबको अपने अहले नजर आशनाये राज करे ।

तू ऐसे जी कि जमाना बइख्तयारे तमाम
तेरी गरीबी तेरी बेबसी पे नाज करे !

भक्त ऐसे ही जीता है कि उसकी गरीबी, उसकी बेबसी, उसकी असहाय अवस्था ही उसका साम्राज्य बन जाती है, उसकी समृद्धि बन जाती है । खोकर ही भक्त पा लेता है । मिटकर ही हो जाता है । अपने को नाकुछ जानकर परमात्मा को झेलने का हकदार हो जाता है । अपने को पोंछकर, मिटाकर परमात्मा को पाने की पात्रता बन जाता है ।

तू ऐसे जी कि जमाना बइख्तयारे तमाम
तेरी गरीबी तेरी बेबसी पे नाज करे ।

अब तक जमाना नाज करता है मीरा पर ! राज़ क्या है मीरा का ? मीरा हुई, इससे पृथ्वी सुंदर हुई । मीरा हुई, इससे मनुष्य के इतिहास में रंग पड़ा । मीरा हुई, इससे मनुष्य के सौभाग्य में चार चांद जुड़े !

और मीरा का राज़ क्या है ! मीरा ने किया क्या है ? महावीर ने बारह वर्ष तपश्चर्या की । मीरा ने क्या किया ? बुद्ध ने छह वर्ष अथक श्रम किया । मीरा ने क्या किया ? कुछ भी नहीं किया । इसलिए तो जैन से अगर पूछोगे तो जैन कहेगा : तपश्चर्या क्या की ? उपवास कितने किये ? व्रत कितने साधे ?

योगी से पूछोगे तो वह पूछेगा कि पतंजली के कितने नियमों का पालन किया ? अष्टांगिक योग में क्या-क्या साधा--आसन प्राणायाम, व्यायाम, प्रत्याहार ? क्या किया ?

बौद्ध से पूछोगे तो वह कहेगा कि भगवान ने चार आर्य सत्य बताये हैं, उन चार आर्य सत्यों को पाने के लिए आठ मार्ग बताये हैं, उनमें से क्या मीरा ने साधा ? --सम्यक् दृष्टि ? सम्यक् आहार ? सम्यक् आजीविका ? सम्यक् स्मृति ? सम्यक् समाधि ? क्या साधा ?

और मीरा का प्रेम करने वाला कोई भी उत्तर न दे सकेगा । शायद तुम अपने को भीतर-भीतर सोचोगे : जब कुछ भी नहीं साधा तो कहीं ऐसा तो नहीं है कि

मीरा सिर्फ गीत गाना जानती है और भीतर कुछ भी न हो ?

मीरा की सारी कला उसकी असहाय अवस्था में है । भक्त का सारा राज़ वहां है, कुंजी वहां है । वही तो भक्ति और ज्ञान का भेद है । ज्ञानी कह सकता है : यह साधा, यह साधा, यह साधा ! ज्ञानी के पास हिसाब है । ज्ञानी का इतिहास है । भक्त का कोई इतिहास नहीं, कोई हिसाब नहीं, कोई खाता-बही नहीं । भक्त कहता है : साधा क्या ? जनम-जनम साधा, कुछ भी न पाया । पाया तब जब सब साधना गया ।

भक्ति की कोई साधना नहीं होती । असहाय अवस्था में अपने को पूरी तरह छोड़ देना । करोगे भी क्या ? जब किये कुछ होता ही नहीं है, तब इसके सिवाय उपाय भी क्या है कि समर्पण कर दो ?

तुम अभी भी पूछते हो कि मैं क्या करूं ? तो दो में से एक बात तय कर लो । या तो तय कर लो कि मैं असहाय हूं, मैं बेबस हूं । तब करने को कुछ नहीं बचता । तब तुम्हारी असहाय अवस्था और तुम्हारी बेबसी ही काम कर देगी; जो तुम नहीं कर पाये वह हो जाएगा । और अगर तुम पूछते हो कि मैं क्या करूं, यही तुम्हें करना है, तो फिर मत कहो कि मैं असहाय हूं, मत कहो कि बेबस हूं । फिर करो तप ! फिर करो योग ! फिर चेष्टा करो, संकल्प करो । फिर महावीर को पकड़ो, फिर पतंजली को पकड़ो । फिर मीरा तुम्हारे काम की नहीं ।

लेकिन इसके पहले कि तुम निर्णय करो, मैं तुम से कहना चाहता हूं : दुनिया में जितने लोगों ने पाया है उनमें संकल्प के मार्ग से जाने वाले बहुत थोड़े लोगों ने पाया है । समर्पण के मार्ग से जाने वाले बहुत लोगों ने पाया है । और सच तो यह है कि जब बिना किये मिल जाता हो, तो करना नासमझी है । फिर जिन्होंने करके भी पाया है, उसमें भी बड़ी सोचने की बात है कि उनको करने से मिला है या करने से इतना ही मिला कि करने से कुछ नहीं होता ।

बुद्ध के साथ ऐसा ही हुआ । छह वर्ष तक अथक श्रम किया; सब किया, जो किया जा सकता है--जो मानवीय है, जो संभव है मनुष्य के लिये । और छह वर्षों के बाद पाया कि कुछ मिलता नहीं । पहले धन छोड़ दिया, पद छोड़ दिया, राज्य छोड़ दिया, आकांक्षा छोड़ दी, वासना छोड़ दी--साधना पकड़ी । छह वर्ष तक साधना की और रत्ती भर बचाव नहीं किया । ऐसे नहीं की कि कुनकुनी कुनकुनी--सौ डिग्री पर उबले । जिन गुरुओं के पास गये, उन गुरुओं ने ही कहा कि भाई, जितना हम जानते थे बता दिया और तुमने कर भी लिया और नहीं हुआ, तो हम मजबूर हैं; अब तुम कहीं और जाओ । कोई गुरु यह नहीं कह सका कि तुमने किया ही नहीं जो मैंने कहा, इसलिए नहीं हुआ । छह वर्ष में बहुत गुरु, लेकिन हर गुरु ने एक दिन हाथ जोड़कर बुद्ध को कहा कि आप कहीं और खोजें; जो मेरे पास था वह मैंने बता दिया; और तुमने वह पूरा कर भी लिया, फिर तुम्हें नहीं हुआ

तो मैं क्या करूं !

सारे गुरु छूट गये और एक दिन वैसी घड़ी भी आयी, वैसे बोध का परम क्षण भी आया, बोधिवृक्ष के नीचे, उस पूर्णिमा की रात बैठे-बैठे बुद्ध को समझ आयी कि मेरे किये कुछ नहीं होता है। सब मैंने कर लिया। करने को कुछ बचा नहीं। अब करने को भी जाने दूं।

और यह बोध भी एक छोटी-सी घटना से आया। स्नान करने उतरे हैं निरंजना नदी में। इतने कमजोर हो गये हैं क्योंकि बहुत दिन से उपवास कर रहे हैं। किसी मूढ़ ने बता दिया कि बस एक चावल का दाना रोज लेना है। तो एक चावल का दाना रोज ले रहे हैं। तीन महीने से। शरीर बिल्कुल हड्डी-हड्डी हो गया है। उस समय की एक प्रतिमा किसी ने बनायी है, तो सिर्फ हड्डियां दिखायी पड़ती हैं उस प्रतिमा में। चमड़ी रह गयी है हड्डियों पर चढ़ी, मांस सब खो गया है। पेट पीठ से लग गया है। बिल्कुल अस्थिपंजर रह गये हैं। निरंजना में स्नान करने उतरे हैं, लेकिन इतने कमजोर हैं कि स्नान करने से थक गये हैं और निरंजना के बाहर निकलने की सामर्थ्य नहीं मालूम होती, शक्ति नहीं मालूम होती। तो एक वृक्ष की जड़ को पकड़ कर लटके रह गये हैं। उसी वृक्ष की जड़ को पकड़ कर लटके हुए यह ख्याल आया : इस छोटी-सी दीन-हीन नदी को पार नहीं कर पाता हूं! निरंजना कोई बहुत बड़ी नदी नहीं है। और गर्मी के दिन थे; बिलकुल सूखी-साखी हालत होगी। इस क्षीण देह नदी को पार नहीं कर पाता हूं, इतना कमजोर हो गया--और भवसागर पार करने चला हूं! यह कैसे होगा?

किसी तरह निकल पाये नदी से, लेकिन वह तपश्चर्या छोड़ दी। उस रात सब क्रांति बन गयी बात। उस रात सब साधना छोड़ दी, सब योग भी त्याग दिया। भोग तो त्याग ही चुके थे, उस रात योग भी त्याग दिया।

अब यह बात समझना कि भोगी भी अहंकार से जीता है और योगी भी अहंकार से जीता है। भोगी का अहंकार बाहर की तरफ दौड़ता है, योगी का अहंकार भीतर की तरफ दौड़ता है--मगर अहंकार तो रहता ही है। और जब तक अहंकार है, तब तक मिलन कैसा! उस रात क्रांति हो गयी। भोगी का यह अहंकार तो जा ही चुका था; धन पाना है, पद पाना है--यह तो जा चुका था। आज वह वासना भी चली गयी कि परमात्मा पाना है, मोक्ष पाना है। वह वासना भी चली गयी। कुछ पाना ही है, यह बात ही व्यर्थ हो गयी। पाया कुछ जा नहीं सकता। सब कर लिया, कुछ मिलता नहीं। उस दिन असहाय अवस्था पूर्ण हो गयी। बुद्ध निढाल होकर पड़े रहे वृक्ष के तले। उस रात गहरी नींद आयी, जैसी जन्मों में न आयी होगी। क्योंकि जब कोई चिंता ही नहीं रही, पाने को कुछ न रहा, तो नींद की गहराई तुम समझ सकते हो। उस रात सुषुप्ति घटी। और सुबह जब आंख खुली, रात का आखिरी तारा डूबता था, उस तारे के डूबने के साथ ही बुद्ध का सारा अहंकार डूब

गया। क्योंकि आज पहली दफे चित्त शांत था, प्रफुल्लित था, प्रसादपूर्ण था। धीमे-धीमे स्वर उठ रहे थे। ऐसा कभी न हुआ था। भीतर रोशनी फैल रही थी। ऐसा कभी न हुआ था। और यह बिना किये हुआ। यह करने से नहीं हुआ। उस क्षण सारा अहंकार विसर्जित हो गया। बुद्ध ने पाया।

अब सवाल उठ सकता है कि बुद्ध ने श्रम करके पाया? छह वर्ष मेहनत तो की थी, यह पक्का है; लेकिन क्या छह वर्ष की मेहनत से पाया? यह बात पक्की नहीं है। पाया तो उस दिन जिस दिन सब श्रम छूट गया।

इस जगत में जो भी घटनाएं घटी हैं, अंततः चाहे ज्ञानी को घटती हों चाहे भक्त को...। महावीर के संबंध में ऐसा कुछ उल्लेख नहीं है कि उन्होंने कैसे पाया। लेकिन मेरे देखे, सिवाय इसके अतिरिक्त कोई उपाय पाने का नहीं है। महावीर ने बारह वर्ष श्रम किया होगा और अंतिम दिन उस श्रम से भी छूट गये होंगे, क्योंकि श्रम तो अहंकार का ही है। अंतिम दिन उस श्रम से भी छुटकारा हो गया होगा। अंतिम दिन शांत रह गये होंगे। कुछ करना न बचा होगा, कुछ करने वाला न बचा होगा। तभी घटना घटी होगी। इसे मैं अपने भीतरी साक्षी के आधार पर कहता हूं, यद्यपि जैन शास्त्रों में इसका कोई उल्लेख नहीं। जब भी यह घटना घटती है, तभी इसी भावदशा में घटती है। भक्त शुरू से ही इस पर चल पड़ता है, ज्ञानी अंत में चल पाता है। मीरा पहले से ही इस पर चल पड़ी, बुद्ध छह वर्ष बाद चले।

तुम्हारी जैसी मर्जी हो। मगर तय कर लो। इस प्रश्न में तुम्हारे दो मन हैं। एक कहता है : असहाय। एक कहता है : क्या करूं? तुम किसके साथ जाना चाहते हो, तय कर लो। और अपने को धोखा मत देना। इसलिए मत तय कर लेना कि चलो असहाय ही हो जाएं, अगर इस तरह मिलता हो। तो यह तो बड़ी सुगम बात हुई, चलो आज असहाय होकर ही बैठ जाएं, ढूंढ लें कोई बोधिवृक्ष और बिलकुल निढाल हो जाएं और कह दें साफ जोर से कि भाई करने से तो मिलता नहीं; और फिर राह देखें रात भर कि अब मिला, अब मिला, तब मिला; फिर सुबह आंख खोलें और देखें, आखिरी तारा डूब रहा है और अभी तक नहीं मिला! ...तो नहीं मिलेगा। और सुबह उठकर तुम अपने घर आ जाओगे और फिर अपनी दुकान खोल लोगे कि यह सब बेकार है। बुद्ध को भी मिला हो, संदिग्ध हो गया।

पाने की आकांक्षा से ऐसा मत कर लेना, नहीं तो वह झूठी बात होगी। तुम बीच-बीच में आंख खोल-खोलकर देखते रहोगे : अभी तक आया कि नहीं आया। तनाव तो बना ही रहेगा। सुषुप्ति लगेगी ही नहीं। विश्राम होगा ही नहीं। अगर अभी करने की खुजलाहट बची हो, थोड़ा कर ही लो। मतलब : थोड़ा पाप और बचा है। इसलिए तो पाप को कर्म कहते हैं। थोड़ा कर्म और बचा है। कर ही लो! थोड़ा और करने का उपद्रव है, इसको झेल ही लो।

फिर तुम क्या करते हो, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। हिन्दू के ढंग से करते

हो कि मुसलमान के ढंग से कि ईसाई के ढंग से, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुम्हें कुछ करना है तो कर ही लो अभी। इससे तुम तभी छूट पाओगे, जब तुम्हारा अनुभव ही तुम्हारे लिए अंतिम रूप से कह जाएगा कि करने से कुछ नहीं होता है। कर-करके ही तुम, हार-हार कर ही विफल हो-होकर ही जानोगे कि करने से कुछ नहीं होता है। जिस दिन यह बात सौ प्रतिशत तुम्हारे तुम्हारे प्राणों में समा जाएगी और तुम गिर जाओगे निढाल होकर, जहां गिरोगे वहीं बोधिवृक्ष बन जाएगा। और तुम अपने ढंग से गिरोगे। और तुम्हारा वृक्ष अपना होगा। बुद्ध का वृक्ष अपना है, बुद्ध के गिरने का ढंग अपना है। मगर गिरना तो तुम्हें पड़ेगा। तुम जिस दिन गिरोगे उसी दिन परमात्मा उठता है। परमात्मा प्रतीक्षा कर रहा है कि कब तुम अपने पर भरोसा छोड़ दो।

जिसे अपने पर भरोसा है उसे परमात्मा पर भरोसा नहीं। जिसे परमात्मा पर भरोसा है, वह क्या खाक फिकर करेगा इस बात की कि मैं क्या करूं! वह कहता है: तू कर। तू करने वाला है।

और ध्यान रखना, फिर तुम्हें सचेत कर दूं कि यह बात आलस्य से नहीं उठनी चाहिए, कि तू कर, मैं कौन करने वाला हूं! यह बात आलस्य से नहीं उठनी चाहिए। यह बात अनुभव से उठनी चाहिए कि मेरे किये कुछ भी नहीं होता। यह असहाय अवस्था से उठनी चाहिए।

आलस्य और असहाय अवस्था में फर्क है। आलसी तो होशियार है। वह तो दूसरे से काम लेना चाहता है। ऐसा नहीं कि वह सोचता है कि मेरे किये कुछ न होगा। वह कहता है: जब तक दूसरे के कंधे पर बंदूक रखकर चलती हो, तब तक काहे को अपने कष्ट उठाना, तो दूसरे ही के कंधे पर रखकर चला लें बंदूक।

मैं जब विद्यार्थी था विश्वविद्यालय में, तो मेरे एक अध्यापक थे। परम आलसी! मेरे जो विभाग-अध्यक्ष थे, उनका मुझ से भी बहुत लगाव था और उन अध्यापक से भी बहुत लगाव था। वे अध्यापक भी पहले उनके विद्यार्थी थे। उन्होंने मुझ से कहा कि देखो, यह बड़ा आलसी है और बड़ी तकलीफ में रहता है। अच्छा यह होगा कि तुम दोनों ही साथ रहो।

मैंने कहा: जैसी मर्जी। वे आलसी तो पक्के थे। दोनों हम साथ रहे। उन्होंने पहले ही दिन मुझ से कहा कि सुबह दूध लेने कौन जाएगा? मैंने कहा: जो पहले उठे। वे बोले: तब ठीक। आठ बज गये, कोई उठे न। मैं भी उनको आंख खोलकर देख लूं, वे भी मुझे आंख खोलकर देख लें। नौ बज गये। वे जरा बेचैन होने लगे, क्योंकि साढ़े दस बजे उन्हें कक्षा लेने जाना है। मैं तो विद्यार्थी था, गया न गया चलेगा। उनकी तो नौकरी का सवाल था। साढ़े नौ बजने लगे, अब वे काफी तेजी से करवट बदलने लगे। मैंने उनसे कहा: कितनी करवट बदलो, दूध

लेने जाना ही पड़ेगा। आज चाहे जिंदगी भर इसी बिस्तर पर रहना पड़े, मैं उठने वाला नहीं हूं।

तब वे घबड़ाकर उठे। तब भागे, दूध लेने गये। प्रधान को उन्होंने जाकर कहा कि यह साथ नहीं चलेगा। यह तो मामला बहुत कठिन है। इससे तो मैं अकेला ही बेहतर था। जब मर्जी हुई तब अपना दूध भी ले आता था; नहीं भी लाना हुआ तो नहीं लाता था।

मैंने अपने प्रधान को कहा कि अब हमें अलग न करें। मैं इन्हें रास्ते पर ले आऊंगा। ये दो-चार दिन में रास्ते पर आ जाएंगे। इनको दूसरे के कंधे पर बंदूक रखकर चलाने की आदत हो गयी है।

आलस्य को तुम मत समझ लेना कि असहाय अवस्था है। आलस्य तो चालाकी है, धोखा है, बेईमानी है। तो यह मत सोचना कि चलो ठीक है, करने से बचे, झंझट मिटी; अब यही कह दें साफ कि 'हे प्रभु आओ। धाओ-धाओ! देखो, इधर भक्त मरा जा रहा है।' हालांकि तुम जानते हो कि कौन मर रहा है! कहां की बातों में पड़े हो! भीतर तुम यही कह रहे हो कि कौन मर रहा है! और भीतर तुम यह भी जान रहे हो कि कौन आने वाला है!

विवेकानंद अमरीका में एक गांव में बोले, तो उन्होंने जीसस का प्रसिद्ध वचन उद्धृत किया है: 'फेथ कैन मूव माउन्टेन्स'। श्रद्धा से पहाड़ भी हटाये जा सकते हैं।

एक बूढ़ी औरत, बुढ़िया सामने ही बैठी थी। बूढ़ों के सिवा तो कोई धर्म-प्रवचन सुनने जाता भी नहीं। वह सामने ही बैठी थी। वह बड़ी प्रसन्न होने लगी, क्योंकि उसके मकान के पीछे एक छोटी पहाड़ी थी। और उस पहाड़ी की वजह से न हवा आ पाती थी, न सूरज की रोशनी आ पाती थी। वह बड़ी परेशान थी कि कैसे इस पहाड़ी से छुटकारा मिले। उसने कहा: यह तो बड़ा अच्छा है, श्रद्धा से ही हट सकता है! कह दिया परमात्मा से श्रद्धा-भाव से, हट जाएगा। वह भागी घर गयी। उसने एक बार, आखिरी बार खिड़की में से झांककर पहाड़ी को देखा कि एक बार तो और देख लो, फिर तो हट ही जाएगी। फिर खिड़की बंद करके वह वहीं बैठी और उसने कहा: हे प्रभु, श्रद्धापूर्वक कहती हूं--हटा ले इस पहाड़ को! फिर दो-तीन मिनिट बैठी रही, फिर उसने खिड़की खोलकर देखी: हटा कि नहीं? पहाड़ वहीं के वहीं था। और उसने कहा: धत् तेरे की! मुझे पहले से ही पता था, कहीं कोई पहाड़-वहाड़ हटना है!

मगर अगर पहले से ही पता था कि कहीं पहाड़ हटना है, तो श्रद्धा कहां? श्रद्धा से पहाड़ हटते हैं, लेकिन श्रद्धा में संदेह होता ही नहीं। अगर पहाड़ न हटे तो यही समझना कि श्रद्धा नहीं है। और सच तो यह है: अगर श्रद्धा पूरी हो तो तुम पहाड़ हटाना भी न चाहोगे, क्योंकि श्रद्धा की परीक्षा लेने का मतलब ही यह होता है

कि संदेह है। पहाड़ हटाना क्यों चाहोगे ? जहां परमात्मा ने बनाया, ठीक ही जगह बनाया होगा। तुम हटाना क्यों चाहोगे पहाड़ ? पहाड़ की तो बात अलग, तुम एक तिनका न हटाना चाहोगे। जहां उसने बनाया, जैसा उसने बनाया, वैसा ही ठीक। मैं उससे ज्यादा बुद्धिमान थोड़े ही हूं। तो श्रद्धा पहाड़ हटा सकती है, लेकिन श्रद्धा तो तिनका भी नहीं हटाना चाहेगी। और अश्रद्धा से तो तिनका भी नहीं हट सकता और अश्रद्धा पहाड़ भी हटाना चाहती। अश्रद्धा श्रद्धा का बाना पहन लेती है।

तो ख्याल रखना, आलस्य कहीं असहाय अवस्था का बाना न पहन ले, नहीं तो धोखा हो जाएगा। तो बहुत-बहुत सम्हलकर चलने की बात है। करने पर भरोसा हो तो करो। खूब करने के लिए उपाय पड़े हैं। प्राणायाम करो, आसन करो, सिर के बल खड़े होओ, माला जपो, मंदिरों में जाओ, उपवास, व्रत, हजार ढंग हैं करने के। ढंग ही ढंग हैं करने के। कर लो।

मगर, अगर असहाय अवस्था समझ में आने लगी हो, अब तो मत पूछो कि क्या करूं। अब असहाय हो जाओ। करने को कुछ बचा नहीं, करनेवाला नहीं बचा। क्रांति घटती है उस दशा में। अपूर्व है दशा वह। आलस्य की नहीं है। अकर्मण्यता की भी नहीं है। अहंकार-शून्यता की है। और तब ऐसी घड़ी आ सकती है :

तू ऐसे जी कि जमाना बइख्तयारे तमाम
तेरी गरीबी तेरी बेबसी पे नाज करे।

उसी गरीबी, उसी बेबसी से परमात्मा मिल सकता है। तुम्हारा जीवन अपूर्व-रूप से प्रसाद से भर सकता है। तुम्हारे जीवन में उत्सव, फूल खिल सकते हैं, गीत झर सकते हैं। तुम भी एक दिन पद घुंघरू बांध, मीरा की भांति नाच सकते हो। लेकिन ध्यान रहे : परमात्मा ही नाचेगा तुम्हारे भीतर; पैर तुम्हारे होंगे, नाच परमात्मा का ही होगा।

दूसरा प्रश्न : कोई प्रश्न नहीं है। यह बस एक प्रार्थना है। मन्सूर और सरमद के अफसाने पुराने हो गये। ऐ रजनीश, मेरे लिए किस्सा नया तजबीज कर। क्या मेरी प्रार्थना सुनी जाएगी ?

★

'दिनेश'! इस जगत में नया कुछ भी नहीं है। सूरज के तले नया कुछ भी नहीं। जो तुम्हें नया जैसा मालूम पड़ता है, उसका इतना ही अर्थ है कि इतिहास का तुम्हें पता नहीं है। जो तुम्हें नया जैसा मालूम पड़ता है, नया इसलिए मालूम पड़ता है, क्योंकि अतीत में वह जो बार-बार हुआ है उसकी तुम्हें स्मृति नहीं है, उसका तुम्हें बोध नहीं है।

इस जगत में नया कुछ भी नहीं है। इससे तुम जल्दी से यह नतीजा मत निकाल लेना कि इस जगत में सब पुराना है। क्योंकि जब नया ही कुछ नहीं है तो पुराना

कैसे हो सकता है? नया हो तो ही पुराना हो सकता है। जो आज नया है वह कल पुराना हो जाएगा। लेकिन अगर नया कभी होता ही नहीं तो पुराना भी नहीं हो सकता। नया और पुराना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

तो पहले तो मैं तुम से कहना चाहता हूं : इस जगत में नया कुछ भी नहीं है। जो हो रहा है, सदा होता रहा है। जो हो रहा है, हजार बार होता रहा है। जो हो रहा है, वह अनंत बार हो चुका है और अनंत बार होगा।

और दूसरी बात तुमसे कहना चाहता हूं : तुम यह नतीजा मत लेना कि मैं कह रहा हूं कि जगत में सब पुराना है। पुराना तो हो ही कैसे सकता है ? जब नया ही नहीं होता तो पुराना कैसे होगा ? बूढ़ा होना हो तो जवान होना जरूरी है पहले। जवानी के बिना बुढ़ापा नहीं होता। जिस दिन जवानी नहीं होगी, उस दिन बुढ़ापा नहीं होगा।

तुम एक कार खरीद लिये थे पिछले वर्ष, वह पुरानी पड़ गयी अब, क्योंकि पिछले वर्ष नयी थी। नयी न होती तो पुरानी नहीं पड़ सकती थी।

नया और पुराना साथ-साथ जुड़े हैं। विपरीत नहीं है, शत्रु नहीं हैं--संगी-साथी हैं; प्रणय-सूत्र में बंधे हैं। सात चक्कर उनमें पड़े हैं; उनकी भांवर पड़ गयी है। नया और पुराना पति-पत्नी हैं। अलग होते ही नहीं, तलाक का उपाय भी नहीं है। तो न तो इस जगत में कुछ नया है, न इस जगत में कुछ पुराना है। फिर क्या है ? सब शाश्वत है, सनातन है। पुरातन नहीं--सनातन। ऐसा ही है। जब तुम देखोगे, तुम्हें नया लगेगा।

ऐसा ही समझो : जब कोई जवान आदमी पहली बार प्रेम में पड़ता है तो वह सोचता है : अहा ! ऐसा प्रेम दुनिया में कभी घटा ही नहीं। सभी जवानों को ऐसा होता है कि ऐसा प्रेम कभी हुआ ही नहीं। सब प्रेम फीके पड़ गये। सब प्रेम दो कौड़ी के हो गये। करोड़ों-अरबों लोग इस जमीन पर रहे हैं और सभी को यह भ्रम हुआ है। सभी जवान थे और सभी ने प्रेम किया है। और सभी ने जब प्रेम किया है तो ऐसा ही सोचा है कि जो मुझे हो रहा है, ऐसा कभी नहीं हुआ।

मेरे पास रोज लोग आते हैं। वे कहते हैं : यह प्रेम ही और है। ऐसा तो कभी हुआ ही नहीं था। ऐसा किसी को हुआ ही नहीं।

लोग मुझसे कहते हैं : कैसे अपना हृदय आपको हम बतायें ? यह बिलकुल ऐसी नयी बात हो रही है, अपूर्व हो रही है।

और मैं समझता हूं उनकी तकलीफ। उन्हें और दूसरों के प्रेमों का तो पता भी नहीं, क्योंकि दूसरे के हृदय में प्रवेश का उपाय नहीं है।

ऐसा ही समझो कि तुम्हारी बगिया में गुलाब की झाड़ी में आज फूल खिला। यह खिला हुआ फूल अगर सोचे कि ऐसा कभी नहीं हुआ, तो ठीक ही सोच रहा है, क्योंकि अतीत के फूलों से तो इसका कोई मिलना नहीं हुआ। जब वे थे, तब यह

नहीं था। अब वे चले गये हैं, तब इसका आगमन हुआ है। और भविष्य के फूलों से भी इसका कोई मिलना नहीं हुआ। लेकिन झाड़ी से तो पूछो, जिस पर न मालूम कितने फूल खिले और न मालूम कितने फूल गिरे! उस झाड़ी से तो पूछो! यह नया फूल जो अभी उठा है सुबह-सुबह, रात की ओस की बूंदों से ताजा, सुबह की सूरज की किरणों में सिर उठाये, पक्षियों का गीत सुनता--अगर इसे यह वहम होता हो कि मेरे जैसी घटना कभी नहीं घटी! ऐसा सौंदर्य कब घटा, ऐसी लाली, ऐसी ताजगी कब घटी! कभी नहीं घटी! तो यह भी गलत नहीं कह रहा है, क्योंकि इसे पहले फूल घटे, उनका कुछ पता कैसे हो? और आगे भी फूल घटते रहेंगे, उसका पता कैसे हो? इसके पास जो बौड़ियां हैं वे भी फूल बनेंगे, इसका पता कैसे हो? और नीचे जो कल के खिले फूलों की पंखुड़ियां गिर गई हैं, वे भी कभी फूल थीं--इसका इसे पता कैसे हो?

ऐसी ही दशा तुम्हारी है, दिनेश।

जीवन वर्तुलाकार है। वर्षा आती है। गर्मी आती है। सर्दी आती है। घूमता रहता है चाक। फिर वर्षा आती है। फिर वही होता है। फिर वही होता है। सुबह होती है, सूरज निकलता है। सांझ होती है, सूरज ढल जाता है। फिर सुबह होती है। दिन आता, रात आती, फिर दिन आता है। ऐसा ही होता रहता है। यह शाश्वत चक्र है। इसीलिए इसको हमने संसार कहा है।

'संसार' शब्द का अर्थ होता है: चाक, जो घूम रहा है; व्हील, जो घूमता चला जाता है।

लेकिन हमारी जिंदगी छोटी है। सत्तर साल की जिंदगी में हम कुछ जान पाते हैं थोड़ा-बहुत। हमारा बोध संकीर्ण। पहले भी लोग हम से हुए हैं। उन्होंने भी ऐसा ही चाहा है, उन्होंने भी ऐसा ही जीया है--इसका हमें पता नहीं होता।

तुम जब पद की आकांक्षा में दौड़ते हो तो तुम सोचते हो तुम नये दौड़ने वाले हो, तुम नये धावक! तो फिर नेपोलियन और सिकंदर और तैमूर और चंगीज और नादिर तुम्हें याद नहीं।

जब तुम्हें पहली दफा समाधि घटित होगी, तब भी तुम्हें ऐसा लगेगा कि यह तो कभी किसी को नहीं हुआ। फिर बुद्ध और महावीर और मीरा और चैतन्य और कबीर...? जब तुम्हारा परमात्मा से पहली दफा मिलन होगा तब भी ऐसा लगेगा कि ऐसा तो कभी नहीं हुआ। तुम्हें तो कभी नहीं हुआ था पहले, यह सच है। तुम्हें नया हो रहा है, लेकिन यह घटना जगत में नयी नहीं है। यह शाश्वत है।

मनुष्य का मन नये के लिये बड़ा आतुर है। मनुष्य का मन उत्तेजना खोजता है। नये में उत्तेजना होती है। मनुष्य का मन सदा नये की तलाश करता है। तुमने आज जो भोजन किया, कल भी करना पड़े तो मन राज़ी नहीं होता। हालांकि आज जब किया था, तुमने बड़ी प्रशंसा की थी।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मुझ से कह रही थी कि मेरे पति को क्या हो गया? उनका दिमाग कुछ ठिकाने पर नहीं है। आपके पास आते हैं, उन्हें कुछ समझाएं।

मैंने पूछा: मामला क्या है? कारण क्या है तेरा ऐसा सोचने का?

उसने कहा कि सोमवार को भिंडी बनायी थी, बोले खूब अच्छी है। बड़ी प्रशंसा की। तो मंगल को भी बनायी। मंगल को कुछ नहीं बोले। बुध को भी बनायी, तो बड़े बेरुखे मन से भोजन किया। बृहस्पति को भी बनायी, तो बड़े भन्नाये हुए थे। शुक्र को भी बनायी तो थाली उठाकर फेंक दी। दिमाग इनका ठीक है कि नहीं? इन्हींने कहा था खूब सुंदर, खूब स्वादिष्ट!

अब भिंडी कितने दिन खा सकते हो? मन नये की तलाश करता है। मन कहता है: कुछ नया तो चाहिए। इसलिए तो पति को पत्नी में सौन्दर्य नहीं दिखायी पड़ता, पत्नी को पति में कुछ रस नहीं दिखायी पड़ता। मन कहता है: कुछ नया चाहिए। पुराना मकान है, तो नया चाहिए। पुरानी कार है, तो नयी चाहिए। पुराने कपड़े हैं, तो नये कपड़े चाहिए। मन कहता है: कुछ नया चाहिए। नये की तलाश में मन तुम्हें भटकाता है। नये की तलाश में तुम संसार में यात्रा करते रहते हो। जो इस बात को समझ लेता है कि यहां नया कुछ भी नहीं है और पुराना भी कुछ नहीं, उसकी संसार की यात्रा समाप्त हो जाती है। इस सत्य को गहराई से समझना जरूरी है।

तुम पूछते हो: 'मन्सूर और सरमद के अफसाने पुराने हो गये।' नहीं हो सकते पुराने, क्योंकि नये ही कभी नहीं थे। पुराने कैसे हो जाएंगे? मन्सूर कुछ पहला तो आदमी नहीं था, जिसने अनलहक की घोषणा की। फिर उपनिषद के ऋषियों का क्या हुआ, जिन्होंने कहा अहं ब्रह्मास्मि! मैं ब्रह्म हूं! मन्सूर ने वही कहा था: 'अनलहक! मैं सत्य हूं! मैं ब्रह्म हूं! मैं परमात्मा हूं!' मन्सूर को ही थोड़े पहली दफा सूली लगी, फिर जीसस का क्या हुआ? फिर सुकरात का क्या हुआ? सरमद का ही थोड़े सिर कटा, और भी बहुत सिर कटे हैं।

सरमद और मन्सूर के अफसाने कभी नये ही नहीं थे, तो पुराने कैसे हो सकते हैं? अफसाना तो एक ही है, पात्र बदल जाते हैं। खेल तो वही है। कभी बुद्ध खेलते उस खेल को, कभी महावीर खेलते, कभी पतंजली, कभी मुहम्मद, कभी जरथुस्त्र। खेल वही है। हालांकि भाषा भी बदल जाती है। पात्र के बदलने के साथ-साथ रंग-ढंग भी बदल जाता है। लेकिन रंग-ढंग तो ऊपर-ऊपर की बातें हैं, भीतर राज की बात वही है, एक ही है।

जीसस सूली पर लटके, कि मन्सूर सूली पर लटके, कि सरमद का सर काटा जाए, कि सुकरात को जहर पिलाया जाए--कहानी तो वही है।

पिछले वर्ष जो फूल आये थे, वे फिर-फिर आएंगे; हालांकि हर बार देह अलग होगी, पर आत्मा वही होगी।

नये की आकांक्षा विषाद में ले जाएगी, क्योंकि नया मिला नहीं कि पुराना होना शुरू हो जाता है।

बायरन, अंग्रेजी का बड़ा कवि हुआ। कहते हैं, उसने सैंकड़ों स्त्रियों को प्रेम किया। वह जल्दी चुक जाता था, दो-चार दिन में ही एक स्त्री से चुक जाता था। सुंदर था, प्रतिष्ठित था, महाकवि था। व्यक्तित्व में उसके चुंबक था, तो स्त्रियां खिंच जाती थीं--जानते हुए कि दो-चार दिन बाद दूध में से निकाल कर फेंकी गयी मक्खियों की हालत हो जाएगी। मगर दो-चार दिन भी बायरन के साथ रहने का सौभाग्य कोई छोड़ना नहीं चाहता था। कहते हैं : लोग इतने डर गये थे बायरन से कि बायरन जिस रेस्त्रां में जाता, पति अपनी पत्नियों के हाथ पकड़कर दूसरे दरवाजे से बाहर निकल जाते। सभा-सोसायटियों में बायरन आता तो लोग अपनी पत्नियों को न लाते। थी कुछ बात उस आदमी में। कुछ गुरुत्वाकर्षण था। मगर एक स्त्री उससे झुकी नहीं। जितनी नहीं झुकी, उतना बायरन ने उसे झुकाना चाहा। लेकिन उस स्त्री ने एक शर्त रखी कि जब तक विवाह न हो जाए, तब तक मेरा हाथ भी न छू सकोगे। विवाह पहले, फिर बात।

स्त्री सुंदर थी। और ऐसी चुनौती कभी किसी ने बायरन को दी भी नहीं थी। स्त्रियां पागल थीं उसके लिए। उसका इशारा काफी था। और यह स्त्री जिद पकड़े थी और स्त्री सुंदर थी। सुंदर चाहे बहुत न भी रही हो, लेकिन उसकी चुनौती ने उसे और सुंदर बना दिया। क्योंकि जो हमें पाने में जितना दुर्गम हो, उतना ही आकर्षित हो जाते हैं हम। एवरेस्ट पर चढ़ने का कोई खास मजा नहीं, पूना की पहाड़ी पर भी चढ़ो तो भी चलेगा; मगर एवरेस्ट दुर्गम है, कठिन है। कठिन है, यही चुनौती है।

एडमन्ड हिलेरी जब पहली दफा एवरेस्ट पर चढ़ा और लौट कर आया तो उससे पूछा गया कि आखिर क्या बात थी, किस लिए तुम एवरेस्ट पर चढ़ना चाहते थे? तो उसने कहा : किस लिए! क्योंकि एवरेस्ट अन-चढ़ा था, यह काफी चुनौती थी। यह आदमी के अहंकार को बड़ी चोट थी। एवरेस्ट पर चढ़ना ही था। चढ़ना ही पड़ता। हालांकि वहां पाने को कुछ भी नहीं था।

वह महिला एवरेस्ट बन गयी बायरन के लिए। बायरन दीवाना हो गया। महिलाएं उसके लिए दीवानी थीं, बायरन इस महिला के लिए दीवाना हो गया। और अंततः उसे झुक जाना पड़ा, विवाह के लिए राजी होना पड़ा। जिस दिन चर्च से विवाह करके वे उतरते थे सीढ़ियों पर, अभी उनके सम्मान में, स्वागत में जलायी गयी मोमबत्तियां बुझी भी न थीं। अभी मेहमान जा ही रहे थे। अभी चर्च की घंटियां बज रही थीं। वह उस स्त्री का हाथ पकड़कर सीढ़ियां उतर रहा है और तभी एक क्षण ठिठककर खड़ा हो गया। एक स्त्री को उसने सामने से रास्ते पर गुजरते देखा। बायरन, ऐसे आदमी ईमानदार था। उसने अपनी पत्नी को कहा : सुनो। तुम्हें दुख तो होगा, लेकिन सच बात मुझे कहनी चाहिए। कल तक मैं दीवाना था, लेकिन जैसे ही तुम्हारा हाथ मेरे हाथ में आ गया और हम विवाहित हो गये हैं, मेरा सारा रस चला गया। तुम पुरानी पड़ गयी। अभी कोई संबंध भी नहीं बना है, लेकिन तुम पुरानी पड़ गयी। और वह जो स्त्री सामने से गयी है गुजरती हुई, एक क्षण को मैं उसके प्रति मंत्रमुग्ध हो गया। मैं तुम्हें भूल ही गया कि तुम्हारा हाथ मेरे हाथ में है। मुझे तुम्हारी याद भी नहीं रही। यह मैं तुमसे कह देना चाहता हूं। मेरा रस खतम हो गया, चूंकि तुम मेरे हाथ में हो। मेरा रस समाप्त हो गया।

तुम शायद इतने ईमानदार न भी होओ, लेकिन तुमने ख्याल किया है : जिस चीज को पाने के लिए तुम परेशान थे...। एक सुंदर कार खरीदना चाहते थे, वर्षों धन कमाया, मेहनत की, फिर जिस दिन आकर पोर्च में गाड़ी खड़ी हो गयी, तुमने उसको चारों तरफ चक्कर लगाकर देखा और छाती बैठ गयी, कि बस हो गया। अब? अब क्या करने को है? शायद एकाध दिन उमंग रही, राह पर निकले कार लेकर; लेकिन कार उसी दिन से पुरानी पड़नी शुरू हो गयी, जिस दिन से तुम पोर्च में ले आये। अब रोज पुरानी ही होगी। और रोज-रोज तुम्हारे और उसके बीच का जो रस था वह कम होता चला जायेगा। इसी कार के लिए तुम कई दिन सोये नहीं, रात सपने देखे, दिन सोचा-विचारा--और यही अब तुम्हारे पोर्च में आकर खड़ी है और इसकी याद भी नहीं आती। यही तुम्हारे पूरे जीवन की कथा है।

मन नये की मांग करता है, लेकिन नया तो मिलते ही पुराना हो जाता है और फिर मन विषाद से भरता है। जो नये को मांगेगा, वह बार-बार दुख में पड़ेगा, क्योंकि नया पुराना होता है। शाश्वत को खोजो, जो नया भी नहीं है, पुराना कभी होता नहीं। जो सदा एक-सा है, एकरस है। उस एकरसता का नाम ही परमात्मा है।

परमात्मा नया है, ऐसा कहोगे? कि परमात्मा पुराना है, ऐसा कहोगे? दोनों ही बातें गलत होंगी। परमात्मा दोनों के अतीत है।

तुम पूछते हो : 'मन्सूर और सरमद के अफसाने पुराने हो गये।' नहीं हुए, क्योंकि वे नये ही कभी न थे। वे शाश्वत कहानियां हैं। वे पुराण हैं। यही फर्क है कहानियों में और पुराणों में। जो कहानी अखबार में छपती है, साप्ताहिक अखबार में छपती है, वह छपी नहीं कि पुरानी हो जाती है। राम-कथा पुरानी नहीं होती। कृष्ण की लीला पुरानी नहीं होती। क्यों? शाश्वत की भनक है। कितनी बार रामलीला देखी! तुम जरा सोचो, इतनी बार तुम एक फिल्म देख सकते हो? पागल हो जाओगे। कितनी ही अच्छी फिल्म हो, दुबारा देखोगे तो कुछ रस न मालूम पड़ेगा। लेकिन रामलीला कितनी बार देखी है, हर वर्ष होती है--कुछ बात है! कुछ अनूठी बात है! कुछ विस्मय-विमुग्ध कर देने वाली बात है!

तुम्हें पूरी कथा मालूम है। तुम्हें सब डायलॉग मालूम है कि अब रामचंद्रजी क्या कहने वाले हैं, कि अब सीताजी चुरायी जाएंगी। सब तुम्हें मालूम है। नया तो कभी-कभी होता है। नया कभी-कभी हो जाता है रामलीला में।

ऐसा एक गांव में हो गया था। जो आदमी रावण बना था और जो स्त्री सीता बनी थी, वह सच में ही उस स्त्री के प्रेम में पड़ा था। तो बड़ी गड़बड़ हो गयी। जब धनुष-बाण तोड़ने का समय आया और जोर से खबर आयी कि हे रावण, लंका में आग लगी है, उसने कहा : लगी रहने दो। आज तो सीता को लेकर ही जाऊंगा।

अब बड़ी मुश्किल खड़ी हो गयी। सब चौंककर बैठ गये होंगे। लोग, जो सो रहे होंगे, वे भी जग गये, कि ऐसा तो रामलीला में कभी हुआ नहीं; यह तो कुछ नयी ही बात हो रही है! रावण चला जाता है। लंका में आग लगी है, बेचारा भागता है लंका बचाने। इसी बीच रामचंद्रजी सीता को ले जाते हैं। फिर सारी कहानी शुरू हो जाती है। यह तो कहानी ही तोड़े दे रहा है। यह कह रहा है : सीता को लेकर जाएंगे। और वह सबसे मजबूत आदमी था गांव का। तो ही तो रावण बनाया था उसको। और रामचंद्रजी बेचारे जरा से छोकरे थे। वह एक रपट लगा देगा उनको, तो वे दुबारा कभी मंच पर न आएंगे फिर। लक्ष्मणजी भी घबड़ा गये। जनक महाराज भी घबड़ाये, क्योंकि यह आदमी खतरनाक है। और सीता भी घबड़ायी कि अगर यह ले जाना चाहे तो ले ही जाएगा। यह बात ही खतम हो गयी। रामलीला तो खतम ही हो गयी, यह दूसरा ही काम शुरू हो गया अब वहां।

और उसने फिर आव देखी न ताव, क्योंकि उसको फुरसत कहां! वह तो उठा और धनुष-बाण रखा था, वह तोड़कर उसके चार टुकड़े करके जनता में फेंक दिये। बात भी हो गयी पूरी। धनुष-बाण ही तोड़ना था, उसने तोड़ दिया। वह तो सीता को ले जाने की तैयारी करने लगा। अब रामचंद्रजी मुंह बाये बैठे हैं।

वह तो जनक बूढ़ा आदमी था और कई बार जनक का काम कर चुका था, उसे थोड़ी सद्‌बुद्धि आयी। उसने कहा : कुछ करना पड़ेगा, नहीं तो यह तो मामला ही खतम हो गया। दुनिया हंसेगी। और फिर यह रामलीला भी चलना है दस-बारह दिन, वह कैसे चलेगी? तो वह जल्दी से चिल्लाया कि भृत्यो, यह तुम मेरे बच्चों का खेलने का धनुष-बाण उठा लाये, शंकरजी का धनुष-बाण लाओ। परदा गिरवाया। किसी तरह समझा-बुझाकर रावण को बाहर निकाला। दूसरे आदमी को जल्दी से रंग पोतकर रावण बनाया, क्योंकि यह आदमी फिर गड़बड़ कर दे। तब रामलीला चली।

कभी-कभी ऐसा होता है, लेकिन अक्सर तो रामलीला वही की वही है। कभी-कभी ऐसा हो जाता है। ऐसा एक और गांव में हो गया। जब रावण को हराकर राम लौटने लगे और पुष्पक विमान में बैठने को ही जा रहे हैं कि रस्सी किसी ने जल्दी खींच दी। वह रस्सी में बंधा है पुष्पक विमान। वे बैठ ही न पाये और किसी ने

ऊपर से रस्सी खींच दी, वह पुष्पक विमान उठ गया। तो लक्ष्मण जी ने पूछा कि बड़े भैया, आपके पास टाइम टेबल हो तो देखें कि फिर हवाई जहाज कब आएगा। लड़के ही थे। तो उस लड़के ने सोचा कि यह तो गये। तो अब टाइम टेबल देखें तो। लोग बड़े चौंके कि टाइम टेबल और हवाईजहाज फिर कब आएगा!

कभी-कभी ऐसा होता है।

ऐसा एक बार और हुआ। हनुमानजी पहाड़ लेकर आए और वे अभी रस्सी पर चले आ रहे हैं। रस्सी उलझ गयी। अब वे लटके हैं। उतर भी नहीं सकते। वह जो आदमी रस्सी चलाने के चार्ज में था, उसको कुछ नहीं सूझा कि अब करना क्या, अब जनता भी हंसने लगी और लोग भी हैरान, और रामचन्द्रजी देख रहे हैं और लक्ष्मणजी मरे जा रहे हैं और हनुमानजी लटके। न वे उतरें, न जड़ी-बूटी आए। और यह सब सामने ही हो रहा है। रस्सीवाले को कुछ नहीं सूझा तो उसने रस्सी काट दी। तुम सोच सकते हो, जो होना था हुआ। हनुमानजी धड़ाम से गिरे। पहाड़ भी उनके ऊपर गिरा। रामचंद्रजी, जो सीखे बैठे थे, उन्होंने पूछा कि हनुमानजी, जड़ी बूटी ले आए? हनुमानजी ने कहा: ऐसी की तैसी जड़ी-बूटी की! पहले यह बताओ, रस्सी किसने काटी?

मगर यह कभी-कभी होता है, अन्यथा तो रामलीला वही है। फिर भी लोग प्रति-वर्ष देखते हैं। रामलीला कोई अफसाना नहीं है--पुराण है। उसमें कुछ शाश्वत है। कथा का ऊपरी जो आवरण है, वही सब कुछ नहीं है--भीतर आत्मा भी है। वह कोई फिल्म नहीं है। फिल्म में कोई आत्मा नहीं होती, सिर्फ देह होती है। एक बार देख ली, बात खत्म हो गयी। रामलीला में तो उतना अर्थ है जितना तुम खोजो। कृष्ण की लीला में तो उतना अर्थ है जितनी तुम्हारी समझ हो। जितनी तुम्हारी समझ बढ़ती जाएगी, नये-नये अर्थ प्रगट होंगे, नये-नये फूल, नयी-नयी सुगंध खिलेगी।

पुराण का अर्थ होता है--ऐसी कथा, जो शब्दों में सीमित नहीं है। शब्दों में है, लेकिन वस्तुतः शब्दों के पार है।

तुम कहते हो : 'मन्सूर और सरमद के अफसाने पुराने हो गये।' नहीं हुए, कभी नहीं होंगे। नये ही नहीं थे, पुराने कैसे होंगे? शाश्वत हैं!

'ऐ रजनीश, मेरे लिए किस्सा नया तजवीज कर।'

यह नये की आकांक्षा नर्क में भटकाती है। नये की आकांक्षा दुख में ले जाती है। नये की आकांक्षा का नाम ही संसार है। नया मिल भी जाएगा तो कितनी देर नया रहेगा, यह तो बताओ! मिला कि पुराना होना शुरू हो गया। हाथ में आया कि पुराना पड़ने लगा। आधी घड़ी बीती तो आधी घड़ी पुराना हो गया। और समय तो बीता जा रहा है।

तो नये के साथ कैसे सुख मिल सकता है? जब तक नया मिलता नहीं तब तक दुख रहता है कि अभी मिला नहीं; और जब मिलता है तो पुराना होने लगता है,

फिर दुख मिलता है। न मिले तो दुख है; मिल जाए तो दुख है। नये के साथ दुख का जोड़ है।

शाश्वत को खोजो ! शाश्वत में न दुख है न सुख। शाश्वत में आनंद है।

और यह नये का जो कुतूहल बना रहता है, उसको समझो। इससे होगा क्या ? यह ऐसे ही है, जैसे कोई खुजली उठ आती है। खुजलाना अच्छा लगता है, मगर उससे कुछ लाभ नहीं होता, नुकसान ही होता है। लहूलुहान हो जाओगे, फिर पछताओगे।

नये की खोज खुजलाहट जैसी है। यह तुम्हें दिखायी पड़ने लगे तो तुम न नये को खोजोगे और न फिर कभी कुछ पुराना पड़ेगा। तब तुमने जीवन में एक नया आयाम खोज लिया। नये आयाम से मेरा अर्थ ?--तुम समय के बाहर हो गये। कालातीत से संबंध जुड़ा। वही पुराण है।

ये सब पुराण-पुरुष हैं--मन्सूर, सरमद, जीसस, सुकरात। ये सब पुराण-पुरुष हैं। इन्होंने जो शाश्वत है उसको ही समय की धारा में प्रगट किया है। क्या है इनकी सारी कथाओं का सार ? इतना ही है कि सत्य जब भी आएगा, लोग इतने झूठ हो गये हैं कि सत्य को सूली दी जाएगी। सत्य जब भी प्रगट होगा, लोग नाराज होंगे। लोग दुश्मन हो जाएंगे, क्योंकि लोग झूठ में जीए हैं, झूठ में पगे हैं। झूठ लोगों की जिंदगी है।

फ्रेडरिक नीत्शे ने कहा है : आदमी बिना झूठ के नहीं रह सकता। फ्रेडरिक नीत्शे ने यह भी कहा है कि कोई आदमी के झूठ न छीने। आदमी झूठ के बिना जी ही नहीं सकता। उसे प्यारे झूठ दो और वह मस्त रहेगा और तुम्हारी पूजा करेगा। और तुमने उसके झूठ तोड़े और तुमने उसे कड़वा सत्य दिया, वह तुम्हारी गरदन काटेगा। जीसस को ऐसे ही थोड़े काटा। सरमद को ऐसे ही थोड़े मारा। इन्होंने सत्य कहा; जैसा था वैसा कह दिया। जैसा था वैसा कहोगे, तो हजारों लोग नाराज हो जाएंगे, क्योंकि उनके झूठ दिखायी पड़ने शुरू हो जाएंगे। इस दुनिया में कोई अपने झूठ को नहीं देखना चाहता।

कल एक मित्र ने पूछा था कि दृढ़ निश्चय करके आया हूं संन्यास का, मगर यहां आकर आपके सत्संग में बैठकर तो संन्यास का भाव ही चला गया। तो जब मैंने कल यह कहा कि अपने को धोखा मत दो, मन बहुत बेईमान है--तो उन्होंने आज लिखकर भेजा है कि सुनते वक्त तो ऐसा लगा कि आप ठीक कह रहे हैं, कि मन बेईमान है, यह मन शैतान है, इसकी सुनना ठीक नहीं; फिर जब यहां से बाहर चला गया और धीरे-धीरे आपका प्रभाव कम हो गया, तो मुझे लगा कि कहीं यह आदमी धोखेबाज तो नहीं ? फ्राड ! जालसाज तो नहीं कि ऐसी बातों में फंसाकर और मुझे संन्यास दिलवा दे ! अब वे पूछते हैं कि भगवान, आप कहिए, मैं क्या करूं ?

अब मैं तुमसे जो भी कहूंगा, तुम्हारा मन फिर उसमें फिर कुछ सोचेगा। असल में तुम यह चाहते हो कि मैं तुम से कह दूं : 'क्या रखा है संन्यास में ? तुम तो

संन्यासी हो ही। तुम तो परम संन्यासी हो। तुम तो भीतर से संन्यासी हो ही गये, बाहर के कपड़ों में क्या रखा है ? फिर तुम प्रसन्न हो जाओगे। तुम कहोगे : हां, यह आदमी... सच्चा भगवान मिल गया ! फिर तुम मस्त अपने घर जाओगे, क्योंकि तुम्हारे मन की कह दी गयी। तुम्हारे मन की कह दी जाए तो तुम राजी हो जाते हो।

लोग मेरे पास पूछने आते हैं और वे राह देखते हैं कि उनकी मन की मैं कहूं। अगर उनकी मन की कहूं तो बिलकुल ठीक है, एकदम मेरे चरणों में गिर जाते हैं कि आपने बिलकुल सत्य कह दिया। और मैं जानता हूं कि उनके मन का पड़ रहा है, इसलिए सत्य है। अगर उनके मन के अनुकूल न पड़े तो वे बड़े उदास हो जाते हैं, बड़े नाराज हो जाते हैं।

तुम अपने झूठ के लिए सहारे खोज रहे हो। तुम झूठ से छूटना नहीं चाहते। झूठ सत्य है-- ऐसा कोई तुम्हें समझाए, कोई तुम्हें बताए। तुम उससे राजी होते हो। इसलिए तो तुम पंडित-पुरोहित के पास जाते हो, क्योंकि उसे कोई मतलब नहीं है सत्य से। तुम्हारा जो झूठ है वह उसी को सत्य प्रमाणित करता है। सरमद को तुम क्षमा नहीं कर पाते। मन्सूर को तुम कैसे क्षमा करोगे ? वे तुम्हारे झूठों को कोई सहारा नहीं देते। वे बड़ी रोशनी प्रगट करते हैं कि तुम सबको अपने झूठ दिखायी पड़ जाएं। वे तुम्हारे चेहरे को झटक लेते हैं, ताकि तुम्हारा मुखौटा उखड़ जाए; तुम्हें दिखायी पड़ जाए कि यह तुम्हारा चेहरा नहीं। लेकिन तुम्हारे मुखौटे को कोई बाजार में झपट ले, बीच बाजार में लोगों के सामने झपट ले, तुम्हारे झूठ को झूठ कह दे और सिद्ध कर दे कि झूठ है--तुम कैसे उसे क्षमा करोगे ?

यह शाश्वत कथा है। सत्य क्षमा नहीं किया जा सकता है। सत्य को सूली दी जाती है। अलग-अलग ढंग से, लेकिन सत्य को सूली दी जाती है। लोग झूठ हैं, भीड़ उनकी है। वे नाराज होते हैं। यह अफ़साना नहीं है। यह कहानी नहीं है। यह जीवन की प्रक्रिया है। और जब भी सत्य आएगा, लोग नाराज होंगे। अनेक-अनेक तलों से नाराजगियां जाहिर करेंगे। मूढ़ हैं। झूठ से भरे हैं। लेकिन, यह बात स्वीकार नहीं कर सकते हैं। स्वीकार ही कर लें तो झूठ के बाहर आने लगें। स्वीकार कर लें तो मूढ़ता के बाहर आने लगें। यह स्वीकार नहीं कर सकते। और जो भी जगाएगा उस पर नाराज हो जाते हैं।

ऐसा पहले भी हुआ, आज भी हो रहा है, कल भी होता रहेगा। ऐसा सौभाग्य का दिन कभी न आएगा, लगता है, जब सत्य को सूली न लगे, जब सत्य का तिरस्कार न हो, जब सत्य को जहर न पिलाया जाए। ऐसा, आशा नहीं लगती कि कभी ऐसा होगा। इसलिए नहीं होगा कि यह जो भीड़ है, यह सत्य के साथ जी ही नहीं सकती।

तुम अपने झूठ पहचानना शुरू करो। कितने तरह के झूठ तुमने बोल रखे हैं ! कितने तरह के झूठ तुमने सम्हाल रखे हैं ! उन झूठों में तुमने सुरक्षा बना ली है।

तुम कहते हो : यह मेरी पत्नी है, यह मेरा पति है । तुम बिल्कुल अकेले हो; न कोई पत्नी है, न कोई पति है । लेकिन अकेलेपन से डरते हो, तो तुमने संबंध बना लिए हैं । फिर संबंधों को ठीक से बिठा लेने के लिए बड़े रीति-रिवाज बना लिये हैं । सात फेरे लगाते हो, मंत्र पढ़े जाते हैं । पंडित-पुरोहित शास्त्रों से वचन उद्धृत करते हैं। बैंड-बाजे बजाये जाते हैं, भीड़-भाड़ इकट्ठी की जाती है । यह सब सिर्फ एक बात को तुम्हारे मन पर ठीक से खींच देने के लिए कि यह संबंध बिल्कुल पक्का हो गया। सिर्फ इस बात के लिए कि यह संबंध बिल्कुल पक्का हो गया, अब तुम अकेले नहीं हो; कोई तुम्हारा संगी-साथी है, जीवन-मरण का साथी है ।

कौन किसके जीवन-मरण का साथी ! न तो जीवन का कोई साथी है, न मरण का कोई साथी है । धोखे-धड़ी में साथ है । पत्नी अकेली है; वह भी चाहती है अकेले होने में डर लगता है, अकेले में घबड़ाहट होती है, कोई साथ चाहिए, तो हाथ पकड़े है । तुम भी अकेले हो। तुम लाख कहो कि तुम मर्द बच्चे हो, कुछ फर्क नहीं पड़ता। अकेले हो । और तुम भी डर रहे हो । पत्नी मौजूद रहती है तो तुम भी अकड़े रहते हो।

किसी पति से झगड़ा मत लेना, अगर उसकी पत्नी मौजूद हो; क्योंकि पत्नी की मौजूदगी में वह एकदम बहादुर हो जाता है । पत्नी को दिखाना पड़ता है न उसको कि बहादुर ! अगर पत्नी न हो तो वह अपनी पूंछ दबाकर निकल जाए, लेकिन पत्नी के सामने अगर तुमने छेड़ दिया तो वह बिल्कुल पागल हो जाएगा । सिद्ध करना है पत्नी के सामने, क्योंकि यह पत्नी यही तो भरोसा माने बैठी है कि एक बलशाली व्यक्ति का सहारा मिल गया; एक बड़े वृक्ष के साथ मेरी लता का जोड़ हो गया है ! पत्नी के सामने दब्बू से दब्बू पति भी एकदम बहादुर हो जाता है ।

पत्नी धोखा खा रही है । पति धोखा खा रहा है । दोनों धोखा खाना चाहते हैं, इसलिए खा रहे हैं। दोनों अकेले हैं । और जब दो अकेलेपन मिलते हैं तो अकेलापन दोहरा हो जाता है, कम नहीं होता, ख्याल रखना । कैसे कम हो जाएगा ? कुछ गणित तो सोचो ! दो बीमार आदमी एक कमरे में हैं तो बीमारियां दुगनी हो जाती हैं; कम नहीं होतीं। दो उदास आदमी एक साथ जोड़ दो तो उदासी दोहरी हो जाती है । दो चिंतातुर आदमी जोड़ दो, दोहरी चिंता हो जाती है । दो पागलों को साथ बिठा दो, पागलपन हजारगुना हो जाता है, दुगना ही नहीं । गुणनफल होता है ।

लेकिन हम अपने को मनाये रखते हैं कि सब ठीक है । कुछ भी ठीक नहीं ! तुम किसी से पूछते हो कि कहो भाई, सब कैसा चल रहा है ; वह कह रहा है : सब ठीक है। जरा पूछो भी फिर से कि सच कह रहे हो, सब ठीक है ?लेकिन हम ऐसा कहते नहीं, क्योंकि वह अशिष्ट होगा । क्यों बेचारे का राग छेड़ना, क्यों किसी का दुख, क्यों किसी की रग छेड़नी ! क्यों किसी का घाव छेड़ना ! तुम भी कहते हो, हम भी मजे में, तुम भी मजे में ।

कोई भी मजे में नहीं है । चेहरे हैं ! बनाकर घूम रहे हैं । इन्हीं चेहरों को झपट लेता है कोई मन्सूर । और कह देता है और तुम झूठ हो; जरा भी ठीक नहीं हो ! और तुम्हारी जिंदगी बिल्कुल नर्क है । सुख तुमने जाना नहीं है, सिर्फ वहम में हो । दुख ही दुख जाना है ।

कोई मन्सूर एकदम खोलकर रख देता है तुम्हारे हृदय के नासूर । कहता है : जरा यहां तो देखो, यह हो तुम !

तुम नाराज न होओ तो क्या करो ? तुम कैसे बरदाश्त करो अपनी यह पीड़ा ? तुम किसी तरह भुलाये बैठे थे, अपने घाव को छिपा लिया था, मल्हमपट्टी कर ली थी, ऊपर से फूल का गजरा रख दिया था । सब ठीक मालूम हो रहा था । फूल की गंध आ रही थी । यह आदमी आया, इसने फूल का गजरा हटा दिया, मल्हमपट्टी उखेड़ दी, भीतर की मवाद बहने लगी । दुर्गंध आने लगी । तुम नाराज होओ, यह भी स्वाभाविक है । धन्यभागी हैं वे, जो उनके मुखौटे छीने जाने पर नाराज नहीं होते, बल्कि अनुग्रह मानते हैं । बुद्धिमान हैं वे, जो नाराज नहीं होते, अनुग्रह मानते हैं । क्योंकि एक दफा मुखौटा छिन जाए, तो असली चेहरे की खोज शुरू हो सकती है । और एक बार झूठ से नाता टूट जाए, तो सत्य से नाता जुड़ सकता है । सत्य से नाता जुड़ ही नहीं सकता जब तक झूठ से नाता जुड़ा हुआ है । सांत्वनाओं से नहीं होगा कुछ-- सत्य चाहिए । झूठी आशाओं से नहीं होगा कुछ, सत्य का सीधा अनुभव चाहिए ।

ऐसा पहले हुआ, ऐसा आगे भी होता रहेगा । नया इस पृथ्वी पर कुछ भी नहीं होता । पुराना भी इस पृथ्वी पर कुछ नहीं है । सब शाश्वत है । वही खेल चल रहा है । ज्ञानी-अज्ञानी के बीच वही संघर्ष । कुछ बदलाहट नहीं मालूम पड़ती । पुराने से पुराने शास्त्र जो कहते हैं, वैसा का वैसा आज है, कोई फर्क नहीं पड़ा है ।

छह हजार वर्ष पुरानी मनुष्य की खाल पर लिखी गयी एक सूचना चीन में मिली है । जो लिखा है, वह ऐसा है, जो आज भी सच है। लिखा है कि 'बेटे बाप का आदर नहीं करते । धर्म विनष्ट हो गया है । नीति नष्ट हो गयी है । महा अंधकार का युग आ गया है ।' छह हजार साल पहले ! और यही तो तुम अब भी कहते हो । यही तुम सदा कहते रहे हो । कुछ फर्क नहीं हुआ है । जो पहले था, वैसा ही आज है । जैसा आज है, वैसा ही आगे भी होगा ।

लेकिन एक शाश्वत खेल चल रहा है । ज्ञानी आते हैं, चमत्कार है । इतने महा अज्ञान में भी कभी-कभी कोई ज्ञानी पैदा हो जाता है । इतने मरुस्थल में कभी-कभी कोई मरूद्यान, कहीं कोई जल का झरना प्रगट हो जाता है, थोड़ी हरियाली हो जाती है, थोड़े फूल खिलते हैं, वृक्ष होते हैं, थोड़ी शीतल बयार बहती है, थोड़ा वसंत आता है । लेकिन पूरा मरुस्थल नाराज हो जाता है । क्योंकि जब तक मरूद्यान नहीं होता, मरुस्थल को यह पता नहीं होता कि मैं मरुस्थल हूं । मरूद्यान

को देखकर तुलना पैदा होती है।

जीसस तुम्हारे पास में खड़े हो जाते हैं, तब तुम्हें पता चलता है तुम महाअंधकार हो। वह जो ज्योतिर्मय पुरुष पास में खड़ा है, उसकी ज्योति तुम्हारे अंधकार को दिखाती है। जो बुद्धिहीन हैं, वे उस ज्योति को बुझाने में लग जाते हैं, ताकि उनको अपना अंधकार न दिखायी पड़े। जो बुद्धिमान हैं, वे अपने अंधकार को मिटाने में लग जाते हैं। वे उस ज्योति से ज्योति लेने लगते हैं। अंधकार मिट जाए तो फिर दिखायी नहीं पड़ेगा। दोनों का लक्ष्य एक ही है। समझना!

वह जो आदमी जीसस का दीया बुझाना चाहता है, उसका भी लक्ष्य यही है कि मुझे मेरा अंधकार न दिखाई पड़े। मगर वह गलत काम कर रहा है। जीसस का दीया बुझ जाएगा, इससे उसका अंधकार नहीं मिटेगा, बल्कि अंधकार और सघन हो जाएगा। शायद जीसस की कुछ किरणें उसके अंधकार को कम भी करती थीं। शायद जीसस की लपट से वह लपट उधार भी ले सकता था। अपने दीये को पास ले जाता। जीसस का सत्संग करता। साध-संगत में बैठता। तो शायद घटना घट जाती। अंधकार सच में ही मिट जाता। मगर आकांक्षा उसकी समझो। आकांक्षा उसकी है कि वह नहीं चाहता कि मैं अंधकारपूर्ण। मगर काम गलत कर रहा है।

जो आदमी जीसस को प्रेम करने लगता है, वह भी यही चाहता है कि मैं अंधकारपूर्ण न रहूं, लेकिन वह ठीक मार्ग पर चल रहा है। वह जीसस को नहीं मिटाता; वह अपने को मिटाता है, ताकि जीसस के लिए जगह खाली हो जाए। देखना, दोनों की आकांक्षा एक जैसी है।

तुमने प्रसिद्ध कहानी सुनी है न कि अकबर एक दिन दरबार में आया और उसने एक लकीर खींच दी दीवाल पर और अपने दरबारियों से कहा: इस लकीर को बिना छुए छोटा कर दो। अब बिना छुए कैसे लकीर छोटी हो? वे दरबारी चिंतित हुए। उन्होंने कहा: यह तो बेबूझ पहेली है। छूना तो पड़ेगा ही। छोटा करेंगे तो छूना पड़ेगा। मिटानी पड़ेगी लकीर, थोड़ी कम करनी पड़ेगी, काटनी पड़ेगी, तो छोटी होगी। फिर बीरबल उठा और उसने एक बड़ी लकीर उसके नीचे खींच दी। उसने उस लकीर को छुआ नहीं, सिर्फ उसके नीचे एक बड़ी लकीर खींच दी। वह लकीर छोटी हो गई।

तुम जानते हो, यही नाराजगी है। मन्सूर तुम्हारे पास खड़ा होता है—बड़ी लकीर! तुम एकदम छोटे हो जाते हो। तुम छोटे नहीं होना चाहते। तुम्हें अपमान लगता है: इस आदमी ने छोटा कर दिया! तुम इस लकीर को मिटा देते हो। इस लकीर के मिटने से तुम्हारा दंश मिट जाता है। तुम फिर वैसे के वैसे हो गये, जैसे थे, कुछ बदलाहट न हुई। अवसर चूक हो गये। एक महा अवसर चूक गये—क्रांति का, रूपांतरण का! जो समझदार है, वह इस बड़ी लकीर से बड़ी लकीर होने की कला सीख लेता है। वह कहता है: ठीक, मैं छोटी लकीर

हूं, लकीर तो हूं न! तुम बड़ी लकीर हो—लकीर ही हो न! हम दोनों लकीर हैं—मैं छोटी, तुम बड़ी। तो छोटी लकीर बड़ी हो सकती है। नाराज क्या होना! तुम अच्छे आए! तुमने मुझे याद दिलायी कि मेरी लकीर बड़ी हो सकती है। तुम्हारा मैं अनुग्रह मानता हूं। जो ऐसे बुद्धिमान हैं, वे शिष्य हो जाते हैं। जो बुद्धू हैं, वे दुश्मन हो जाते हैं। बुद्धू बहुत हैं। बुद्धिमान बहुत कम हैं। इसलिए यह कहानी पहले भी हुई, अब भी हो रही है, आगे भी होगी।

तीसरा प्रश्न: सुना है कि जिंदगी चार दिनों की होती है और मिलन पांचवें दिन होता है। तो क्या करूं?

★

पांचवां दिन चार दिनों के पहले है। पांचवां दिन चार दिनों में किसी भी दिन आ सकता है। दूसरे दिन आ सकता है, तीसरे दिन आ सकता है, चौथे दिन आ सकता है, पहले दिन आ सकता है।

पांचवां दिन का अर्थ होता है: परमात्मा से मिलन मृत्यु में होता है, जिंदगी चार दिन की है। चार दिनों में नहीं होता परमात्मा से मिलन, क्योंकि जिंदगी तुम्हारी है—अहंकार की है। मिलन होता है मृत्यु में। जो मिटता है, उसका मिलन होता है। वह पांचवां दिन है। वह जिंदगी के बाहर।

मरना सीखो। मरने की कला ही धर्म है। ऐसे मरने की कला कि फिर दुबारा पैदा भी नहीं होना पड़े। ऐसे मरने की कला कि मरे सो बिल्कुल मरे—सदा के लिए मरे!

> है बका का ख्वाहां तो तालिबे फना हो जा

असली जिंदगी चाहते हो तो फना हो जाओ। अस्तित्व चाहते हो—वास्तविक अस्तित्व—तो मिट जाओ।

> है बका का ख्वाहां तो तालिबे फना हो जा
> जिंदगी के मुतलाशी मर्गे आशना हो जा
> जीस्त के समझ मानी राज़ मौत का पा ले
> मर के बेनिशां हो जा, जी के लापता हो जा।

अगर जिंदगी का राज समझना हो तो मौत का राज समझ लो। मौत में कुंजी रखी है जिंदगी की। तुम जिंदगी में तलाशते रहते हो, इसलिए राज नहीं मिलता। राज उन्हें मिलता है, जो मृत्यु में तलाश लेते हैं।

तुमने कहानियां सुनी हैं न पुरानी! बच्चों की कहानियों में अब भी ऐसा आता है कि कोई राजा है, उसने अपने को बचाने के लिए अपनी जिंदगी एक तोते में रख दी है, अपनी आत्मा एक तोते में रख दी है। अब तुम राजा को कितना ही मारो, मार न पाओगे, क्योंकि उसकी जिंदगी तोते में है। तोते को मरोड़ दो, तोते की

गरदन मरोड़ दो, राजा मर जाएगा।

ये कहानियां बड़ी अर्थपूर्ण हैं। ये बच्चों की कहानियां हैं, बूढ़े भी इनको समझते नहीं हैं। इसका मतलब यह हुआ कि जहां तुम्हें जिंदगी दिखाई पड़ती है, वहां जिंदगी नहीं है—जिंदगी का राज कहीं और छिपा है। तुम सोच भी नहीं सकते, वहां छिपा है। छिपती ही चीजें ऐसी जगह हैं, जहां तुम सोच न सको। इसलिए जो होशियार हैं, वे चीजें ऐसी जगह छिपाते हैं जहां सोची न जा सकें।

जैसे समझो, तुम्हारे पास हीरा है और तुम्हारे घर में जो कूड़ा-कर्कट है, उसमें तुम छिपा दो, कोई चोर उसे न चुरा न सकेगा। कूड़ा-कर्कट में कोई हीरा छिपाता है! खोजेगा तिजोड़ी में खोजेगा, जहां बड़े ताले लटके होंगे। खोदेगा जमीन, वहां खोजेगा। कोई सोच भी नहीं सकता कि हीरा जो है, वह बाहर जो बाल्टी रखी है, जिस में घर का कूड़ा-कर्कट फेंका जाता है, उसमें छिपा होगा।

जिंदगी का राज मौत में छिपा है, कोई सोच भी नहीं सकता। मौत तो जिंदगी से उलटी है! जिंदगी का राज वहां क्यों होगा?

जीस्त के समझ मानी राज़ मौत का पा ले
मर के बेनिशां हो जा, जी के लापता हो जा।

इस ढंग से जीओ कि तुम्हारा पता खो जाए। इस ढंग से मरो कि तुम्हारा निशान भी न रह जाए।

है बका का ख्वाहां तो तालिबे फना हो जा
जिंदगी के मुतलाशी मर्गे आशना हो जा
जीस्त के समझ मानी राज मौत का पा ले
मरके बेनिशां हो जा जी के लापता हो जा
वस्ले दोस्त के तालब वस्ले दोस्त की खातिर
आरजू हो सरतापा सरबसर दुआ हो जा
ख्वाहिशों से दुनिया की दिल को अपने कर खाली
होके उसका ही रह जा उसकी ही रजा हो जा
दिल में हो ख्याल उसका आंख में हो जमाल उसका
गैर के तसव्वर से गैर आशना हो जा
शम्मे हुस्न से इसकी नूरे सिदक कर हासिल
शीशाये मुहब्बत में जल्वाये सफा हो जा
गैर और अपने का खुद ब खुद मिटेगा फरक
या मिटा दे अपना आप या खुद आशना हो जा
हर किसी से उल्फत कर, हर किसी की खिदमत कर
खादिमे बशर बन कर बंदा ए खुदा हो जा।

एक ही उपाय है: पांचवां दिन। चार दिन जिंदगी के। ये जिंदगी के चार दिन

ऐसे ही बीत जाते हैं—दो आरजू में, दो इंतजार में। दो मांगने में, दो प्रतीक्षा करने में। कुछ हाथ कभी लगता नहीं। पांचवां दिन असली दिन है। जब भी तुम्हें समझ आ गयी इस बात की, कि मेरा होना ही मेरे होने में अड़चन है... क्योंकि मेरे होने का मतलब है कि मैं परमात्मा से अलग हूं। मेरे होने का मतलब है कि मैं इस विराट से अलग हूं। मेरे होने का मतलब है कि मैं एक नहीं, संयुक्त नहीं, इस परिपूर्ण के साथ एकरस नहीं। यही तो अड़चन है। यही दुख है। यही नर्क है। दीवाल हट जाए। यह मेरे होने का भाव खो जाए। मृत्यु।

मृत्यु का अर्थ यह नहीं कि तुम जाकर गरदन काट लो अपनी। मृत्यु का यह अर्थ नहीं कि जाकर जहर पी लो। मृत्यु का अर्थ है: अहंकार काट दो अपना। मैं हूं तुझ से अलग, यह बात भूल जाए। मैं हूं तुझ में। मैं हूं ऐसे ही तुझ में जैसे लहर सागर में। लहर सागर से अलग नहीं हो सकती। कितनी ही छलांग ले और कितनी ही ऊंची उठे, जहाजों को डुबाने वाली हो जाए, पहाड़ों को डुबा दे-- लेकिन लहर सागर से अलग नहीं हो सकती। लहर सागर में है, सागर की है।

ऐसे ही तुम हो--विराट चैतन्य के सागर की एक छोटी-सी लहर। एक ऊर्मी! एक किरण! अपने को अलग मानते हो, वहीं अड़चन शुरू हो जाती है। वहीं से परमात्मा और तुम्हारे बीच संघर्षण शुरू हो जाता है।

और उससे लड़कर क्या तुम जीतोगे? कैसे जीतोगे? क्षुद्र विराट से कैसे जीतेगा? अंश अंशी से कैसे जीतेगा? लहर सागर से लड़कर कैसे जीतेगी? कितनी ही बड़ी हो, सागर के समक्ष तो बड़ी छोटी है। यह भाव तुम्हारा चला जाए, उसका नाम मृत्यु। मैं सागर की लहर हूं। सागर मुझ में, मैं सागर में। मेरा अलग-थलग होना नहीं है।

और उसी क्षण तुम पाओगे पांचवां दिन घट गया। फिर भी तुम जी सकते हो। बुद्ध का पांचवां दिन घटा, फिर चालीस साल और जीए। मगर वह जिंदगी फिर और थी। कुछ गुणधर्म और था उस जिंदगी का। उस जिंदगी का रस और था, उत्सव और था। फिर सच में जीए। उसके पहले जिंदगी क्या जिंदगी थी?

बुद्ध अपने शिष्यों को कहते थे: तुम अपनी जिंदगी उसी दिन से गिनना, जिस दिन से संन्यास लो; उसके पहले की जिंदगी गिनती मत करना। तो कभी-कभी बड़ी अनूठी घटना घटती थी। उस समय का एक बड़ा सम्राट प्रसेनजित बुद्ध के दर्शन को आया। वह पास ही बैठा था। तभी एक भिक्षु आया, जिसकी उम्र होगी कोई पचहत्तर वर्ष। बूढ़ा आदमी। उसने झुककर बुद्ध को नमस्कार किया। बुद्ध ने पूछा: भिक्षु...! वे अक्सर पूछते थे—अक्सर क्या, निरंतर ही, जो आता उसी से पूछते थे: भिक्षु, तेरी उम्र कितनी है? उस बूढ़े भिक्षु ने कहा: चार वर्ष, प्रभु!

प्रसेनजित तो बड़ा हैरान हुआ। उसने कहा: हद हो गयी! चार वर्ष! दो-चार वर्ष कम-ज्यादा कहे तो समझ में आ जाए, पचहत्तर का दिखता है, सत्तर का

होगा, पैंसठ का होगा कि अस्सी का होगा; मगर पचहत्तर साल का दिखने वाला आदमी चार साल का! सोचा कि शायद ठीक से सुन नहीं पाया। तो प्रसेनजित ने कहा कि महानुभाव, मैं ठीक से सुन नहीं पाया आपने क्या उत्तर दिया। जरा जोर से कहें। कितनी उम्र आप की?

उस बूढ़े ने कहा: महाराज, चार वर्ष। प्रसेनजित ने बुद्ध की तरफ देखा। बुद्ध हंसने लगे। उन्होंने कहा: तुम्हें शायद पता नहीं, हम किस तरह उम्र गिनते हैं। यह आदमी चार साल पहले संन्यस्त हुआ, तो यही इसकी उम्र है, बाकी इकहत्तर साल तो नींद में गये। सोया-सोया था! ध्यान की भनक ही न पड़ी थी। उस नींद को क्या गिनना! रात को क्या गिनना! अंधेरे को क्या गिनना! वह गिनती फिजूल है। इसलिए हम उस दिन से गिनते हैं जिस दिन से व्यक्ति ध्यान में उतरा। जिस दिन से व्यक्ति स्रोतापन्न हुआ, जिस दिन से उसने सत्य को खोजने की तलाश में पहला कदम उठाया--उस दिन से उम्र गिनते हैं।

बुद्ध का पांचवां दिन चालीस साल के थे तब आया। फिर चालीस साल और जीए; मगर ये जो चालीस साल थे, किसी और ही महिमा के! इनकी गरिमा और! यह परमत्मामय, यह भगवत्तापूर्ण! इन में क्षुद्रता न रही फिर, सीमा न रही फिर। चालीस साल तक लहर की तरह जीए, फिर पांचवां दिन आ गया। और फिर शेष चालीस साल तक सागर की तरह जीए।

पांचवां दिन आने दो! पांचवां दिन बड़े से बड़ा सौभाग्य है!

अंतिम प्रश्न: परमात्मा कहां है और मैं उसे कहां खोजूं?

★

परमात्मा कहां नहीं है? तुम कहां हो, जो उसे खोजोगे? ठीक प्रश्न यह होगा। तुमने एक बात तो मान ही ली कि मैं हूं, वहीं भूल हो रही है। उसी भूल के कारण दूसरी भूल हो रही है कि परमात्मा कहां है। जब तुम हो तो परमात्मा नहीं हो सकता।

तुमने कभी बच्चों की किताब में एक चित्र देखा? एक जवान स्त्री का चित्र होता है। गौर से देखते रहो तो थोड़ी देर में वह बूढ़ी का चित्र हो जाता है। फिर गौर से देखते रहो तो फिर जवान स्त्री का चित्र हो जाता है। तुमने कभी विचार किया उस चित्र पर? वे ही रेखाएं, जो जवान स्त्री का चेहरा बनाती हैं, वे ही रेखाएं थोड़ा घूम-फिरकर बूढ़ी स्त्री का चेहरा बनाती हैं। दोनों एक-दूसरे में छिपे हैं। जब तुमने पहली दफा देखा, हो सकता है बूढ़ी दिखाई पड़ी। जब तक तुम्हें बूढ़ी दिखायी पड़ती रहेगी, तब तक जवान नहीं दिखायी पड़ेगी, ख्याल रखना। अगर तुम देखते रहे, देखते रहे, तो आंखें ज्यादा देर किसी एक चीज पर थिर नहीं रह सकतीं। आंख का स्वभाव चंचल है। तो जब तक तुम बूढ़ी को देखते रहे, देखते रहे, देखते रहे, थोड़ी

देर में आंखें ऊब जाती हैं, अब बूढ़ी को नहीं देखना चाहतीं, अब नये की तलाश शुरू होती है। आंखें चंचल हैं। उस नयी तलाश में अचानक तुम पाते हो: अरे, ये रेखाएं तो एक जवान चेहरा बन रही हैं! फिर जवान स्त्री दिखायी पड़ने लगी। जब तुम्हें जवान स्त्री दिखायी पड़ने लगेगी, तब तुम यह मत सोचना कि तुम्हें बूढ़ी दिखायी पड़ती रहेगी। दो में से कोई एक ही दिखायी पड़ सकता है। हालांकि तुमने बूढ़ी भी देखी है। ऐसा भी नहीं कि तुमने न देखी हो। पहली दफा जब देखा था, तब तक तुम्हें पता नहीं कि दो छिपे हैं। अब तो तुम्हें पता है। तुमने बूढ़ी भी देख ली। तुमने जवान भी देख ली। अब तुम दोनों को एक साथ देखने की कोशिश करना और तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। उस छोटे से चित्र में तुम दोनों को एक साथ कभी न देख पाओगे। एक ही देखा जा सकता है। क्योंकि वे ही रेखाएं जो जवान को बनाती हैं, वे ही रेखाएं बूढ़ी को बनाती हैं। अगर उन रेखाओं की एक व्याख्या दिखायी पड़ रही है--जवान--तो दूसरी व्याख्या कैसे दिखायी पड़ेगी? दूसरी व्याख्या दिखायी पड़ी कि पहली व्याख्या खो जाएगी।

और ऐसी ही दशा है इस अस्तित्व की। जब तक तुम हो, परमात्मा नहीं। जब परमात्मा है, तुम नहीं। दोनों एक साथ न कभी दिखायी पड़े हैं, न दिखाई पड़ सकते हैं।

तुम पूछते हो: परमात्मा कहां है?

यह प्रश्न इसलिए उठ रहा है कि तुमने मान लिया है कि मैं हूं। तुमने एक गेस्टॉल्ट, एक व्याख्या स्वीकार कर ली है कि मैं हूं। बस परमात्मा नहीं दिखाई पड़ेगा। परमात्मा भी यहीं छिपा है--इन्हीं वृक्षों की रेखाओं में; इन्हीं मनुष्यों की रेखाओं में; इन्हीं स्त्री-पुरुषों में; इन्हीं पहाड़-नदियों में; इन्हीं आकाश, चांद-तारों में। परमात्मा भी यहीं छिपा है, लेकिन तुमने अहंकार को खोज लिया है। यह अहंकार भी यहां है। बस, परमात्मा दिखायी पड़ना बंद हो गया। अब तुम इस अहंकार को लेकर खोजते रहो, खोजते रहो, परमात्मा को कभी न पा सकोगे। उसे पाओगे तभी जब यह अहंकार तुम्हारे हाथ से छिटक जाएगा। एक क्षण को भी भूल जाओगे इसे, उसी क्षण तुम पाओगे परमात्मा है?

तब दूसरा प्रश्न उठेगा कि परमात्मा तो है, मैं कहां हूं।

कबीर ने कहा है: हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराइ। खोजते-खोजते परमात्मा को एक दिन ऐसी घड़ी आयी कि कबीर खो गया। और जहां कबीर खो जाता है, वहीं परमात्मा प्रगट होते हैं।

बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाइ।
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराइ।

इसी अनुभव के बाद कबीर ने कहा है: प्रेम गली अति सांकरी, ता में दो न समाय। एक ही समाता है।

अब तुम पूछते हो : परमात्मा कहां है ?

मैं तुम से पूछता हूं : परमात्मा कहां नहीं है ? मैं तुम से यह पूछना चाहता हूं : तुम कहां हो ? उसी खोज में लगो।

रमण महर्षि कहते थे : एक ही पूछो प्रश्न, मैं कौन हूं ? बस इसी को खोजते चले जाओ। अनेक लोग जो रमण को मानते हैं वे सोचते हैं यह पूछने से कि मैं कौन हूं, एक दिन पता चल जाएगा कि मैं कौन हूं। उन्हें पता ही नहीं कि रमण का मतलब क्या है। 'मैं कौन हूं'—पूछते-पूछते-पूछते, खोदते-खोदते एक दिन तुम्हें पता चलेगा : मैं हूं ही नहीं। और जिस क्षण तुम्हें पता चलेगा मैं हूं ही नहीं, उसी क्षण पता चल जाएगा कि परमात्मा कहां है, परमात्मा क्या है ?

छीलते जाओ अपने अहंकार की प्याज को। एक पर्त, नयी पर्त आ जाती है; दूसरी पर्त निकाली, फिर एक तीसरी पर्त आ गयी। छीलते जाओ अहंकार की प्याज को। एक दिन शून्य हाथ में रह जाएगा। ऐसे ही पूछते जाओ मैं कौन हूं ! शरीर ? शरीर तो मैं नहीं हो सकता। क्योंकि शरीर में पीड़ा होती है, मुझे पता चलती है। शरीर कभी जवान होता है, कभी बूढ़ा होता है; मैं न तो कभी जवान होता न बूढ़ा होता। मैं शरीर में भीतर छिपा हूं, शरीर नहीं हूं।

प्याज की एक पर्त छिल गयी। पूछो : मैं मन हूं ? विचार हूं ? कैसे हो सकता हूं मैं विचार ? क्योंकि विचार मेरे सामने घूमते हैं।

तुम फिल्म देखते हो जाकर, तुम फिल्म तो नहीं हो सकते, क्योंकि फिल्म तुम्हारी आंख के सामने चलती है पर्दे पर। तुम दर्शक हो, द्रष्टा हो। और मन के पर्दे पर फिल्म चलती है विचार की—अनंत-अनंत विचार चलते हैं। मैं विचार नहीं हो सकता।

दूसरी पर्त निकल गयी : मैं भाव हूं ? हृदय हूं ? भावना हूं ? नहीं हो सकता। जब क्रोध उठता है, तब तुम जानते हो क्रोध उठ रहा है। जब प्रेम उठता है तब तुम जानते हो प्रेम उठता है। तुम देखने वाले हो। तुम ज्ञाता हो, साक्षी हो। यह भी मैं नहीं हूं।

ऐसे पर्त-दर-पर्त प्याज के छिलके निकलते चले जाते हैं। एक दिन अचानक तुम पाते हो सारी पर्तें निकल गयीं, हाथ में शून्य रह गया : मैं हूं ही नहीं। जिस दिन यह घटता है कि मैं हूं ही नहीं, मैं शून्य हूं...इसको बुद्ध ने कहा 'अनत्ता', 'अनात्मा', मैं हूं ही नहीं...जिस क्षण यह घटा, उसी क्षण चित्र बदल जाता है, गेस्टॉल्ट बदल जाता है। अचानक दिखायी पड़ता है : सब तरफ परमात्मा है ! कण-कण में परमात्मा है ! क्षण-क्षण में परमात्मा है !

लेकिन तुम्हारा प्रश्न भी मैं टालना नहीं चाहता। तुम्हारा प्रश्न भी सार्थक है—तुम्हारी दृष्टि से। मैं चाहूंगा कि तुम यह पूछो कि परमात्मा कहां नहीं है। लेकिन तुम कैसे पूछ सकते हो? वह मेरा प्रश्न है। मैं चाहूंगा कि तुम पूछो कि मैं कहा हूं? मैं कौन हूं ? लेकिन वह तुम अभी नहीं पूछ सकते। अभी हिम्मत नहीं है इतनी पूछने की कि मैं कौन हूं। क्योंकि डर लगता है कहीं ऐसा न हो कि मैं हूं ही न! ऐसा न हो कि मैं होऊं ही न ! ऐसा डर लगता है, तो ऐसा खतरनाक प्रश्न पूछना ठीक नहीं।

तुमने कभी देखा प्रयोग करके ? यहां हम प्रयोग करते हैं बहुत तरह के। उनमें एक प्रयोग यही है। अट्ठारह घंटे का एक प्रयोग है--सतत यही पूछने का कि मैं कौन हूं। अट्ठारह घंटे तक और कुछ नहीं पूछना, एक ही बात पूछनी है कि मैं कौन हूं, मैं कौन हूं! थोड़ी ही देर में मस्तिष्क पगलाने लगता है, घबड़ाने लगता है, बेचैन होने लगता है, पसीना-पसीना होने लगता है। अट्ठारह घंटे तक सतत मैं कौन हूं, मैं कौन हूं, मैं कौन हूं ! तीन-चार घंटे के बाद तुम पाते हो कि खोपड़ी घूमी जा रही है। छह-सात घंटों के बाद तुम पाते हो कि सारा जगत घूम रहा है : मैं कौन हूं, मैं कौन हूं ! एक नशा, एक खुमारी चढ़ने लगती है। अट्ठारह घंटे पूरे होते-होते कुछ क्षणों के लिए फिंक जाते हो तुम एकदम, सन्नाटा छा जाता है, कोई नहीं रह जाता। पूछने वाला नहीं रह जाता। एक शून्य पकड़ लेता है। उसी पकड़ने में पहली दफा झलक मिलती है : परमात्मा है !

वह तो जब होगा होगा, जब उतनी हिम्मत जुटाओगे, तब। अभी इतना तो कर ही सकते हो कि जरा गौर से देखने लगो। जब वृक्षों को देखो तो जरा गौर से देखो : वे भी जीवंत हैं ! जीवन परमात्मा का रूप है। हरियाली, उन पर खिले फूल--वह भी परमात्मा के जीवन का ढंग है। नदी को बहते देखो, तो बहाव परमात्मा का है। गति परमात्मा की है। गत्यात्मकता परमात्मा है।

किसी बच्चे को खिलखिलाते देखो--हंसी परमात्मा है! खिलखिलाहट परमात्मा है ! उत्सव परमात्मा है ! किसी की आंख में आंसू देखो--करुणा परमात्मा है! अनुकंपा परमात्मा है !

इस स्मरण को जगाए चलो। खोजो जरा गौर से! धीरे-धीरे तुम्हारी संवेदनशीलता बढ़ेगी और तुम्हें कभी-कभी किसी वृक्ष में, कभी किसी तारे में, कभी किसी चेहरे में, परमात्मा की झलक मिल जाएगी। अभी उसी झलक से भरोसा रखो। एक झलक मिले, एक चुसकी ले ली। ऐसे धीरे-धीरे पोषण मिलेगा।

तू आज तोड़ दे सब बुत उस एक बुत के सिवा
फसादो जंगो जदल तर्क कर मुहब्बत कर
कि आशतीओ मुहब्बत में खुदा की रजा
समझ ले सच्ची इबादत के आज मानी तू
तवहुम्मयात के असनाम की न कर पूजा
खुदा को देख मुजस्सम खुदा के बन्दों में
खलूसे खिदमते खल्के खुदा की मांग दुआ

यही है जिंदा खुदा जीता जागता माबूद
वो खाली हाथ रहेगा जो इसको पा न सका
इसी के आगे झुका दे सरे नमाज अपना
तू आज तोड़ दे सब बुत इस एक बुत के सिवा।

यह जो चारों तरफ फैला हुआ निसर्ग है, इस एक प्रतिमा के सिवा और सारी प्रतिमाएं भूल जाओ। तुम्हारे मंदिरों में रखी प्रतिमाएं भगवान नहीं हैं, वे तुम्हारे हाथ के बनाये गये खिलौने हैं। तुम्हारा कृत्य है। सुंदर होंगे, मगर खिलौने हैं। परमात्मा की बनायी हुई प्रकृति में उसे खोजो, अगर खोजना है। आदमी के बनाये खिलौनों में मत खोजो। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई के खिलौनों में मत खोजो। मंदिरों में नहीं पाओगे उसे, जब तक तुम उसे वृक्षों में, पहाड़ों में, पर्वतों में नहीं पा लेते। पहले यहां पाओ। इतने विराट फैलाव में तुम्हें नहीं दिखायी पड़ता! इतना जीवंत, इतना हरा-भरा! तुम जाते मंदिर की तरफ! एक मुर्दा आदमी के द्वारा बनायी गयी मूर्ति की पूजा करने!

तू तोड़ दे आज सब बुत इस एक बुत के सिवा

यह एक प्रतिमा ही परमात्मा के लिए काफी है--ये आकाश, ये चांद-तारे, ये लोग, यह अस्तित्व।

फसादो जंगो जदल तर्क कर मुहब्बत कर

छोड़ो बकवास कि कौन सही--हिन्दू कि मुसलमान; कि विवाद छोड़ो कि कुरान कि वेद सही। छोड़ो तर्क। एक काम करो। फसादो जंगो जदल तर्क कर...छोड़ दो यह सब फसाद, यह विवाद। मुहब्बत कर!

कि आशतीओ मुहब्बत में खुदा की रजा

प्रेम में ही खुदा राजी होता है। प्रेम में ही परमात्मा तुमसे राजी होता है। प्रेम उसकी एकमात्र प्रार्थना है।

समझ ले सच्ची इबादत के आज मानी तू
तू आज तोड़ दे सब बुत इस एक बुत के सिवा।

प्रकृति में खोजो--यही इबादत है, यही प्रार्थना है।

तवहुम्मयात के असनाम की न कर पूजा

आदमी के द्वारा बनायी गई मूर्तियों की पूजा से कुछ भी न होगा। बहुत हो चुकी पूजा। आदमी के द्वारा रची गयी प्रार्थनाएं बहुत हो चुकीं। कहीं नहीं पहुंचे हो। अब तो परमात्मा के कृत्य में ही उसे खोजो। स्रष्टा को खोजना हो--उसकी सृष्टि में खोजो।

खुदा को देख मुजस्सम खुदा के बंदों में

ये जो खुदा ने बनाये हैं लोग, ये जो खुदा ने बनायी हैं वस्तुएं--इनमें उसे देखो।

खुदा को देख मुजस्सम खुदा के बंदों में

खलूसे खिदमते खल्के खुदा की मांग दुआ

और यह जो चारों तरफ मौजूद है, इसकी प्रार्थना करो। इसके सामने झुको! झुकने के लिये कहीं और जाने की जरूरत नहीं--जहां हो, वहीं जो सौंदर्य ने तुम्हें घेरा है, इसके सामने झुको!

यही है जिंदा खुदा जीता जागता माबूद

यह जो जीता-जागता अस्तित्व है, यह जो प्रकृति है--यही है परमात्मा। पूछते हो: परमात्मा कहां है? यहां है!

यही है जिंदा खुदा जीता जागता माबूद
वो खाली हाथ रहेगा जो इसको पा न सका
इसी के आगे झुका दे सरे नमाज अपना
तू आज तोड़ दे सब बुत इस एक बुत के सिवा।

आज इतना ही।
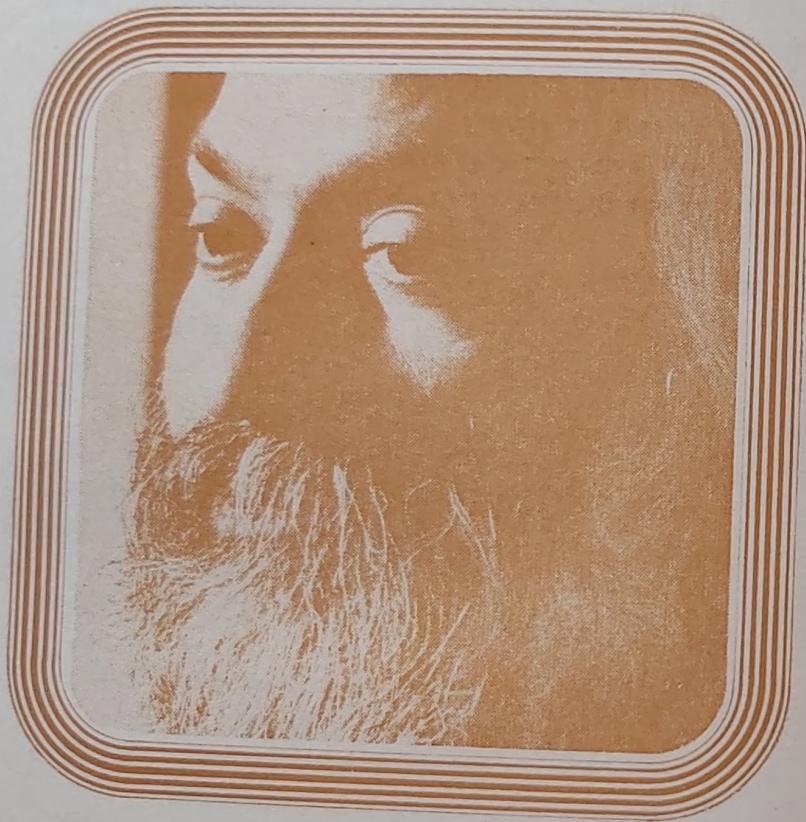
भक्ति : चाकर बनने की कला

नौवां प्रवचन

दिनांक : १९ नवम्बर, १९७७; श्री रजनीश आश्रम, पूना

म्हानें चाकर राखोजी, म्हानें चाकर राखोजी ।
चाकर रहसूं बाग लगासूं, नित उठ दरसन पासूं।
बिन्द्राबन की कुंज गलिन में, तेरी लीला गासूं ।।
चाकरी में दरसन पाऊं, सुमिरण पाऊं खरची ।
भाव-भगति जागीरी पाऊं, तीनों बातां सरसी ।।
मोर-मुकुट पीताम्बर सोहे, गल बैजंती माला ।
बिन्द्राबन में धेनु चरावें, मोहन मुरली वाला ।।
ऊंचे ऊंचे महल चिनाऊं, बिच बिच राखूं बारी ।
सांवरिया के दरसन पाऊं, पहर कुसुम्भी सारी ।।
जोगी आया जोग करण कूं, तप करने संन्यासी ।
हरि भजन कूं साधु आया, बिन्द्राबन के बासी ।।
मीरा के प्रभु गहर गंभीरा, सदा रहो जी धीरा ।
आधी रात प्रभु दरसन दे हैं, प्रेम नदी के तीरा ।

रमैया मैं तो थारे रंग राती ।
औरों के पिया परदेस बसत हैं, लिख लिख भेजें पाती ।
मेरे पिया मेरे हृदय बसत हैं, रोल करूं दिन-राती ।
चूवा चोला पहिर सखी री, मैं झुरमुट रमवा जाती ।
झुरमुट में मोहे मोहन मिलिया, घाल मिली गलबांथी ।
और सखी मद पी-पी माती, मैं बिन पियां ही माती ।
प्रेम भठी को मैं मद पीयो, छकी फिरूं दिन-राती ।
सुरत निरत को दिवलो जोयो, मनसा पूरन बाती ।
अगम घाणि को तेल सिंचायो, बाल रही दिन-राती ।
जाऊंनी पहिरिये आऊंनी सासरिये, हरिसूं सेन लगाती ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरना चित लाती ।

ये जहाने रंगो बू जल्वागाहे आरज़ू
नाजनीनों दिलनशीं महवशो जोहरा जबीं
गुलरुखो लाला अजार अतरबेज व मुश्कबार
दिल फिरोजो दिल नवाज फितना रेजो फितना साज
इक मुजस्सम अरत आश शोला रेजो बर्क पाश
नूरो निकहत की परी जानो रूहे दिलबरी
हर कोई समझा यही बस अभी मेरी हुई
इसके सब नाजो अदा लुत्फ और मैहरो वफा
वक्फ में मेरे लिये इब्तदाये वक्त से
चार दिन की जिंदगी बस इसी में कट गई
ये अरूसे फितनाकार पास आयी बार-बार
खेलती सबसे रही पर किसी की कब हुई
मेहरबां जिस पर हुई जिसकी किस्मत खोल दी
दर हकीकत वो मिटा काम से अपने गया
जो समझते हैं इसे इसको ठुकराते रहे
इक घड़ी इसकी बहार लम्हा भर का बस निखार
रंग लाई है उधार रूप भी है मुस्तआर
रौशनी खुर्शीद की बन गई है चांदनी
जिनको शौके दीद है
उनकी हद खुर्शीद है।

यह संसार लुभाता बहुत, पर तृप्ति इसमें जरा भी नहीं। यह संसार की दुल्हन नाचती पास-पास, मिलती कभी किसी को नहीं। सुंदर है बहुत, पर सौंदर्य इसका उधार है। रूपवान है बहुत, पर रूप इसका अपना नहीं।

संसार में जो रूप है, वह भी परमात्मा की ही झलक है। जैसे चांद होता है रात में और सारी पृथ्वी चांदनी में नहा गयी होती है; वृक्ष सुंदर हो उठते हैं; दिन में जो कुरूप थे वे भी रात की चांदनी में अपूर्व सौंदर्य से भर उठते हैं। इसी में मत खो जाना. चांद को खोजना। चांदनी में मत उलझ जाना। यह संसार चांदनी जैसा है।

जिनको शौके दीद है
उनकी हद खुर्शीद है

जो सच में ही खोज में निकले हैं, वे चांदनी में नहीं भटकेंगे, वे चांद को पा कर रहेंगे।

संसार और परमात्मा का संबंध ऐसे ही है जैसे चांदनी और चांद का संबंध। चांद है परमात्मा, चांदनी है संसार। परमात्मा से ही आता है यह संसार, जैसे चांदनी आती है चांद से। फिर भी चांदनी चांद नहीं है। परमात्मा से उधार लिया हुआ है सारा रूप, सारा रंग, सारा संगीत, सारा सौंदर्य।

ये जहाने रंगो बू जल्वागाहे आरज़ू
नाजनीनो दिलनशीं महवशो जोहरा जबीं

सच में बहुत सुंदर है संसार—जैसे वीनस का चेहरा, जैसे जोहरा का चेहरा! यह स्थल संसार का, यह छांव और तृष्णाओं के रूप प्रदर्शन का स्थल है। चांद जैसे मुख यहां हैं। जौहरा, वीनस जैसी सुंदर प्रतिमाएं यहां हैं। सुगंधित इत्र और इश्क की सुगंध बरसाने वाली प्रतिमाएं यहां हैं।

गुलरुखो लाला अजार अतरबेज व मुश्कबार
दिल फिरोजो दिल नवाज फितना रेजो फितना साज
इक मुजस्सम अरत आश शोलारेजो बर्क पाश
नूरो निकहत की परी जानो रूहे दिलबरी

यह जीवन-तरंग बड़ी प्यारी है, बड़ी लुभावने वाली है, बड़ी आकर्षक है!

हर कोई समझा यही बस अभी मेरी हुई

इस जीवन तरंग को जब तुम पास आते देखते हो तो यही समझते हो : बस अभी मेरी हुई।

इसके सब नाजो अदा लुत्फ और मैहरो वफा

इसका सारा सौंदर्य मेरी मुट्ठी में अब आया अब आया! पर तरंग कब किसकी हुई? तरंग आती और चली जाती है।

वक्फ में मेरे लिए इब्तदाये वक्त से
चार दिन की जिंदगी बस इसी में कट गयी।

यही सोचते-सोचते चार दिन कट जाते हैं। थोड़े-से दिन हैं जिंदगी के। उंगलियों पर गिने जा सकें, इतने दिन है जिंदगी के। यही सोचते कि अब मिला, अब मिला, अब मिला... संसार कब किसको मिला!

ये अरूसे फितनाकार पास आयी बार-बार

यह दुल्हन नाचती पास भी आ जाती है बहुत बार, बहुत पास आ जाती है! ऐसी कि हाथ के भीतर मालूम पड़ती है, कि जरा हाथ बढ़ा दिया कि मिल ही जाएगी, कि जरा मुट्ठी बांध ली तो मेरी हो जाएगी!

ये अरूसे फितनाकार पास आयी बार-बार

खेलती सबसे रही पर किसी की कब हुई ।

संसार कभी किसी का नहीं हुआ । संसार कभी किसी का हो नहीं सकता । चांदनी पर मुट्ठी बांधोगे, मुट्ठी खाली रह जाएगी । चांदनी को कौन बांध पाया ! कैसे बांध पाओगे ? चांदनी के पैरों में जंजीरें कैसे डाल पाओगे ? चांदनी तो एक स्वप्न है; मुट्ठियों में नहीं बांधा जा सकता; मिल नहीं सकता ।

जिनको शौके दीद है
उनकी हद खुर्शीद है

जो सच में ही कुछ पाना चाहते हैं, वे चांद को पाने निकलें, चांद के खेल में न रंगे रहे ।

मेहरबां जिस पर हुई जिसकी किस्मत खोल दी
दर हकीकत वो मिटा काम से अपने गया ।

और संसार जिस पर मेहरबां हो जाता है, जिस पर दया कर देता है, ऊपर से तो लगता है मेहरबानी हो गयी, लेकिन भीतर बात उलटी घट जाती है ।

मेहरबां जिस पर हुई जिसकी किस्मत खोल दी
दर हकीकत वो मिटा काम से अपने गया ।
दर हकीकत वो मिटा, राम से अपने गया ।

वह मिट ही जाएगा ! यह संसार मिटाता है, बनाता नहीं । इस संसार में मौत के अतिरिक्त और कभी कुछ घटता नहीं । यह संसार लूटता है । इस संसार के पास देने को कुछ भी नहीं । यह संसार खुद उधार है । यह चांद की चांदनी है ।

जो समझते हैं इसे इसको ठुकराते रहे
इक घड़ी इसकी बहार लम्हा भर का बस निखार

ये जानते हैं, यह घड़ी-भर की बहार है । ये फूल अभी खिले अभी कुम्हला गये । यह लहर अभी आयी, अभी विसर्जित हो गयी । यह गंध का एक झोंका है, जो आया और गया; आया भी नहीं और गया हो गया ।

जो समझते हैं इसे इसको ठुकराते रहे
इक घड़ी इसकी बहार लम्हा भर का बस निखार
रंग लाई है उधार रूप भी है मुस्तआर

सब उधार है संसार में, क्योंकि संसार प्रतिध्वनि है । जैसे कोई पहाड़ पर गया और जोर से चिल्लाया और पहाड़ियों में गूंज हुई--ऐसा ही संसार है--गूंज है । अब पहाड़ियों में जब गूंज हो तब तुम पहाड़ों में खोजने मत निकल जाना कि किसकी गूंज है । कोई भी न मिलेगा । गूंज उधार थी ।

प्रतिफलन है संसार; जैसे दर्पण में चित्र बन जाए । अब तुम दर्पण में खोजने मत निकल जाना, अन्यथा दीवालों से टकराओगे, लहूलुहान हो जाओगे । जैसे चांद का प्रतिबिंब बना झील में, अब तुम झील में लाख डुबकी लगाओ, तुम चांद को न

पा सकोगे । चांद वहां है ही नहीं ।

रंग लाई है उधार रूप भी है मुस्तआर
रोशनी खुर्शीद की बन गई है चांदनी
जिनको शौके दीद है
उनकी हद खुर्शीद है ।

चांद पर नजर रखो, चांदनी से मुक्त हो जाओ--तो कुछ पा सकोगे; तो जिंदगी खाली न जाएगी; तो काम से न जाओगे, राम से न जाओगे; तो भर जाओगे । और भर जाओ तो तृप्ति है ।

जिसने संसार का यह व्यर्थ क्षणभंगुर का प्रलोभन देख लिया, वही व्यक्ति परमात्मा की तलाश में निकलता है । जो संसार से जागने लगा, जिसे यह दिखायी पड़ने लगा कि स्वप्नवत् है सब यहां, वही सत्य की खोज में निकलता है । वही कह सकता है प्रभु से : 'म्हानें चाकर राखोजी, म्हानें चाकर राखोजी ।'

इस संसार में मालिक होकर भी कोई मालिक नहीं हो पाता । और परमात्मा के चरणों में दास होकर भी मालिक हो जाता है । इस संसार में सिकंदर भी कहां मालिक हो पाते हैं ! और उस संसार में मीरा भी मालिक हो जाती है । और मांगती नहीं मालकियत--और मालिक हो जाती है । मीरा मांगती तो इतना ही है : 'म्हानें चाकर राखोजी' । मुझे नौकरी पर रख लो । मुझे छोटा-मोटा काम दे दो । ऐसे ही बुहारी लगाती रहूंगी या पैर दाब दूंगी ।

'म्हानें चाकर राखोजी,
चाकर रहसूं बाग लगासूं ।'

तुम्हारे बगीचे में काम कर दूंगी । तुम्हारे पौधों को पानी सींच दूंगी ।

...'नित उठ दरसन पासूं ।'

बस इतना बहुत है । तुम्हारे बगीचे में झाड़ू-बुहारी देती रहूंगी, सूखे पत्तों को बीनती रहूंगी, तुम्हारे पौधों को पानी देती रहूंगी, तुम्हारे लिए फूल चुनती रहूंगी, तुम्हारे लिए गजरा बनाती रहूंगी—और मेरे लिए इतना ही सौभाग्य काफी होगा कि...नित उठ दरसन पासूं । बगीचे से तुम्हारी झलक मिलती रहेगी, तुम्हें देखती रहूंगी ।

'बिन्द्राबन की कुंज गलिन में तेरी लीला गासूं ।'

इतना पर्याप्त है मुझे कि भर आंख तुम्हें देखती रहूं । बस इतना बहुत है । सब मिल गया !

इससे ज्यादा नहीं चाहिए भक्त को । भक्त की मांग बड़ी छोटी है, लेकिन भक्त विराट को पा लेता है ।

समझना इस राज को : जितनी बड़ी मांग, उतनी छोटी उपलब्धि । जितनी छोटी मांग, उतनी बड़ी उपलब्धि । समझना इस राज को : मांग...कि उपलब्धि

नहीं; और मांग बिलकुल न हो तो सब मिल जाता है। परमात्मा उन्हें मिलता है जिनकी कोई मांग नहीं।

अब यह भी कोई मांग है : म्हानें चाकर राखोजी !

मुझे नौकर रख लो! कुछ भी काम दे देना, चलो बगीचा सही।

'चाकर रहसूं बाग लगासूं, नित उठ दरसन पासूं।

बिन्द्राबन की कुंज गलिन में, तेरी लीला गासूं।'

तुम्हारा दर्शन होता रहेगा, बस काफी है। मेरे गीत जग जाएंगे। तुम्हारा दर्शन होता रहेगा, मेरे पैरों में घूंघर बंध जाएंगे। तुम्हारा दर्शन होता रहेगा, मेरे प्राण रस में डूब जाएंगे। फिर कुछ और करने को नहीं है। गाऊंगी तुम्हारी लीला।...'तेरी लीला गासूं।'

फिर कुछ और बचा नहीं पाने को। फिर आनंदमग्न हो नाचूंगी। जिन्हें तेरी खबर नहीं है, उनको तेरी खबर पहुंचा दूंगी। जो सोये हैं, उन्हें जगा दूंगी। जिनके कान में तेरी भनक भी नहीं पड़ी है, उनके कानों में तेरी भनक पहुंचा दूंगी। बाटूंगी तुझे।

ख्याल करना : मांगती कुछ भी नहीं है। मांगती इतना ही है कि चाकरी पर रख लो।

'चाकरी में दरसन पाऊं'—और फिर कहती है ऐसा भी मत सोचना कि चाकरी में कोई बड़ी बात तुमसे मांगूंगी, कि नौकरी क्या होगी, वेतन कितना मिलेगा।

'चाकरी में दरसन पाऊं'—वेतन इतना ही बहुत है कि तुम्हारा दर्शन मिलेगा।

...'सुमिरन पाऊं खरची।' और इतना खर्च मिल जाए कि तुम्हारी याद बनी रहे। तुम्हारा दर्शन मेरा वतन हो गया। तुम्हारी याद बनी रहेगी, तुम बार-बार दिखायी पड़ते रहोगे, तो वह मेरा जो मन हरामी है, मुझे भटका न पाएगा। तुम फिर-फिर दिखायी पड़ जाओगे, फिर-फिर तुम्हारी याद सघन हो जाएगी, फिर-फिर तुम मुझे खींच लोगे।

'चाकरी में दरसन पाऊं सुमिरन पाऊं खरची।' तुम्हारा स्मरण बना रहा तो और क्या चाहिए खर्च के लिए! इतना बहुत है। इतना जीवन के लिए पर्याप्त है। बस मुझे पास बुला लो। मुझे चाकरी दे दो।

'भाव-भगति जागीरी पाऊं'...। और कोई जागीरी नहीं मांगती हूं; इतना ही—भक्ति की जागीरी मिल जाए, भाव की जागीरी मिल जाए। मस्तिष्क से तो तुम्हें पुकारती हूं, हृदय से तुम्हें पुकार सकूं। तुम मेरे भाव में उतर जाओ। तुम मेरी श्वास-श्वास में समा जाओ। तुम्हें भूलूं ही न। जागूं कि सोऊं, उठूं कि बैठूं, तुम्हारी याद सतत ही बनी रहे। अक्षुण्ण! धारा खंडित न हो। अखंड!

'भाव-भगति जागीरी पाऊं, तीनों बातां सरसी।'

इन तीन बातों से काम चल जाएगा, ज्यादा तुम से मांगती नहीं।

कुछ भी मीरा मांग नहीं रही। सोचना, मांग कुछ भी नहीं रही। क्योंकि दर्शन में भी प्रभु का क्या जाता है? मीरा की आंखें भर जाएंगी, प्रभु का क्या जाता है?

जब तुम फूल को देखते हो और प्रसन्न हो जाते हो, फूल का क्या जाता है? तुम्हारी आंखें भर जाती हैं। तुम्हारा हृदय आंदोलित हो जाता है।

...'सुमिरन पाऊं खरची।' सुमिरण में भी प्रभु को तो कुछ करना नहीं है; मीरा को ही कुछ करना है। याद करनी है। स्मरण करना है।

'भाव-भगति जागीरी पाऊं'...। भाव-भगति में भी परमात्मा को क्या करना है! तो परमात्मा से कुछ भी नहीं मांग रही है। यह न मांगना ही कला है। और जो मांग रही है, वह अपने हृदय का रूपांतरण मांग रही है। जो मांग रही है, वह मन से मुक्ति मांग रही है। जो मांग रही है, वह नीचे गिरने के लिए जो सीढ़ी लगी है, वह कट जाए, फिर नीचे गिरना न हो।

'मोर-मुकुट पीताम्बर सोहे, गल बैजंती माला।'

पहली पंक्तियों में और दूसरी पंक्तियों में फर्क ख्याल रखना। मांग पूरी हो गयी जैसे! पहली पंक्तियों में मांग है। 'मोर-मुकुट पीताम्बर सोहे, गल बैजंती माला।' मांग पूरी हो गयी जैसे! जिसने भी चाकर होना चाहा, उसकी मांग सदा पूरी हो गयी। तुम भी जरा करके देखो! मगर भीतर-भीतर यह वासना न रहे कि यह इरादा... चाकरी तो मांग रहे हैं, लेकिन इरादा तो मालकियत का है। भगवान से चूकते रहोगे, जब तक तुम उसके मालिक होना चाहोगे। यह बात ही महापाप है।

लोग भगवान के भी मालिक होना चाहते हैं। लोग प्रेम में भी मालकियत कायम करते हैं। और प्रेम का मालकियत से क्या संबंध है? प्रेम और मालकियत में दुश्मनी है। जब तुमने किसी स्त्री से कहा कि अब मैं तेरा मालिक, क्योंकि मैं तुझे प्रेम करता हूं; और किसी स्त्री ने किसी पुरुष को कहा कि अब मैं तेरी मालिक, क्योंकि मैं तुझे प्रेम करती हूं—उसी क्षण प्रेम मर जाता है। प्रेम की मौत उसी क्षण घट जाती है जिस क्षण मालकियत आती है।

लेकिन हमारे सब प्रेम के नाते मालकियत के नाते हैं। कब्जा है। उस कब्जे के कारण ही प्रेम पृथ्वी से विलीन हो गया है। प्रेम के फूल अब खिलते नहीं। प्रेम सिर्फ बातचीत रह गया है। कविताओं में मिलता है, जीवन में नहीं मिलता। लोगों में झांको तो वहां प्रेम का कोई पता नहीं है। प्रेम के नाम पर और कुछ चीजें हैं। ईर्ष्या है, जलन है, वैमनस्य है, प्रतिस्पर्धा है, महत्त्वाकांक्षा है, हिंसा है। और सब है—प्रेम भर नहीं है। चाहे प्रेम ऊपर से लिखा भी हो, लेकिन भीतर कुछ और है।

तुमने जिससे प्रेम किया, उस पर मालकियत की है, तो तुमने प्रेम की हत्या कर दी। तुमने महापाप किया है। इससे बड़ा कोई पाप नहीं है। प्रेम की हत्या से बड़ी कोई हत्या नहीं है। क्योंकि प्रेम की हत्या अंततः परमात्मा की हत्या है। प्रेम से ही तो सूत्र मिलते हैं परमात्मा के। प्रेम से ही तो सीढ़ी लगती है परमात्मा की। प्रेम

से ही तो आदमी धीरे-धीरे रस-विमुग्ध होता है; राज सीखता है।

प्रेम पाठशाला है परमात्मा की।

जैसे कोई तैरना सीखने जाता है तो पहले उथले पानी में सीखता है। स्वभावतः गहरे पानी में सीखने जाओगे तो डूबोगे। गले-गले पानी में जाता है। फिर जितना कुशल हो जाता है उतना गहरे में जाता है।

प्रेम परमात्मा का उथला रूप है। वहां सीखनी है प्रार्थना। वहां जिसने सीख ली, वह फिर गहरे में जाएगा। वह फिर मीरा के अगम गंभीर में, जिसकी फिर कोई सीमा नहीं, अनहद में, गहरे में उतर जाएगा। जिसकी कोई फिर सीमा ही नहीं, उसमें जाया जा सकता है; लेकिन सीमा में पाठ सीखना पड़ता है। असीम में जाने के लिए भी पाठ सीमा में सीखना पड़ता है।

मैं तुम्हें याद दिला दूं। बार-बार कहता हूं : प्रेम पाठ है परमात्मा का। अगर तुम प्रेम में कुशल हो गये हो तो परमात्मा दूर नहीं। जितनी तुम्हारी कुशलता प्रेम में है उतना परमात्मा करीब आता है।

लेकिन प्रेम के नाम पर तुमने कुछ और जहर पाल रखे हैं; कुछ और सांप-बिच्छू पाल रखे हैं। प्रेम के नाम पर तुमने बड़ा धोखा दे रखा है अपने को। तुम अपने बच्चे को प्रेम करते हो, कहोगे निश्चित? लेकिन अगर बच्चे पर तुम अपने सिद्धांत थोप रहे हो तो तुम प्रेम नहीं करते। अगर तुम हिन्दू हो और अपने बेटे को हिन्दू बना रहे हो, तो तुम प्रेम नहीं करते। क्यों? क्योंकि तुम उसे परतंत्र कर रहे हो। तुम उसके पैरों में जंजीरें डाल रहे हो। प्रेम—और जंजीरें डालेगा! और तुम्हें कुछ खुद भी पता नहीं है, फिर तुम जंजीरें डाल रहे हो। जैसे तुम्हारे पिता ने तुम्हारे पैरों में जंजीरें डाली थीं—हिन्दू धर्म की, मुसलमान धर्म की, ईसाई धर्म की, जैन धर्म की––तुम अपने बेटे के पैरों में डाल रहे हो। न तुम्हें कुछ मिला है, तुम इस बेटे को भी खराब किये जा रहे हो। तुम्हारा अगर प्रेम होता तो इतना तुम बेटे से कहते कि मैं चालीस साल, पचास साल से हिन्दू हूं, कुछ मुझे मिला नहीं, शायद यह हिन्दू धर्म मुझे उधार मिला, यह मैंने खोजा नहीं था। उधारी के कारण मैं चूक गया हूं। मंदिर गया हूं, औपचारिक रह गया। प्रार्थना की, शब्द रह गये। हृदय मेरा नहीं खुला। तो मैं तुझे कहता हूं : बेटा, तू उधार धर्म मत लेना। तू अभी खोजना। जब तुझे अपने मन का धर्म मिल जाए, जब तुझे अपने मन से मेल खाता मंदिर मिल जाए...।

और मंदिर वही जो मन से मेल खाए। इसलिए तो उसे मंदिर कहते हैं। वह उधार तो हो ही नहीं सकता। वह तो अन्वेषण करना होता है, खोजना होता है, तलाशना होता है, टटोलना होता है।

'जब तुम्हें अपने मन का मीत मिल जाए, वहीं झुक जाना। फिर वह मस्जिद हो, मंदिर हो, गुरुद्वारा हो, क्या हो, इसकी फिकर मत करना, क्योंकि सब परमात्मा का है। म तो औपचारिक में खो गया। मैं तो जड़ सिद्धांतों में खो गया। मुझे तो जो किताबें हाथ में थमा दी गयी थीं, उन्हीं को पूजते-पूजते नष्ट हो गया। मैं तेरे हाथ में कोई किताब न थमाऊंगा। मैं तुझे सिर्फ एक बात देना चाहूंगा––जिज्ञासा, मुमुक्षा, खोज की प्रबल आकांक्षा। तू मेरे आंसू सीख, मेरी किताब नहीं।' तो तुमने प्रेम किया।

प्रेम कैसे किसी को परतंत्र बनायेगा? प्रेम सोच भी कैसे सकता है परतंत्र बनाने की बात? प्रेम तो परम स्वतंत्रता का द्वार है। लेकिन जिसको हम प्रेम कहते हैं, वह परतंत्र बनाता है। तुम अपने बेटे को प्रेम करते हो और तुम उसे वह सब जहर सिखा रहे हो जिससे तुम मरे, तुम सड़े, तुम गले। तुम उसे वही धन की दौड़ सिखा रहे हो, जो तुम्हें ले डूबी। यह कैसा प्रेम? अगर तुम किसी गड्ढे में गिरे और हाथ-पैर टूट गये, तो क्या तुम अपने बेटे को भी उसी गड्ढे में जाने को कहोगे? अगर कहो तो क्या इसे हम प्रेम कहेंगे? जिंदगी-भर रुपये के पीछे तुम दौड़े, भिखारी रहे, हाथ-पैर टूट गये, जीवन नष्ट हो गया, मौत करीब आ रही है––और अपने बेटे को भी कह रहे हो कि 'धन कमा लेना! धन में ही सार है!' तुम कैसा प्रेम करते हो? तुम अगर जरा भी ईमानदार हो तो तुम कहोगे कि मेरी जिंदगी धन के पीछे खराब हुई, अब तू धन की दौड़ में मत दौड़ना। तू कुछ और तलाशना। शायद जो मुझे नहीं मिल सका, तुझे मिल जाए। मेरी जिंदगी पद में ही खराब हुई, पद की आकांक्षा ही मेरी नाव को डुबा दी। अब तू पद मत खोजना।

लेकिन बड़े मजे की बात है! तुमने जिसमें अपनी जिंदगी खराब की है, वही तुम अपने बेटों को सिखा रहे हो। और ज्यादा जोर से सिखा रहे हो। शायद तुम सोचते हो कि तुम नहीं पा सके, क्योंकि पाने के लिए जितनी चेष्टा करनी थी, वह तुमने नहीं की। अब तुम चाहते हो कि बेटा उतनी चेष्टा करे जितनी तुम नहीं कर पाए। जहां-जहां तुम चूक गये हो, तुम बेटे को और कुशल कर रहे हो, और निष्णात कर रहे हो। तुम इसका जीवन भी खराब कर दोगे।

तुम अपने प्रेम को जांचोगे तो एक बात निश्चित पाओगे कि तुम्हारा प्रेम प्रेम नहीं है। और इसलिए तो परमात्मा से संबंध नहीं जुड़ता। तुम अगर परमात्मा से भी संबंध जोड़ना चाहो तो भीतर कहीं मालकियत होगी।

मैंने एक कहानी सुनी है। कहां तक सच है, पता नहीं है। सच होनी चाहिए। कहते हैं तुलसीदास को कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया। नाभादास ने कहानी लिखी है। वे गये लेकिन कृष्ण के सामने झुके नहीं। जो उन्हें मंदिर में ले गया था, उसने कहा कि आप प्रणाम नहीं कर रहे हैं? तुलसीदास ने कहा कि मैं तो सिर्फ धनुर्धारी राम के सामने झुकता हूं। और कहानी कहती है कि तुलसीदास ने कहा कि अगर चाहते हो कि मैं तुम्हारे सामने झुकूं, तो हाथ में धनुष-बाण लो।

कहानी किन्हीं नासमझों ने लिखी होगी। और अगर हुई है तो तुलसीदास भी बड़े

नासमझ थे। यह भी कोई राम से दोस्ती हुई, कि कृष्ण में राम को न देख सके ! यह कोई धार्मिकता हुई ? राम भी हिन्दू, कृष्ण भी हिन्दू--और तुलसीदास कृष्ण में भी राम को न देख सके ! तो मस्जिद में क्या खाक देखेंगे ? गुरुद्वारा में क्या करते ? प्रवेश ही न करते भीतर। गिरजे में क्या करते ? दूर से ही निकल जाते कि भाई छाया न पड़ जाए, नहीं तो मुझे स्नान करना पड़ेगा। और कृष्ण से कहते हैं कि तब झुकूंगा मैं, जब तुम हाथ में धनुष-बाण लो। यह तो परमात्मा को भी आज्ञा देना हो गया। इसमें और मीरा में फर्क देखते हो : म्हानें चाकर राखोजी ! यह तो बड़ा भेद हो गया। तुलसीदास तो बड़े अकड़े मालूम पड़ते हैं। जैसे परमात्मा को गरज हो इनके झुकने की, कि ये न झुके तो परमात्मा को कुछ अड़चन रह जाएगी ! जैसे इनके झुकने में बड़ा राज है ! जैसे इनके झुकने के लिए परमात्मा जन्मों-जन्मों से प्रतीक्षा कर रहा है ! इनकी शर्त पूरी होनी चाहिए कि धनुष-बाण हाथ लो ! 'मैं जैसा चाहूं वैसे तुम होने चाहिए, तो झुकूंगा !'--यह झुकना परमात्मा की तरफ नहीं, यह तो अपने मैं की ही तरफ...।

इसका अर्थ समझना। यह तो अहंकार है। यह तो यह कहना हुआ कि मैं झुकूंगा तो अपनी धारणा के प्रति झुकूंगा। मेरी धारणा है कि भगवान होते तो धनुष-बाण लिए होते।

मैं एक यात्रा में था और एक जैन महिला मेरे साथ थी। उसका नियम था कि जब तक वह जाकर जैन मंदिर में प्रणाम न कर ले, भोजन न करे। एक गांव में जैन मंदिर नहीं था तो उसने दिन भर भोजन न किया। मैं भी बड़ा बेचैन हुआ कि यह तो बड़ी मुश्किल की बात हो गयी। संयोग की बात, दूसरे गांव में पहुंचे तो मैंने पूछा कि यहां जैन मंदिर है ? पहली बात ही यही पूछी। तो उन्होंने कहा : हां, जैन मंदिर है। तो मैं बहुत खुश हुआ। मैंने उस महिला को कहा कि चलो अच्छा हुआ, एक दिन का उपवास हुआ, ठीक; मगर यहां मंदिर है, तू जाकर नमस्कार कर आ और जल्दी से भोजन कर। वह गयी, वापिस आकर बोली कि नहीं, भोजन नहीं होगा, वह तो श्वेतांबर जैन मंदिर है। वह दिगंबर थी।

इस मूढ़ता को धर्म कहते हो ? वही महावीर। चलो कृष्ण और राम में थोड़ा फर्क भी होगा; मगर वही महावीर श्वेतांबर मंदिर में बैठे हैं, वही महावीर दिगंबर मंदिर में बैठे हैं। लेकिन नहीं, दिगंबर तो दिगंबर मंदिर में झुकेगा। यह अपने ही अहंकार की पूजा है प्रकारांतर से। इसमें परमात्मा का कुछ लेना देना नहीं है।

तुलसीदास कहते हैं : धनुषबाण हाथ लो, तो मेरा माथा झुकेगा। और जिसने कहानी लिखी है, वह भी मूढ़ ही रहा होगा। कहानी यहां तक बढ़ी कि फिर कृष्ण को धनुष-बाण हाथ लेना पड़ा। धनुष-बाण हाथ में लिया कृष्ण ने, तब तुलसीदास झुके। जैसे परमात्मा आतुर है तुम्हारे झुकने के लिए ! यह कुछ धारणा मौलिक रूप से भ्रांत है। मगर यही धारणा प्रचलित रही है। लोग परमात्मा के भी मालिक

हो जाना चाहते हैं। शायद परमात्मा तुमसे इसलिए बचता फिरता है। नहीं तो तुम उसकी गरदन दबा दोगे। वह अदृश्य इसीलिए है, और किसी कारण से नहीं।

यहूदियों के शास्त्रों में एक कथा है--तालमुद में कथा है--कि शुरू-शुरू में जब भगवान ने दुनिया बनायी, तो वह यहीं रहता था, जमीन पर ही रहता था, बीच बाजार में रहता था। उसकी ही दुनिया थी। बनायी ही इसीलिए थी कि इसमें रहे। मगर लोग उसे बहुत परेशान करने लगे। न दिन देखें न रात, घुसे चले आ रहे हैं--कि ऐसा होना चाहिए। और मांगें उनकी ऐसी कि पूरी न हो सकें। क्योंकि किसी ने खेत में बुआई कर दी, वह कहता कि पानी कल गिरना ही चाहिए। और कोई कहता कल पानी गिरे न, ख्याल रखना, मैंने अभी बुआई की नहीं। किसी ने मिट्टी के बरतन बनाये हैं--किसी कुम्हार ने--वह कहता कि पानी अभी महीनेभर नहीं गिरना चाहिए; मेरे सब बरतन खराब हो जाएंगे। और किसी के बीज मरे जा रहे हैं। कोई कहता, पानी अभी चाहिए। कोई कहता, कल धूप रहे; मैं यात्रा पर जा रहा हूं, जरा ख्याल रखना। कोई कहता, कल धूप तो होनी ही नहीं चाहिए, क्योंकि मेरे घर बड़े मेहमान इकट्ठे हो रहे हैं; छोटा घर है, घर के बाहर ही उन्हें बिठाना पड़ेगा भोजन के लिए; कल तो धूप हो ही न।

दिन-रात तांता लगा रहे लोगों का। और जब उनकी मांगें पूरी न हों तो वे फिर झंझटें करने लगे--घिराव, हड़ताल। तालमुद में यह बात कही गयी है कि लोग पत्थर फेंकने लगे उसकी खिड़कियों पर। लोग दंगा-फंसाद करने लगे। लोग गुंडागीरी पर उतर आए। फिर परमात्मा को सलाहकारों ने कहा उसके, कि यहां से हट जाना उचित है, यहां जीना संभव नहीं होगा। तब से परमात्मा अदृश्य हो गया है।

यह कथा मुझे प्रीतिकर लगती है, अर्थपूर्ण लगती है। तुम जरा सोचो, अगर तुम्हें परमात्मा मिल जाए तो तुम उसके साथ सद्व्यवहार कर पाओगे ? सद्व्यवहार—असंभव ! तुम एकदम झपटकर गरदन पकड़ लोगे कि कहां रहे इतने दिन ? और मेरे लड़के की एक टांग बड़ी और एक छोटी। और बेईमान मजा कर रहे हैं और मैं ईमानदार दुख पा रहा हूं। तुम थे कहां ? चलो अदालत !

और जो सुनेगा, वही पकड़ लेगा, क्योंकि सभी की मांगें अधूरी रह गयी हैं। और सभी के जीवन में कष्ट है। और सभी को चिंताएं हैं। सभी को संताप है। सभी की अड़चनें हैं, कठिनाइयां हैं। और वही जुम्मेवार है।

तुम जरा सोचो, तुम सद्व्यवहार कर पाओगे ? भला है कि अदृश्य है। तो तुम कभी-कभी मंदिर में जाकर पूजा कर आते हो। जीवंत तुम्हें मिल जाए तो तुम दूसरे अर्थों में पूजा कर दोगे।

मीरा कहती है : 'म्हानें चाकर राखोजी।'

जब तक तुम्हारे हृदय में सेवा का, उसके चाकर होने का, उसके चरणों के दास होने का भाव परिपूर्ण न हो जाए, तब तक तुम्हारा उससे मिलन न हो सकेगा।

तुलसीदास का मिलन नहीं हो सकता, मीरा का होता है। और यह मिलन इन पंक्तियों में छिपा है :

'म्हानें चाकर राखोजी।
चाकर रहसूं बाग लगासूं, नित उठ दरसन पासूं।
ब्रिन्दाबन की कुंज गलिन में, तेरी लीला गासूं।
चाकरी में दरसन पाऊं, सुमिरन पाऊं खरची।
भाव-भगति जागीरी पाऊं, तीनों बातां सरसी।'

जब मीरा यह कहती है कि बस इन तीन बातों से काम चल जाएगा और कुछ जरूरत नहीं है और कभी कुछ न मांगूंगी, बस इतना पर्याप्त है, बहुत है, जरूरत से ज्यादा है--और इसके बाद जो वचन है :

'मोर-मुकुट पीताम्बर सोहे, गल वैजंतीमाला।' जैसे कि दर्शन हो गया! ये मोर-मुकुट पहने हुए, ये पीताम्बर पहने हुए, गले में वैजंतीमाला डाले हुए कृष्ण सामने खड़े हो गये! जिसके हृदय में चाकरी का भाव हुआ, उसके सामने कृष्ण खड़े हो ही जाएंगे। अब और कमी क्या रही!

'ब्रिंदाबन में धेनु चरावें, मोहन मुरली वाला।'

अब मीरा को दिखायी पड़ने लगा। मीरा की आंख खुली। अब मीरा अंधी नहीं है। यह जो...

'मोर-मुकुट पीताम्बर सोहे, गल वैजंतीमाला।
ब्रिंदाबन में धेनु चरावें, मोहन मुरली वाला।'

...यह दृश्य हो गया। रूप बदला। यह जगत मिटा, दूसरा जगत शुरू हुआ।

'ऊंचे-ऊंचे महल चिनाऊं, बिच-बिच राखूं बारी।'

अब सोचती है मीरा : अब क्या करूं ?

'ऊंचे-ऊंचे महल चिनाऊं...'। अब परमात्मा मिल गया। यह परमात्मा की झलक आने लगी। अब परमात्मा के लिए 'ऊंचे-ऊंचे महल चिनाऊं, बिच-बिच राखूं बारी।' बीच-बीच में बारी भी रख लूंगी, क्योंकि मैं तो वहां रहूंगी।

'चाकर रहसूं बाग लगासूं, नित उठ दरसन पासूं।
ब्रिंदाबन की कुंज गलिन में, तेरी लीला गासूं।
ऊंचे-ऊंचे महल चिनाऊं, बिच-बिच राखूं बारी।'

बीच-बीच में झरोखे रख लूंगी कि तुम मुझे दिखायी पड़ते रहो और कभी-कभी मैं तुम्हें दिखायी पड़ जाऊं।

'सांवरिया के दरसन पाऊं, पहर कुसुम्बी सारी।
जोगी आया जोग करण कूं तप करने संन्यासी।
हरि भजन कूं साधू आया, ब्रिन्दाबन के वासी।'

मीरा कहती है : मैं तो सिर्फ हरि-भजन को आई हूं। जोगी जोगी की जाने। संन्यासी संन्यासी की जाने।

'जोगी आया जोग करण कूं'...। उसको योग करना है। उसको कुछ करके दिखाना है। मेरी करके दिखाने की कोई आकांक्षा नहीं है। मैं—और क्या करके दिखा सकूंगी? तुम मालिक, मैं तुम्हारी चाकर! तुम्हीं मेरे सांस हो, तुम्हीं मेरे प्राण हो। मैं क्या करके दिखा सकूंगी? करने को कहां कुछ है? करने को उपाय कहां है? करोगे तो तुम! होगा तो तुम से! मेरे किये न कुछ कभी हुआ है, न हो सकता है।

जोगी जोगी की जाने, मीरा कहती है।

'जोगी आया जोग करण कूं, तप करने संन्यासी।'

और तपस्वी है, वह तप करने आया है। उसको व्रत-उपवास इत्यादि करने हैं। उनकी वे समझें।

मीरा कहती है : उनसे मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। मुझे भूल कर भी जोगी या तपस्वी मत समझ लेना। मेरा तो कुल इतना ही आग्रह है :

'हरिभजन कूं साधु आया, ब्रिन्दाबन के वासी।'

हे वृन्दावन के रहने वाले! मैं तो भजन करने आई हूं।

साध-संगत में उसने भजन सीखा है। मैं तो तुम्हारे गुण गाना चाहती हूं। मैं तो तुम्हारी प्रशंसा के गीत गाना चाहती हूं। मैं तो तुम्हारे पास एक गीत बनना चाहती हूं। इस शरीर की सारंगी बना लूंगी और नाचूंगी।

फर्क क्या है? भक्त परमात्मा के पास सिर्फ नाचना चाहता है, उत्सव करना चाहता है, उत्सव करना चाहता है। उसकी और कोई मांग नहीं। अहोभाव प्रगट करना चाहता है। क्योंकि जो चाहिए, वह तो मिला ही हुआ है। जो चाहिए, उसने दिया ही है; मांगने का कोई सवाल नहीं, सिर्फ धन्यवाद देना चाहता है।

भजन का अर्थ होता है : धन्यवाद।

फर्क ख्याल रखना। जब योगी योग करता है, तो वह कहता है : मैं यह-यह करता हूं, मुझे यह-यह मिलना चाहिए। हम करते ही कुछ हैं, जब हम कुछ पाना चाहते हैं। योग है कृत्य--फल की आकांक्षा है। जब तपस्वी तप करता है, तब वह भी आकांक्षा से भरा है--उपवास करता, व्रत करता, नियम साधता। वह देख रहा है पीछे : इतना-इतना कर रहा हूं, इतना-इतना मुझे मिलना चाहिए। कहीं अन्याय न हो जाए! कहीं मुझे कम न मिले! कहीं दूसरे को ज़्यादा न मिल जाए! वहां सारी महत्त्वाकांक्षाएं हैं, सारी ईर्ष्याएं हैं।

भक्ति सिर्फ आनंद-विभोर हो, अहोभाव प्रगट करना चाहती है : तुमने दिया ही है! योगी और तपस्वी-- 'तुम दो'--इसकी आकांक्षा से भरे हैं। भक्त— 'तुमने जो दिया है'--उसका धन्यवाद देना चाहते हैं।

और मैं तुमसे कहूंगा : योगी और तपस्वी मांगते हैं, और नहीं पाएंगे। और

भक्त मांगता नहीं, और पा लेता है। यहं न मांगने और पाने की कला सीखो।

मांगने में तुम भिखारी हो जाते हो। भिखारी को कौन देता है? भक्त सम्राट की तरह जाता है। मजा है! बड़ा विरोधाभास है। कहता है: 'म्हानें चाकर राखोजी।' भक्त कहता है: 'मुझे नौकरी पर लगा लो। मुझे पैर दबाने का काम दे दो।' मगर जाता है सम्राट की तरह, क्योंकि उसकी कोई मांग नहीं। यह भी कोई मांग है?——

'चाकर रहसूं बाग लगासूं, नित उठ दरसन पासूं।
व्रिंदाबन की कुंज गलिन में, तेरी लीला गासूं।
चाकरी में दरसन पाऊं, सुमिरन पाऊं खरची।
भाव-भगति जागीरी पाऊं, तीनों बातां सरसी।'

——यह कोई मांग है? कुछ भी नहीं मांगा है।

जीसस का एक बहुत प्रसिद्ध वचन है: 'जिनके पास है, उन्हें और दिया जाएगा। और जिनके पास नहीं है, उनसे वह भी ले लिया जाएगा जो उनके पास है।' यह बड़ा अपूर्व वचन है! इसमें भक्ति का सारा सार छिपा है। जिनके पास है, उन्हें और भी दिया जाएगा। क्योंकि 'है' खींचता है और को। जिनके पास नहीं है, उनसे वह भी छीन लिया जाएगा, जो उनके पास है, क्योंकि 'नहीं' का जो भाव है, दरिद्रता का, भिखमंगेपन का, उस भाव में और नया नहीं जोड़ा सकता।

भक्त कहता है: जो तुमने मुझे दिया है, इतना ज्यादा है कि मेरी पात्रता नहीं थी। नाचता है। ले लेता है मृदंग हाथ में। ले लेता है एकतारा हाथ में। नाचता है। कहता है: 'जो तुमने मुझे दिया, उसकी मेरी पात्रता नहीं थी। तुम्हारी बड़ी अनुकंपा है!' भक्त तो उसकी बात करता है, जो उसे मिला है। और निश्चित ही जो मिलने की बात करता है और मुझे मिलना चाहिए, वह दीनता प्रगट करता है।

भक्त सम्राट की तरह नाचता है। भक्त के चेहरे पर परम शांति और संतोष होता है। जो मिला है, वह बहुत है। इससे कम मिलता तो भी बहुत होता। मेरी पात्रता ही कुछ नहीं है। मेरी योग्यता कुछ नहीं है। तुम्हारा एक गीत भी मुझ पर बरस गया है, तो भी मैं धन्यभागी हूं! तुमने मुझे आंखें दीं, मैं देख पाता हूं सौंदर्य को——तुम्हारे सौंदर्य को! चांद को, चांदनी को! तुमने मुझे कान दिये, मैं सुन पाता तुम्हारे गीत को, रागिनी को! तुमने मुझे सब दिया——इतना दिया कि नाचूं, गाऊं, धन्यवाद न करूं तो और क्या करूं?

यह दशा है सम्राट की।

और जिनके पास है, उन्हें और दिया जाएगा, क्योंकि इस घोषणा में ही, इस अहोभाव में ही वे और भी पात्र हो गये। उनका पात्र और बड़ा हो गया। इस विधायक भाव-दशा में उनका पात्र विराट होने लगा। परमात्मा इसे और भरेगा।

जब तुम मांगते हो, संकुचित हो जाते हो। तुमने ख्याल किया? जब भी तुमने

किसी से कुछ मांगा, तुम कैसे सिकुड़ जाते हो! किसी से मांगकर देखो। मांगने में कैसा मन सिकुड़ जाता है! किसी को कुछ देकर देखो, देने में कैसा फैल जाता है! जो मांगता ही रहता है, मांगता ही रहता है, वह सिकुड़ता जाता है, संकुचित होता जाता है। उसका पात्र छोटा होता जाता है। इसलिए उसके पास जो है, वह भी छिन जाता है। एक दिन उसके पास कुछ भी नहीं रह जाता——सिर्फ आंसू ही आंसू रह जाते हैं। और भक्त के पास एक दिन भगवान होता है और गीत ही गीत होते हैं——आह्लाद के, उत्सव के।

'ऊंचे-ऊंचे महल चिनाऊं, बिच-बिच राखूं बारी।
सांवरियां के दरसन पाऊं, पहर कुसुम्बी सारी।
जोगी आया जोग करण कूं, तप करने संन्यासी।
हरि भजन कूं साधु आया, व्रिन्दाबन के बासी।'

मीरा कहती है कि मैं तो साधु-संगत में बिगड़ी हूं। उन्हीं की संगत में लोकलाज खोयी। मैं तो भक्तों के पास उठी-बैठी। मैं तो भक्तों के रंग में रंगी हूं। मैं तुम्हारे पास सिर्फ भजन के लिए आयी हूं। मेरा एक गीत सुन लो। मेरा एक नृत्य देख लो। बस पर्याप्त है। तुमने देखा लिया, काफी है। तुमने सुन लिया, बहुत है।

'मीरा के प्रभु गहर गंभीरा, सदा रहोजी धीरा।'

मीरा कहती है: मैं तुमसे कहती हूं कि मेरे प्रभु बहुत गहन गंभीर हैं। गंभीर का मतलब गहरे हैं, बहुत गहरे हैं! अपार उनकी गहराई है।

'मीरा के प्रभु गहर गंभीरा, सदा रहोजी धीरा।'

इसलिए मांग मत करो, धीरज रखो। मांगो मत। मांग से तुम छोटे हो जाओगे। मांग से तुम संकुचित हो जाओगे। धैर्य रखो। मिलेगा। मिला है, मिला है, और मिलेगा। मिला है, मिलता रहा है, मिलता रहेगा। उस तरफ से भेंट आनी कभी बंद ही नहीं होती। लेकिन तुम जरा धीरज तो रखो, धैर्य तो रखो।

पुरानी कथा है, मुझे प्रीतिकर है। निरंतर कहता हूं। एक बूढ़ा संन्यासी एक वृक्ष के नीचे बैठा है और नारद जाते हैं स्वर्ग को। वह बूढ़ा संन्यासी उनसे कहता है: आप जाते हैं स्वर्ग, जरा मेरे संबंध में पूछ लेना। तीन जन्म से तपश्चर्या कर रहा हूं। सब जो करना चाहिए, किया है, कुछ भूल-चूक नहीं है। अभी तक मेरा मोक्ष क्यों नहीं हुआ? अब मुझे शक होने लगा है कि परमात्मा न्यायपूर्ण है या नहीं।

जिसने किया है उसको सदा शक होगा। जिसने अपने कृत्य पर भरोसा किया है, वह भगवान पर भरोसा नहीं कर सकता। जिसका अपने पर भरोसा है, उसका भगवान पर भरोसा नहीं है।

तीन जन्म, बहुत हो गया। माला फेरते-फेरते हाथ की रेखाएं पुंछ गयी होंगी। जप-तप करते-करते देह क्षीण हो गयी है।

वह बूढ़ा संन्यासी नारद से कहता है: जरा पूछ लेना कि कितनी देर और है?

इस में बड़ी शिकायत है। जहां आकांक्षा है वहां शिकायत होगी ही। जहां मांग है वहां संदेह होगा ही। नारद कहते हैं: जरूर पूछ लूंगा।

दूसरे वृक्ष के नीचे एक युवा संन्यासी नाच रहा है। उसने एकतारा हाथ में लिया है। इतना युवा है कि जैसे कल ही संन्यासी हुआ हो। नारद उससे मजाक में ही कहते हैं कि आप को भी तो नहीं पुछवाना कुछ? प्रभु के पास जा रहा हूं, बूढ़े संन्यासी की पूछूंगा, तुम्हारी भी पूछ लूंगा। लेकिन वह तो कुछ उत्तर नहीं देता। वह तो अपने नाच में मगन है। वह तो नारद हैं या नहीं वहां, इसकी भी उसे पता नहीं चलती। जो परमात्मा में मगन है, उसे कहां फिकर——कौन क्या है, कहां क्या है, कौन स्वर्ग जा रहा है कौन नर्क जा रहा है! उसे क्या पूछना है! उसे कुछ पूछना नहीं है, उसका कोई प्रश्न नहीं है, उसकी कोई आकांक्षा नहीं है। वह अहोभाव में नाच रहा है। वह हरि-भजन में है।

यह जो माला जपता हुआ संन्यासी है बूढ़ा, जप-तप करता हुआ, इसका हरि से कुछ तालमेल नहीं है; इसे हरि पर अभी श्रद्धा भी नहीं है। तीन जनम यूं ही गये जैसे। श्रद्धा भी नहीं जन्मी है, मोक्ष की आकांक्षा कर रहा है! अभी धीरज भी पैदा नहीं हुआ और मोक्ष की आकांक्षा कर रहा है। मोक्ष तो उन्हें मिलता है जिनका धैर्य अनंत है। इसका तो मोक्ष संसार का ही एक रूप है—इच्छा, वासना, मिल जाए। पहले धन खोजता होगा, अब मोक्ष खोज रहा है। मगर वही अहंकार। वही खोजने वाले का जोर। वही 'पाकर रहूंगा'! वही अकड़।

वह युवा संन्यासी तो नाचता रहा। नारद थोड़ी देर खड़े रहे, फिर हंसकर आगे बढ़ गये। उसने कुछ ध्यान न दिया। लौटे कुछ दिनों बाद। उस बूढ़े संन्यासी को कहा: 'पूछा था प्रभु को। उन्होंने कहा कि तीन जन्म और लग जाएंगे।' बूढ़ा तो बहुत नाराज हो गया। उसने तो माला फेंक दी। उसने कहा: भाड़ में जाए मोक्ष! एक सीमा होती है। धीरज की एक सीमा होती है। मुझे नहीं चाहिए यह मोक्ष अब। अन्याय हो रहा है। यह मेरी बरदाश्त के बाहर है। मैं बगावत करता हूं।

क्रोधी! तुमने अक्सर सुना होगा, दुर्वासा और इस तरह के लोग, जिसने जप-तप किया वह क्रोधी हो जाता है। क्योंकि उसकी अकड़ होती है: 'मैंने इतना किया है और अभी तक नहीं मिला!' माला फेंक दी। क्रोध के उस क्षण में भूल ही गया, क्या कर रहा है। आगबबूला हो गया, भभक उठा। यह भभक मौजूद रही होगी तीन जन्मों से। आज मौका मिल गया, प्रगट हो गयी।

नारद आगे बढ़ गये। युवा संन्यासी के पास ठिठके। थोड़ा सोचा कि इससे कुछ कहना चाहिए कि नहीं, क्योंकि जिसको तीन जन्म की बात की, उसने माला फेंक दी। और इसकी बात तो बड़ी लम्बी है। क्योंकि प्रभु से पूछा तो उन्होंने कहा: वह संन्यासी जिस वृक्ष के नीचे नाचता है, उसमें जितने पत्ते हैं, उतने ही जन्म लगेंगे। कहीं एकदम से एकतारा खोपड़ी पर न मार दे! जब तीन जन्म लगने वाले

आदमी ने माला फेंक दी और कहा कि भाड़ में जाए मोक्ष, तो यह न मालूम क्या करे! थोड़े झिझके भी होंगे। लेकिन यह इस मस्ती में नाच रहा है कि लगा कि कह ही देना चाहिए। और फिर मन में जिज्ञासा भी थी कि देखें, यह क्या प्रतिक्रिया करता है! रोका उसे कि भाई, सुन! तूने यद्यपि पूछा नहीं था, फिर भी मैंने कहा लगे हाथ पूछ ही लूं। बूढ़े का पूछ रहा हूं, तेरा भी पूछ लूं। तो मैंने पूछा लिया अपनी तरफ से, नाराज इत्यादि मत हो जाना। मुझे माफ करना। मैंने पूछा प्रभु को कि तेरे मोक्ष में कितनी देर है? तो उन्होंने कहा कि जितने वृक्ष में पत्ते हैं, उतने जन्म लगेंगे।

वह युवक तो एकदम छलांग लगाकर नाचने लगा। उसने कहा: 'आहा! तो फिर पा ही लिया! पृथ्वी पर कितने पत्ते हैं! इतने ही पत्ते, इतने ही जन्म? तो ज्यादा देर नहीं है। हो ही गया समझो।' और वह नाचने लगा। फिर हरिभजन में लीन हो गया। और कथा कहती है, उसी क्षण मोक्ष को उपलब्ध हो गया। उतने जन्म नहीं लगे, जितने वृक्ष में पत्ते थे। उसी क्षण मुक्त हो गया। इतना जहां धैर्य हो वहां मोक्ष ज्यादा देर रुक भी कैसे सकता है! धैर्य और मोक्ष एक ही बात के दो नाम हैं। और जिसको तीन जन्म की बात कही है और जिसने माला फेंक दी है, वह अभी भी सज्जन कहीं भटकते होंगे। हो सकता है, यहां मौजूद हों। उनका मुक्त होना बड़ा कठिन है। तीन जन्म की बात तो तब थी जब उन्होंने माला नहीं फेंकी थी। तीन जन्म की बात तो तब थी जब उन्होंने ये अद्भुत वचन न कहे थे कि भाड़ में जाए मोक्ष! उसके बाद उनकी क्या गति या दुर्गति हुई होगी...। नर्क न चले गये हों तो बहुत। पृथ्वी पर हों तो प्रभु की अनुकंपा।

तुम्हारा धैर्य तुम्हारी संपदा है।

मीरा कहती है: 'मीरा के प्रभु गहर गंभीरा, सदा रहोजी धीरा।' सदा धैर्य रखो! गाओ भजन!... 'तेरी लीला गासूं।'

मांगो मत कुछ। बिना मांगे गाओ भजन। मांगा तो भजन खराब हो गया। भरोसा रखो। जो तुम्हें चाहिए, जो तुम्हारी वस्तुतः जरूरत है, मिलता रहा है, मिलता रहेगा।

'आधी रात दरसन दै हैं, प्रेम नदी के तीरा।'

घबड़ाओ मत, आधी रात भी अगर जरूरत पड़ेगी तो प्रभु दर्शन देंगे। लेकिन दर्शन सदा प्रेम नदी के तीर पर होते हैं। तुम प्रेम की नदी को बहने दो। मांग नहीं। प्रेम में कहां मांग! कुछ पाने की आकांक्षा नहीं। प्रेम तो देने की आकांक्षा है, पाने की नहीं। प्रेम तो दान है। बहने दो प्रेम की नदी को! इस प्रेम-नदी के तीर पर जब भी जरूरत होगी, जब भी तुम पक जाओगे, जब भी तुम्हारी पात्रता परिपूर्ण होगी, उतरेगा प्रभु। सदा उतरा है।

'आधी रात प्रभु दरसन दै हैं',...। आधी रात भी जरूरत होगी तो भी उनका

उतरना हो जाएगा। तुम्हारी जब जरूरत होगी तब हो जाएगा। जरूरत के पहले नहीं हो सकता।

और तुम्हारी मांगें सब जरूरत के पहले हैं। जिस बात की तुम में पात्रता नहीं, उसकी तुम मांग करते हो। फिर नहीं पाते तो दुखी होते हो। दुखी होते हो तो और अपात्र हो जाते हो। अपात्र हो जाते हो, तो जो तुम्हारे पास है वह भी खो जाता है।

जीसस ठीक कहते हैं : जिनके पास है, उन्हें और दिया जाएगा; और जिनके पास नहीं है उनसे वह भी छीन लिया जाएगा जो उनके पास है।

मेरे जीवन का मरन का साथी
कब कोई मुझसे जुदा होता है
हर नफस साथ मेरे चलता है
हर कदम राहनुमा होता है
बख्श देता है खताएं मेरी
जामने लगजशे पा होता है
वही मंजिल है वही शौके सफर
वही खुद बांगे दरा होता है
मैं जिसे कहता हूं मेरा-मेरा
सब उसी का तो दिया होता है
है वही शमे सयाह खानाये दिल
वही आंखों की जया होता है
वही हर मौजे नफस में है रवां
दिल में जो जोशे वफा होता हैं
दर्दे दिल बन के कभी उठता है
बढ़ के फिर खुद ही दवा होता है
वही पैदा है सकूते लब में
वही नगमों में छुपा होता है
कभी बनता है सकूने साहिल
कभी तूफाने बला होता है
ला इला है वही इल्ला अल्ला है
वही हर बुत में बसा होता है
क्या कहूं हमदमे दैरीना मेरा
मुझसे मिलता है तो क्या होता है

शुक्र सद शुक्र कि मेरे लब पर
न शिकायत न गिला होता है
बेतलब उसकी नजर से मुझको
सागरे कैफ अता होता है।

परमात्मा तुम्हारे साथ है। तुम्हीं उसके साथ नहीं हो। परमात्मा तुम्हारे साथ न हो तो तो तुम जी भी नहीं सकते क्षणभर। जीवन है तो परमात्मा के साथ होने का सबूत है। श्वास चलती है तो परमात्मा तुम पर बरस रहा है, इसका प्रमाण है। तुम चैतन्य हो—और क्या प्रमाण चाहिए कि परमात्मा तुम्हारे भीतर मौजूद है?

मेरे जीवन का मरन का साथी
कब कोई मुझसे जुदा होता है!

परमात्मा जुदा हो ही नहीं सकता। तुम भला उसको देखो न देखो, तुम उसकी तरफ आंख रखो न रखो, परमात्मा जुदा नहीं हो सकता। जो जुदा हो जाए वह परमात्मा नहीं। इसलिए तो हमने कहा : परमात्मा तुम्हारा स्वभाव है। वस्त्रों जैसा नहीं है कि बदल लिए। चमड़ी जैसा भी नहीं है कि बदल जाएगी आज नहीं कल––जवान की बूढ़ी हो जाएगी, बच्चे की जवान हो जाएगी। हड्डी, मांस-मज्जा जैसा भी नहीं, क्योंकि वे भी बदल रहे हैं। सात वर्ष में मनुष्य के शरीर में सब बदल जाता है। सत्तर साल जीओगे तो दस बार शरीर पूरा बदल जाता है। मन भी नहीं है, क्योंकि मन तो प्रतिपल बदल रहा है। मन मेरो बड़ो हरामी! वह तो प्रतिपल बदल रहा है। वह तो प्रतिपल कुछ का कुछ हो रहा है।

परमात्मा तुम्हारे भीतर साक्षी की तरह छिपा बैठा है। तुम्हारा आत्यंतिक होना ही परमात्मा है। मगर तुम नजर दो न दो, तुम देखो न देखो––सदा तुम्हारे पीछे लगा है, छाया की तरह लगा है।

मेरे जीवन का मरन का साथी
कब कोई मुझसे जुदा होता है
हर नफस साथ मेरे चलता है
हर कदम राहनुमा होता है।

श्वास-श्वास में तुम्हारे साथ है। और हर घड़ी तुम्हें राह दिखा रहा है। तुम सुनो कि न सुनो, मानो कि न मानो, हर घड़ी तुम्हारे अंतरतम में पुकार रहा है। तुम चोरी को चलो तो कहता है : नहीं, मत करो। तुम सुनो या न सुनो, तुम हत्या को जाओ तो कहता है : नहीं, रुको। तुम प्रार्थना में डूबो तो कहता है : 'डूबो, पूरे डूब जाओ!' तुम सुनो या न सुनो। तुम किसी को कुछ देने जाते हो, तो कहता है : दे ही दो, पूरा दे डालो! देने से मुक्ति है। देने में आदमी निर्भार हो जाता है। तुम सुनो न सुनो, यह अंतरतम में बोल ही रहा है। हर घड़ी!

हर नफस साथ मेरे चलता है
हर कदम राहनुमा होता है
बख्श देता है खताएं सारी
जामने लगजशे पा होता है

और तुम्हारी कितनी भूलें हैं, अनंत भूलें हैं--और क्षमा किया जा रहा है ! और कितनी बार तुम लड़खड़ाते हो, लेकिन तुम्हारे पैरों को सम्हाल लेता है। कितनी बार तुम गिरते हो, और फिर-फिर तुम्हें उठा लेता है। किसने तुम्हें उठाया जब तुम गिरे ? और किसने तुम्हें सम्हाला जब तुम लड़खड़ाए ? किसने तुम्हारी खताएं माफ कीं ? कौन है जो प्रतिपल तुम्हें स्वच्छ कर लेता है, नहा देता है, फिर ताजा कर लेता है ?

वही मंजिल है वही शौके सफर...वही मंजिल है--वही यात्रा भी। वही खुद बांगेदरा होता है...और वही यात्रा पर बुलाने वाला है कि आओ, आओ !

मैं जिसे कहता हूं मेरा-मेरा
सब उसी का तो दिया होता है
है वही शमे सयाह खानाये दिल
वही आंखों की जया होता है।

अंधेरी रात में, गहरी से गहरी अंधेरी रात में। जब हृदय अंधेरे में डूबा होता है, तब अंधेरा भी वही है। और सुबह तुम्हारी आंखों में जो रोशनी होती है, वह रोशनी भी वही है। उसे पहचानना सीखो। वह हर विरोधाभास में मौजूद है।

वही हर मौजे नफस में है रवां
दिन में जो जोशे वफा होता है
दर्दे दिल बनके कभी उठता है
बढ़के फिर खुद ही दवा होता है

वही है दर्द। वही है पीड़ा। वही है प्यास और वही बरसेगा। घिर आई बदरिया सावन की !

वही तुम्हारे भीतर प्यास है। वही सावन की बदरिया है। वही तृप्ति है। उसके अतिरिक्त और भी नहीं है।

वही पैदा है सकूते लब में
वही नगमों में छिपा होता है।

जब ओंठ चुप होते हैं, तब वही चुप हैं, और जब ओंठ गीत गाते हैं, वही गीत गाता है।

कभी बनता है सकूने साहिल
कभी तूफाने बला होता है

कभी किनारे पर शांति, सन्नाटा और कभी मंझधार का तूफान—सब कुछ वही है। उसे पहचानो--सब रूपों में पहचानो ! ये तुलसीदास उसे कृष्ण के रूप में न पहचान पाए। ये कहे कि राम के ही रूप में पहचानूंगा। रोशनी में भी वही है, अंधेरे में भी वही--राम और कृष्ण की तो बात ही छोड़ो। जिंदगी भी वही है, मौत भी वही है। तुम्हारे दिल में जो दर्द बनकर उठता है, वह भी वही है--और जो दवा बनकर आता है वह भी वही है। उसे सब रूपों में पहचानो। उसे अनंत रूपों में पहचानो !

ला इला है वही इल्ला अल्ला है
वही हर बुत में बसा होता है।

मस्जिद में अमूर्त की तरह प्रगट हो रहा है। मंदिर में मूर्ति की तरह प्रगट हो रहा है। मगर वही है ! उसके अतिरिक्त कुछ और हो नहीं सकता।

क्या कहूं हमदमे दैरीना मेरा
मुझसे मिलता है तो क्या होता है !

यह पुराना दोस्त, जब मिलता है तो कहना मुश्किल है कि क्या होता है ! चूंकि कहा नहीं जा सकता, इसलिए मीरा कहती है : 'तेरी लीला गासूं।'

'चाकर रहसूं बाग लगासूं, तेरी लीला गासूं।' और तो कुछ कर न सकूंगी। तेरे मिलन के आनंद में नाचूंगी ! गीत गाऊंगी। जिनके जीवन में कभी भनक भी नहीं पड़ी है तेरी, उनके जीवन में तेरी भनक पहुंचाऊंगी।

क्या कहूं हमदमे दैरीना मेरा
मुझसे मिलता है तो क्या होता है !

उसके मिलते ही नृत्य होता है। उसके मिलते ही तुम एक रक्स में आ जाते हो। उससे मिलते ही नशा हो जाता है। और ऐसा नशा, जिसमें बेहोशी नहीं है, होश है ! उसके मिलते ही पैर लड़खड़ाने लगते हैं। मगर ऐसी लड़खड़ाहट कि हर लड़खड़ाहट मंजिल के करीब लाने लगती है।

शुक्र सद शुक्र कि मेरे लब पर
न शिकायत न गिला होता है।

और जब उससे मिलन होता है, तब कैसी शिकायत, कैसा गिला ! यह भी कहते नहीं बनता कि इतने दिन क्यों तरसाया। उस मिलन की घड़ी में वह उतने जन्मों-जन्मों का तरसाना भी उसकी अनुकंपा मालूम होती है। उस मिलन की घड़ी में ही राज खुलता है। उस मिलन की घड़ी में यह पता चलता है : इतने दिन न तरसाया होता तो यह मिलन का जो आज रस है, यह नहीं हो सकता था। इतना प्यासा रखा, इसलिए ऐसी परम तृप्ति है ! उस दिन प्यास का भी राज खुल जाता है।

किसी मित्र ने पूछा है प्रश्न, कि आप कहते हैं परमात्मा अनुकंपा है, तो फिर इतना दर्द क्यों, इतना दुख क्यों, इतनी पीड़ा क्यों ? लोग अनंत-अनंत पीड़ाओं में

दबे हैं--शरीर की, मन की, आत्मा की। त्रिविध ताप! अगर परमात्मा अनुकंपा है तो इतना दुख, इतना दर्द क्यों? यह प्रश्न तब तक उठेगा जब तक मिलन नहीं हुआ। तब तक तुम्हारा प्रश्न सार्थक है। स्वभावतः यह लगता है: इतना दर्द क्यों?

मगर यह दर्द ही गहन होकर दवा बनता है। इतना दुख इसीलिए है कि आनंद हो सके। इतने कांटे इसीलिए हैं ताकि फूल खिल सकें। इतना अंधेरा इसीलिए है कि जब रोशनी आए तो नृत्य आए, तो उत्सव आए।

जिसने अंधेरा जाना है, वही रोशनी को पहचान सकेगा। और जिसने संसार का दुख जाना है वही परमात्मा के आनंद के अनुभव में जा सकेगा।

मछली सागर में ही रहे तो उसे सागर का पता नहीं चलता; फेंक दो उसे तट पर, तड़फने दो थोड़ी देर तट पर, जलने दो धूप में--तब उसे याद आती है सागर की। फिर उसे वापिस डालो सागर में, तब वह जानती है कि सागर का कैसा अमृत आनंद है!

संसार सिर्फ एक परीक्षा है; सिर्फ एक तैयारी; सिर्फ एक पाठशाला। संसार ऐसे ही है जैसे तट पर फेंक दिये गये तुम रेत में तड़फने को, ताकि जब वापिस तुम लौटोगे सागर में तो महा तृप्ति का क्षण आएगा। उस तृप्ति को तुम जान ही नहीं सकते बिना तट पर तड़पे हुए। मगर यह राज तभी खुलेगा, जब उससे मिलना हो जाएगा।

शुक्र सद शुक्र कि मेरे लब पर

तब सिवाय धन्यवाद के कुछ भी नहीं होता, शब्द भी नहीं बनते। ओठों पर धन्यवाद होता है, शब्द नहीं बनते। न शिकायत न गिला होता है। एक शुक्रगुजार दशा होती है। एक धन्यवाद का भाव होता है। एक अपूर्व अहोभाव होता है। लेकिन शब्द नहीं बनते। शब्द छोटे लगते हैं।

बेतलब उसकी नजर से मुझको
सागरे कैफ अता होता है।

और मैंने मांगा भी नहीं था -- बेतलब — मैंने मांग न की थी, मैंने तलब न की थी।

बेतलब उसकी नजर से मुझको
--मैं चुप खड़ा हूं, बिना मांगे
उसकी नजर से मुझको
सागरे कैफ अता होता है

मस्ती का ऐसा प्याला उपलब्ध होता है, जो सागरों को मात कर दे! लबालब मस्ती का प्याला उपलब्ध होता है—बिना मांगे, बेतलब! मांगे कि चूके। मांगना मत। मांग को सदा ध्यान रखना। तुम्हारी प्रार्थना में किसी द्वार-दरवाजे से मांग न घुस जाए, नहीं तो प्रार्थना मर जाती है, मांग ही रह जाती है। और मांगने वाला, भिखमंगा कभी परमात्मा तक नहीं पहुंचता। मालिक, सम्राट पहुंचते हैं। सम्राट से

मिलना हो तो सम्राट की तरह जाना होता है। और सम्राट की तरह जाने का राज है:

'म्हाने चाकर राखोजी, म्हानें चाकर राखोजी।'
चाकर रहसूं बाग लगासूं, नित उठ दरसन पासूं।
ब्रिन्दाबन की कुंज गलिन में, तेरी लीला गासूं।
चाकरी में दरसन पाऊं, सुमिरण पाऊं खरची।
भाव-भगति जागीरी पाऊं, तीनों बातां सरसी।'

'रमैया मैं तो थारे रंग राती।'

मीरा कहती है: तेरे रंग में बिलकुल रंग गयी। मैं बची नहीं, तू ही बचा। ऐसी रंगी कि मैं तो मिट गयी।

'रमैया मैं तो थारे रंग राती!' तेरे प्रेम में पग गयी। तेरा प्रेम ही बचा। मैं का कोई भाव ही नहीं उठता अब। मैं हूं, यह बात भी नहीं उठती। तू ही है!

'औरों के पिया परदेस बसत हैं, लिख-लिख भेजें पाती।'

औरों के प्रेमी हैं, वे परदेस बसते हैं, दूर देश बसते हैं। वे उन्हें चिट्ठियां लिखती हैं। मैं तुझे कैसे चिट्ठी लिखूं?

'मेरे पिया मेरे हृदय बसत हैं, रोल करुं दिन-राती।' नाचती हूं, गाती हूं, लेकिन चिट्ठी नहीं लिख पाती, क्योंकि पिया हृदय में बसता है।

'मेरे पिया मेरे हृदय बसत हैं, रोल करूं दिन-राती।'

गूंज उठाती हूं, गुनगुनाती हूं; लेकिन संवाद तक करना मुश्किल है, क्योंकि अब मैं और तू दो न रहे, एक हो गये। यह एकता ही भक्ति की परिपूर्णता है।

जलालुद्दीन रूमी का प्रसिद्ध गीत है: प्रेमी ने दस्तक दी प्रेयसी के द्वार पर। भीतर से आवाज आई: 'कौन है?' और प्रेमी ने कहा: 'मैं हूं, तेरा प्रेमी। तूने पह-चाना नहीं? मेरी पगध्वनि नहीं पहचानी? मेरे हाथ की दस्तक नहीं पहचानी?'

फिर आवाज आई: 'तू आखिर है कौन?' और प्रेमी ने कहा: 'यह हद हो गयी, मेरी आवाज भी तुझे पहचान नहीं आती!' और फिर सन्नाटा हो गया। और प्रेमी ने बहुत द्वार खटखटाया, फिर भीतर से कोई उत्तर भी न आया। बहुत सिर मारा, तब इतनी ही भीतर से आवाज आयी कि यह घर बहुत छोटा है, इसमें दो न समा सकेंगे।

प्रेमी लौट गया। जंगलों में, पहाड़ों में—भटकता रहा। ध्यान में प्रार्थना में—अपने को निखारता रहा। चांद उगे, चांद ढले; सूरज आए, सूरज गए; दिन बीते, माह बीते, वर्ष बीते--अनेक वर्षों के बाद वापिस लौटा। द्वार पर फिर दस्तक दी। फिर वही आवाज। फिर वही प्रश्न: 'कौन है?' और इस बार उसने कहा: 'अब तो तू ही है!' और द्वार खुले! क्योंकि प्रेम के घर में दो नहीं समा सकते।

यह जलालुद्दीन रूमी की कविता भक्ति की पराकाष्ठा की तरफ इशारा है। रूमी भी एक प्रेमी था, जैसे मीरा। एक भक्त—अपूर्व भक्त !

'औरों के पिया परदेस बसत हैं, लिख-लिख भेजें पाती।
मेरे पिया मेरे हृदय बसत हैं, रोल करूं दिन-राती।
चूवा चोला पहिर सखी री...!'

सुंदर सुगंधित वस्त्र पहनती हूं; प्यारे रंगों वाले वस्त्र पहनती हूं; जो उसे भाते, ऐसे वस्त्र पहनती हूं !

'चूवा चोला पहिर सखी री, मैं झुरमुट रमवा जाती।'

चली जाती हूं झुरमुटों में, एकांत में--उसके साथ खेलने ! वह तो साथ ही है। एकांत में !

प्रेम सदा एकांत मांगता है, क्योंकि प्रेम पागल है। और भीड़ की नजर पागल होने की सुविधा नहीं देती। जरूर मीरा जाती रही होगी, चली जाती होगी दूर झुरमुटों में। नाचती होगी वहां। अपने पिया संग ! पिया भी नाचता होगा मीरा के संग, क्योंकि पिया भीतर बसा है। मीरा के नाच में उसका भी नाच है।

'...रोल करूं दिन-राती।
चूवा चोला पहिर सखी री, मैं झुरमुट रमवा जाती।'

झुरमुट चली जाती हूं—उसके साथ रमने, खेलने, रास रचाने !

'झुरमुट में मोहे मोहन मिलिया, घाल मिली गलबांथी।'

और वहां उससे मेरा मिलन हो जाता है। मेरा मोहन मुझे मिल जाता है वहां। हम गले मिल जाते हैं, आलिंगन कर लेते हैं। हम एक-दूसरे में डूब जाते हैं। खुल कर हम एक-दूसरे में प्रवेश कर जाते हैं।

'झुरमुट में मोहे मोहन मिलिया, घाल मिली गलबांथी।
और सखी मद पी पी माती...।'

और सखियां हैं, जो शराब पीती हैं, तब उन्हें नशा चढ़ता है। 'मैं बिन पियां ही माती।' और मैं बिना पीये नशे में डोलती हूं। उस प्यारे का भीतर बस जाना बड़े से बड़ा नशा है। फिर आंखें सदा ही मदमाती रहती हैं। फिर पैर कहीं के कहीं पड़ते हैं।

'और सखी मद पी-पी माती मैं बिन पियां ही माती।'

उस प्यारे को अपने में बसा लेना—मधुशाला बन गये तुम ! अब कहीं और से शराब पीनी जरूरी नहीं।

शराब आदमी पीता है--अपने को विस्मरण करने को। जिसे प्यारा मिल गया भीतर, वह तो मिट ही गया, विस्मरण करने को भी न बचा अब। एक गहन नशा छा जाता है। लेकिन नशे की खूबी है ! भक्त का नशा ऐसा है--नशा भी होता है, होश भी होता है। होश को बढ़ाता है भक्त का नशा।

संसार में जो लोग हैं, वे तो होश में भी होते हैं तो नशे में होते हैं। एक तरह की मूर्च्छा, एक तरह की निद्रा, तंद्रा घेरे रहती है। भक्त नशे में भी होता है—परमात्मा को पीकर--फिर भी उसके जीवन में एक होश होता है। भूल उससे नहीं होती। पैर डगमगाते हैं, लेकिन गलत रास्तों पर नहीं जाते। नाचता है, लेकिन सदा सही की दिशा में घटना घटती है।

किस खाक से हुई है न जाने मेरी सरिश्त
दानिस्ता कुछ गुनाह किये जा रहा हूं मैं
चाहूं तो अपने हाथ से अमृत पिलाये तू
दुख है कि फिर भी जहर पिये जा रहा हूं मैं
ये है कशिश हयात की या खौफ मौत का
जी बुझ चुका है फिर भी जिये जा रहा हूं मैं
मस्ती हुई नसीब बड़ी मुश्किलों के बाद
दामन का चाक फिर भी सिये जा रहा हूं मैं
आया था ले के हसरतें दीदे जमाले दोस्त
दिल में उम्मीद वस्ल लिये जा रहा हूं मैं।

हकदार तो हो तुम अमृत पीने के--और उस प्यारे के हाथ से अमृत पीने के !

चाहूं तो अपने हाथ से अमृत पिलाये तू
दुख है कि फिर भी जहर पिये जा रहा हूं मैं !

लेकिन पी तुम जहर रहे हो।

अहंकार से जहर ही झरता है। अहंकार से अमृत की कोई पहचान नहीं होती। अहंकार मरणधर्मा है, इसलिए जहर ही जहर है। अमृत तो तभी मिलेगा जब अहंकार से छुटकारा हो। जैसे ही अहंकार गया, मृत्यु गयी; क्योंकि तुम्हारे भीतर जो मर सकता था, उससे छुटकाटा हो गया। तुम्हारे भीतर अमृत ही बचा।

चाहूं तो अपने हाथ से अमृत पिलाये तू
दुख है कि फिर भी जहर पिये जा रहा हूं

यह तुम्हारा चुनाव है। मीरा उस जगह पहुंच गयी है, जहां प्यारा खुद अपने हाथ से अमृत पिला रहा है।

'और सखी मद पी-पी माती, मैं बिन पियां ही माती।
प्रेम-भठी को मैं मद पीयो, छकी फिरूं दिन-राती।'

मीरा कहती है: प्रेम की भट्ठी में जो शराब ढाली गयी, बनाई गयी, वह मैंने पी।

'प्रेम-भठी को मैं मद पीयो, छकी फिरूं दिन-राती।'

अब यह ऐसा नशा चढ़ा है, जो उतरना नहीं जानता। जो नशा उतर जाए, वह भी कोई नशा है ? जो उतर-उतर जाए, जिसे जबरदस्ती-जबरदस्ती चढ़ाना पड़े, वह कितनी देर काम आएगा, वह कितनी दूर काम आएगा ? नशा ही करना हो तो कुछ

ऐसा करो कि जो चढ़े एक बार तो सदा के लिए चढ़ जाए। रंगना ही हो तो कुछ ऐसे रंग में रंगो जो पक्का हो। 'रमैया मैं तो थारे रंग राती!' यह रंग पक्का है—यह प्रेम का रंग है।

और प्रेम के अतिरिक्त सभी रंग कच्चे हैं। प्रेम के अतिरिक्त सभी रंग उतर जाते हैं। धन का रंग उतर जाता है, पद का रंग उतर जाता है। प्रेम के अतिरिक्त सब रंग उतर जाते हैं। और अगर तुम्हारे प्रेम का रंग भी उतर जाता हो तो समझना कि प्रेम नहीं है। जो उतर जाए, वह प्रेम नहीं। प्रेम शाश्वत में यात्रा है। हुआ तो हुआ। जो उतर-उतर जाए, उसमें कुछ और होगा, प्रेम नहीं हो सकता।

'प्रेम-भठी को मैं मद पीयो, छकी फिरूं दिन-राती।'

मीरा कहती है : छकी फिरूं दिन-राती! ऐसे ही तुम भी छक सकते हो। तुम भी छके फिर सकते हो। और तुम्हारे हाथ में ही बाजी है। कोई दूसरा तुम्हें भटका नहीं रहा है—तुम्हीं अपने को भटका रहे हो। तुमने गलत से दोस्ती बना ली है, इसलिए ठीक से दोस्ती बनाने के हकदार नहीं रह गये हो। गलत से धीरे-धीरे दोस्ती छोड़ो। धन से, पद से दोस्ती छोड़ो, तो प्रेम से दोस्ती बने। प्रेम से दोस्ती बने तो सीढ़ी हाथ लग गयी। नाव हाथ लग गयी। फिर प्यारा बहुत दूर नहीं है।

मेरी अक्लो खिरद सो गयी है
वर्ना ऐसी न कुछ बेहुशी है
बंद है आंख पर देखती है
सो गया जिस्म, जां जागती है
रुक गयी है मेरी सांस ऐसे
बेखुदी में हवैदा खुदी है
कैसी हालत है मैं क्या कहूं अब
मिट गये गम खुशी ही खुशी है
दूर जुलमत हुई नूर फैला
चार सूं इक नयी रोशनी है
बरकतो रहमते हक की बारिश
हर तरफ हर कहीं हो रही है
बोझ हलका हुआ जिंदगी का
नाचती खेलती जा रही है
रूह खुशियों से लबरेज होकर
सारी दुनिया का मूंह चूमती है
आज हर शै पे छाई है मस्ती
इक मुसर्रत में फितरत बसी है

कोहो दरियाओ शाखो शजर में
देखता हूं कि जां पड़ गई है
जर्रे-जर्रे में खुर्शीद लरजां
कतरे-कतरे में दरिया रवी है
जिंदगी इम्बसाते खुदी के
आज एहसास से कांपती है
असले तौहीद है ये नज्जारा
और यही जाने रंगे दुई है।

मेरी अक्लो खिरद सो गई है
वर्ना ऐसी न कुछ बेहुशी है।

होता क्या है? उस प्यारे के रंग में रंगते ही तुम्हारी बुद्धि, तुम्हारा विचार सो जाता है। मेरो मन बड़ो हरामी! वह जो हरामी मन है, वह सो जाता है। और जब मन सो जाता है तो हृदय जागता है।

मेरी अक्लो खिरद सो गयी है। वह जो हिसाब-किताब करने वाली बुद्धि थी, वह सो गयी है। बस यही नशा है वहां। वर्ना ऐसी न कुछ बेहुशी है!

और क्या नशा है? बुद्धि खो गयी। बुद्धि सो गयी। तर्क गया, श्रद्धा उपजी। हिसाब-किताब गया, प्रेम उमगा।

बंद है आंख पर देखती है

इसलिए मैंने कहा : यह ऐसा नशा है कि होश बढ़ता है, घटता नहीं।

बंद है आंख पर देखती है
सो गया जिस्म जां जागती है

देह सो जाती है, आत्मा जागती है। तुम्हारी अभी आत्मा सोयी है, देह जाग रही है। अभी तुम्हारी आंख खुली है, मगर देखते कहां तुम! अंधे हो! आंख खुली है—और अंधे हो! कान खुले हैं, लेकिन तुमने सुना क्या? जब तक परमात्मा का नाद न सुना, तब तक कुछ भी न सुना। और जब तक परमात्मा को न देखा, तब तक कुछ भी न देखा।

बंद है आंख पर देखती है

फिर एक ऐसी घड़ी आती है कि बाहर से तो आंख बंद हो जाती है और भीतर देखती है—और भीतर प्यारे को देखती है!

सो गया जिस्म जां जागती है
रुक गयी है मेरी सांस ऐसे
बेखुदी में हवैदा खुदी है

और एक अर्थ में तो बेखुद हो गया हूं, बेहोश हो गया हूं। और एक अर्थ में

पहली दफा होश आया है। इस बेखुदी में भी खुदी छुपी है। पहली दफा ज्योति जगी है।

कैसी हालत है मैं क्या कहूं अब
मिट गये गम खुशी ही खुशी है
आज हर शै पे छाई है मस्ती
इक मुसर्रत में फितरत बसी है

चारों तरफ आनंद का साज बज रहा है। चारों तरफ फूल ही फूल खिले हैं। चारों तरफ सुगंध ही सुगंध है। भीतर मिलन हो जाए उससे, तो बाहर भी सब रूपांतरित हो जाता है।

कोहो दरियाओ शाखो शजर में
देखता हूं कि जां पड़ गयी है

औरों की तो बात छोड़ दो, पत्थरों में भी फिर जान दिखायी पड़ने लगती है, प्राण दिखायी पड़ने लगते हैं। वह जो महावीर ने कहा है कि पत्थर में भी प्राण हैं, वह भीतर चैतन्य के परम अनुभव के कारण कहा है। पत्थर में प्राण दिखायी पड़ते नहीं, लेकिन पत्थर में भी प्राण हैं। इस जगत में कोई जगह नहीं, जहां प्राण न हों। यह जगत प्राण का सागर है, जीवन का सागर है। यहां सभी चीजें जाग रही हैं, जी रही हैं। सभी चीजें गतिमान हैं। सभी चीजें परमात्मा की तरफ सरक रही हैं। अपने-अपने ढंग। अपनी-अपनी क्षमता के अनुकूल।

आज हर शै पे छायी है मस्ती
इक मुसर्रत में फितरत बसी है
कोहो दरियाओ शाखो शजर म
देखता हूं कि जां पड़ गयी है।

'और सखी मद पी-पी माती, मैं बिन पियां ही माती।
प्रेम-भठी को मैं मद पीयो, छकी फिरूं दिन-राती।
सुरत निरत को दिवलो जोयो, मनसा पूरन बाती।'

मीरा कहती है: स्मृति—सुरत; और निरत—लीनता। विरोधाभासी लगेगा। 'सुरत निरत को दिवलो जोयो'... । एक तरफ परमात्मा की स्मृति सघन हो गयी है और अपनी याद खो गयी है। तो मैं तो लीन हो गयी हूं और प्रभु जागने लगा है। मैं तो मिट गयी हूं, प्रभु होने लगा है। 'सुरत निरत को दिवलो जोयो'... । इस तरह अद्भुत सामंजस्य हो रहा है। एक तरफ लीन हो गयी हूं, और एक तरफ पहली बार जागी हूं। ऐसा दीया जल रहा भीतर।

'सुरत-निरत को दिवलो जोयो, मनसा पूरन बाती।'

और अब तो मन की ही बाती बन गयी है। वह जो मेरे भीतर विचार की क्षमता थी, जो अकेली-अकेली भटकाती थी, अब प्रभु के चरणों में लगकर वही ज्योति की बाती बन गयी है।

ध्यान रखना, तुम्हारे भीतर कुछ भी ऐसा नहीं जो व्यर्थ हो। उसका ठीक उपयोग, सभी कुछ सार्थक है। ठीक संयोग चाहिए। वही आग घर को जला सकती है, वही आग भोजन पकाती है। वही विचार तुम्हें भटकाता है संसारों में, वही विचार तुम्हारे भीतर बाती बन सकता है।

'सुरत निरत को दिवलो जोयो, मनसा पूरन बाती।
अगम घाणि को तेल सिंचायो, बाल रही दिन-राती।'

और अगम का, उस असीम का, जिसको समझने का कोई उपाय नहीं, उसके तेल से ही दीये को भरा है। क्योंकि और सब तेल तो चुक जाएंगे आज नहीं कल, वही एक तेल है जो कभी न चुकेगा।

'अगम घाणि को तेल सिंचायो, बाल रही दिन-राती।'

और अब यह ज्योति दिन-रात जल रही है। यह शाश्वत ज्योति है। इस ज्योति को जिसने नहीं पाया, वह अंधेरे में जी रहा है। इस ज्योति को जिसने नहीं पाया, वह भटक रहा है। इस ज्योति को पाते ही भटकन मिट जाती है। परमात्मा का तेल बनाओ, मन की बाती बनाओ। 'अगम-निगम सुरत-निरत' का दीया बनाओ।

'जाऊंनी पीहरिये आऊंनी सासरिये, हरि सूं सेन लगाती।'

अब मीरा कहती है कि कहीं जाऊं कहीं आऊं—नैहर जाऊं कि ससुराल आऊं, अब कुछ फर्क नहीं पड़ता। हरि सूं सैन लगती। अब तो उसी का ध्यान बना रहता है। घर कि बाहर, ससुराल कि नैहर, पहाड़ों में कि बाजारों में, एकांत में कि भीड़ में, अपनों में कि परायों में—अब कुछ फर्क नहीं पड़ता। आंखें उसमें ही अटकी हैं। ... 'हरि सूं सेन लगाती।' इशारे उसके साथ चल रहे हैं। बोलती-बतियाती औरों से, लेकिन बात भीतर उसी से चल रही है। चलती बाहर, लेकिन असली चलना भीतर हो रहा है।

'जाऊंनी पीहरिये आऊंनी सासरिये, हरि सूं सेन लगाती।'

मगर एक एक गुफ्तगू चल रही है। चुपचाप एक संवाद चल रहा है। इशारे उससे ही हो रहे हैं।

'सेन' शब्द बड़ा प्यारा है। सेन का मतलब: आंख ही आंख से इशारे। किसी को पता भी न चले, आंख ही आंख में बात हो जाए। शब्द भी न उठाने पड़ें।

'मीरां के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणां चित राती।'

मीरा कहती है: मेरे तो प्रभु गिरधर नागर हैं। उनके ही चरणों में सारे चित्त को डाल दिया है। इस चित्त के डालने की कला:

'म्हानें चाकर राखोजी, म्हानें चाकर राखोजी।
चाकर रहसूं बाग लगासूं, तेरी लीला गासूं।'

प्रभु के चाकर बनो--और तुम सदा के लिए मालिक हो जाओगे ! मालिक बनने की कोशिश करो--और तुम संसार के गुलाम रहोगे ! यहां बड़े से बड़ा धनी व्यक्ति भी गुलाम है। यहां के सम्राट भी गुलाम हैं। उसके जगत के चाकर भी मालिक हैं। इस जगत के मालिक भी चाकर हैं।

अहंकार समर्पित करना होगा, तभी चाकर बन सकोगे। उसके चरणों में चित्त को तभी रख सकोगे, जब यह मैं की अकड़ मिटे। अगर ठीक से समझो तो मैं के अतिरिक्त और कोई पाप नहीं है। मैं के अतिरिक्त और कोई संसार भी नहीं है। मैं के अतिरिक्त और कोई नर्क भी नहीं है। मैं गया, नर्क गया, पाप गया, संसार गया। और जहां मैं गया, वहां फिर जो शेष रह जाता है, फिर मैं के चले जाने पर जिसकी अनुभूति होनी शुरू होती है--वही है प्यारा, वही है प्रभु ! उसे नाम कुछ भी दो--राम कहो, कृष्ण कहो, अल्लाह कहो, जो मर्जी हो कहो। वे सब भेद नाम के हैं।

न तो राम जपने से कुछ होगा, न कृष्ण जपने से कुछ होगा, न अल्लाह जपने से कुछ होगा। मैं को छोड़ दो--और राम भी मिल गये, कृष्ण भी मिल गये, अल्लाह मिल गये; क्योंकि वे एक के ही नाम हैं। अलग-अलग लोगों ने अलग-अलग ढंग से उसे पुकारा है; लेकिन पुकारने में वही सफल हो पाता है, पुकार उसी की पहुंचती है, जो मिटकर पुकारता है।

चाकर होने की कला सीख लो, तो भक्ति की कुंजी तुम्हारे हाथ में आ गयी। और भक्ति से मिलता हो तो किसी और ढंग से पाने की जरूरत नहीं। और ढंग नंबर दो हैं। जब इतनी मस्ती से मिलता हो तो रो-रोकर क्या पाना ? जब नाच-नाचकर मिल जाता हो तो तप, योग की व्यर्थ झंझटों में क्यों पड़ना ? उस गोरख-धंधे में क्यों पड़ना ? जब सिर्फ गुण गाने से मिलता हो, जब इतनी सरलता से मिलता हो, सहजता से मिलता हो--तो फिर अड़चनें क्यों मोल लेनी ?

लेकिन ख्याल रखना, तुम्हारा अहंकार अड़चनें मोल लेने में सदा उत्सुक होता है। सरलता से नहीं जाना चाहता, है, क्योंकि अहंकार हमेशा चुनौती पसंद करता है। योग पसंद आता है अहंकार को। तप पसंद आता है, तपश्चर्या पसंद आती है; क्योंकि वहां अहंकार को कुछ करने को मिलता है। और जब भी कुछ करने को मिलता है, अहंकार मजबूत होता चला जाता है। भक्ति पसंद नहीं आती अहंकार को। अहंकार को बात ही नहीं जंचती, क्योंकि भक्ति में करने को कुछ है ही नहीं। समर्पित हो जाना है। भक्ति में करने की बात ही नहीं है--अकर्ता हो जाना है। भक्ति में तो परमात्मा करता है--भक्त सिर्फ झेलता है। जहां ले जाता है, चला जाता है। भक्त तो सिर्फ हाथ परमात्मा के हाथ में दे देता है। कहता है : फिर जैसी तेरी मर्जी !

इसलिए अहंकार को भक्ति में रस नहीं होता। और तुम्हारे भीतर जो अहंकार

है, वह भी तुम से कहेगा : भक्ति नहीं, योग करो, तप करो, जप करो, व्रत-उपवास करो--तो कुछ हुआ; भक्ति में क्या है ? नाचे, गाये--इसमें क्या होगा ?

यहां मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं : नाचने-गाने से क्या होगा ? उन्हें कुछ पता नहीं है। नाचने-गाने में हो ही जाता है। नाचने-गाने में हो ही गया। क्योंकि जिनके पास है, उन्हें और दिया जाएगा। और जिनके पास नहीं है, उनसे वह भी छीन लिया जाएगा जो उनके पास है।

आज इतना ही।

प्रेम श्वास है आत्मा की

दसवां प्रवचन

दिनांक : २० नवम्बर, १९७७; श्री रजनीश आश्रम, पूना

प्यारे भगवान ! मैं रोऊं, गाऊं या मुस्कुराऊं, नौ साल दूर कैसे रह गयी, समझ नहीं पाती हूं। अब पास आकर ऐसी दशा है कि हमेशा रोआं-रोआं कांपता रहता है, चाहे सोयी रहूं या जागी रहूं। इस अवस्था पर आनंद भी अनुभव होता है और झुंझलाहट भी। कोई रास्ता दिखाने की कृपा करें।

जीवन के बंधनों से मुक्ति कैसे हो ? आवागमन कैसे मिटे ?

आप जब गांधी, विनोबा, अरविंद और विवेकानंद के विरोध में बोलते हैं, तो मुझे रंज होता है। वैसे ही जब कोई आपके विरोध में बोलता है तो मुझे रंज होता है। विनती है कि जैसे आप बुद्ध और महावीर को समझाने में सहायक होते हैं, वैसे ही श्री अरविंद को समझाने में सहायक हों।

आप कहते हैं--प्रेम है द्वार प्रभु का। मैंने भी कभी किसी को प्रेम किया था, लेकिन उसे पाने में असफल रहा। अब तो तीस वर्ष बीत चुके हैं, लेकिन फिर किसी और को प्रेम न कर पाया। भगवान, क्या कभी मेरा उससे मिलन होगा ?

पहला प्रश्न : प्यारे भगवान ! मैं रोऊं, गाऊं या मुस्कुराऊं, नौ साल दूर कैसे रह गयी, समझ नहीं पाती हूं। अब पास आकर ऐसी लगता है कि हमेशा रोआं-रोआं कांपता रहता है, चाहे सोयी रहूं या जागी हुई। इस अवस्था पर आनंद भी अनुभव होता है और झुंझलाहट भी। कोई रास्ता दिखाने की कृपा करें !

★

वीणा ! रोना, गाना और हंसना, तीनों साथ चल सकते हैं, चुनाव की कोई जरूरत नहीं है। त्रिवेणी सुंदर होगी। एक—गरीब होगा। तीनों—बहुत समृद्ध होंगे। लेकिन तर्क से भरा हुआ मन हमेशा चुनाव करता है : ‘ रोऊं, गाऊं या मुस्कराऊं ? ’ तीनों साथ चलने दो।

रोने और हंसने में कोई विरोध नहीं है। कभी-कभी तो हंसने की गहराई ही आंसुओं में रूपांतरित हो जाती है। रोना जरूरी रूप से दुख के कारण ही नहीं होता --रोना आनंद से भी होता है। और वीणा का रोना निश्चित ही आनंद से हो रहा होगा।

रोने का अर्थ क्या है ? रोने का अर्थ है : कोई भाव इतना प्रबल हो गया है कि अब आंसुओं के अतिरिक्त उसे प्रगट करने का कोई और उपाय नहीं है। फिर वह भाव चाहे दुख का हो, चाहे आनंद का हो।

आंसू अभिव्यक्ति के माध्यम हैं। गहन भावनाएं, जो हृदय के गहरे से उठती हैं, वे आंसुओं म ही प्रगट हो सकती हैं। शब्द छोटे पड़ते हैं। गीत छोटे पड़ते हैं। जहां गीत चुक जाते हैं, वहां आंसू शुरू होते हैं वहां आंसू शुरू होते हैं। जो किसी और तरह से प्रगट नहीं होता वह आंसुओं से प्रगट होता है। आंसू तुम्हारे भीतर कोई ऐसी भाव-दशा से उठते हैं जिसे सम्हालना और संभव नहीं है, जिसे तुम न सम्हाल सकोगे, जिसकी बाढ़ तुम्हें बहा ले जाती है।

फिर, ये आंसू चूंकि आनंद के हैं, इनमें मुस्कुराहट भी मिली होगी, इनमें हंसी का स्वर भी होगा। और चूंकि ये आंसू अहोभाव के हैं, इनमें गीत की ध्वनि भी होगी। तो गाओ भी, रोओ भी, हंसो भी--तीनों साथ चलने दो। कंजूसी क्या ? एक क्यों ? तीनों क्यों नहीं ?

लेकिन, मन हिसाबी-किताबी है। वह सोचता है : एक करना ठीक मालूम पड़ता है--या तो गा लो या रो लो। मैं तुमसे कहता हूं कि इस हिसाब को तोड़ने की ही

तो सारी चेष्टा चल रही है। यही तो दीवाने होने का अर्थ है। तुमने अगर कभी किसी को रोते, हंसते, गाते एक साथ देखा हो, तो सोचा होगा पागल है। पागल ही कर सकता है इतनी हिम्मत। होशियार तो कमजोर होता है--होशियारी के कारण कमजोर होता है। होशियार तो सोच-सोचकर कदम रखता है, सम्हाल-सम्हालकर कदम रखता है। उसी सम्हालने में तो चूकता चला जाता है।

होशियारों को कब परमात्मा मिला ! होशियार चाहे संसार में साम्राज्य को स्थापित कर लें, परमात्मा के जगत में बिलकुल ही वंचित रह जाते हैं। वह राज्य उनका नहीं है। वह राज्य तो दीवानों का है। वह राज्य तो उनका है जिन्होंने तर्क-जाल तोड़ा, जो भावनाओं के रहस्यपूर्ण लोक में प्रविष्ट हुए।

इन तीनों द्वारों को एक साथ ही खुलने दो। परमात्मा ने हृदय पर दस्तक दिये हैं, तब ऐसा होता है। इसे सौभाग्य समझो।

‘ मैं रोऊं, गाऊं या मुस्कुराऊं, नौ साल दूर कैसे रह गयी, समझ नहीं पाती हूं। ’

वीणा मुझे नौ साल पहले मिली थी। करीब आते-आते दूर हो गयी। करीब आना आसान भी नहीं है। हजार चीजें रोकती हैं। फिर मेरे करीब आना तो और भी कठिन है। जिनमें प्रेम का पागलपन है, वे ही करीब आ सकेंगे। क्योंकि मैं जो कह रहा हूं, वह तुम्हारी सांत्वना के लिए नहीं कहा गया है। तो कभी-कभी ऐसा होता है : मेरी कोई बात तुम्हें सांत्वना की लगती है, तो तुम करीब आ जाते हो; और मेरी कोई बात तुम्हें चोट कर देती है तो तुम दूर हट जाते हो। तुम्हें जिस बात से सुख मिलता है तो करीब आ जाते हो; और जिस बात से तुम्हें दुख मिलता है, तो दूर हट जाते हो। तुम मुझसे थोड़े ही लगे हो--तुम अपनी ही धारणाओं से चिपटे हो। तुम्हारी धारणाओं को जिस बात से समर्थन मिलता है, तुम कहते हो : ठीक कह रहे आप। तुम्हारी धारणाओं को जिन बातों से चोट लग जाती है, तुम कहते हो : अब बात गलत हो गयी।

एक चर्च में एक पादरी बोल रहा था। उसने पहले शराब का विरोध किया। एक बूढ़ी स्त्री उठ-उठकर कहने लगी : ‘ बिलकुल ठीक, बिलकुल ठीक ! ’ जूए का विरोध किया, वह बूढ़ी स्त्री फिर भी बोली : ‘ बिलकुल ठीक, बिलकुल ठीक ! ’ वह सर्वाधिक आनंदित थी श्रोताओं में। फिर चोरी का विरोध आया और उसने फिर कहा : ‘ बिलकुल ठीक है, बिलकुल ठीक है ! ’ और तब उस पादरी ने कहा : ‘ तम्बाकू खाना भी ठीक नहीं है, तम्बाकू बंद करो ! ’ बुढ़िया बोली : ‘ अब जरा बात गलत हो गयी ! अब धर्म की बात न रही, अब तो ये क्षुद्र बातों में पड़ने लगे। ’

यह बुढ़िया तम्बाकू खाती है। जूआ, उसे कोई अड़चन नहीं। चोरी से उसे कोई अड़चन नहीं। शराब से उसे कुछ अड़चन नहीं। तम्बाकू की जब बात आती है तो अड़चन शुरू हो जाती है।

लेकिन वीणा किन्हीं सैद्धांतिक कारणों से दूर नहीं रह गयी थी। उसके कारण

भावनागत थे। डर पैदा हुआ, कि अगर मेरे करीब और आयी तो पति हैं, बच्चे हैं, परिवार है, इनका क्या होगा !

यह मेरे अनुभव में आया है कि पुरुष दूर रह जाते हैं--सैद्धांतिक मतभेदों के कारण। स्त्रियां दूर रह जाती हैं--उनकी आसक्तियों के कारण। भय समाता है कि कहीं बात ऐसी न हो जाए, कहीं इतनी आगे न चली जाए कि फिर लौटना संभव न हो !

तो नौ वर्ष से वीणा बचने की कोशिश करती रही। इस बचने की कोशिश में भी करीब आती गयी। नौ वर्ष मेरे पास नहीं आयी, नौ वर्ष मुझे सुना नहीं; लेकिन इस बचने की कोशिश में भी करीब आती चली गयी। भीतर-भीतर रस गहन होता रहा; बीज फूटता रहा। और जब इस बार करीब आयी तो फिर न रोक सकी। जो नौ वर्ष पहले होना था, वह अब जाकर हुआ। अब संन्यस्त हुई। यह नौ वर्ष पहले हो सकता था। लेकिन नौ वर्ष पहले सांसारिक आसक्तियां, जुम्मेदारियां ...।

और मजा यह है कि मैं तुम्हारी जुम्मेदारियों को तोड़ता नहीं, न तुम्हें तुम्हारे परिवार से अलग करता हूं, न तुम्हें तुम्हारे बच्चों से अलग करता हूं। सच तो यह है कि अगर तुम पति हो तो और बेहतर पति हो जाओगे; और पत्नी हो तो और बेहतर पत्नी; और मां हो तो पहली दफा मां बनोगी। संन्यास तुम्हारे जीवन में सुगंध को जोड़ेगा।

लेकिन संन्यास की बहुत दिनों से चली आती जो जीवन-विरोधी धारा है, उससे घबड़ाहट होती है। संन्यासी सदा ही जीवन-विरोधी रहा है। तो 'संन्यास' शब्द ही विकृत हो गया। संन्यास शब्द में ही जहर लग गया। संन्यास शब्द का सौंदर्य खो गया, उसका आकर्षण खो गया, उसका अहोभाव खो गया। वह कुछ उदास और रुग्ण और भगोड़ों की बात हो गयी। ठीक है, कोई भाग जाए तो तुम कहते हो कि पैर छू लेंगे; मगर तुम पीछे नहीं जाते हो। तुम कभी बात भी सुन लेते हो भगोड़ों की। एक कान से सुनते, दूसरे कान से निकाल देते हो। संन्यास शब्द से घबड़ाहट हो गयी है। क्योंकि संन्यास की पुरानी धारा विकृत हो गयी थी, रुग्ण हो गयी थी।

ऐसा सदा नहीं था। उपनिषद और वेदों में भी संन्यास था, लेकिन वह संन्यास जीवन-विरोधी नहीं था। उपनिषद के ऋषि भी परम संन्यासी थे, लेकिन जीवन-विरोधी नहीं थे; जीवन के मध्य थे। उनकी पत्नियां थीं, उनके बच्चे थे, उनके परिवार थे। जैनों और बौद्धों के प्रभाव में संन्यास ने एक अलग ही ढंग ले लिया। फिर जब जैनों और बौद्धों ने वैराग्य, जीवन-विरोध, जीवन का त्याग--ऐसे संन्यास की परिभाषा की, तो हिन्दुओं को थोड़ी अड़चन लगने लगी। अड़चन यह थी कि जैनों का संन्यास ज्यादा महिमाशाली दिखाई पड़ने लगा। स्वभावत:, जो पत्नी छोड़कर चला गया, बच्चे छोड़कर चला गया, घर-द्वार छोड़ दिया, नग्न खड़ा हो गया--उसके सामने उपनिषद के ऋषि फीके मालूम पड़ने लगे। हिन्दू धर्म की जड़ें

डगमगाने लगीं। प्रतिक्रिया में शंकराचार्य ने हिन्दू धर्म में भी वही जहर प्रविष्ट करवा दिया, हिन्दू संन्यास भी जीवन-विरोधी हो गया।

मैं तुम से कहना चाहता हूं : जीवन का विरोध अंतत: परमात्मा का विरोध है; क्योंकि जीवन जिसका है, जीवन में जो छिपा है, जीवन के विरोध में तुम उसे भी चूक जाओगे। और जीवन-विरोधी संन्यास पूरी पृथ्वी को गैरिक नहीं कर सकता है--कुछ छोटी-मोटी संख्या को शायद रसपूर्ण लगे, लेकिन अधिक लोग, बहुमत, विशाल जन-समुदाय उससे अछूता रह जाएगा। और इस बड़ी पृथ्वी पर अगर एकाध व्यक्ति संन्यस्त हो जाए, दो-चार संन्यस्त हो जाएं, तो कुछ परिणाम नहीं होता। सागर में बूंद की तरह खो जाते हैं। यह तो पूरा सागर ही रंगे, तो ही किसी दिन सौभाग्य होगा।

वीणा डर गयी थी। डर उसका स्वाभाविक था, क्योंकि नौ वर्ष के बाद आई पहले दिन और पहले दिन ही खो गयी और पहले दिन ही डूब गयी। तो नौ वर्ष बीज भीतर अंकुरित होता रहा होगा। आज जरूर पीड़ा लगेगी मन को : नौ साल दूर कैसे रह गयी, समझ नहीं पाती हूं !

जिस दिन तुम करीब आने शुरू होओगे सत्य के, उस दिन तुम्हें सभी को हैरानी होगी कि इतने-इतने दिन कैसे दूर रह गये, इतने-इतने जन्म कैसे दूर रह गये ! और सत्य इतने करीब था, इतना सुगम था, इतना सरल था--हाथ बढ़ाते तो मिल जाता ! परमात्मा पास ही खड़ा था और तुम चूकते गये, चूकते गये।

'अब पास आकर ऐसी दशा है कि हमेशा रोआं-रोआं कांपता रहता है, चाहे सोई रहूं या जागी हुई।'

कांपेगा। शुभ हो रहा है। शुभ संकेत है। रोआं-रोआं संन्यस्त होगा। संन्यास तो शुरुआत है, फिर रोआं-रोआं डूबेगा, फिर कण-कण डूबेगा। फिर जो आनंद की लहर हृदय में उठी है वह शरीर में भी व्याप्त होगी। तुम्हारा पूरा अस्तित्व जब तक आच्छादित न हो जाएगा, तब तक यह कंपन जारी रहेगा। यह कंपन सृजनात्मक है। इसे आनंद-भाव से स्वीकार करना।

'इस अवस्था पर आनंद भी अनुभव होता है और झुंझलाहट भी।' स्वभावत: आनंद अनुभव होगा, क्योंकि कुछ घट रहा है जिसकी प्रतीक्षा थी : झुक आयी बदरिया सावन की ! जिसके लिए प्यास थी, वे बादल आ गये। लेकिन झुंझलाहट भी होगी, क्योंकि इतना नया है कि तुम्हारे पास न भाषा है, न व्याख्या है। इतना नया है कि समझने का कोई उपाय नहीं। इसलिए अहंकार को झुंझलाहट होती है। हृदय आनंदित होगा, बुद्धि झुंझलाएगी। हृदय रस से मग्न होगा, हृदय नाचना चाहेगा, हृदय पंख खोल आकाश में उड़ना चाहेगा--और बुद्धि बड़ी बेचैनी अनुभव करेगी: 'यह क्या हो रहा है--तर्कातीत !'

बुद्धि की जो समझ में नहीं आता, बुद्धि उससे झुंझलाती है। बुद्धि कहती है :

ऐसे काम में मत पड़ो, जो मेरी समझ में नहीं आता। नासमझी के काम में मत पड़ो।

लेकिन, बुद्धि के ऊपर भी एक समझ है--हृदय की। और जब हृदय की समझ खुलनी शुरू होती है, कौन सुनता है बुद्धि की! जो सुने, वह अभागा है। इसलिए दोनों बातें होंगी--आनंद भी होगा, झुंझलाहट भी होगी। झुंझलाहट होती सिर में; आनंद होगा हृदय में, धड़कन में। श्वास-श्वास में आनंद भर जाएगा और विचार-विचार में झुंझलाहट हो जाएगी।

विचार की मत सुनना। विचार व्यर्थ के साथ जुड़ा है। विचार सीमित के साथ जुड़ा है। विचार क्षुद्र के साथ बंधा है। उसकी क्षुद्र से सगाई हुई। वह धन-पैसा, पद-प्रतिष्ठा, इनकी दुनिया में कुशल है; प्रेम और परमात्मा और समाधि, इस दुनिया में उसकी कोई गति नहीं है। वह जमीन पर सरकने के लिए ठीक है, आकाश में उड़ने की उसकी क्षमता नहीं है। आकाश में उड़ना हो तो हृदय के पंखों पर सवार होना होगा।

आनंद की सुनना!

तुम्हारे भीतर जो विधायक है,उसमें ही डूबो; और जो नकारात्मक है, उसकी उपेक्षा करो, ताकि धीरे-धीरे विधेय ही तुम्हारा जीवन हो जाए। नकार अपने-आप गिर जाएगा; सूखेगा, कुम्हलाएगा। पानी मत दो अब नकार को। अब झुंझलाहट को पानी मत देना। होती हो, होने देना; तुम तो पानी देते जाना आनंद के भाव को।

'इस अवस्था में आनंद भी अनुभव होता है और झुंझलाहट भी। कोई रास्ता दिखाने की कृपा करें।'

'रास्ता दिखाने की कृपा करें'--इस प्रश्न में आकांक्षा है कि किसी तरह झुंझलाहट न हो, क्योंकि आनंद से तो कोई मुक्त होना नहीं चाहता।--झुंझलाहट न हो! झुंझलाहट न हो, इसके दो उपाय हैं। एक उपाय तो यह है कि फिर वापिस बुद्धि की सुनने लगो, तो झुंझलाहट भी बंद हो जाएगी और आनंद भी बंद हो जाएगा। यही अधिक लोग करते हैं। बुद्धि इतनी झुंझलाहट पैदा कर देती है, इतनी झंझट खड़ी कर देती है, इस तरह प्रतिपल कोंचने लगती है कि तुम कहते हो: 'यह आनंद तो मंहगा हुआ। छोड़ो! जाने दो आनंद को भी और जाने दो झुंझलाहट को भी!' मगर तब महंगा सौदा हो जाएगा। वह रास्ता न हुआ, भटकना हो गया।

दूसरी बात--जो कि वस्तुतः रास्ते की बात है--वह है कि आनंद में और गहरे उतरो। इतने गहरे उतरो कि तुम्हारे पास झुंझलाने के लिए कोई शक्ति ही न बचे। सारी शक्ति आनंद में डुबा दो। झुंझलाहट के लिए भी शक्ति चाहिए।

तो अभी वीणा दो हिस्सों में बटी होगी। कुछ हिस्सा झुंझलाहट में जा रहा है, कुछ हिस्सा आनंद में जा रहा है।

पूरे-पूरे आनंद में चल पड़ो! पागल ही होना हो तो पूरे होना उचित है। छोड़ो लोकलाज! नाचो, गाओ, हंसो, रोओ! दूसरों की आंखों में मत देखो--अपने

भीतर झांको। दूसरे क्या कहते हैं, इसकी फिकर छोड़ो। दूसरों के मंतव्य पर बहुत ध्यान दिया तो यह आनंद चूक जाएगा। क्योंकि दूसरे लोग दुखी हैं, उनके मंतव्य दुख से उठ रहे हैं। दूसरे लोग अंधे हैं, उनके मंतव्य उनके अंधेपन से उठ रहे हैं। अंधों की मत सुनना।

'मीरा कहती है: 'साध देख राजी भई, जगत देख रोई।'

मीरा कहती है: साधु को देखा तो राजी हो गयी। हृदय आनंदित हुआ। क्योंकि साधु समझा, पहचाना। उसने जो कहा, वह पते की बात थी। सांसारिक समझा ही नहीं। उसने जो कहा, उसने चोट पहुंची। उसने जो कहा, उससे घाव बने।

रास्ता क्या है? रास्ता है कि अब झुंझलाहट की उपेक्षा करो। छोटी-सी भी शक्ति न बचे आनंद के बाहर, सारा हृदय में आनंद में डूब जाए। झुंझलाहट करने योग्य कुछ बचे ही न भीतर, तभी झुंझलाहट से वस्तुतः मुक्ति होगी। आनंद ही आनंद एक दिन शेष रह जाएगा।

आनंद का सहयोग करो, झुंझलाहट से असहयोग करो। यही रास्ता है। लौटने का उपाय भी नहीं है। जहां तक वीणा का संबंध है, मैं कह सकता हूं: लौटने का कोई उपाय भी नहीं है। लेकिन अगर झुंझलाहट को साथ दिया तो देर लग जाएगी परम घटना के घटने में, समय लम्बा हो जाएगा। दो-दो नाव पर सवार मत होओ। अब पूरे ही एक नाव पर सवार हो जाओ।

आनंद की पूरी सुनने का मतलब यही होता है कि अब अपनी मस्ती में जीओ। अब दूसरे और कोई कारण इस मस्ती में बाधा न बनें। तुम डोल रहे मस्ती में, कोई खड़ा देख रहा है, उसकी वजह से रुको मत। पागल ही कहेगा न! क्या बनता-बिगड़ता है? क्या हर्जा है? मीरा को उन्होंने दीवाना समझा, इससे मीरा की कोई हानि नहीं हुई। यह सोचकर कि लोग पागल समझते हैं, मीरा अगर समझदार हो गयी होती तो चूक गयी होती--सदा के लिए चूक गयी होती।

तुम्हारे भीतर जो संसार की आवाज है वही झुंझला रही है। और तुम्हारे भीतर जो परमात्मा की आवाज है, वह गीत गाना चाहती है, रोना चाहती है, हंसना चाहती है, नाचना चाहती है।

इस तन की वीणा बना लो। छेड़ो तारों को! गाओ! इधर तुम गाने लगे और तुम पाओगे: उधर परमात्मा करीब आने लगा। परमात्मा उन्हीं के साथ है, जिनके हृदय गीत गाते हुए हैं।

दूसरा प्रश्न: जीवन के बंधनों से मुक्ति कैसे हो? आवागमन कैसे मिटे?

★

यह प्रश्न इसीलिए उठ आता है कि तुम सुनते हो संतों की वाणी। वे सभी कहते हैं: आवागमन से छूटो, मुक्त हो जाओ बंधनों से। उनकी बात सुनकर तुम भी

सोचने लगते हो कि मुक्त हो जाएं बंधनों से, आवागमन से छूट जाएं। परम आनंद होगा। प्रभु का मिलन होगा। मोक्ष होगा। तुम्हारे भीतर वासना पैदा हो जाती है। संतों की बात सुनकर तुम्हारे भीतर मोक्ष के आनंद की वासना पैदा हो जाती है। यह एक नया बंधन हुआ। वासना बंधन है। यह एक नयी तृष्णा हुई। तुम चूक गये बात। तुम संतों की बात नहीं समझे।

संतों की बात अगर ठीक से समझो तो यही समझ में आएगा कि जब तृष्णा न रह जाएगी, वासना न रह जाएगी, तब जो शेष रहेगा वह मोक्ष है। मोक्ष की कोई वासना नहीं हो सकती।

अब तुम पूछते हो : 'जीवन के बंधनों से मुक्ति कैसे हो?' क्यों? क्या जरूरत पड़ी है? तुम कहोगे : 'मोक्ष का सुख पाना है।' लेकिन सुख पाने की आकांक्षा ही तो बंधन है। तुम कहते हो : 'आवागमन कैसे मिटे?' क्यों?--'अमृत की उपलब्धि करनी है?' लेकिन क्यों? तुम्हारे भीतर एक नयी वासना का सूत्रपात हुआ। यह तो संसार का फैलाव है। चूक गये, ठीक-ठीक पकड़ नहीं पाए बात। और जिस ढंग से पकड़ी, उस ढंग से पकड़ने में ही सब गलत हो गया।

संत कुछ कहते हैं, तुम कुछ समझते हो। तुम्हारी व्याख्या विकृत कर देती है। बुद्ध ने कहा, वासनाओं से छूट जाओ, तो लोग उनसे जाकर पूछते हैं कि ठीक, चलो वासना ही से छूट जाएं, कैसे छूटें? अब यह नयी वासना पैदा हो गयी कि वासना से कैसे छूटें! अब यह सताएगी। अब यह प्राण में कांटे की तरह चुभेगी। अब यह घाव बनाएगी कि वासना से कैसे छूटें। यह एक नयी वासना पैदा हो गयी। और यह बड़ी खतरनाक वासना है। पहली वासनाएं तो ऐसी थीं कि शायद पूरी भी हो जातीं, लगे ही रहते धुन में तो हो ही जातीं। कोई धन के पीछे लगा ही रहे, लगा ही रहे, एक न एक दिन धन पा ही लेता है। फिर सिर पीटता है कि पा लिया, अब? वह दूसरी बात है। कोई पद के पीछे लगा ही रहे, लगा ही रहे, तो एक दिन पा ही लेता है।

इस संसार में सभी कुछ पाया जा सकता है। लेकिन यह निर्वासना कैसे पायी जाएगी? यह तो बिलकुल नहीं पायी जा सकती। पाने की भाषा ही वहां गलत है। वहां तो समझ ही काम आती है, पाना काम नहीं आता। तुम वासनाओं को समझ लो कि उनमें कष्ट है। मेरे कहने से नहीं। मेरे कहने से समझे तो समझे नहीं। अपनी वासनाओं को ही अनुभव करो। तुम धन के पीछे दौड़-दौड़कर कितना कष्ट पा रहे हो! फिर धन तुम्हें मिल भी गया, क्या मिला? देखो, निरीक्षण करो! जागकर अपने जीवन की प्रक्रिया को समझो। अपने मन के ढांचे को पहचानो। जैसे-जैसे तुम्हें कष्ट साफ होने लगेगा, वैसे-वैसे ही तुम पाओगे कि तुम्हारी मुट्ठी संसार पर खुलने लगी। त्याग नहीं करना पड़ेगा--त्याग हो जाएगा। और यह बड़ी अलग बात है। इसलिए मैं कहता हूं : त्याग तो करना ही मत, क्योंकि त्याग करने का

मतलब है कच्चा। त्याग हो जाए।

तुम हाथ में एक पत्थर लिए चलते थे, सोचते थे हीरा है, तो खूब मुट्ठी कसकर बांधी थी। फिर तुम्हें समझ में आना शुरू हुआ, जौहरियों के पास बैठे?...जौहरि की गति जौहरि जाने... जौहरियों के पास बैठे, साधु-संग किया, पहचान आनी शुरू हुई, अपनी मुट्ठी का पत्थर गौर से देखने लगे, समझ में आया कि यह तो हीरा नहीं है। क्या तुम सोचते हो फिर मुट्ठी खोलने के लिए कोई आयोजन करना होगा? फिर मुट्ठी कैसे न बांधूं, यह तुम पूछने जाओगे? तुम किसी से कहोगे कि हे गुरु-देव, अब मुझे कुछ रास्ता बताएं कि इस पत्थर को कैसे छोड़ूं? यह तो बात ही व्यर्थ हो गयी। जिस दिन तुम्हें समझ में आ गया यह पत्थर है, कि कांच का टुकड़ा है, हीरा नहीं है--उसी क्षण मुट्ठी खुल जाएगी, खोलनी नहीं पड़ेगी। खोलने के लिए श्रम नहीं करना पड़ेगा। मुट्ठी खुल जाएगी, पत्थर हाथ से छूट जाएगा। छोड़ना पड़े तो गलत। छूट जाए, ठीक।

फर्क समझ लेना, बारीक फर्क है। बाहर से जो देखेगा उसको तो कुछ फर्क नहीं दिखायी पड़ेगा। तुम छोड़ रहे हो कि छूट गया, बाहर से तो कुछ पता नहीं चलेगा। बाहर से तो दोनों एक से मालूम होंगे : मुट्ठी खुली, यह पत्थर गिरा। मगर तुम भीतर तो जान सकते हो, भेद बड़ा है। छोड़ा कि छूटा? जो छूटा तो मुक्ति हो गयी। जो छोड़ा, फिर लौट आओगे। क्योंकि छोड़ने का मतलब ही यह होता है : अभी दिखा न था कि पत्थर है। मन में तो अभी यही लगा था कि है तो हीरा, मगर ये साधु लोग कह रहे हैं कि पत्थर है। ये जौहरी कहते हैं कि पत्थर है, है तो हीरा। मैं तो पचास साल से जानता हूं कि हीरा है। लेकिन ये कहते हैं पत्थर है। शायद ठीक कहते हों। शायद मैं गलत होऊं।

लेकिन शायद! पक्का नहीं है। साफ नहीं हुआ है। तुम अभी जौहरी नहीं हो गये हो। अभी तुम्हारी आंख में पहचान नहीं आयी है। तो छोड़ना पड़ेगा। तो तुम उपाय करोगे, आसन लगाओगे, सिर के बल खड़े होओगे, माला जपोगे, दौड़ोगे, उछ-लोगे, कूदोगे--लाख उपाय करोगे कि कैसे इसको छोड़ दूं! पकड़े हो और भीतर मन कह रहा है कि पता नहीं, कहीं धोखा-धड़ी न हो जाए; हीरा हाथ में लगा था, कहीं छूट न जाए! कभी-कभी छोड़ भी दोगे, फिर उठा लोगे। छोड़कर दो कदम जाओगे, फिर लौट आओगे कि छोड़ो भी, किनकी बातों में पड़े हो, पता इनको भी न हो! कौन जाने, या कौन जाने कि मैं इधर छोड़कर जाऊं और साधु महाराज खुद उठा लें! कोई धोखा-धड़ी हो! सिर्फ मुझे समझा रहे हों कि यह पत्थर है, सिर्फ इसलिए कि मैं छोड़ दूं! कौन जाने!

फिर उठा लेते हो। फिर-फिर उठा लेते हो।

कच्चा फल जैसे वृक्ष से अटका रहता है, ऐसे तुम अटके हो। जब फल पक जाता है, छूट जाता है, अपने से छूट जाता है। पका फल गिर जाता है, चुपचाप गिर जाता है।

तुमने पके पत्तों को गिरते देखा! कहीं कोई चोट नहीं लगती। वृक्ष पर कोई घाव नहीं छूटता। वृक्ष को पता ही नहीं चलता। वृक्ष हो सकता है अपनी शांति में डूबा हो; कब सूखा पत्ता गिर गया, वृक्ष को शायद महीनों बाद पता चले जब गौर से देखे कि कहां गया एक पत्ता, यहां हुआ करता था! वह तो अब तक मिट्टी में मिल चुका होगा। लेकिन कच्चा पत्ता जब तुम तोड़ते हो तो वृक्ष को चोट लगती है, घाव लगता है, रेखा छूट जाती है। जो पक जाता है, अपने से छूट जाता है।

...तो मैं तुम से कहूंगा: जीवन को छोड़ने की आकांक्षा मत करो। जीवन को समझो! मैं तुम से यह नहीं कहता: हीरा छोड़ दो। मैं तुम से यह कहता हूं: हीरा पहचानो! छोड़ने की जल्दी क्या है? जिस दिन पहचान तुम्हारी पूरी हो जाएगी, जिस दिन तुम जौहरी हो जाओगे, उस दिन तुम पूछने न जाओगे कैसे छोड़ दूं, छूट जाएगा। छोड़ने के लिए कोई आयोजन न करना पड़ेगा।

इसी को मैं परम संन्यास कहता हूं--जो समझ से फलित हो। फिर तुम्हें घर से भागने की जरूरत नहीं है। घर में रहते घर छूट जाता है। पत्नी के पास बैठे-बैठे पत्नी विलीन हो जाती है। बेटे के पास बैठे-बैठे बेटा तुम्हारा नहीं रह जाता। 'मेरे' का भाव विलीन हो जाता है। जहां 'मेरे' का भाव गया वहीं संसार गया।

तुम दूर-दूर से देख रहे हो। तुम्हें कुछ दिखायी पड़ रहा है। साधु पुरुष कुछ कह रहे हैं। साधु पुरुष पास खड़े हैं। उन्होंने अनुभव से देखा है। तुम्हारे और उनके अनुभव में मेल नहीं, इसलिए प्रश्न उठता है: कैसे?

मैं नहीं चाहता कि तुम्हें कैसे बताऊं। कैसे बता-बताकर तुम्हें बहुत तकलीफ दे दी गयी है। मैं चाहता हूं कि तुम्हें करीब लाऊं। इसलिए कहता हूं: जीवन से भागो मत, नहीं तो हिमालय की गुफा में बैठकर तुम दुकान की ही बात सोचोगे। और बहुत-बहुत बार यह मन में विचार उठेगा: 'कहीं भूल तो नहीं कर दी? पता नहीं सुख वहीं हो!' और हजार तर्क सिर उठायेंगे। हजार तर्क कहेंगे कि 'मैं यहां अकेला बैठा हिमालय पर, वहां अरबों लोग जी रहे हैं, अरबों लोग गलत हैं और मैं सही हूं?' यह प्रश्न नहीं उठेगा? 'इतने लोग गलत हैं और केवल मैं सही हूं? यह कैसे हो सकता है?' फिर गुफा में बैठे-बैठे, सिर्फ गुफा में बैठने से कोई आनंद तो मिल नहीं जाता। गुफाएं सब गंदी हैं, हवा तक आने की सुविधा नहीं है। आनंद-आनंद की तो बात छोड़ो, शुद्ध हवा भी नहीं आती। वहां बैठे-बैठे कहां का आनंद, कहां का परमात्मा? थोड़े दिन में यह मन में उठने लगेगा कि अपने घर में थे, कम से कम शुद्ध हवा तो मिलती थी। अपने घर में थे, कभी-कभी उत्सव के क्षण भी आते थे। बेटी की कभी शादी हुई थी, तब मन प्रफुल्लित हुआ था। लॉटरी जीत गये थे। क्षणभर ही टिका था, मगर आया था क्षणभर को! क्षणभर को उल्लसित हुए थे। यहां न लॉटरी खुलती, न बेटे की शादी होती, न बैंड-बाजे बजते। यहां बैठे हैं खाली। कितनी देर खाली बैठे रहोगे? खाली तो बैठ नहीं सकते

एक क्षण।

तो मन में सारा संसार चलेगा। बाहर से संसार छोड़कर आ गये, मन में सारा संसार चलेगा। खूब जोर से चलेगा। अंधड़ उठेंगे! सब वासनाएं दबी हुई पड़ी हैं, टक्कर मारेंगी। और मन में बार-बार संदेह उठेगा कि मृत्यु के बाद जो मोक्ष है, पता नहीं हो या न हो! बुद्धिमानों ने कहा है: हाथ की आधी रोटी मत छोड़ना—कल्पना की पूरी रोटी के लिए। और मैं यह आधी रोटी भी छोड़कर आ गया—कल्पना की पूरी रोटी के लिए! अब यहां बीमार हो जाता हूं तो कोई देखभाल करने वाला नहीं। गांव रोज जाना पड़ता है भीख मांगने, अपने घर में या तो कम से कम भीख तो नहीं मांगनी पड़ती थी। जहां जाओ, वहीं लोग कह देते हैं: आगे बढ़ो! ऐसा अपमान सहना पड़ता है। दो-दो कौड़ी के लिए मोहताज हो गया हूं।

तुम जरा अपने साधु-संन्यासियों की मोहताजी तो देखो। और जो मोहताज है वह गुलाम हो जाता है। तुम अपने साधु-संन्यासियों की गुलामी तो देखो। रोज ऐसे अनुभव मुझे होते हैं। जैन साधु-साध्वियां मुझे मिलने आना चाहते हैं, लेकिन खबर भेजते हैं कि हम आ नहीं सकते, क्योंकि श्रावक आज्ञा नहीं देते। श्रावक आज्ञा नहीं देते! ये श्रावक कौन हैं? साधारणतः तो माना जाता है कि साधु नेता हैं और श्रावक अनुयायी हैं। श्रावक पैर छूते हैं साधु महाराज के, सेवा को जाते हैं।...कहां जा रहे हो? साधु की सेवा को जा रहे हैं! चरण दबाते हैं। सिर रखते हैं चरणों पर। और यही श्रावक उनको आने नहीं देते! यह तो बड़ा मजा हुआ! कौन मालिक है, कौन गुलाम है--तय कैसे हो? ये श्रावक कहते हैं: 'जाना हो तो चले जाना, लेकिन फिर याद रखना!...' क्योंकि रोटी-रोजी, छप्पर तो श्रावक देता है।...'फिर याद रखना, शोभायात्रा न निकालेंगे दुबारा। फिर आना गांव में, कोई स्वागत करने गांव के बाहर न आएगा।'

ऐसा हुआ, मैं हैदराबाद में था। एक जैन मुनि को मेरी बात जच गयी। युवा थे, अभी हिम्मत थी। तो उन्होंने छोड़ दिया मुनि-वेश। उन्होंने कहा: आप ठीक कहते हैं। मेरे मन में सारी वासनाएं तो चल ही रही हैं। कुछ भी गया नहीं है। तो क्या सार है! शायद आप ठीक कहते हैं कि मैं कच्चा छोड़कर आ गया।

अभी उम्र भी ज्यादा नहीं थी, कोई तीस साल उम्र थी। और दस साल हो गये थे उनको मुनि हुए। हिम्मतवर थे, अभी जवान थे। हिम्मत की कि ठीक है, मेरा मन तो अभी यहां लगता नहीं, यहां मुझे कुछ मिलता भी नहीं, दस साल देख लिया। और जो संसार है वह मुझे अभी खींच रहा है, तो शायद आप ठीक कहते हैं: मैं कच्चा टूट गया हूं। मैं पकूंगा। फिर जब सौभाग्य का क्षण आएगा, सहज संन्यास फलित होगा, तो ठीक है।

यह आदमी ईमानदार था, प्रामाणिक था। लेकिन जैन समाज तो बहुत नाराज हो गया। इस आदमी के पैर छूते थे, वे इस आदमी को मारने को तैयार हो गये!

कहते हैं अहिंसक हैं, मगर कहां कौन अहिंसक है ! पानी छानकर पीते हैं, खून बिना छाने पी जाते हैं। वे तो मारने को... क्योंकि उनके तो यह भारी सदमा हो गया, उनका मुनि और छोड़कर चला गया !

मैं एक सभा में बोलने गया था। जैनों की सभा थी। वे मुनि भी मेरे साथ आ गये। अब तो वे मुनि नहीं थे। तो एक आदमी ने उनको नमस्कार नहीं किया। यह तो बात चलो ठीक है, लेकिन वे मंच पर मेरे साथ बैठ गये, तो मेरे पास चिट्ठियां आने लगीं कि इनको मंच से नीचे उतारिये। मैंने उनसे कहा कि भाई, मैं मुनि तुम्हारा नहीं हूं, मैं मंच पर बैठा, तो ये तो बेचारे कभी तो मुनि थे, भूतपूर्व सही ! भूतपूर्व मंत्री भी आता है तो भी आदमी इज्जत करता है। ये भूतपूर्व मुनि हैं, तुम्हारे ही मुनि हैं...।

मगर उन्होंने कहा कि जब तक ये नीचे न उतरेंगे, सभा आगे न बढ़ेगी। बड़ा शोरगुल मचाने लगे। लोग उठकर खड़े हो गये। मुझे यह लगा कि वे उनको खींच कर ही उतार लेंगे। मंच घेर लिया। मैंने उन मुनि महाराज से कहा कि अब तुमने मुनि-व्रत भी छोड़ दिया, अब तुम यह मंच का भी थोड़ा मोह छोड़ो। यह झंझट फिजूल की हो रही है। अब मुनि ही जब न रहे, तो अब मंच भी जाने दो।

मगर वे भी जिद्दी ! जिद्दी न होते तो वे मुनि ही कैसे हुए होते ! वे भी छोड़ने को राजी नहीं, क्योंकि वह भी प्रतिष्ठा का सवाल कि मंच कैसे छोड़ दें ! और वह जनता भी अहिंसकों की !...मगर इस तरह खूनी आंख कि उनको मार डालें ! आखिर सिवाय इसके कोई रास्ता नहीं था, मैं मंच से उतरकर चला गया। जब मैं उतर गया, तो मुनि महाराज मेरे पीछे उतर गये। वह सभा नहीं हो सकी। और उनको हैदराबाद छुड़वा कर रहे लोग। वही लोग जो पैर छूते थे, मंच पर न बैठने देंगे।

तो कौन किसका मालिक है ? तुम जिनको मुनि कहते हो, जिनको त्यागी कहते हो, साधु कहते हो--वे तुम्हारे गुलाम हैं। वे तुम पर निर्भर हैं। तुम जैसा चलाते हो, वैसे चलते हैं। तुम जहां बिठाते हो वैसे बैठते हैं। तुम जो करवाते हो वैसा करते हैं। कठपुतलियां हैं। जब तुम साधु हो जाओगे--जबरदस्ती के साधु--तब तुम को पता चलेगा कि तुमने एक और बड़ी गुलामी ले ली। पहले कम से कम गुलामी थी--पत्नी थी, बच्चे थे, थोड़ा-सा परिवार था--अब यह पूरी भीड़ के तुम गुलाम हो गये। स्वतंत्रता खो गयी। और जिसकी स्वतंत्रता खो जाए, वह मोक्ष कैसे पाएगा ? स्वतंत्रता तक न रही, तो परम स्वतंत्रता तो कैसे मिलेगी ? परम स्वतंत्रता की तरफ जाना हो तो स्वतंत्रता को बढ़ना चाहिए, तो ही पहुंच पाओगे।

तो मैं तुम से नहीं कहता कि तुम छोड़कर भाग जाओ। मैं नहीं तुम्हें कोई विधि बताता कि कैसे आवागमन से मुक्ति हो। मैं इतना ही बताना चाहता हूं कि कैसे तुम समझो कि आवागमन हो रहा है, कैसे हो रहा है ? संसार कैसे बन रहा है ?

तुम्हारा चित्त कैसे संसार को निर्मित करता है ? इसे पूरी तरह देख लो, पहचान लो भर आंख—उसी भरी आंख में छुटकारा है !

यहां से शहर को देखो तो हल्का-दर-हल्का
खिंची है जेल की सूरत हर एक सम्त फसील
हर एक रहगुजर गर्दिशे-असीरां है
न संगे-मील, न मंजिल, न मुखलसी की सबील
जो कोई तेज चले रहे तो पूछता है खयाल
कि टोकने कोई ललकार क्यों नहीं आयी ?
जो कोई हाथ हिलाए तो वहम को है सवाल
कोई छनक, कोई झंकार क्यों नहीं आयी ?
यहां से शहर को देखो तो सारी खल्कत में
न कोई साहिबे-तमकीं, न कोई वाली-ए-होश
हर एक मर्दे-जवां मुजरिम-रसन-ब-गुलू
हर एक हसीना-ए-रोना कनीज हल्का-ब-गोश
जो साये दूर चिरागों के गिर्द लर्जा हैं
न जाने महफिले गम है कि बज्मे-जाम-ओ-सबू
जो रंग हर दरो-दीवार पर परीशां है
यहां से कुछ नहीं खुलता, ये फूल हैं कि लहू।

दूर से देख रहे हो—बड़ी दूर से देख रहे हो ! पक्का नहीं होता कि वह जो दीवाल पर दिखायी पड़ते लाल धब्बे हैं, वे फूल हैं कि लहू ? और यह संसार एक कारागृह जैसा है।

यहां से शहर को देखो तो हल्का-दर-हल्का,
पेंच-दर-पेंच, खिंची है जेल की सूरत हर एक सम्त फसील

सब ओर दीवालें बनी हैं। हर तरफ दीवालें खड़ी हैं। हर तरफ कारागृह है। जिसको तुम सांसारिक कहते हो, वह कारागृह में है; और जिसको तुम संन्यासी कहते रहे हो, वह भी कारागृह में है। सब के कारागृह हैं—अपने-अपने कारागृह हैं।

खिंची है जेल की सूरत हर एक सम्त फसील
हर एक रहगुजर गर्दिशे-असीरां है

जेलखाने कभी गये ? तो वहां जेल में एक बीच में चक्कर होता है, जिनमें कैदियों को चलने की सुविधा होती है। जैसे कोल्हू का बैल चलता है, ऐसे वे गोल चक्कर में थोड़ी देर घूम सकते हैं।

हर एक रहगुजर गर्दिशे-असीरां है

और यहां सब रास्ते संसार के, बस जेल में जो चक्कर रास्ता होता है, जिस पर

कैदी थोड़ी देर घूम सकते हैं, इस तरह की राहें हैं यहां।

न संगे-मील, न मंजिल, न मुख्लसी की सबील

न तो मुक्ति की कोई संभावना दिखती है, न कोई मंजिल का आसार। मंजिल तो दूर, राह के किनारे पत्थर भी नहीं लगे हैं कि कितनी दूर आ गये, मंजिल कितनी और दूर है?

जो कोई तेज चले रहे, तो पूछता है खयाल
कि टोकने कोई ललकार क्यों नहीं आयी?

कैदी जब चलता है तो अगर जरा तेज चलने लगे तो मन में ख्याल उठने लगता हैं कि कोई टोकने ललकार क्यों नहीं आयी? क्योंकि पीछे ललकार सदा खड़ी है--सुप्रिन्टेन्डेन्ट खड़े हैं, पुलिसवाले खड़े हैं। तेज नहीं चल सकते।

जो कोई तेज चले रहे तो पूछता है खयाल
कि टोकने कोई ललकार क्यों नहीं आयी?
जो कोई हाथ, हिलाए तो वहम को है सवाल
कोई छनक, कोई झंकार क्यों नहीं आयी?

अगर कोई हाथ हिलाये तो जेलखाने में तो एक ही आभूषण होता है--जंजीरें। जब कोई हाथ हिलाये तो जंजीरों में खनक होती है।

जो कोई हाथ हिलाए तो वहम को है सवाल
कोई छनक, कोई झंकार क्यों नहीं आयी?
यहां से शहर को देखो तो सारी खल्कत में
न कोई साहिबे-तमकीं, न कोई वाली-ए-होश

यहां से अगर दुनिया को खड़े होकर देखो, जरा ऊंचाई से, तो न तो कोई दिखता है सहनशील, न कोई संतुष्ट, न कोई आनंदित, न कोई होश वाला।

न कोई साहिबे-तमकीं न कोई वाली-ए-होश
हर एक मर्दे-जवां मुजरिम-रसन-ब-गुलू

सभी रस्सी में पिरोये हुए फूल की तरह हैं। एक तो फूल होता है वृक्ष पर और एक फूल होता है गजरे में पिरोया हुआ। धागा दिखायी भी नहीं पड़ता; छुपा होता है। लेकिन फूल गुलाम हो गया।

तुम्हारे धागे भी दिखायी नहीं पड़ते। तुम्हारे हाथ की जंजीरें अदृश्य हैं, लेकिन हैं। और यह मत सोचना कि तुम्हारे ऊपर जंजीरें हैं, तुम्हारे मुनि पर नहीं हैं। कारागृह में बसे हुए लोगों का जो मुनि होगा, कैदियों का जो गुरु होगा, वह भी कैदी ही होनेवाला है। बहुत कठिनाई है; वह भी बच नहीं सकता। जैन मुनि जैन कारागृह में बंद, हिन्दू संन्यासी हिन्दू कारागृह में बंद, मुसलमान फकीर मुसलमान कारागृह में बंद। अलग-अलग कारागृह हैं। इस जमीन पर जितने धर्म हैं, उतने कारागृह हैं।

हर एक हसीना-ए-रोना कनीज हल्का-ब-गोश

और हर सुंदरतम स्त्री भी यहां गुलाम है, दासी है। जवान से जवान, शक्तिशाली से शक्तिशाली पुरुष भी धागे में पिरोया हुआ फूल है। और सुंदर से सुंदर स्त्री भी यहां दासी है।

जो साये दूर चिरागों के गिर्द लर्जा हैं

और दूर चिराग हैं और उनके पास जो दिखायी पड़ रहा है।

न जाने महफिले-गम है कि बज्मे-जाम-ओ-सबू

पता नहीं, वहां बैठकर लोग रो रहे हैं, दुखी हो रहे हैं; कोई मर गया, मातम मना रहे हैं; या शराब ढाली जा रही है, लोग मस्त हो रहे हैं? दूर से कुछ राज नहीं खुलता। दूर से दीया जलता है; पास बैठी हुई तस्वीरें मालूम पड़ती हैं, छायाएं मालूम पड़ती हैं।

जो साये दूर चिरागों के गिर्द लर्जा हैं
न जाने महफिले-गम है कि बज्मे-जाम-ओ-सबू
जो रंग हर दरो-दीवार पर परीशां है
यहां से कुछ नहीं खुलता, ये फूल हैं कि लहू?

दूर से कुछ राज नहीं खुलता। मैं तुम से कहूंगा: पास आओ।

इसलिए कहता हूं: संसार से भागो मत। संसार के पास आओ। संसार को आंख गड़ाकर देखो। संसार को पहचानो। उसी पहचान में छुटकारा है। उसी पहचान में मुक्ति है।

ज्ञान मुक्ति है। ज्ञान के अतिरिक्त और कोई मुक्ति नहीं है।

कौन-सी चीज तुम्हें बांधे है? क्यों बांधे है? उसे पास से देखो, गौर से देखो। छूटने की जल्दी न करो। छूटने की जल्दी में देख ही न पाओगे। भागने की उत्सुकता मत रखो, क्योंकि भगोड़ा कैसे समझ पाएगा? और शत्रुता पहले से ही तय मत कर लो, नहीं तो पक्षपात पहले से ही तय कर लिया। तो दुश्मन को कोई भर आंख थोड़े ही देखता है।

इसलिए चाहता हूं कि तुम शास्त्रों से मुक्त हो जाओ, शब्दों से मुक्त हो जाओ, सिद्धांतों से मुक्त हो जाओ। समझो कि तुम पहले आदमी हो जमीन पर; तुम्हें कुछ पता नहीं कि पहले लोगों ने क्या कहा है।

चीन में एक सम्राट हुआ—अद्भुत सम्राट था! सी-हुआंग उसका नाम था। उसी ने चीन की बड़ी दीवाल बनायी। और उसी ने एक और बड़ा काम किया--इससे भी बड़ा काम किया। उसने बड़ा काम यह किया कि सारे पुराने शास्त्र और पुरानी किताबों को जलवा दिया, घर-घर खोज करवा कर। और जिन लोगों ने बचाने की कोशिश की, उन्हीं को दीवाल पर काम पर लगा दिया, उन्हीं ने दीवाल बनायी। जिन्होंने बचाने की कोशिश की किताबें, उनको कहा कि फिर दीवाल...।

और चूंकि लोगों का मोह बहुत है अतीत से, तो लाखों लोग मिल गये, फंस गये उस जाल में। दोनों काम एक साथ करवा लिये। यह दीवाल बनवा ली, क्योंकि जो भी इसमें फंस गया, एक सीमा बना रखी थी उसने कि इतने दिन के भीतर सारी किताबें समाप्त हो जानी चाहिए।

क्यों हुआंग को यह ख्याल आया कि सारी किताबें समाप्त हो जानी चाहिए? क्योंकि हुआंग ने देखा कि इन्हीं किताबों के कारण लोगों की आंखें देखने में समर्थ नहीं हैं। बड़ी हिम्मत का कदम था। उसने चाहा कि आदमी अतीत से मुक्त हो जाए; उसके पास कोई पक्षपात न रहें; आदमी के मन में कोई सिद्धांत, धारणाएं न रहें—ताकि वह जिंदगी को जैसा है वैसा ही देख सके।

लेकिन फिर भी लोगों ने किताबें बचा लीं। लोगों ने छिपा लीं। कोई अपनी किताब आसानी से नहीं छोड़ता। किताब में तुम्हारे प्राण हैं। वहीं तुम्हारा ज्ञान है। तुम में खुद तो ज्ञान है नहीं, किताब में तुम्हारा ज्ञान है। किताब को छोड़कर लगता है अज्ञानी हो गये। अज्ञानी तुम हो ही, किताब कैसे तुम्हें ज्ञान दे देगी? किताबों से कहीं ज्ञान मिला है! पाकशास्त्र से पेट तो नहीं भरता। और जल कैसे बनता है, इसका सूत्र 'एच. टू. ओ.' इसको तुम कागज में लिखकर और गटक जाओ, तो प्यास नहीं बुझती।

'आग' शब्द में कहां आग है? 'परमात्मा' शब्द में भी परमात्मा नहीं। अनुभव में—जीवंत अनुभव में!

तो हुआंग ने सारी किताबें हटवा दीं और चाहा कि लोग फिर सरल हो जाएं, निर्दोष हो जाएं, आदिम हो जाएं।

मैं तुम से नहीं कहता कि किताबें जला दो, क्योंकि जलाने से क्या होगा, अगर मन में आग्रह बना रहा? हुआंग सफल नहीं हुआ। लोगों ने एक तो किताबें बचा लीं और जिन्होंने नहीं बचायीं, उन्होंने भी जलाने के पहले कंठस्थ कर लीं। किताब छीन लोगे, कंठस्थ कैसे छीनोगे? याद कर लीं, रटवा दीं। फिर बच गयीं। हुआंग तो मर गया, फिर किताबें वापिस लिख दी गयीं। फिर किताबें अपने-अपने तलघरों से निकल आयीं, फिर प्रगट हो गयीं।

आदमी का अतीत के प्रति बड़ा मोह है और अतीत के मोह के कारण ही आदमी वर्तमान से वंचित होता है।

तुम से किसने कहा कि संसार बुरा है? मैं नहीं कहता कि भला है। मैं नहीं कहता कि बुरा है। मैं कहता हूं: तुम जानो। तुम पहचानो। संसार परमात्मा ने दिया है, होश सम्हालो! कुछ प्रयोजन होगा इस देने में। ठीक भर आंख देख लो—क्या है संसार, क्या है इसका राज? उसी राज के जानने में तुम पाओगे कि हाथ से जंजीरें गिर गयीं, तुम मुक्त हो गये।

ज्ञान मुक्ति है। और सत्य मुक्तिदाता है, शास्त्र नहीं।

तीसरा प्रश्न: आप जब गांधी, विनोबा, अरविंद और विवेकानंद के विरोध में बोलते हैं तो मुझे रंज होता है। वैसे ही जब कोई आप के विरोध में बोलता है तो भी मुझे रंज होता है। विनती है कि जैसे आप बुद्ध और महावीर को समझाने में सहायक होते हैं, वैसे ही श्रीअरविंद को समझाने में सहायक हों!

★

पहली बात: तुम्हें जिस बात में रंज न हो, वह मैं कहूं, तो मुझे निरंतर झूठ ही झूठ बोलना पड़े। फिर सच बोला नहीं जा सकता। सच तो चोट करता है। सच तो कड़वा है। झूठ बड़े मीठे हैं। झूठ को मीठा होना ही पड़ता है, नहीं तो कौन गले उतारेगा? झूठ के चारों तरफ शक्कर लगानी पड़ती है।

जहर-भरी गोली तुम्हें खिलाते हैं तो उसके ऊपर शक्कर लगा देते हैं। उस बीच शक्कर घुले-घुले, तब तक गले से उतर जाती है।

अगर मैं यह ध्यान रखूं कि तुम्हें रंज न हो, तब तो कठिन हो जाएगा; तब तो मैं तुम्हें कोई सहारा न दे पाऊंगा। तुम्हें बदल भी न पाऊंगा। तब तो मेरा बोलना व्यर्थ है, समझाना व्यर्थ है।

यह तो ऐसे ही हुआ कि तुम डॉक्टर के पास जाकर कहो कि जब आप मेरे घाव को धोते हैं तो मुझे बड़ी तकलीफ होती है; और जब आप मेरे घाव से मवाद निकालते हैं तो मुझे बड़ी पीड़ा होती है; इसलिए तो मैं आया नहीं था आप के पास कि आप मुझे पीड़ा दें; मुझे सुख दें। डॉक्टर वही कर रहा है: मवाद निकल जाए, घाव साफ हो जाए, तो भर जाए। भर जाए तो सुख हो। तुम अभी सुख चाहते हो! तो फिर किसी धोखेबाज डॉक्टर के पास जाना पड़ेगा। वह मवाद भी नहीं निकालेगा, वह घाव धोयेगा भी नहीं, ऊपर सुंदर पट्टी बांध देगा और राम-राम लिख देगा। राम-नाम की चदरिया ओढ़ा दी, मजा करो, आनंद से रहो। आशीर्वाद दे देगा। और तुम बड़े प्रसन्न घर लौट आओगे। लेकिन वह जो मवाद भीतर पड़ी रह गयी, वह बढ़ेगी।

इस जगत में कोई चीज रुकती नहीं—हर चीज बढ़ती है। बढ़ाव इस जगत का नियम है। गलत को काटकर न फेंक दिया तो बढ़ता रहेगा। धीरे-धीरे नासूर बनेगा। और अगर तुम ऐसे ही तलाश में रहे, कि ऐसे ही आदमियों के पास गये जो मल्हम पट्टी बढ़ाते जाएं ऊपर-ऊपर, जो घाव को ढांकते जाएं—तो नासूर एक दिन कैन्सर बनेगा। ऐसे ही तो लोग सड़ गये हैं। लोग लाशें हैं।

तुम जो पूछ रहे हो, इसी कारण से। लोग मुर्दा हैं। लोगों ने जीवन नहीं जाना। जीवन जानने के लिए थोड़ी तो चोट खाने की हिम्मत करनी होती है। जीवन सीखने के लिए भी चोट खानी पड़ती है। छोटा बच्चा चलना शुरू करता है तो कितनी बार गिरता है! घुटने तोड़ लेता है। खून निकल आता है। चमड़ी छिल जाती है। सोच ले बच्चा कि इसमें तो चोट लगती है चलने में, इससे तो अपना घुटने के बल ही

सरकना बेहतर, उसमें कभी चोट नहीं लगती––तो फिर कोई बच्चा कभी चले नहीं। फिर यहां जमीनों पर सरकते हुए लंगड़े-लूले लोग हों।

धर्म की दुनिया में तुम ऐसे ही लंगड़े-लूले हो, क्योंकि वहां तुम चलने की हिम्मत नहीं कर पाते।

अब तुम जरा सोचते नहीं कि तुमने क्या पूछा है। तुम्हारा अरविंद से मोह है। यहां इतने लोग बैठे हैं––पांच सौ लोग यहां हैं। इन पांच सौ के अलग-अलग मोह हैं। तुम चाहते हो, मैं इन सब को प्रसन्न करता रहूं? इन में से कोई कम्युनिस्ट है, उसका मार्क्स से मोह है; वह कहता है : मार्क्स के खिलाफ मत बोलना। इनमें से कोई नास्तिक है, उसको चार्वाक से लगाव है; वह कहता है : चार्वाक के खिलाफ मत बोलना। इनमें से कोई बौद्ध है, कोई हिन्दू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई यहूदी है। इनमें से कोई फ्रायड को मानता है। इनमें से कोई नीत्शे को मानता है। यहां इतने तरह के लोग हैं। अगर मैं इस बात की फिक्र करूं कि यहां किसी को रंज न हो, तो तुम सोचते हो, एक भी शब्द बोल पाऊंगा? मौन ही रहना पड़ेगा। लेकिन कई ऐसे होंगे, जिनको मौन से दुख होगा। फिर क्या करना? जो कहेंगे हमें मौन से रंज होता है, आप चुप क्यों हो गये, बोलिये!

फिर मेरा क्या कसूर? तुम्हारे लगाव तुम्हारे लगाव हैं। तुम्हें अरविंद पसंद हैं, यहां मत आओ। तुम्हें मैं पसंद हूं तो कीमत चुकाओ। मैंने तुम से कहा नहीं कि तुम यहां आओ। तुम्हें जहां सत्य के दर्शन होते हों वहां जाओ। लेकिन तुम हो बेईमान। तुम सब नावों पर इकट्ठे सवार रहना चाहते हो।

मुल्ला नसरुद्दीन जब मरने के करीब हुआ तो उसने पहले अल्लाह की बड़ी स्तुति की कि 'हे परमपिता! हे अल्लाह! हे करुणावान! हे रहमान-रहीम!' जब प्रार्थना पूरी कर दी, तब दूसरी तरफ करवट बदली और कहा कि 'हे प्रभु, हे शैतान। तू महान है! तू करुणावान है!' उसकी पत्नी ने कहा : आपका दिमाग तो खराब नहीं हो गया?

उसने कहा कि सभी को राजी रखना ठीक है। मरने के बाद किससे मिलना हो, क्या पता! भगवान को भी कह दी खुशी की दो बातें, शैतान को भी कहे देते हैं। कहां जाना होगा, कौन मिलना होगा, कौन के चक्कर में पड़ेंगे––अभी से कुछ पक्का तो है नहीं। दोनों नाव पर सवार रहना ठीक है।

यह कुशल होशियार आदमी का लक्षण है।

अगर तुम मुझे समझे तो उसी समझने में अरविंद गलत हो जाएंगे। अगर तुम मुझे समझे तो उसी समझने में गांधी, विनोबा और विवेकानंद गलत हो जाएंगे। मैं कहूं या न कहूं, मेरे कहने न कहने की बात नहीं है।

और तुम चाहते हो कि मैं जैसे बुद्ध और महावीर को समझाता हूं, ऐसे ही गांधी, विनोबा को समझाऊं। गांधी, विनोबा राजनीतिज्ञ हैं। महावीर और बुद्ध से इनका

क्या लेना-देना? कुशल राजनीतिज्ञ हैं!

तुम चाहते हो : अरविंद और विवेकानंद को भी इसी तरह समझाऊं। अरविंद गांधी से थोड़े बेहतर हैं––आधे राजनीतिज्ञ हैं। विवेकानंद और थोड़े बेहतर हैं––एक चौथाई राजनीतिज्ञ। विवेकानंद की राजनीति तुम्हें समझ में न आएगी, क्योंकि वह राजनीति धर्म की आड़ में है। वह हिन्दुत्व का प्रचार है। वह हिन्दू-अहंकार की प्रतिष्ठा है। इसलिए हिन्दुओं को प्रीतिकर लगते हैं विवेकानंद, क्योंकि हिन्दू-अहंकार की प्रतिष्ठा है। लेकिन विवेकानंद समाधिस्थ नहीं हैं, न अरविंद हैं, न गांधी-विनोबा हैं।

अगर बुद्ध और महावीर को मैं समझाता हूं, तो बुद्ध और महावीर के कारण नहीं, समाधि के कारण। तो पतंजली को भी समझाता हूं। कबीर को भी समझाता हूं। मीरा को भी समझाता हूं। जीसस को भी समझाता हूं। लाओत्से को भी समझाता हूं। जिन-जिनने समाधि को उपलब्ध किया है, किसी ढंग से किया हो, उनकी समाधि के प्रति मेरे मन में बड़ा समादर है। लेकिन जिन्होंने समाधि को उपलब्ध नहीं किया है, उनको मैं नहीं समझा सकता। तुम्हें उनकी बात अच्छी लगती हो तो मैं तुम्हें रोकता नहीं, क्योंकि मैं किसी को रोकना नहीं चाहता यहां। तुम्हें उनकी बात अच्छी लगती हो, तुम उनके मार्ग पर जाओ। और तुम्हें मेरी बात ठीक लगती हो, तो फिर ठीक-ठीक चुनाव कर लो।

तुम कहते हो : 'आप जब गांधी, विनोबा, अरविंद और विवेकानंद के विरोध में बोलते हैं तो मुझे रंज होता है।' तो कुछ ऐसा करो कि रंज न हो। तुम मुझे बदलना चाहते हो? रंज तुम्हें होता है, मुझे बिलकुल रंज नहीं होता। मुझे रंज होता तो मैं ऐसी बात बोलता ही नहीं। रंज तुम्हें होता है। तो अपने भीतर तलाशो कि रंज का क्या कारण होगा। तुम्हारे अहंकार ने संबंध बना लिए होंगे। तुम्हारे अहंकार ने नाते-रिश्ते बना लिए होंगे।

गांधी से तुम्हें क्या लेना-देना है? गौडसे ने गांधी को गोली मार दी, तुमने आत्महत्या नहीं कर ली। तुम एकदम छलांग लगाकर कुएं में नहीं गिर गये कि अब क्या जीना! तुम्हें गांधी से क्या लेना-देना? हां, लेकिन तुमने कुछ लगाव बना लिए हैं। तुम्हारे लगाव से तुम्हें लगाव है। तुम कहते हो कि गांधी के कुछ खिलाफ कहा गया तो तुम्हारे खिलाफ हो गया। हो सकता है तुम खादी पहनते हो कि चरखा चलाते हो या और तरह की कोई नासमझी करते हो। या हो सकता है एकाध बार जेल गये होओ; स्वतंत्रता के आंदोलन में सम्मिलित हुए होओ। तुम्हारा अहंकार गांधी के नाम के साथ जुड़ा है। तुम्हें डर लगता है कि अगर गांधी गलत हैं तो तुमने जो गांधी के साथ किया होगा या सोचा होगा कि कर रहे हो, वह गलत हो गया। तुम्हारी हिम्मत इतनी नहीं कि तुम इस बात को देख पाओ।

और तुम कहते हो : 'आपके खिलाफ भी जब कोई बोलता है तो मुझे रंज होता है।'

वह रंज भी वही है। उसमें कुछ भेद नहीं है। हो सकता है कि तुम मानते होओ कि तुम मेरे अनुयायी हो या मेरे शिष्य हो या मेरे साथ हो। और फिर कोई मेरे खिलाफ बोलता है तो तुम्हें चोट लगती है। चोट यह नहीं लगती कि मेरे खिलाफ बोलता है। मुझ से तुम्हें क्या लेना-देना है? चोट यह लगती है कि तुम जिसके पीछे चल रहे हो, तुम जैसा समझदार आदमी जिसके पीछे चल रहा है, वह गलत कैसे हो सकता है! वह गलत तो तुम गलत हो जाते हो, इसलिए चोट लगती है।

इस बात को ठीक से पहचान लो। ये सब अहंकार को लगी चोटें हैं। और अहंकार को जाने दो, अन्यथा अहंकार पर तो चोटें लगती ही रहेंगी। अहंकार तो घाव है। उसमें तो जरा-सी चीज लग जाती है तो पीड़ा होती है। यह सब अहंकार है।

कोई कह देता है गीता में क्या रखा है, तुम एकदम गुस्से में आ जाते हो। इसलिए नहीं कि तुम्हें कृष्ण से कुछ लेना-देना है, कि गीता में कुछ रखा है। तुम्हें भी कुछ नहीं रखा है। लेकिन 'गीता में क्या रखा है--' तुम्हें चोट लग जाती है। तुम हिन्दू, गीता तुम्हारी किताब! अगर गीता में कुछ नहीं रखा तो तुम में क्या रखा है? यह घबड़ाहट पैदा होती है। तो गीता को बचाना पड़ेगा। गीता के पीछे तुम भी बच जाते हो।

तो इसी तरह तो लोग प्रकारांतर से अहंकार भरते हैं। भारत—पुण्यभूमि! क्योंकि आप यहां पैदा हुए हैं! बड़ी आपकी कृपा! 'हिन्दू-धर्म दुनिया का श्रेष्ठ-तम धर्म—' क्योंकि आप हिन्दू हैं! आप मुसलमान होते तो? तो इस्लाम ही दुनिया का श्रेष्ठतम धर्म। 'वेद दुनिया की सब से पुरानी किताब--' क्योंकि आप हिन्दू हैं! अगर जैन होते तो वेद दो कौड़ी का; तो जैन धर्म दुनिया का सब से पुराना धर्म है, सब से महान धर्म है।

जरा गौर से देखो! तुम किस बात की घोषणा कर रहे हो? 'हिन्दू-धर्म बड़ा! भारतवर्ष बड़ा!' किस बात की घोषणा कर रहे हो? ये बचकानी बातें हैं। जैसे छोटा बच्चा कहता है कि मेरे पिताजी तुम्हारे पिताजी को दो मिनिट में चारों खान चित कर दें। मेरे पिताजी! झगड़ा हो जाता है इस पर, मारपीट हो जाती है इस पर बच्चों में कि कौन के पिताजी किसको चित कर सकते हैं।

एक बच्चा किसी से कह रहा था कि मेरी मां कोई भी विषय दे दो, घंटों बोल सकती है। दूसरा बोला : यह कुछ भी नहीं, मेरी मां बिना विषय के घंटों बोल सकती है।

अकड़े हैं! आदमी सब तरफ से अपनी अकड़ को सहारा दे रहा है।

कोई मेरे खिलाफ बोल देता है, तुम्हें चोट लगती है। चोट इसलिए नहीं लगती है कि तुम्हें मुझसे कुछ लेना-देना है; चोट इसलिए लगती है कि तुम मुझे सुनने आते हो। अगर यह आदमी सही कह रहा है, तो फिर अब तुम कैसे सुनने आओगे? और सुनने आओगे तो 'तुम नासमझ हो, गलत आदमी को सुनने जा रहे हो! तुम जैसा सही आदमी गलत आदमी को सुनने जा रहा है!' तो तुम्हें खुद सही रहने के लिए, जिसको तुम सुनने जाते हो, उसको भी सही रहना पड़ेगा। इसलिए तुम विवाद करते हो।

समझो, क्यों चोट लगती है? और उस चोट के मूल कारण से अपने को मुक्त कर लो--अहंकार से। फिर कोई चोट न लगेगी। फिर मेरे खिलाफ कोई बोले, तो भी तुम शांति से सुनोगे। हो सकता है, यह आदमी ठीक कह रहा हो, इसको शांति से सुनना चाहिए, समझना चाहिए। अगर तुम्हारे मन में मेरा कोई भी मूल्य है तो जो मेरे खिलाफ बोलता है उसका भी तुम्हारे मन में मूल्य होगा। चोट नहीं लगेगी। तुम उससे और भी खोद-खोदकर समझना चाहोगे कि बात पूरी समझ लेनी चाहिए, क्योंकि जीवन का निर्णय इन बातों पर निर्भर है। तुम उस आदमी के पीछे लग जाओगे। तुम कहोगे : 'और समझाओ। सब बातें बताओ जो-जो खिलाफत की हैं, ताकि मैं पुनः विचार कर सकूं। हो सकता है तुम सही होओ। क्योंकि मैंने सही होने का कोई ठेका नहीं ले लिया है। मैं ही सही होऊं, यह क्या जरूरी है? तुम भी सही हो सकते हो। तो मुझे सारी बातें कहो, खोलकर कहो, ब्योरे से कहो। एक-एक बात का तर्क स्पष्ट करो। मैं तुम्हारी बात हृदयपूर्वक सुनूंगा, ताकि मैं पुनः निर्णय ले सकूं।'

और अगर तुमने मेरी बात समझी है तो विरोधी की बात को सुनकर मेरी बात के संबंध में तुम्हारी समझ और गहरी होगी, कम नहीं होगी। क्यों कम होगी? या तो विरोधी सही कह रहा है, तो तुम मुझे छोड़ दोगे, तब भी अच्छा हुआ। तुम्हें जो सही लगा, उसके साथ गये। या तो विरोधी गलत ही कह रहा है, तो उसकी सारी बातें सुनकर मेरी बातें तुम्हें और सही लगने लगेंगी, जितनी सही कभी भी न लगी थीं।

लेकिन इसकी तुम्हें फिकर नहीं है। तुम कहते हो कि 'मुझे रंज होता है, इसलिए बिनती है कि जैसे आप बुद्ध और महावीर को समझाने में सहायक होते हैं, वैसे ही श्रीअरविंद को समझाने में सहायक हों!'

एक बात। मैं बुद्ध और महावीर को समझाने में सहायक नहीं हो रहा हूं। मैं अपने को समझा रहा हूं; बुद्ध और महावीर उसमें सहायक होते हैं। तुम ठीक से समझ लेना। मैं कोई मीरा को समझाने में सहायक नहीं हो रहा हूं। मेरा क्या लेना-देना? मैं अपने को समझा रहा हूं। उसमें मीरा सहायक होती है, इसलिए मीरा का उपयोग कर लेता हूं। अरविंद उसमें सहायक नहीं हो सकते, इसलिए उनका उपयोग नहीं कर सकता हूं।

तुमने बात ही गलत समझ ली। तुम समझे कि मैं इन लोगों को समझा रहा हूं। इनने मुझे नहीं समझाया, मैं इनको क्यों समझाऊं? बुद्ध मेरे संबंध में चुप रहे, मैं

क्यों बोलूं ? नहीं, इससे कुछ लेना-देना नहीं है। मैं जो तुम से कहना चाहता हूं, वही कह रहा हूं। अगर बुद्ध की वाणी उस पर थोड़ी रोशनी डाल देती है तो मैं बुद्ध की वाणी का उपयोग कर लेता हूं; महावीर की वाणी उस पर थोड़ी रोशनी डाल देती है, उनका उपयोग कर लेता हूं। लेकिन जो मुझे कहना है, मैं वही कह रहा हूं। जिस-जिस से मेरी बात के लिए गवाही मिलती है उनका मैं उपयोग कर लेता हूं। लेकिन वे गवाह हैं। ऐसा नहीं कि मैं उन्हें समझा रहा हूं।

यही तो फर्क है। पंडित बुद्ध को समझाता है। पुरोहित महावीर को समझाता है। मुनि, त्यागी, तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरु तुम्हारे महापुरुषों को समझाते हैं। मैं नहीं समझा रहा हूं किसी को। मैं तो सीधा मुझे जो दिखायी पड़ा है, मैंने जो जाना है, उसी को समझा रहा हूं। अब उस समझाने में जहां-जहां से सहायता मिल सकती है--ताकि तुम्हारे मन में बात पूरी तरह अनेक-अनेक द्वारों से बैठ जाए--उन सब का उपयोग किये ले रहा हूं। लेकिन जो मैं कह रहा हूं वह मेरा है। इसलिये यह तो भूलकर भी मत...।

मेरे पास लोग आ जाते हैं, कई लोग आ जाते हैं। कोई लेकर आ जाता है स्वामीनारायण संप्रदाय की किताबें, कि आप हमारे महाराज को समझाएं। मैंने कहा, तुम पागल हो गये हो ! मेरा तुम्हारे महाराज से लेना-देना क्या ? तुम मत झंझट में डलवाओ अपने स्वामीनारायण को ! तुम ले जाओ किताबें। कोई किसी और को लेकर आ जाता है कि ये हमारे स्वामी, इनको समझाइए ! मैं उनसे कहता हूं कि तुम खतरा मत लो, क्योंकि कौन जाने, अगर मुझ से मेल न बैठा तो फिर मुझ से मत कहना ! ऐसे ही तो गांधीवादियों ने गांधी को झंझट में डलवाया। ऐसे ही अरविंद को अरविंद के मानने वालों ने झंझट में डलवाया। मैं बोला ही नहीं था, न बोलने जाने वाला था उन पर। बस आ गये कि अरविंद को समझाइए। मैंने उनको कई दफा समझाया भी कि तुम अरविंद को क्षमा करो; मगर वे पीछे ही पड़े रहे। पीछे ही पड़े रहे तो फिर मुझे कुछ कहना पड़ा। फिर मैं वही कहूंगा जो मुझे दिखायी पड़ता है। उससे अन्यथा मैं एक शब्द नहीं कह सकता। उससे इंच भर भिन्न नहीं कह कहता। उससे तुम्हें चोट लगे तो ठीक। उससे तुम्हें आनंद हो तो ठीक। वह तुम्हारा निर्णय है। लेकिन मैं तुम्हारे रंज, सुख-दुख को देखकर नहीं बोल सकता, अन्यथा फिर मुझे झूठ बोलना पड़ेगा। तुम झूठ हो--और झूठों में तुम्हारा सुख है।

चौथा प्रश्न : आप कहते हैं--प्रेम है द्वार प्रभु का। मैंने भी कभी किसी को प्रेम किया था, लेकिन उसे पाने में असफल रहा। अब तो तीस वर्ष बीत चुके हैं, लेकिन फिर किसी और को प्रेम न कर पाया। भगवान, क्या कभी मेरा उससे मिलन होगा ?

*

पहली तो बात, जिसे मैं प्रेम कहता हूं और जिसे तुम प्रेम कहते हो, वे दोनों एक

चीजें नहीं हैं। तुम गलत चीज को प्रेम कह रहे हो। तुम कह रहे हो : 'तीस साल पहले मैंने किसी से कभी प्रेम किया था ! उसे पाने में असफल रहा।' अब प्रेम का पाने से क्या संबंध है ? मोह का पाने से संबंध है। मोह न पाये तो तड़फता है। प्रेम तो कर लिया और भर गया; पाने की क्या बात है ?

समझो, एक फूल खिला गुलाब का। तुम पास से निकले, तुम्हारी नजर पड़ी। तुम आह्लादित हुए। तुम्हारा प्रेम गुलाब के फूल पर बरसा। तुम अपनी राह चले गये। बात आयी-गयी, समाप्त हो गयी। गुलाब, जो तुम्हें दे सकता था, उसने तुम्हें दे दिया; तुम जो गुलाब को दे सकते थे, तुमने दे दिया। नहीं; लेकिन तुम कहते हो : हमें झपट्टा मारकर गुलाब का फूल तोड़ना है। जब तक हम उसको अपने बटन के काज में न लगाएं, तब तक हम तड़फेंगे। तीस साल हो गये तड़फते, कि उस गुलाब के फूल को हम अपने काज में न लगा पाए। गुलाब का फूल, जैसे ही तुमने कब्जा किया, वैसे ही मर गया।

प्रेम कब्जा नहीं मांगता। और शायद कब्जा मांगने के कारण ही तुम चूके। तुमने शायद कब्जा करना चाहा होगा। अभी भी तीस साल हो गये, मगर तुम्हारे इरादे अच्छे नहीं हैं। अभी भी तुम कह रहे हो : 'भगवान, क्या कभी मेरा उससे मिलन होगा ?' अगर मेरा बस चले तो कभी नहीं होने दूं। तुम खतरनाक हो। तुम किसी की गरदन पर सवार होना चाहते हो। तुम मालिक होना चाहते हो।

प्रेम तो दान है। प्रेम में कोई किसी को रोक ही नहीं सकता। जिससे तुम प्रेम करते हो, वह भी नहीं रोक सकता तुम्हें प्रेम में। कैसे रोक सकता है ? प्रेम तो तुम्हारा दान है।

और प्रेम कभी असफल नहीं होता—हो ही नहीं सकता। इसका मतलब यह नहीं है कि प्रेम तुम करोगे तो वह तुम्हें मिल ही जाएगा। उसको मैं सफलता नहीं कहता। प्रेम के तो करने में ही सफलता है। बात ही खत्म हो गयी; और कोई लक्ष्य नहीं है प्रेम में। लेकिन तुम चाहते होओगे कि यह स्त्री मेरी पत्नी बने। तुम सोचते हो यह प्रेम है ? तुम कब्जा करना चाहते थे। तुम स्त्री के हाथ में जंजीरें डालना चाहते थे। तुम इस स्त्री को अपने आंगन में कैद करना चाहते थे। तुम इस स्त्री को 'मेरी ही हो, और किसी की न हो', इस तरह की सील-मोहर लगाना चाहते थे। तुम स्वामी बनना चाहते थे। तुम इस स्त्री को संपत्ति बनाना चाहते थे। तुम चाहते थे कि फिर तुम स्त्री को लेकर गांव-बस्ती में घूमो और लोगों को दिखाओ कि 'देखो, यह सुंदर स्त्री, मेरी है ! और कोई इसकी तरफ आंख उठाकर न देखे ! अन्यथा मुझसे बुरा कोई भी नहीं।'

हिंसा का भाव था तुम्हारा, प्रेम का नहीं। प्रेम का क्या लेना-देना है ? प्रेम तो तुम्हारे भीतर उठी आनंद की ऊर्मी है। किसी के चेहरे को देखकर उठी, बात पूरी हो गयी। किसी की आंखों को देखकर उठी, बात पूरी हो गयी। किसी फूल को खिला

देखकर उठी, बात पूरी हो गयी । तुम मालिक क्यों होना चाहो ?

तुम प्रेम और लोभ में भेद नहीं समझ पा रहे हो । तुम प्रेम और मोह में भेद नहीं समझ पा रहे हो। तुमने लोभ और मोह को प्रेम समझा है। और ऐसा प्रेम तो असफल होगा ही । तुम्हें स्त्री नहीं मिली, इसलिए नहीं; मिल जाती तो भी असफल होता । नहीं मिली, इसलिए तीस साल तक सरकता भी रहा; मिल गयी होती तो तीन दिन न चलता ।

अक्सर ऐसा हो जाता है कि जिसको तुम पाना चाहते थे और नहीं पा सके, तो तुम्हारा अहंकार तड़फता रहता है, क्योंकि तुम्हें चोट लगी, तुम नहीं पा सके । तुम हार गये । तुम अपनी विजय करके दिखाना चाहते थे और विजय नहीं हो पायी। वह घाव तुम में तड़फता है । यह अहंकार ही है, यह प्रेम नहीं है ।

पूछते हो : 'आप कहते हैं—प्रेम है द्वार प्रभु का ।' मैं कहता नहीं; ऐसा है । प्रेम है द्वार परमात्मा का । और प्रेम के अतिरिक्त उसका कोई और द्वार नहीं है । लेकिन मेरे प्रेम की परिभाषा समझो । प्रेम है दान । प्रेम है विसर्जन । प्रेम है समर्पण ।

लेकिन तुम तो परमात्मा को भी अगर प्रेम करोगे तो उसको भी कब्जा कर लेना चाहोगे; मौका मिल जाए तो उसके गले में रस्सी डालकर तुम अपने अस्तबल में बांध दोगे कि 'चलो अब, मेरे अस्तबल में रहो । मैंने तुम्हें पा लिया ।' तुम तो परमात्मा को भी पा लोगे तो उसको भी कैदी बना लोगे । तुम्हारे मन में बड़ी गहन हिंसा है । तुम उस पर भी मुट्ठी बांध लोगे । अगर तुम्हें परमात्मा मिल जाए तो तुम फिर परमात्मा को किसी और को न मिलने दोगे; फिर तुम पूरी चेष्टा करोगे कि अब देखना, किसी और पर कृपा मत कर देना ! अब तुम्हारी सारी अनुकंपा मेरी तरफ है । मैं तुम्हारा भक्त, तुम मेरे भगवान ! अब इधर-उधर मत जाना! अब और दूसरे चिल्लाते हैं, चिल्लाने दो । न मैं तुम्हें धोखा दूंगा, न तुम मुझे धोखा देना । न मैं किसी और को भगवान बनाऊंगा, न तुम किसी और को भक्त बनाना।

तुम्हारा यह जो रुग्ण चित्त है, यह सभी चीजों को रुग्ण कर देता है।

जापान में एक कहानी है । एक बौद्ध साध्वी थी । उसके पास बड़े प्यारे बुद्ध की प्रतिमा थी । स्फटिक की बनी थी । और वह रोज बुद्ध की प्रार्थना करती सुबह-सांझ, आरती उतारती, दीया जलाती, ऊदबत्ती लगाती । साध्वी थी तो अक्सर मंदिरों में ठहरती । यात्रा पर जाती । एक बार मंदिर में ठहरी । हजार बुद्धों का मंदिर, जहां हजार प्रतिमाएं हैं बुद्ध की । उसने सुबह अपने छोटे-से बुद्ध को निकाला । ये हजार इतनी बड़ी प्रतिमाएं पूजा के लिए काफी नहीं हैं ! उसे अपनी थैली में जो बुद्ध हैं, उनकी ही प्रार्थना करनी है । ये उसी बुद्ध की प्रतिमाएं हैं सारी, बड़ी विराट प्रतिमाएं हैं, जिन्हें देखने हजारों मील से लोग आते हैं । लेकिन जब वह सुबह पूजा करने बैठी तो उसने अपनी झोली में से अपने बुद्ध निकाले । अपने-अपने बुद्ध सब सम्हालकर रखते हैं । ऐसे उधार बुद्ध और हर किसी के बुद्ध और ऐरे-गैरे नत्थु-खरे जिनकी

प्रार्थना करते हैं...। लोग अपने अपने विशिष्ट बुद्ध रखते हैं, अपनी थैली में रखते हैं, सम्हालकर रखते हैं । अपने बुद्ध को निकाला, बिठाया आसन पर। छोटा-सा आसन भी रखती थी ।

तब उसे एक सवाल उठा कि आज अगर मैंने ऊदबत्ती लगायी तो ऊदबत्ती के धुएं पर किसका क्या बस ! धुआं तो धुआं है। धुआं कोई आदमी तो नहीं है। आदमी जैसी बुद्धि भी धुएं के पास नहीं । धुआं तो उड़ेगा और ये जो हजार बुद्धों की प्रतिमाएं हैं, न मालूम किसके नासापुटों में समा जाए । धुआं तो धुआं है, धुएं का क्या भरोसा ! तो उसने एक छोटी-सी पोंगरी बनायी——बांस की पोंगरी। ऊदबत्ती लगायी और बांस की पोंगरी में से धुएं को अपने बुद्ध तक पहुंचाया। उसने जो किया, सो ठीक, मगर हुआ यह कि बुद्ध का चेहरा काला हो गया। वह बड़ी दुखी हुई। यह प्यारी-प्यारी प्रतिमा खराब हो गई ।

मंदिर का बड़ा पुजारी यह सब खड़ा देखता था । वह एक पहुंचा हुआ फकीर था। उसने कहा कि तेरी बात मैं समझ पाया । यह तेरा देख रहा हूं खेल । मगर देख, तेरे साथ बुद्ध की क्या गति हो गयी ! तू तो मुक्त न हुई बुद्ध को पाकर, बुद्ध तेरे कैदी हो गये । तू तो बुद्ध को पाकर सुंदर न हुई, बुद्ध कुरूप हो गये । जरा देख बुद्ध को क्या हुआ ! तूने चेहरा काला कर दिया । ऐसी भी क्या बात ? ऐसा भी क्या लोभ, मोह ? ऐसा भी क्या बंधन ?

मगर यही है हालत । अपने-अपने भगवान हैं । अपने-अपने मंदिर हैं । तुमने प्रेम को समझा ही नहीं । प्रेम विस्तीर्ण है । प्रेम कोई सीमा नहीं मानता और न कोई सीमा जानता है । प्रेम कुछ मांगता नहीं उत्तर में । प्रेम कोई प्रत्युत्तर नहीं चाहता । प्रेम तो इसी से धन्यभागी अनुभव करता है कि मैं प्रेम को कर पाया ।

अब तुम चांद को प्रेम करते हो, तो तुम चांद को कोई अपने घर बांध नहीं रखना चाहते । छोटे बच्चे अक्सर हाथ बढ़ाते हैं चांद को पकड़ने के लिए । छोटे बच्चे अक्सर परेशानी खड़ी कर देते हैं । तुमने कृष्ण और यशोदा की कहानी भी पढ़ी होगी कि कृष्ण मचल गये कि चांद चाहिए । अब यशोदा परेशान है कि क्या करे, क्या न करे। एक साधु गुजरता है और वह साधु यह सब देखता है । वह कहता है : एक काम कर। कांसे की थाली में पानी भरकर रख। चांद उसमें दिखायी पड़ेगा । वही चांद कृष्ण को दे-दे ।

उसने कांसे की थाली में पानी भरा, चांद का प्रतिबिंब पड़ा। यह छोटा-सा बालकृष्ण खूब आह्लादित हो गया। थाली लेकर घूमने लगा। जहां ले जाए, चांद तो वहीं, चांद की छाया पड़ रही है। बहुत खुश है, प्रसन्न हो गया, तृप्त हो गया।

ध्यान रखना, अगर तुमने प्रेम-पात्र पर मालकियत करनी चाही, तो प्रतिबिंब पर ही मालकियत होगी । यह कहानी का राज है। असली पर नहीं हो सकती । असली चूक जाएगा । नकली पर हो जाएगी मालकियत । नकली पर ही मालकियत

हो सकती है। नकली ही मुट्ठी में आता है, असली मुट्ठी में नहीं आता। अगर असली चाहिए हो तो मुट्ठी खुली रखना, बांधना मत। नकली चाहिए हो तो मुट्ठी बांध लेना। असली के लिए खुला हाथ चाहिए, खुला हृदय चाहिए। नकली के लिए बांध सकते हो। प्रतिबिंब पकड़ में आ सकते हैं, मूल पकड़ में नहीं आता।

और हम सारे जीवन यही उपद्रव में लगे हैं कि किसी तरह प्रेम पकड़ में आ जाए; बांध लें, रेखा खींच दें उसके चारों तरफ; कब्जे में कर लें। यह कब्जे की आकांक्षा रुग्ण है।

पूछते हो: 'आप कहते हैं — प्रेम है द्वार प्रभु का। मैंने भी कभी किसी से प्रेम किया था। लेकिन उसे पाने में असफल रहा।' पाने की आकांक्षा थी, इसी में असफलता है। अगर सिर्फ प्रेम किया होता तो सफलता ही सफलता थी। पाना क्यों चाहो? मालकियत क्यों? मालिक तो सिर्फ एक परमात्मा है, तुम क्यों मालिक बनना चाहो? सुंदर फूल उसके, सुंदर पहाड़ उसके, सुंदर चेहरे उसके, सुंदर देहें उसकी, सुंदर नदियां उसकी, सुंदर चांद-तारे उसके—सारा सौंदर्य उसका है। तुम कब्जा क्यों करना चाहो? और तीस साल बीत गये, अभी भी तुम्हारी कब्जे की आकांक्षा है?

लेकिन मैं फिर किसी और को प्रेम न कर पाया।'

तुम सोचते हो तुमने बड़ा भारी काम किया, कोई शहीद हो गये! सोच रहे होओगे: शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले! क्या विचार कर रहे हो? यह भी कोई प्रेम हुआ, जो एक पर चुक गया? बूंद-बूंद रहा होगा, एकाध ही बूंद रहा होगा कि टपका कि खत्म। फिर झरना ही सूख गया? इतना विराट संसार! प्रभु इतने रूपों में प्रगट! और तुम एक रूप में ही ऐसे भटक गये कि फिर तुम किसी और को प्रेम न कर पाए। तुम सोचते होओगे कि यह बड़ा मैंने प्रेम किया, कि देखो, वह तो नहीं मिली, लेकिन मैं अब भी उसी का हूं! फिर किसी को प्रेम नहीं किया!

तुम अपने को नाहक सता रहे हो। तुम अपने को नाहक कष्ट दे रहे हो। यह भी अहंकार है। उस प्रेम में भी अहंकार था कि पाकर कर रहूंगा! फिर पा नहीं सके तो विषाद ने घेर लिया। अब तुम यह कहते हो: तो दिखाकर रहूंगा कि मैं वफादार हूं! किसको दिखा रहे हो? तुम्हारा जीवन चुकता हुआ जा रहा है।

अगर परमात्मा एक द्वार से नहीं मिला, दूसरे द्वार से खोजते।

एक मेरे मित्र हैं। उनकी पत्नी मर गयी। जब पत्नी जिंदा थी, तब भी मैं उन्हें जानता था, कभी उनमें बनी नहीं। किस में बनती है! पति-पत्नी में बन जाए, यह चमत्कार। ऐसा होता नहीं। कभी हो जाए तो अपवाद। और अपवाद से सिर्फ नियम सिद्ध होता है, और कुछ सिद्ध नहीं होता। उन्हें जानता था। जब भी मेरे पास आते थे, उनकी पत्नी आती थी, तो सदा रोना और झंझट यही थी, दोनों की

बनती नहीं थी। फिर पत्नी मर गयी, पत्नी मर गयी तो मुझे खबर मिली कि वे तो एकदम विरागी हो गये। पत्नी क्या मर गयी, उनका प्रेम एकदम से पत्नी के प्रति हो गया! उन्होंने सब तरफ दीवालों में फोटुएं लगा लीं पत्नी की। दुकान इत्यादि जाना ही बंद कर दिया। पैसे वाले हैं, सुविधा है, चाहें तो इस तरह की शहीदगी का मजा ले सकते हैं, कोई अड़चन नहीं है। वे तो बैठ ही गये, वे जाएं ही नहीं वहां से, अपने कमरे में ही बैठे हैं धूनी रमाए। उनकी बहन ने मुझे आकर कहा कि मेरे भाई को क्या हो गया, अब आप कुछ फिकर करें! मरे उनकी पत्नी को तीन महीने हो गये, वे वहीं बैठे हैं धूनी रमाए। गजब का प्रेम, उनकी बहन ने कहा है। ऐसा प्रेम सतयुग में होता था, कलियुग में कहां!

मैंने उनसे कहा कि प्रेम-व्रेम कुछ नहीं, मैं आता हूं। मैं उनके घर गया। मैंने कहा: यह क्या कर रहे हैं, किसकी तस्वीरें लटकाये हुए हो? और मैं भलीभांति जानता हूं तुम्हारी कभी बनी नहीं। अब अपराध-भाव से पीड़ित हो या क्या मामला है—कि इसको कभी सुख नहीं दिया, इसको सदा सताया! तो अब कुछ क्षति-पूर्ति कर रहे हो? जिंदा थी तो तुमने जरूर कई बार सोचा होगा कि यह मर जाए। कौन पति नहीं सोचता! सरका देता है विचार को कि नहीं-नहीं, यह बात ठीक नहीं। और उस दिन जिस दिन यह विचार आता है, कुल्फी खरीद लाता है बाजार से, साड़ी ले आता है कि नहीं, यह विचार आ गया, ठीक नहीं। अब इसकी क्षति-पूर्ति करनी पड़ती है न! स्त्रियां जानती हैं, जिस दिन पति साड़ी ले आए बिना कहे, उसका मतलब है कुछ गड़बड़ है; मिठाई ले आए, उसका मतलब है कुछ गड़बड़ है। न दिवाली न होली—और ये मिठाई लिये चले आ रहे हैं! तो जरूर कोई अपराध किया है। फिर स्त्री खोजबीन में लग जाती है और जेब वगैरह तलाशती है, डायरी वगैरह देखती है कि कहीं फोन नंबर मिल जाए, कोई नाम का पता चल जाए। कुछ न कुछ है मामला!

तो मैंने कहा कि तुमने जरूर कई दफे सोचा होगा कि यह मर जाए। वे थोड़े चौंके। उन्होंने कहा कि यह आपको कैसे पता चला?

मैंने कहा: पता की बात ही क्या, ये फोटू क्यों लगाई हैं? यह यहां बैठकर क्या धूनी रमाए हुए हो? यह किसको दिखा रहे हो? इससे सार क्या है?

मैंने कहा: मुझसे तो कहो सच, अभी यहां कोई भी नहीं है। उनकी आंख में आंसू आ गये। उन्होंने कहा: आपने मुझे पकड़ लिया। मामला यही है। मैंने कई बार सोचा कि यह मर जाए। इतना ही नहीं, कई दफा मैंने सोचा कि मार डालूं, क्योंकि दुख ही दुख है। और फिर वह मर गई तो मुझे ऐसा लगता है कि मेरी ही भावनाओं ने उसे मार डाला। मगर आप किसी और को मत कह देना। लोग तो यही समझ रहे हैं कि मैं उसके प्रेम में दीवाना हूं, अब कभी विवाह न करूंगा।

मैंने उनसे कहा कि अगर इस स्त्री को तुमने प्रेम किया था और इस स्त्री के प्रेम

से तुमने आनंद पाया था तो तुम निश्चित विवाह करोगे। क्योंकि प्रेम ने तुम्हें आनंद दिया, आनंद तुम क्यों न चाहोगे! अक्सर जो लोग एक विवाह के बाद विवाह नहीं करते, वे वे लोग हैं जिनको इतना स्त्री कष्ट दे गयी कि सब स्त्रियों से मुक्त कर गयी, सदा के लिए मुक्त कर गयी। अब झंझट में वे नहीं पड़ सकते। एक को क्या जाना, सब को जान लिया। हालांकि ऐसा वे कहेंगे नहीं। मगर मनोवैज्ञानिक सत्य बड़े उलटे हैं। आदमी जो ऊपर करता है, वह एक बात; भीतर जो होती है, बिल्कुल दूसरी बात।

अब तुम कहते हो: 'तीस साल बीत चुके, मैं किसी को प्रेम न कर पाया।' तुम्हारे अहंकार को जो चोट लगी है, उस चोट के कारण तुम अब एक नया अहंकार खड़ा कर रहे हो कि मैं कोई ऐसा-वैसा प्रेमी नहीं हूं! मैं दिखाकर रहूंगा कि किया तो एक को किया, फिर कभी नहीं किया! बस एक पर कुर्बान हो गया। अपनी जिंदगी की आहुति चढ़ा दूंगा।

यह रुग्ण-चित्त-दशा है। यह दुखवादी दशा है। जिसको मनोवैज्ञानिक मैसोचिज़्म कहते हैं, यह अपने को सताने की वृत्ति है। तुम पुराने ढंग के संन्यासी हो सकते हो--बड़ी आसानी से। तुम चाहो तो कांटों वगैरह की सेज बनाकर लेट सकते हो, धूप में खड़े हो सकते हो, उपवास कर सकते हो--बड़ी आसानी से। तुम्हें बिल्कुल जम जाएगी ये बातें।

प्रेम तो जीवन की भाव-भंगिमा है। प्रेम जीवन है। प्रेम कोई ऐसी चीज नहीं की एक पर चुक गया। प्रेम तो श्वास है आत्मा की। तुम रोक कैसे सकोगे? जैसे शरीर के लिए श्वास की जरूरत है, ऐसे ही आत्मा के जीवन के लिए प्रेम की जरूरत है। प्रेम तो सतत हो रहा है--कभी वृक्ष से, कभी चांद से, कभी तारों से, कभी लोगों से, कभी कविताओं से, कभी संगीत से, कभी चित्रों से, कभी मूर्तियों से। प्रेम तो प्रतिपल हो रहा है। प्रेम कोई ऐसी चीज थोड़े ही है कि तुम एक तरफ कर लिए कि बस खतम हुआ। अब तुम मेरे पास हो तो मुझ से तुम्हारा प्रेम हो रहा है; नहीं तो यहां किसलिए हो? यह भी प्रेम है। अगर मेरी वाणी तुम्हें प्रीतिकर लग रही है तो यह भी प्रेम है।

प्रेम के अनंत रूप हैं। कोई एक स्त्री पर थोड़े ही चुक जाता है। कोई किसी एक पुरुष पर थोड़े ही चुक जाता है। तुम्हारा कोई मित्र भी होगा; वह भी प्रेम है। प्रेम के बहुत-बहुत भाव, बहुत भंगिमाएं हैं। और सभी भंगिमाओं में प्रेम को प्रगट होना चाहिए। और प्रेम की अंतिम भंगिमा परमात्मा है।

जब तुम्हारा प्रेम सब तरफ बहने लगता है, निर्बाध बहने लगता है, बेशर्त बहने लगता है; जब तुम्हारे प्रेम में कोई मांग नहीं रह जाती, सिर्फ दान रह जाता है--तो प्रेम प्रार्थना हो जाता है। इसलिए मैं कहता हूं: प्रेम परमात्मा का द्वार है।

मगर तुम पूछते हो: 'भगवान, क्या कभी मेरा उससे मिलन होगा?' महाराज

बख्शो! किसी तरह बेचारी बच गयी। तुम कुछ और काम करो। तुम क्या अगले जन्म की प्रतीक्षा कर रहे हो?

कल मैं एक कविता पढ़ रहा था, तुम्हारे काम की होगी।

उनकी तस्वीर निगाहों में चमक उठी है
आंसुओ! आज तो दम भर के लिए थम जाओ
जाने ये कौन बरस, कौन सदी है कि यहां
मेरी नाकाम सदाओं के भटकते आसेब
अपनी ही खोज में आवारा-ओ-दरमांदा है
मुझ को जाना था किधर और मैं आया हूं कहां?
अपने जख्मों को लिए कितने नगर घूमा हूं
ले के सामाने-सफर दुखते हुए शानों पर
हाथ पकड़े हुए वहशत-जदा अरमानों का
अजनबी वादियों, दरियाओं में आ पहुंचा हूं
हसरतो-गम की तपिश-रेज गुजर राहों पर
मेरे रिसते हुए छालों के निशां मिलते हैं
जीस्त दम भर को जहां बैठ के सुस्ताती थी
अब वो पीपल के घने साये कहां मिलते हैं
वक्त दम साधे हुए कांप रहा है कि अभी
जिंदगी अपनी कमींगह से निकल आएगी
और ठोकर उसे मारेगी कि--'चल, आगे बढ़!'
इसके पहले कि मिले वक्त को हुक्मे-रफ्तार
मेरा खोया हुआ चेहरा मुझे वापस दे दो
अपने लब रख के मैं उन ओठों पे सो जाऊंगा
जिनको चूमे हुए कितने ही बरस बीत गए
रूह में सुर्खिये-लब घुल के उतर जाएगी
सुबह अनफास की निकहत में बस जाएगी
पांव उठेंगे उसी शहर की जानिब, कि जहां
कल्ब ने मेरे, धड़क उठने का फन सीखा था
दम बखुद वक्त मुझे देख के पूछेगा--
'क्या तेरे शौक की वारफ्ता-मिजाजी है वही?'
अपने उलझे हुए बालों की लटें बिखराये
कौन ये गोद में बच्चे को लिए बैठी है
अपने घर-बार, दरोबाम से उकताई हुई
--किसलिए आए हैं? क्यों घर में घुसे आते हैं?

जाइये-जाइये, आफिस से वो आते होंगे
अजनबी शख्स को देखेंगे तो घबराएंगे
जाने क्या सोचेंगे, कुछ सोच के झुंझलाएंगे
कौन वो? कौन ये बच्चा? ये थका-सा चेहरा?
कौन मैं, अपने ही पैकर का झिझकता साया
वक्त एहसासे खिजालत से झुकाए हुए सर
अपनी खामोश निगाहों से ये करता है सवाल
'क्या तेरे शौक की वारफ्ता मिजाजी है वही?'

यह कवि कह रहा है कि वर्षों बीत गये हैं, जिसको प्रेम किया था और जिसके प्रेम के कारण जीवन में उत्साह उठा था, वह उत्साह खो गया। अब वर्षों से तो मैं एक भूत की तरह उसी को खोजते भटक रहा हूं। और इसके पहले कि समय मुझ से कहे कि उठ, आगे बढ़, मैं एक ही प्रार्थना करता हूं कि मुझे मेरा पुराना वह प्यारा चेहरा वापिस दे दो। मैं उन्हीं ओंठों पर ओंठ रखकर सो जाऊंगा।

मेरा खोया हुआ चेहरा मुझे वापिस दे दो
अपने लब रख के मैं उन होठों पे सो जाऊंगा
जिनको चूमे हुए कितने ही बरस बीत गए
रूह में सुर्खिये-लब घुल के उतर जाएगी
सुबह अनफास की निकहत में बस जाएगी

—मेरी श्वासें सुगंधित हो जाएंगी। ओंठों की सुर्खी मेरे प्राणों को फिर से जगा देगी।

पांव उठेंगे उसी शहर की जानिब, कि जहां
कल्ब ने मेरे, धड़क उठने का फन सीखा था

वह क्षण, वह प्रेम का क्षण, जहां मेरे हृदय ने धड़क उठने का राज़ सीखा था, उसी तरफ भागने लगूंगा।

दम बखुद वक्त मुझे देख के पूछेगा

और समय मुझ से जरूर पूछेगा—

'क्या तेरे शौक की वारफ्ता-मिजाजी है वही?'

क्या तेरे प्रेम का, तेरे लगाव का, तेरी वासना का, अभी भी वही मनमौजीपन है जो पहले था? अभी भी तू जागा नहीं? अभी भी तू समझा नहीं?

अपने उलझे हुए बालों की लटें बिखराये

और अगर मैं पहुंच जाऊं फिर से, तो यह होगी हालत...तुम्हारी भी यह हालत होगी। अब तीस साल बाद अगर तुम्हें मिल जाए वह स्त्री जिसको तुम सोचते हो तुमने प्रेम किया था और तुम उसके पास उसके घर में पहुंच जाओ...अपने

उलझे हुए बालों की लटें बिखराए! वह भी पचास की होती होगी। तुम अभी भी सोचते हो, वह बीस की है!

कौन ये गोद में बच्चे को लिए बैठी है?

मिल जाएगी तो पहचान भी न सकोगे।

कौन ये गोद में बच्चे को लिए बैठी है?
अपने घर-बार दरोबाम से उकताई हुई

सब तरह से ऊबी, परेशान, बालों को बिखराए, यह कौन बच्चे को लिए बैठी है! यह चेहरा तुम्हें पहचानने में भी नहीं आएगा। यह चेहरा वही नहीं है, जो तीस साल पहले था। नहीं हो सकता। अपना चेहरा तो आईने में देखो! तुम भी कितने बदल गये! तुम भी वही नहीं हो। वह भी वही नहीं हो सकती। तुम्हें देखेगी तो घबड़ाएगी। तुम यह मत सोचना कि पहचानेगी। पूछेगी:

किसलिए आए हैं? क्यों घर में घुसे आते हैं?
जाइये-जाइये, आफिस से वो आते होंगे
अजनबी शख्स को देखेंगे तो घबराएंगे
जाने क्या सोचेंगे, कुछ सोच के झुंझलाएंगे।

—आप कहां घुसे चले आ रहे हैं? तुम्हें पहचान भी न सकेगी। तुम भी न पहचान सकोगे। कौन वो! कौन यह बच्चा! यह थका-सा चेहरा! किसकी बातें कर रही है यह स्त्री? कौन वो? कौन हैं जो दफ्तर से आते होंगे? कौन यह बच्चा? यह थका-सा चेहरा! और तब तुम्हें ख्याल उठेगा:

कौन मैं? अपने ही पैकर का झिझकता साया

—सिर्फ एक छाया मात्र हूं अतीत की!

वक्त एहसासे खिजालत से झुकाये हुए सर

और समय लज्जा से सर झुकाकर पूछेगा—

अपनी खामोश निगाहों से ये करता है सवाल
'क्या तेरे शौक की वारफ्ता-मिजाजी है वही?'

क्या अब भी तेरे प्रेम का पागलपन वही है? अब भी तू समझा नहीं? प्रौढ़ नहीं हुआ? तीस साल लम्बा समय है। इन तीस सालों में तुम उसी सपने को संजोये बैठे हो, तो तुमने तीस साल गंवा दिये, तो तुमने जिंदगी से कुछ सीखा नहीं। और अभी तीस साल के बाद भी वही बचकानी बात तुम्हारे मन में घूम रही है कि भगवान, क्या कभी मेरा उससे मिलन होगा? तुम अब भी सपने और ख्वाब में जी रहे हो। ख्वाब से जागो! काफी समय बीत गया। आगे जो आ रहा है, संभावना बहुत कम है कि उससे तुम्हारा मिलना हो; क्योंकि जिससे तुम मिलना चाहते हो वह अब है कहां? गंगा का कितना पानी बह गया! जो तुम अपनी आंखों में सजाये बैठे हो तस्वीर, वह तस्वीर अब कभी नहीं मिलेगी। वह तो पानी

पर खिंची लकीर थी, कब की मिट गई है ! और जो मिलेगी, उससे तुम्हारा कोई तालमेल न बैठेगा। तुम सोच भी न पाओगे कि यह स्त्री इस तरह हो गई। तुम पहचान भी न पाओगे।

आने वाली जो घटना है, वह है मौत, जो पास आ रही है रोज। तुम अतीत में मत उलझे रहो। जरा जागो स्थिति के प्रति। जिंदगी हाथ से जा रही है। मौत करीब आ रही है। इसके पहले कि मौत आ जाए--पको! प्रौढ़ बनो! ये बचकानी बातें हैं। ये कवियों को शोभा देती हैं। कवियों को माफ किया जा सकता है। बुद्धिमानों को नहीं ये बातें शोभा देतीं। थोड़ी बुद्धि पर रौनक लाओ, थोड़ी बुद्धि को निखारो। थोड़ा जीवन को साफ करके देखो। मिल भी जाती तो क्या होता ? किसी को तो मिल ही गयी होगी। जरा उनसे पूछो, उनको क्या हुआ ?

मैंने सुना है, एक पागलखाने में दो आदमी बंद हैं। और एक दर्शक देखने आया है। वह पूछता है : यह आदमी क्या कर रहा है ? क्योंकि एक आदमी एक तस्वीर लिए बैठा है, जैसे तुम तस्वीर लिए बैठे हो। तस्वीर लिए बैठा है, छाती से लगा रहा है, चूमता है, छाती से लगाता है। आंसू बह रहे हैं, रो रहा है। वह पूछता है : इसको क्या हो गया ? तो सुप्रिन्टेन्डेन्ट कहता है : यह आदमी इस स्त्री को प्रेम करता था, उसे पा नहीं सका, उसी में पागल हो गया।

और सामने ही कोठरी में एक दूसरा आदमी दहाड़ें मार रहा है और दीवालों से सिर फोड़ रहा है। और वह पूछता है : इन सज्जन को क्या हुआ ? और वह सुप्रिन्टेन्डेन्ट कहता है : इन सज्जन को वह स्त्री मिल गयी, जिससे वह पहला प्रेम करता था। मिलने के कारण ये पागल हो गये हैं।

तुम बच गये, भगवान को धन्यवाद दो ! कोई दूसरा तुम्हारा कष्ट भोगता होगा।

इस जिंदगी में मिलता क्या है ? यहां मिलने को है क्या ? राख ही राख है। मिल जाए, इतनी-सी बात, तो बस बहुत है कि यहां कुछ भी मिलने को नहीं। बस यही सार है। इतनी बात समझ में आ जाए कि यहां कुछ भी नहीं। इस बोध से ही आदमी परमात्मा की तरफ उठना शुरू होता है। जहां संसार का प्रेम असफल होता है, वहीं परमात्मा का प्रेम जगता है।

अब तुम उस स्त्री की प्रतीक्षा न करो। अब तुम उस प्रेम की भी प्रतीक्षा न करो। वह जवानी का सपना था। जवानी सपने देखती है। गया ! अब तुम बूढ़े होने के करीब आए। अब तुम जरा जागो ! अब यह जिंदगी हाथ से निकली जाती है। इसके पहले कि यह जिंदगी हाथ से निकल जाए, कुछ तैयारी करो—मौत से मिलने की कुछ तैयारी करो। और एक ही व्यक्ति मौत से मिलने में तैयार हो पाता है, जो जाग जाए, जो होश से भर जाए, जो जिंदगी की असारता देख ले।

इस जिंदगी की असारता में ही परमात्मा का सार है। यहां दिख गया कि सब

असार है, तो वहां दिखना शुरू हो जाता है, जो सार है। असार को असार की तरह जान लेना, सार की तरफ जाने का पहला कदम है।

अब तुम असार में मत उलझे रहो। ऐसे भी बहुत समय गंवा दिया। तीस साल में तो परमात्मा को पा लेते। इतनी प्यास से तो परमात्मा मिल जाता। इतनी प्यास को ढालते तो प्रार्थना मिल जाती। तुम कूड़ा-कर्कट पाने के लिए इतने दीवाने हो रहे हो ? मूल्य कितना है ?

चारों तरफ देखो। जो प्रेम में सफल हो गये हैं, उनको देखो; जो असफल हो गये हैं, उनको देखो--सब रो रहे हैं ! यह प्रेम प्रेम नहीं है। मैं किसी और प्रेम की बात कर रहा हूं। मैं उस प्रेम की बात कर रहा हूं, जिसमें असफलता होती हीनहीं।

परमात्मा से प्रेम जुड़ाओ, वहां कभी असफलता नहीं है। और वहीं मिलता है जिसकी तुम तलाश कर रहे हो। जब तुम साधारण जीवन के प्रेम में भी पड़ते हो, तब भी तुम परमात्मा को ही खोज रहे हो; इसीलिए साधारण प्रेम तुम्हें तृप्त नहीं कर सकता, क्योंकि खोज बड़े की है और साधारण बिल्कुल साधारण है। तुम कंकड़-पत्थरों में हीरे खोज रहे हो, नहीं मिलेंगे। खोज परमात्मा की चल रही है, परम प्यारे की चल रही है। उसे खोजो ! वहां कोई कभी असफल नहीं होता है।

संसार में कोई कभी सफल नहीं होता; परमात्मा में कोई कभी असफल नहीं होता है।

आज इतना ही।